तुलसीसतसई

[भाषा-टीका-सहित]

टीकाकार—

स्वर्गीय श्री० बैजनाथजी

प्रकाशकः—

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ

पाँचवीं बार]

[सन् १९२८ ई०

भूमिका

—:o:—

दोहा

नौमि नौमि श्रीगुरुचरण, रज निज नैनन लाय।
विमल दृष्टिको हेत यह, तम अज्ञान मिटाय १
श्रीरघुनन्दन जानकी, चरण कमल उर धारि।
जासु कृपाते होत है, गोपद सम भव बारि २
वन्दौं श्रीतुलसी चरण, जाबानी पटरानि।
लही बड़ाई संग ज्यहि, दासी ह्वै मम बानि ३
काव्यकलामय निपुणकर, सुमति बोध भ्रमहीन।
कर्म ज्ञान दृढ़ भक्ति पथ, सतसैया रचि दीन ४
भूपनभसि तमसत्यमिति, अङ्क राम नव चन्द।
नौमि सप्तशतिकाप्रवच, प्रकटत भावसवन्द ५

वार्तिक यथा। या ग्रन्थ में प्रथमसर्ग में प्रेमभक्ति अनन्यता है द्वितीय में पराभक्ति उपासना तृतीय में सांकेतिक वक्रोक्ति चतुर्थ में आत्मबोध पञ्चम में कर्मसिद्धान्त षष्ठ में ज्ञानसिद्धान्त सप्तम में राजनीतिप्रस्ताव १ इति।

प्रथमप्रेमभक्ति वर्णन है सो भक्ति क्या वस्तु है ? कैसा वृत्तान्त है तहां वेद सूत्रनकरि यह निश्चय होत कि भगवत् में परम प्रेम अनुराग होना सोई भक्ति है यथा शाण्डिल्यसूत्र में है "अथातो भक्तिजिज्ञासा सा परानुरक्तिरीश्वरे" (पुनः) नारदजी अपने सूत्रन में लिखेः—

यथा—"अथातो भक्तिं व्याख्यास्यामः, सा कस्मै परमप्रेमरूपा २ अमृतस्वरूपा च ३ यल्लब्ध्वा पुमान्सिद्धो भवत्यमृतो भवति तृप्तो भवति ४ यत्प्राप्य न किंचिद्वाञ्छति न शोचति न द्वेष्टि न रमते नोत्साही भवति" ५

इत्यादि अब निश्चय भया कि ईश्वर में परमप्रेम वा परम अनुराग होना भक्ति है और हर्ष शोक की सुधि भी न होना तहां अब यह जानना चाहिये कि प्रेम अनुराग क्या वस्तु है ? तहां प्रेमानुरागादि सब प्रीतिके अङ्ग हैः—

यथा—"प्रणयप्रेम आसक्ति पुनि, लगन लाग अनुराग ।
नेह सहित सब प्रीति के, जानब अङ्गविभाग ॥
मम तव तव मम प्रणय यह, सौम्यदृष्टि तिहि होइ ।
प्रीति उमग सो प्रेम है, विह्वल दृष्टी सोइ ॥
चित असक्त आसक्ति सोइ, यकटक दृष्टी ताहि ।
बनी रहै सुधि लगन की, उत्कण्ठा दृग माहि ॥
जाके रस में लीन चित, चोप दृष्टि सोइ लाग ।
जासु प्रीति में चित रँगो, मत्त दृष्टि अनुराग ॥
मिलनि हँसनि बोलनि भली, ललित दृष्टि सो नेह ।
प्रीति होय सर्वाङ्ग उर, दृष्टि अधीन सदेह ॥"

तहां प्रणय अरु आसक्ति ये दोऊ अहंकार के विषय हैं प्रेम और लगन मन का विषय है लाग और अनुराग चित्त का विषय है

नेह और प्रीति बुद्धि का विषय है इत्यादि अहंकार, मन, चित्त, बुद्धि द्वारा सब विषय अनुकूल है जेहि रसको अत्यन्त भोगी है सर्वाङ्गपरिपूर्ण ह्वैजाय ताको प्रीति कही :—

यथा—भगवद्गुणदर्पणे

"अत्यन्तभोग्यता बुद्धिरानुकूलादिशालिनी।
अपरिपूर्णत्वया त्या, सा स्यात्प्रीतिरनुत्तमा॥
ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यं वक्ति च पृच्छति।
भुंक्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीतिलक्षणम्॥"

इत्यादि प्रेम अनुराग शोभा पाय बढ़त है सो शोभा भगवत् के रूप में अपार है शोभा अङ्ग :—

यथा—द्युति लावण्य स्वरूप पुनि, सुन्दरता रमनीय।
कान्ति मधुर मृदुता बहुरि, सुकुमारता गनीय॥
शरद चन्द की झलक सम, द्युति तनमाहिं लखाइ।
मुक्ता पानी सम गनौ, लावण्यता सुभाइ॥
विन भूषण भूषित जु तनु, रूप अनूपम गौर।
सब अङ्ग सुभग सुठौर शुचि, सुन्दरता शिरमौर॥
देखी अनदेखी मनौ, रमनी अत्रनी सोइ।
कान्ति अङ्ग की ज्योति सम, भूमि स्वर्ण सी होइ॥
देखत तृप्ति न मानिये, तेहि माधुरी बखान।
परसे परस न जानिये, सोई मृदुता जान॥
कमल दलन सों सेजरचि, कोमल बसन डसाइ।
नाक चढ़त बैठत तहां, सुकुमारता सुभाइ॥

इत्यादि शोभा भगवत् के अङ्ग में अपार है तामें आसक्त होना सो भक्ति है सो प्रेम दुइ भांति सों उत्पन्न होता है एक श्रीरघुनाथजी की कृपातेः—

यथा—जनक पुरवासी और दूसरा भाव ते प्रभुगुण सुने प्रेम होइ सो दुइ भांति एक भगवद्दासन की कृपाते:—

यथा—नारदजी ध्रुव को प्रेमासक्त कर दिये दूसरा साधनद्वारा:—

यथा—वाल्मीकि सों प्रेम एक संयोग एक वियोग सो भक्ति के पांच रस हैं प्रथम शृङ्गार, सख्य, वात्सल्य, दास, शान्त तिन रसन में चारि अङ्ग होत विभव, अनुभव, संचारी, स्थायी सबको प्रयोजन यह कि प्रभु के अनूपरूप की माधुरी अवलोकन में प्रेमासक्त बेसुधि रहना सो भक्ति है सो प्रेम अनन्यता प्रथम सर्ग में वर्णन है इष्टवन्दनात्मक मङ्गलाचरण है ॥

भूमिका समाप्त ।

श्रीमते रामानुजाय नमः

तुलसी-सतसई ।

दोहा

जय रघुबर जय जानकी, जय गुरुकृपा अपार ।
सतसैयार्थ समुद्र ते, बेगि कीजिये पार ॥
नमो नमो श्रीराम प्रभु, परमातम परधाम ।
ज्यहि सुमिरत सिधिहोत है, तुलसी जनमनकाम १

तिलक

श्रीराम श्रीरघुनाथजी को नमो नमो कहे वारम्वार नमस्कार है कैसे श्रीरघुनाथजी प्रभु हैं अर्थात् सर्वोपरि स्वामी हैं पुनः कैसे हैं परमातम पराजगत्कारणतयोत्कृष्ट मा कहे माया शक्ति जिहिके वश सब है ऐसी अचिन्त्यानन्त शक्ति हैं जाके ताको परमातम कही वा पद्भागयुक्त ।

यथा—महारामायणे

ऐश्वर्य्येण च धर्मेण यशसा च श्रियैव च।
वैराग्यमोक्षपट्कोणैः संजातो भगवान् हरिः॥

इत्यादि षड्भागानियुत रूपनते परे रूप ताते परमातम कही वा कार्य कारण विलक्षण नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव तिहिका परमातम कही परधाम कहे यावत् धाम है तिनते परे धाम है जिहिका।

यथा—सदाशिवसंहितायाम्

तदूर्ध्वे तु स्वयंभातो गोलोके प्रकृतेः परम्॥
वाङ्मनोगोचरातीतो ज्योतीरूपस्सनातनः १
तत्रास्ते भगवान् रामः सर्वदेवशिरोमणिः॥

इत्यादि ताते परधाम कहे गोसाईंजी कहत कि ज्ञानी जिज्ञासु आर्त अर्थार्थी आदि जो भक्तजन हैं ते जो जहाँ प्रभुको सुमिरन करत तिनको तुरतही मनकाम सिद्ध होतः—

यथा—नृसिंहपुराणे प्रह्लादवाक्यम्

रामनाम जपतां कुतो भयं सर्वतापशमनैकभेषजम्।
पश्य तात मम गात्रसन्निधौ पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना

यहि दोहा में अड़तिस वर्ण हैं याको नाम वानर है १

दोहा

राम वाम दिशि जानकी, लषण दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्याणकर, तुलसी सुरतरु तोर २

श्रीरघुनाथजी के वाम दिशि श्रीजानकीजी अरु दाहिनी दिशि श्रीलषणलाल या प्रकार तीनिउ रूप प्रसन्नमन विराजमान हैं गोसाईंजी आपने मनते कहत कि वासनारहित प्रेमभावते हृदयकमल

में सदा आसीन राखु या प्रकार को ध्यान कल्पवृक्ष सम तोको कल्याण कहे मङ्गल अर्थात् वाह्यउत्सव मोदमनमें आनन्दभाव भवफंदते अभय इत्यादि कल्याणको दायक कल्पवृक्ष है या प्रकारको ध्यान नैमित्यलीला चित्रकूट में संभावित होत:—

यथा—अध्यात्मरामायणे

वाल्मीकिना तत्र सुपूजितोऽयं रामः ससीतः सह लक्ष्मणेन ॥

इत्यादि अरु श्रीअयोध्यामध्य में जहां ध्यान है तहां श्रीराम-जानकी रत्नसिंहासनासीन हैं भरतादि अनुज छत्र चमर लिये:—

यथा—सदाशिवसंहितायाम्

तत्रास्ते भगवान् रामः सर्वदेवशिरोमणिः ।
सीतालिङ्गितवामाङ्गे कामरूपं रसोत्सुकम् १
लक्ष्मणं पश्चिमे भागे धृतच्छत्रं सचामरम् ।
उभौ, भरतशत्रुघ्नौ तालवृन्तकरावुभौ २

यथा—सनत्कुमारसंहितायाम्

वैदेहीसहितं सुरद्रुमतले हैमे महामण्डपे
मध्ये पुष्पकमासने मणिमये वीरासने संस्थितम् ।
अग्रे वाचयति प्रभंजनसुते तत्त्व च सद्भिः परं
व्याख्यात भरतादिभिः परिवृतं रामं भजे श्यामलम् ३

छत्तिस वर्ण पयोधर दोहा है ॥ २ ॥

दोहा

परम पुरुष परधामवर, जापर अपर न आन ।
तुलसी सो समुझत सुनत, राम सोइ निर्वान ३

परमपुरुष कहे श्रीरामरूप परात्पर है जापर अपररूप नहीं अयोध्याधाम वर कहे श्रेष्ठ परात्पर है जिन पर श्रेष्ठ धाम आन नहीं तिनकी लीला परात्पर वेद रामायणादि में सुनत श्रीगुरुकृपा-

चल ते तुलसी समुझत है जिनको श्रीराम ऐसो नाम परात्पर है सोई श्रीरघुनाथजी निर्वाण कहे मुक्तरूप सर्वप्रेरक परात्पर है यामें नामरूप लीलाधाम चारहू सर्वोपरि वर्णन करेः—

यथा—परमपुरुष सर्वोपरि श्रीरामरूप है जापर अपररूप नहीं धाम श्रीअयोध्या वर कहे श्रेष्ठ है जापर श्रेष्ठ आनधाम नहीं वेद पुराणादि में सुनत ताको तुलसी समुझत जाको राम ऐसो नाम परमश्रेष्ठ सोई श्रीरघुनाथजी निर्वाण मुक्तरूप हैं इत्यादि लीला परात्परधामरूप को प्रमाण ।

यथा—सदाशिवसंहितायाम्

तदूर्ध्वं तु स्वयंभान्तो गोलोकः प्रकृतेः परः ।
वाङ्मनोगोचरातीतो ज्योतीरूपः सनातनः १
तस्मिन्मध्ये पुरं दिव्यं साकेतमिति संज्ञकः ।
तत्रास्ते भगवान् रामः सर्वदेवशिरोमणिः २
तेजसा महताऽऽश्लिष्टमानन्दैकाग्रमान्दिरम् ।
यदंशेन समुद्भूता ब्रह्माविष्णुमहेश्वराः ।
उद्भवन्ति विनश्यन्ति कालज्ञानविडम्बनैः ३

नाम यथा—केदारखण्डे शिववाक्यम्

रामनामसमं तत्त्वं नास्ति वेदान्तगोचरम् ।
यत्प्रसादात्परां सिद्धिं संप्राप्ता मुनयोऽमलाम् ॥

यथा—लीला भागवते नवमे शुकवाक्यम्

यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनापि
गायंत्यघघ्नमृषयो दिग्भेदपट्टम् ।
तन्नाकपालवसुपालकिरीटजुष्टं
पादाम्बुजं रघुपतेः शरणं प्रपद्ये ॥

उन्तालीस वर्ण त्रिकल दोहा है ॥३॥

दोहा

सकल सुखदगुण जासुसो, राम कामनाहीन।
सकल कामप्रद सर्वहित, तुलसी कहहिं प्रबीन ४

जा श्रीरघुनाथजी के सौशील्य वात्सल्य करुणा दया उदार शरणपाल भक्तवात्सल्यादि यावत् गुण हैं ते सकल जीवन के सुखदायक हैं सकल कामप्रद कहे सबकी कामना के देनहार हैं अरु सब जीवमात्र के हितकर्ता है अरु आपु कामनाहीन हैं काहू ते कछु चाहत नहीं केवल शुद्ध शरणागत भये सब सुख देत गोसाईंजी कहत कि इत्यादि प्रभु को यश शिव, ब्रह्मा, शेष, सनकादि, नारद, वाल्मीक्यादि यावत् प्रवीण कहे तत्त्वज्ञाता हैं ते सब कहत हैं :—

यथा—कोशलपाल कृपाल कल्पतरु द्रवत् सकृत शिर नाये।

प्रमाणं वाल्मीकीये

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम १

पुनः—मित्रभावेन संप्राप्तं न त्यजेयं कथंचन।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात्सतामेतदगर्हितम् २

पद्मे यथा—सकृदुच्चारयेद्यस्तु रामनाम परात्परम्।
शुद्धाऽन्तःकरणो भूत्वा निर्वाणमधिगच्छति ३

सैंतिस वर्ण यह बल दोहा है ॥ ४ ॥

दोहा

जाके रोम रोम प्रति, अमित अमित ब्रह्मण्ड।
सो देखत तुलसी प्रकट, अमल सुअचल प्रचण्ड ५

जगतजननि श्रीजानकी, जनक राम शुभरूप।
जासुकृपा अति अघहरणि, करनि बिवेक अनूप ६

जाके जिन श्रीरघुनाथजी के रोमनप्रति अनेकन ब्रह्म है भाव उत्पत्ति पालन संहारादि जिनकी इच्छा ते ब्रह्मादि रचना करत श्रीरघुनाथजी सर्वोपरि स्वतन्त्र हैं।

यथा-सदाशिवसंहितायाम्

ब्रह्माण्डानामसंख्यानां ब्रह्मविष्णुहरात्मनाम्।
उद्भवे प्रलये हेतू राम एव इति श्रुतिः॥

पुनः कैसे हैं अमल जिनमें कोई विकार नहीं पुनः कैसे हैं अचल जो काहू करिकैं चलायमान नहीं पुनः कैसे है प्रचण्ड अर्थात् सबल जिनके कोपको रक्षक कोऊ नहीं।

यथा-हनुमन्नाटके

ब्रह्मा स्वयम्भूश्चतुराननो वा इन्द्रो महेन्द्रो सुरनायको वा।
रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा त्रातुं न शक्ता युधि राम वध्यम्॥

सो देखत तुलसी प्रकटभाव भक्तन के आधीन हैं लोक में प्रसिद्ध भये।

यथा-अध्यात्मे

को वा दयालुः स्मृतकामधेनुरन्यो जगत्यां रघुनायकादहो।
स्मृतो मया नित्यमनन्यभाजा ज्ञात्वास्मृता मे स्वयमेव यातः॥
सैंतिसवर्ण चल दोहा है॥ ५॥

जगत् की जननि कहे माता श्रीजानकीजी हैं अरु पिता श्रीरघुनाथजी हैं कैसे है दोऊ शुभ कहे कल्याणरूप भाव जगत् पुत्र पै सदा कल्याण चाहत यह सौभाविक माता पिता की रीति है जासु कहे जिन श्रीजनकनन्दिनी रघुनन्दन की कृपा अतिअघ कहे महापापन की हरणहारी है अरु अनूप विवेक को करनहारी है तहां कृपागुण का यह लक्षण है प्रभु में कि हम सदैव सब लोकन के रक्षक हैं दूसरा कोऊ कवहूं नहीं है अथवा जविमात्र को बन्ध

मोक्षादि समूह कार्य अपने आधीन जानना इत्यादि कृपागुण प्रभु को वेद में प्रसिद्ध है कृप् सामर्थ्यर्थ में धातु है याते परम समर्थवाचक कृपा यह पद सिद्ध है स्वर्ग नरक अपवर्गादिक सब तदाधीन हैं यह कृपा गुण है।

यथा–भगवद्गुणदर्पणे

रक्षणे सर्वभूतानामहमेव परो विभुः।
इति सामर्थ्यसंधानं कृपा सा पारमेश्वरी १
यद्वा—स्वसामर्थ्यानुसंधानाधीनकालुष्यनाशनः।
हार्दो भावविशेषो यः कृपा सा जगदीश्वरी २

कृप् सामर्थ्ये इति सम्भवत्वात् कृपा उन्तालीस वर्ण त्रिकल दोहा है कृपा गुण है॥ ६॥

दोहा

तात मातु पर जासु के, तासु न लेश कलेश।
ते तुलसी तजि जात किमि, तजि घरतर परदेश ७

तात मातु पर तहा जो केवल माते होइ तौ बालक को पालन पोषण होइ ताहूपर जासुके पिताहू है ता बालक को लेशमात्रहू क्लेश नहीं होत गोसाईंजी कहत कि ते बालक घरतर कहे श्रेष्ठ घर तजि किमि परदेश जात भाव दूसरेकी आश काहे को राखें इहा पितु मातु श्रीराम जानकी श्रेष्ठघर शरणागती बालक तुलसी परदेश और की आशभरोस।

यथा–महाभारते

भोजनाच्छादने चिन्ता वृथा कुर्वन्ति वैष्णवाः।
योऽसौ विश्वम्भरो देवो स भक्तान्किमुपेक्षते॥

सैंतिसवर्ण बल दोहा है॥ ७॥

दोहा

पिता विवेक निधान वर, मातु दयायुत नेह।
तासु सुवन किमि पाय है, अनतअटनतजिगेह ८
बुद्धि विनय गतिहीन शिशु, सुपथ कुपथ गत जान।
जननिजनकत्यहिकिमितजै, तुलसी सरिसअजान ६

जाके पिता वर कहे श्रेष्ठ विवेकनिधान कहे ज्ञानधाम श्री रघुनाथजी ऐसे अरु माता नेह सहित दयारूप श्रीजानकीजी तासु सुवन बालक अर्थात् सेवक सो गेह घर अर्थात् शरणागती तजि अनत अटन कहे घूमन जान कैसे पाय है दूसरे को आश भरोसा कैसे करने पावै भाव कैसहू पातकी होइ शरण आवै ताको त्यागते नहीं। अठतिसवर्ण वानर दोहा है ८ बुद्धि करिकै विनय कहे नम्रता करिकै सुपथ कहे सुमार्ग की गति कहे सुचाल इत्यादि ते हीन है अरु कुपथगत कहे कुमार्ग में चलत ऐसा कुमार्गी तुलसी सरिस अजान पुत्रके अवगुण जान कहे जानत हैं ताहू पर जननी जनक श्रीजानकी रघुनन्दन कैसे तजैं भाव नहीं तजत हैं यामें सौलभ्यगुण प्रभुको है कि अधिकारी अनाधिकारी सब जीवन को अनायास आपही प्राप्त होना सौलभ्यता है काहू समय अविचारत जीवनको देखि दया लगी तब श्रीआह्लादिनी शक्तिने प्रभुसों प्रार्थना करी कि, आपकी सौलभ्यता छिपी है ताते सुलभगुण को प्रकाश कीजै तब प्रभु जगपालन हेतु चतुर्व्यूह प्रकट करे महारानीजी ने कहा ये तौ रूप योगेश्वरन को प्राप्त होयँगे सौलभ्यता नहीं भई तब प्रभु सर्वव्यापी अन्तर्यामी प्रकट करे श्रीजीने कहा यहौ रूप योगेश्वरन को प्राप्त है तब प्रभु चतुर्भुजादिरूप प्रकट करे तब श्रीजीने कहा यह रूप उपासकन को प्राप्त होयँगे सुलभता नहीं है तब

प्रभु मत्स्यादि अवतार प्रकट करे तब श्रीजीने कहा ये रूप किञ्चित् काल रहैंगे अरु विचित्र कीर्ति भी नहीं ये भी सुलभ नहीं तब प्रभु श्रीरङ्ग व्यङ्कटाद्रि स्वय व्यक्तरूप प्रकट करे तब श्रीजीने कहा एक तौ सब देश में नहीं सबको पूजा करिबे को दुर्लभ दर्शनमात्र सोऊ सुलभ नहीं तब प्रभु ने कहा अब तुम बताओ सो करी तब श्रीस्वामिनीजीने कहा कि हे प्राणनाथ ! आप मनुजाकार माधुररूप प्रकृतिमण्डल में ऐश्वर्य माधुर्यमिश्रित विचित्र लीला करि यश कीर्ति गुण प्रताप प्रकट करो तब सबको सुलभ होइ तब श्रीराम जानकी युगलरूप जीवन के सुलभ हेतु प्रकटे ऐसे दयासिन्धु प्रभु शरणागत को कैसे त्यागैं इत्यादि भगवद्गुणदर्पण में प्रसिद्ध है । इकतालिस वर्ण मच्छ दोहा ॥ ९ ॥

दोहा

तात मात सिय राम रुख, बुधि विवेक परमान ।
हरत अखिल अघतरुणतर, तवतुलसीकछुजान १०

पूर्वाभ्यासते ज्यों ज्यों पाप होतगये होते होते तरुण कहे युवा है बढ़त बढ़त तरुणतर कहे विशेष बलिष्ठ भये ताते दु ख मोहादि भ्रमान्धकूप में परेते विवेकरहित बुद्धि मन्द भई ताते जीव भ्रमित शोक को पात्र भयो जब माता पिता श्रीराम जानकी भानुप्रभा के रुख कहे सम्मुख बुद्धि भई तिनकी दया प्रकाशते अखिल कहे सम्पूर्ण अघ तरुणतर कहे बलिष्ठरूप अन्धकार नाश भयो तब बुद्धि प्रकाश में सन्तुष्ट है विवेक परमान परम विवेक को प्राप्त भई भाव विज्ञानको निरूपण करती भई तब तुलसी कछु जान भाव श्रीरामसुयश कहवेकी गति भई बल दोहा यह है ॥ १० ॥

दोहा

जिनते उद्भव बर विभव, ब्रह्मादिक संसार।
सुगति तासु तिनकी कृपा, तुलसी वदहि विचार ११
शशि रवि सीताराम नभ, तुलसी उरसि प्रमान।
उदित सदा अथवत न सो, कुवलितितमकरहान १२

संसार को उद्भव उत्पत्ति वर कहे श्रेष्ठ विभवपालन संहारादि जिनते कहे जा प्रभु की इच्छाते ब्रह्मादि करत हैं अथवा ब्रह्मादि यावत् संसार है ताकी उत्पत्ति पालनादि जिनते भयो है तिनहीं श्रीसीताराम की कृपा ते तासु कहे ता संसार की सुगति कहे मुक्ति होत है ऐसा विचारिकै तुलसी वदहि कहे कहत हैं वा विचारवान् वाल्मीक्यादि ऐसा कहत है कि जाने संसार उपजायो पाल्यो ताही के आधीन सुगति भी है वानर दोहा है ११ शशि चन्द्रमा शीतल तापहारक आनन्ददायक प्रकाश सो श्रीजानकी जी सौलभ्य क्षमा दयादि गुणनसों भरी रवि सूर्य प्रतापवान् तमनाशक सो श्रीरघुनाथजी प्रतापवान् मोहतमनाशक तुलसी उरसि कहे हृदय प्रमाण कहे साचो नभसि कहे आकाश है ता विषे सदा उदय रहत काहू समय अथवत नहीं ताते कुवलित कहे कुवेष्टित भाव कुरीति ते हृदय में लपेटा मोहान्धकार ताकी हान कहे नाश होत तब उरमें विज्ञान प्रकाश होत तब बुद्धि श्रीराम सुयश वर्णन करत इति शेष। चालिसवर्ण कल दोहा है ॥ १२ ॥

दोहा

तुलसी कहत विचारि गुरु, राम सरिस नहिं आन।
जासु कृपा शुचि होति रुचि, विशद विवेक प्रमान १३

रा रसरूप अनूप अल, हरत सकल मल मूल।
तुलसी ममहिय योगलहि, उपजत सुख अनुकूल १४

श्रीगुरुरूप जो श्रीराम हैं तिन सरिस आन पदार्थ नहीं है यह बात तुलसी वेद शास्त्रादिते सुनि निजमनते विचारिकै कहत है काहेते जासु कहे जिन श्रीगुरुकृपाते श्रीरामभक्ति की शुचि कहे पवित्र रुचि होत है अरु विशद कहे उज्ज्वल निर्मल प्रमाण कहे साचो विवेक होत भाव श्रीगुरुकृपाते शुद्ध विवेक होत तब स्वस्वरूप जानै तब श्रीरामभक्ति की पवित्र रुचि होत। उनतालिस वर्ण त्रिकल दोहा है १३ अब नाम को निरूपण करैंगे याते प्रथम दोऊ वर्ण सबकी उत्पत्र के आदि कारण कहत श्रीरामनाम के जो दोऊ वर्ण हैं तामें प्रथम दीर्घ राकार है ताको कहत कि रा रस कहे जलरूप अनूप कहे जाकी उपमा को दूसरा नहीं है अल कहे समर्थ वा परिपूर्ण है भाव ऐश्वर्य बीजरूप है जो मलमूल पाप वा मोहान्धकारादि तिन सबको हरत हृदय को निर्मल करत पुनः गोसाईंजी कहत कि सोई रा रूप जल मकाररूप महि पृथ्वी को योग लहि कहे प्राप्त भये यथा भूमि में जल बरषे सर्व पदार्थ पैदा होत तथा श्रीराम ऐसा शब्द उचारण करते ही जीवके अनुकूल जो सुख है ब्रह्मानन्द प्रेमानन्दादि सुख उपजत है यामें राकार जलबीजरूप समर्थ सबको कारण है:—

यथा-पुलहसंहितायाम्

बीजे यथा स्थितो वृक्षः शाखापल्लवसंयुतः।
तथैव सर्ववेदा हि रकारेषु व्यवस्थिताः १

सो राकार जल बीजरूप मकार पृथ्वी में मिले सबकी उत्पत्ति भई।

यथा-हारीते

"रकारमैश्वर्यबीजं तु मकारस्तेन संयुतः।
अवधारणयोगेन रामो यस्मान्मनुः स्मृतः॥
चालिस वर्ण कच्छ दोहा है॥ १४॥

दोहा

रेफ रमित परमातमा, सह अकार सियरूप।
दीरघ मिलि विधि जीव इव,तुलसी अमल अनूप १५
अनुस्वार कारण जगत, श्रीकर करण अकार।
मिलत अकार मकार मो, तुलसी हरदातार १६

अब दुइ दोहन का अन्वय एक मे करि श्रीरामनाम विषे षट्वस्तु निरूपण करत हैं यथा रेफरमित परमातमा रेफ परब्रह्मरूप है जो सबमें रमित कहे व्याप्त है अरु सह अकार सोई रेफ अकार सहित कहे जब रकार भई तब सियरूप कहे श्रीजानकीजी सहित सगुणरूप है भाव ऐश्वर्य प्रताप माधुर्यरूप करुणा दयादि गुणन के जलधि हैं—

यथा-रामानुजमन्त्रार्थे

रकारार्थो रामः सगुणपरमैश्वर्यजलधिः।

। याते सगुण कहे गोसाईजी कहत कि जो दीर्घ आकार है विधि कहे ब्रह्माको कारण है पुनः कौन भांति रकार मों दीर्घ आकार मिली यथा अमल अनूप नित्यशुद्ध जीव परमेश्वर के समीपी होत। उनतालिस वर्ण त्रिकल दोहा है १५ पुन मकार की जो अनुस्वार है सो जगत् को कारण भाव ओंकार को हेतु है जो त्रिदेवन की शक्ति है मकार में जो अकार है सो श्रीकर करण कहे लोकनकी रचना यावत् जीवकोटि है सोई अनुस्वार अकार

में मिले मकार सो हरदातार कहे महाशम्भु को कारण है इत्यादि श्रीरामनामते पट्वस्तु कहे यथा रेफ रकार की अकार दीर्घ अकार अनुस्वार मकार की अकार मकार इति पट्वस्तु—

यथा—महारामायणे

रामनाममहाविद्ये षड्भिर्वस्तुभिरावृतम्।
ब्रह्मजीवमहानादैस्त्रिभिरन्यद्वदामि ते॥
स्वरेण विन्दुना चैव दिव्यया माययाऽपि च।

तहां रेफ परब्रह्म है मकार की अकार जीव है रकार की अकार महानाद है दीर्घ अकार सब स्वरन को कारण है अनुस्वार प्रणव को कारण है--

यथा—महारामायणे

"परब्रह्ममयो रेफो जीवोकारश्च मश्च यः।
रस्याकारोमयोनादः रायादीर्घस्वरामयः॥
मकारे व्यञ्जनं विन्दुर्हेतुः प्रणवमायथो।"

पुनः रेफ परब्रह्मरूप कोटि सूर्यवत् प्रकाशमान् श्रीरघुनाथजी के नेत्रन को तेज है।

यथा—महारामायणे

तेजोरूपमयो रेफो श्रीरामाम्बकक त्रयोः।
कोटिसूर्यप्रकाशश्च परब्रह्म स उच्यते॥

पुनः रेफ की अकार वासुदेव को कारण है कोटि कामसम शोभायमान सो श्रीरघुनाथजी के मुख को तेज है।

यथा—रामास्यमण्डलस्यैव तेजोरूपं वरानने।
कोटिकन्दर्पशोभाढ्यं रेफाकारो हि विद्धि च॥
अकारः सोऽपि रूपश्च वासुदेवः स कथ्यते।

पुनः मध्यअकार बलवीर्यवान् महाविष्णु को कारण है सो श्रीरघुनाथजी के वक्षःस्थल को तेज है।

यथा—मध्याकारो महारूपः श्रीरामस्यैव वक्षसः ।
सोप्याकारो महाविष्णुर्वलं वीर्यस्य कथ्यते ॥

पुनः मकार की जो अकार है सो महाशम्भु को कारण है सो श्रीरघुनाथजी के कटिजानुनी को तेज है ।

यथा—मत्स्याकारो भवेद्रूपः श्रीरामकटिजानुनी ।
सोप्याकारो महाशम्भुरुच्यते यो जगद्गुरुः ॥

पुनः मकार को व्यञ्जन सो सामूल मकृति महामाया को कारण सो श्रीरघुनाथजी की इच्छाभूत है ।

यथा—इच्छाभूतश्च रामस्य मकारं व्यञ्जनं च यत् ।
सा मूलमकृतिर्ज्ञेया महामायास्वरूपिणी ॥

इत्यादि ३७ वर्ण बल दोहा है ॥ १६ ॥

दोहा

ज्ञान विराग भक्ति सह, मूरति तुलसी पेखि।
वरणतगतिमतिअनुहरत, महिमाविशदबिशेखि१७

ज्ञान-वैराग्य भक्तिसहित श्रीरामनाम की जो मूर्ति है तिहिको पेखि कहे देखिकै जहां तक मेरी मति की गति है तहां तक विशद कहे उज्ज्वल महिमा विशेष करिकै वर्णन करत हों यामें रकार, अकार, मकार तीनि वर्ण-स्थापित करे तिनते वैराग्य ज्ञान भक्ति इत्यादि को कारण कहत तहां रकार परम वैराग्य को हेतु है काहेते कर्म वासनादि काठ को भस्म करिवे को रकार अग्निरूप है ।

पुनः अकार ज्ञान को हेतु है काहेते मोहान्धकार नाश सूर्यरूप है ।

पुनः मकार भक्ति को हेतु है काहेते जीव की ताप मिटायवे को शीतल चन्द्रमारूप है ।

यथा—महारामायणे

"रकारो नलवीजः स्याचे सर्वे वाडवादयः।
कृत्वा मनोमलं सर्वं भस्मकर्म शुभाशुभम्॥
अकारो भानुवीजं स्याद्वेदशास्त्रप्रकाशकम्।
नाशयत्येव सद्दीप्त्या याऽविद्या हृदये तमः॥
मकारश्चन्द्रबीजं च सदन्योपरिपूरणम्।
त्रितापं हरते नित्यं शीतलत्वं करोति च॥
रकारहेतुर्वैराग्यं परमं यच्च कथ्यते।
अकारो ज्ञानहेतुश्च मकारो भक्तिहेतुकम्॥"

उन्तालिस वर्ण त्रिकल दोहा है॥ १७॥

दोहा

नाम मनोहर जानि जिय, तुलसी करि परमान।
वर्ण विपर्यय भेद ते, कहौं सकल शुभजान १८

श्रीरामनाम मनोहर है ऐसा अपने जियमें जानिकै तुलसी परमान करे निश्चय करे कि शुभ करनेहार यावत् बीजमन्त्रन के हैं ते सब श्रीरामनाम ते उत्पन्न हैं सो कहतहौं कौन भांति वर्ण विपर्ययभेदते तहां विपर्यय आगम नाश विकार इति चारि रीति व्याकरण में प्रसिद्ध है।

यथा—सारस्वते

"वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ।"

तहां कौन कौन मन्त्रबीज हैं प्रथम प्रणव जा विना कोई मन्त्रादि हुई नहीं दूसरा षडक्षर को बीज 'रामिति' जो वैष्णवन को सर्वस्वधन है तीसरा सोऽहं स्वाभाविक जीव को मन्त्र है व ज्ञानमार्ग को प्रकाशक है इत्यादि मुख्य है और इनके पीछे है सो भी कहेंगे

अब जा भांति रामनाम ते सब बीज उत्पन्न भये हैं सो कहत हैं प्रथम प्रणव यथा "राम" इति स्थिते वर्णविपर्ययः इति सूत्र करिकै अकार आदि आई रकार मध्यगई 'अरम' अस भयो "सोर्विसर्गः" सकाररेफयोर्विसर्जनीयादेशो भवति इति रकार की विसर्ग भई 'अःम' अस भयो "अतोत्युः" अकारात्परस्य विसर्जनीयस्य उकारो भवति-अउम अस भयो "उओ" अवर्णे उवर्णे परे सह ओकारो भवति ओम्—अस भयो मोनुस्वारः मकारस्यानुस्वारो भवति ओं इति प्रणवसिद्धिः सोऽहं--

यथा—महारामायणे

सशब्देन हकारेण सोऽहमुं तथैव च।

राम इति स्थिते राकारस्य सुदृहगागमौ भवतः टित्वादादौ कित्वादन्ते इति सराहम इति स्थिते "सोर्विसर्गः" इति रकार की विसर्ग भई—सः अहम् अस भयो "अतोत्युः" इति उकार भई सउअहम् अस भयो "उओ" इति उकार की ओकार भई सो अहम् भयो "एदोतोऽतः" इति-अकार लोप भई "मोनुस्वारः" सोऽहं इति सिद्धिः बीज--

यथा--राम इति स्थिते "मोनुस्वारः" रामिति बीजसिद्धिः अरु श्रीं ह्रीं क्लीं अं यं स्रौं हुं इत्यादि यावत् बीज हैं सब रेफ अनुस्वार ते सिद्ध हैं। सैतीस वर्ण बल दोहा है ॥ १८ ॥

दोहा

तुलसी शुभकारण समुझि, गहत रामरस नाम। अशुभहरण शुचिशुभकरण, भक्तिज्ञानगुणधाम १६

यथा कलङ्क पारदरस धातुन में शुभकारन है भाव तांबामें परे सोना करि देत धातु की बेकार अशुभ है ताको हरिलेत तथा यावत्

वर्णरूप धातु है तिनको शुभकारन कलङ्क पारासम श्रीरामनाम जो वर्ण में मिलो ताको सिद्धिदायक करि दियो।

पुनः जो पारदरस को ग्रहण करै भाव सेवन करै ताके अनेक रोग मिटाय देह पुष्ट करि देइ इत्यादि गुण हैं श्रीरामनामरूप रस कैसो है जीव के यावत् अशुभ हैं जन्म मरण व कामादि बेकार को हरणहार है शुभ जो मङ्गल मोद ताको करनहार है।

पुनः भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, शान्ति, सन्तोषादि गुणन को धाम है जो कोऊ धारण करै ताके सब गुण आपही प्राप्त होत या भांति अशुभ को हरणहार अरु शुचि शुभकरणहार समुझि तुलसी श्रीरामनामरूप रस ग्रहण करत दृढ हृदय में धारण करत इकतालीस वर्ण मच्छ दोहा है ॥ १६ ॥

दोहा

तुलसी राम समान बर, सपनेहुँ अपर न आन।
तासुभजनरति हीनअति, चाहसि गति परमान २०

श्रीरामसम नाम श्रीरामरूप समरूप बर कहे श्रेष्ठ अपर कहे दूसरा और नहीं है काहेते नारायण विष्णु कृष्णादि यावत् नाम हैं ते सब ते शुद्ध उचार नहीं होत श्रीरामनाम सब ते शुद्धउचार होत यामें अशुद्धता हई नहीं दूसरे श्रीरामनाम में कोई विघ्न नहीं भावाभाव कैसहु जपै सिद्धिदायक है—

यथा—रहस्यनाटके

मधुरमधुरमेतन्मङ्गलं मङ्गलानां सकलनिगमवल्लीसत्फलं चित्स्वरूपम्।
सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा स भवति भवपारं रामनामानुभावात्

पुनः श्रीरामरूपसम श्रेष्ठ दूसरा रूप नहीं जे वानरनते सख्यता निबाहे अरु गीध की कृपा कीन्हीं ऐसे सुलभ दानी शिरोमणि

कैसे जाको दीने ताको पूरण करि दिये तासु कहे ताके भजन कीरति कहे प्रीतिहीन परमान कहे सांची गति मुक्ति चाहसि सो कैसे होई।

यथा—सत्योपाख्याने

"विना भक्तिं न मुक्तिश्च भुजमुत्थाय चोच्यते।
यूयं धन्या महाभागा येषां प्रीतिश्च राघवे॥"

चालीस वर्ण कच्छ दोहा है॥ २०॥

दोहा

अहिरसना थन धेनुरस, गणपतिद्विज गुरुवार।
माधवसित सियजन्मतिथि, सतसैया अवतार २१
भरनहरणअतिअमितविधि, तत्त्वअर्थ कवि रीति।
संकेतिक सिद्धान्त मत, तुलसीवदनविनीति २२

अहि सर्प ताकी रसना कहे जीभै दुइ धेनु गऊ ताके थन चारि रस कहे छः गणपति गणेश ताके द्विज दांत एक अङ्कस्य वामतो गतिः वामागती धरेते १६४२ संवत् गुरु वृहस्पति दिन माधव वैशाख सित शुक्लपक्ष सियजन्म तिथि नवमी अर्थात् सोलहसौ बयालीस संवत् वैशाख शुक्ल नवमी बृहस्पति को सतसैया को प्रारम्भ भयो चालीस वर्ण कच्छ दोहा है २१ भरन कहे ग्रहण हरण कहे त्याग इत्यादि अमित विधि है।

यथा—वर्णमैत्री, शब्द शुद्ध, गणविचार, छन्दप्रबन्ध, पदार्थ, भूषणमूल, रसाङ्ग, पराङ्ग, ध्वनिवाक्यादि अलंकार, गुणचित्र सुकान्ति दूषणन के भूषण इत्यादि ग्रहण इनते विपरीति को त्याग अरु तत्त्व कहे सारांश वस्तु ताको अर्थ युक्ति उक्ति चोज

दरशावना कविरीति कविन की परिपाटी सांकेतिक कहे जो पदनते अर्थ परिश्रम ते जानो जाय सिद्धान्त कहे वस्तु को प्रसिद्ध निरूपण करना।

यथा—कर्मसिद्धान्त, ज्ञानसिद्धान्त, भक्तिसिद्धान्त, तुलसीवदन विनीति नम्रता सहित भाव कविरीति में प्रौढोक्त्यादि त्यागि दैन्यतापूर्वक कविन की रीति कहत हौं ॥ उन्तालीस वर्ण त्रिकल दोहा है ॥ २२ ॥

दोहा

विमलबोधकारणसुमति, सतसैया सुखधाम।
गुरुमुख पढ़ि गति पाइहै, विरति भक्ति अभिराम २३
मनभयजरसत लागयुत, प्रकट छन्दयुत होय।
सो घटना सुखदा सदा, कहतसुकविसबकोय २४

सुन्दरमतिवाले जे सुजन हैं तिनको यह सतसैया सुख को धाम है भाव पठत में मन में आनन्द होइगो।

पुनः विमल कहे निर्मल बोध को कारण है भाव याके पढ़े विमल ज्ञान उत्पन्न होइगो।

पुनः जे गुरुमुखकी शरणागत हैं ते जो पढ़ि हैं तिनको अभिराम कहे आनन्दमयी विरति जो वैराग्य अरु पवित्र भक्ति श्रीरामजानकी में प्रीति।

पुनः गति कहे मुक्ति पाइहै इत्याशीर्वाद है त्रिकल दोहा है २३ अब लघु गुरुगणादि भेद कहत एक मात्रा को लघु कही द्विमात्रा को गुरु कही दुइवर्ण तक लघुगुरु संज्ञा है तीनि वर्ण होयें ताको गण कही।

यथा—तीनों गुरु मगण याको देवता भूमि लक्ष्मी की दातौ तीनों लघु नगण याको देवता शेष सुख को दाता आदिगुरु हैलघु ताको भगण कही याको देवता चन्द्रमा कीर्ति को दातौ आदि लघु है गुरु यगण ताको देवता जल यश को दाता इति चारि शुभगण आद्यन्त लघु मध्य गुरु जगण याको देवता सूर्य रोग के दाता आद्यन्त गुरु मध्यलघु रगण याके देवता अग्नि दाह के दाता आदि दै लघु अन्त गुरु सगण याको देवता काल सौं मृत्यु को दाता आदि दै गुरु अन्त लघु तगण याको देवता पवन भ्रमण को दाता इति चारि अशुभ गण है तहां मथम दूजे आदि चरण में शुभगण देइ अरु अशुभगण न देइ अरु (ल) कहे लघु जानो (ग) कहे गुरु जानो इत्यादि करिके युत छन्दन में यतं केहे जहां गुरु चाही तहां गुरु जहां लघु चाही तहां लघु देइ जहां जौन गण चाही तहां सो गण देई इन विचारन सहित पिङ्गल रीति सौं छन्द प्रकट होइ सो रीति पढ़ै न पावै सो शुभदा मङ्गल दायक सदा है सब सुकवि ऐसा कहते हैं। चालिस वर्ण कच्छ दोहा है॥ २४॥

दोहा

जत समान तत जान लघु, अपर बेद गुरु मान।
संयोगादि विकल्प पुनि, पदन अन्तकहु जान २५
दीरघ लघु करि तहँ पढ़ब, जहँ मुख लह विश्राम।
प्राकृत प्रकट प्रभाव यह, जनित बुधाबुधवाम २६

अब लघु गुरु को विचार कहत यथा यतनत इत्यादि यावत वर्ण हैं अरु समान कहे "अ इ उ ऋ लृ समानाः" इत्यादि पञ्च

स्वर समान हैं इन सबको लघु जानी अपर और वेद कहे चारि भांति ते गुरु होत प्रथम दीर्घमात्रा सहित यथा सीता द्वितीय अनुस्वार सहित यथा 'रामं' तृतीय विसर्ग सहित यथा "रामः" चतुर्थ संयोगी वर्ण के आदि सो विकल्प है कहीं होत यथा भस्म भकार गुरु भई कहीं नाहीं होत यथा राम श्याम इहां मकार लघु रही इत्यादि चारि भांति गुरु जानिये अरु पदके अन्त में कहीं लघुको गुरु मानत हैं इत्यादि ॥ अड़तिस वर्ण वानर दोहा है २७ गुरुको लघु यथा कहीं दीरघ भी लघुकरि पढ़ो जात है कहां जहां कवितादि पदनमें पदमें विश्राम पायो जाय यथा कवितावलीमें॥ "अवधेश के द्वार सकार गई सुत गोदकै भूपति लै निकसे।" यह दुमिला सवैया आठ सगन चाहिये तहां अवधेश के ककार लघु चाहिये सो गुरु है विश्रामते लघु पढ़ियत है सुत गोदकै ककार या भी वैसही जानना यह प्रभाव प्राकृतभाषा करिकै जनित कहे उत्पन्न है सो बुद्धिमानन में प्रकट है भाव जे काव्य में प्रवीण हैं ते जानत हैं अरु जे अबुध हैं ते वाम हैं भाव जे काव्य ते विमुख हैं ते नहीं जानत हैं तहां छः भाषा मिले भाषा कहावत है—

यथा—संस्कृतं प्राकृतं चैव सूरसेनं च मागधीम् ।
　　फारसीमपभ्रंशं च भाषाया लक्षणानि षट् ॥

तहां संस्कृत देवभाषा यथा रघोत्तम सुरभी सवधि प्राकृत नागभाषा यथा लषन लाल सूरसेन व्रजभाषा यथा मेरो मन मानवी मगध काशी यथा या विधि लेसें दीप फारसी दरि मगाय कहु कन्नलिय अपभ्रंश संस्कृत भट्ट गुरु को घर में गयो इत्यादि ॥ एक चालिस वर्ण मन्द होत है ॥ २६ ॥

दोहा

दुइ गुरु सीता सार गन, राम सो गुरु लघु होइ।
लहु गुरु रमाप्रतच्छगन, युगलहु हरगन सोइ २७

श्रीसीता सबमें सारांश है तहां सीताशब्द द्विगुरुगन भाव है गुरु जानना अरु रामशब्द गुरु लघु जानना अरु रमाशब्द प्रतच्छ लघु गुरु जानना हरशब्द द्वै लघु जानना इति लघु गुरुज्ञान॥ चालिस वर्ण कच्छ दोहा है॥ २७॥

दोहा

सहसनाम सुनि भनित सुनि, तुलसी वल्लभ नाम।
सकुचतिहियहँसि निरखि सिय, धरमधुरंधरराम २८

या दोहा में चारि भांति नायकत्व श्रीरघुनाथजी में सूचित करत तहां श्रीरघुनाथजी अनुकूल नायक हैं ऐसा सौभाविक सब कहत यथा "एकनारिव्रतोरामो" अरु इहां दक्षिणादि नायकत्व सूचित करत यथा श्रीरघुनाथजी के सहस्र नाम जो मुनिजन वर्णन करें तिनमें जहां तुलसीवल्लभ ऐसा नाम निसरो ताको सुनि श्रीजानकीजी विचारती हैं कि श्रीरघुनाथजी तौ धर्मधुरीण हैं अरु आपनी अनुकूल हम सदा जानती हैं तहां यथा जानकीवल्लभ तथा तुलसीवल्लभ तो हमारे विषे अरु तुलसी विषे समान प्रीति भई तौ अनुकूल काहेको है ये तौ दक्षिण नायक हैं याते सकुचती हैं पुनः श्रीरघुनाथजी की दिशि निरखती हैं निरखवे को यह भाव कि वचन तौ हमारी अनुकूल सदा मीठे बोलते हैं अरु तुलसी-वल्लभ जो भये तौ हमसे दुजागी करते हैं ताते शठ नायक है पुनः हृदय में हँसती हैं हँसवे को यह भाव कि हमारे वल्लभ हमारे अनुकूल कहावते तहां तुलसीवल्लभ नाम सुनि लाज नहीं आवती है

क्योंकि मुनिन को मने क्यों न करैं कि हमको तुलसीवल्लभ न कहौ ताते लज्जारहित धृष्ट है यह गोप्य उक्ति श्रीगोसाईंजी की सो यह वचन की रचना हास्यवर्धक कविन की चोजैं हैं॥ बयालिस वर्ण शार्दूल दोहा है॥ २८॥

दोहा

दम्पति रस रसना दशन, परिजन बदन सुगेह।
तुलसी हरहित बरन शिशु, संपति सरल सनेह २६

अब सूक्ष्मरीति सों रस वर्णन करत तहां रस आठ हैं तिनमें मुख शृङ्गार है सो दम्पति करिकै होत दम्पति कहे स्त्री पुरुष सो दम्पति कैसे होइ—

यथा—रसना कहे जिह्वा जाको सिवाय रसभोगी दूसरी फिकिर न हो अरु वाके परिजन कहे परिवार कैसा होय यथा दशन कहे दांत जो जिह्वाके हेत में लागे रहत अरु गेह कहे घर कैसा होइ—

यथा—मुख जहां सब सुपास अरु हरवरन को हित लिहे शिशु कहे बालक जानि सब सरल सनेह राखै अरु संपति परिपूर्ण होइ तब शृङ्गाररस भोगी दम्पति होय यह केवल श्रीरघुनाथजी में संभवित है अथवा रकार मकार को बालक सम उत्पत्ति वर्णन करत तहां बालक दम्पति सों उत्पत्ति होत दम्पति स्त्री पुरुष को कहत इहां रस पुरुष रसना स्त्री सो दम्पति है तहां रसयुत भगवत् यश पढ़िबो बिहार है प्रेम होना गर्भ है तब श्रीरामनाम को उच्चार सोई बालक है दशन जो दांत तेई परिजन कहे परिवार हैं मुख गेह है गोसाईंजी कहत कि हर जो महादेव तिनके हित वर्ण जो रकार मकार तेई शिशुसम उत्पन्न होत जहां घरमें संपति चाहिये सो नाम उच्चारण में जो सरल सहज सनेह सोई संपति है अर्थात्

संपति भये बालकन को पालन पोषण होत ताते शीघ्र बालक वर्धमान होत तथा सनेहते भजन बढ़त॥ शार्दूल दोहा है॥२६॥

दोहा

हिय निर्गुण नैननसगुण, रसना राम सो नाम।
मनहुँ पुरटसंपुट लसत, तुलसी ललितललाम ३०

यामें ऐश्वर्य माधुर्यमिश्रित वर्णन करत—

यथा—हिय निर्गुण कहे जो भगवत् की ऐश्वर्य यथा "रोम रोम प्रति राजैं कोटि कोटि ब्रह्मण्ड" ऐसा भाव दृढ़ हृदय में धारण करें अरु नैनन करिकै जो शील शोभादि अनेकन गुणनसों भरा रूप—

यथा—"नीलसरोरुह नीलमणि, नील नीरधर श्याम।
लाजहि तन शोभा निरखि, कोटि कोटि शतकाम"

पुनः "मधि मारुत सियरामसवारे सकल भुवन छवि मनहुँ मढ़ीरी। ऐसी श्याम गौर मनोहर जोरी जाकी माधुरी अवलोकन में नेत्र पलक रहित होत सो रूप नयन में अरु रसना जिह्वा करिकै श्रीरामनाम को सदा स्मरण तहां हिये में निर्गुण जो ऐश्वर्य दृढ़ अरु नेनन में श्याम गौररूपकी माधुरी को अवलोकन और रसना करिकै श्रीरामनाम का स्मरण ताकी उत्प्रेक्षा करत कि मानों पुरट कहे सोने के सम्पुट में ललित कहे सुन्दर ललाम कहे रत्न शोभित है निर्गुण ज्ञान सगुण भक्ति सोनेको सम्पुट नाम रत्न है यह उत्तम भक्तनको लक्षण है—

यथा—महारामायणे

"श्रीरामनामरसनं प्रपठन्ति भक्त्या प्रेम्णा च गद्गदगिरोऽश्रय हृष्टलोमाः। सीतायुतं रघुपतिं च विशोकमूर्तिं पश्यन्त्यहर्निशमुदा-परमेण रम्यम्॥ भूमौ जले नभसि देवनरासुरेषु भूतेषु देवि

सकलेषु चराचरेषु। पश्यन्ति शुद्धमनसा खलु रामरूपं रामस्य ते भुवि तले समुपासकारच" कच्छ दोहा है ॥ ३० ॥

दोहा

प्रभु गुणगण भूषण वसन, बचन विशेषि सुदेश।
राम सुकीरति कामिनी, तुलसी करतब केश ३१

अब सूक्ष्मरीति सों नायिका को शृङ्गार कहत—

यथा—श्रीरघुनाथजी की जो कीरति वर्णन है सोई कामिनी कहे नायिका है और श्रीरघुनाथजी के जो गुणन के गण हैं तेई कीरति नायिका के भूषण वसनादि शृङ्गार हैं काव्य में जो विशेष वचनन की रचना है सोई भूषणादि सुदेश पहिरावना है जो गोसाईंजी की नवीन उक्ति है सोई केश कहे बार हैं ते सुरीतिते मांग सी गुही है शृङ्गारगुण—

यथा—प्रभुकी प्रसन्नता कीरति को उपटन है शुद्धता मज्जन स्वच्छता वसन सुख माया वक्रदीप्ति मांग उज्ज्वलता सेंदुर सुन्दरता चन्दन माधुरी मेंहदीरूप अरगजा सुगन्धता सुगन्ध सुकुमारता फूलहार सुवेष मीसी लावण्यता पान नौवें अञ्जन शीलवेसरि प्रभुकी चातुर्यता कीरति की चातुरी इति सोरहशृङ्गार भूषण—

यथा—सौहार्द चूड़ामणि करना बन्दी कृपा दया कर्णफूल सुशीलता वेसरि सौशील्यकण्ठी सर्वज्ञत्व उरवसी क्षमा वात्सल्यता बाजूबन्द उदारता चूरी अनुकम्पा रसना कांची कृतज्ञता आरसी गाम्भीर्य पायजेब सौर्य बिछिया ॥ त्रिकल दोहा है ॥ ३१ ॥

दोहा

रघुबर कीरति तिय बदन, इव कहै तुलसीदास।
शरदप्रकाश अकाशछवि, चारुचिबुक तिलजास ३२

तुलसीशोभितनखतगण, शरद सुधाकर साथ।
मुक्तभालरि झलक जनु, रामसुयशशिशुहाथ ३३

श्रीरघुनाथजीकी कीरतिरूप तियाको वदन जो मुख इव कहे या भांति तुलसीदास कहते हैं कौन प्रकार।

यथा—शरदऋतु में आकाश में प्रकाशमान पूर्ण चन्द्रमा सी छवि है तहां गोसाईं जी की जो उक्ति है सो कैसी शोभित होति।

यथा—चारु कहे सुन्दर चिबुक कहे दाढी के तिल सम अर्थात् शरच्चन्द्रसम कीरति कामिनी को मुख तामें दाढी के तिलसम तुलसी की उक्ति है प्रथम दोहा में केश सम आपनी उक्ति कहे अब दाढी के तिलसम कहत तहां वार तिल दोऊ श्याम तैसे मेरी वाणी श्याम।

यथा—तिया तन में वार अरु तिल शोभायमान तैसे प्रभुकीरति पाय मेरी वाणी शोभित है ॥ इकतालिस वर्ण कच्छ दोहा है ३२ श्रीरघुनाथजी को सुयश शरदऋतु को चन्द्रमा सम शोभित ताके साथ तुलसी की उक्ति नखतसम शोभित होत।

पुनः कौनभांति शोभित तहां श्रीरघुनाथजी को सुयश सोई बालक है ताके हाथमें मुक्त कहे मोतिनकी ऐसी झालरि मानों झलकत है। भाव श्रीरघुनाथजी के सुयश को साथ पाय मेरी वाणी भी प्रकाशित भई॥ उन्तालिस वर्ण त्रिकल दोहा है॥ ३३॥

दोहा

आतम बोध विवेक बिनु, राम भजत अलसात।
लोकसहित परलोककी, अवशि बिनाशी बात ३४
वरु मराल मानस तजे, चन्द्र शीत रवि घाम।
मोर मदादिक जो तजे, तुलसी तजे न राम ३५

"आत्मा सत्यस्तदन्यत्सर्वं मिथ्येति आत्मबोधः नित्यवस्त्वेकम् । ब्रह्म तद्व्यतिरिक्तं सर्वमनित्यमयमेव नित्यानित्यवस्तुविवेकः ॥"

आत्मा सत्य तिहिते विलग यावत् वस्तु सो सब मिथ्या यह आत्मबोध है ब्रह्म सत्य नित्य ताते अलग सो सब अनित्य यह विवेक है सो विना आत्मबोध विना विवेक अज्ञान दशा में परे ताते श्रीरघुनाथजी के भजन करत अलसाते हैं ते अपने हाथ अवशि कही निश्चय करिकै लोकसहित परलोक की बात विनाशी नाशकरी भाव लोक में तीनों ताप में तप्त परलोक में यम सांसति यामें अभिप्राय को जब विवेक होइ तब जीव भक्ति करिबे योग्य होय ॥ चैंतिस वर्ण बल दोहा है ३४ अब आपनी दृढ़ता अनन्यता कहत मराल जो हंस ते वरुकु मानसर तजैं चन्द्रमा वरु शीतलता तजै सूर्य वरु घामतजै अरु मोरमदादि मोर को घन चकोरको चन्द्रमा चातकको स्वाती मृगको राग मीन को जल इत्यादिकनके ये मद हैं सो वरुकु तजै परन्तु तुलसी श्रीरघुनाथजी को न तजैं वा तुलसी को श्री रघुनाथजी न तजैं काहेते शरणपाल हैं ।

यथा—वाल्मीकीये

"सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥"

पैंतिस वर्ण मदकल दोहा है ॥ ३५ ॥

दोहा

आसन दृढ़ आहार दृढ़, सुमति ज्ञान दृढ़ होय ।
तुलसी विना उपासना, विन दुलहे की जोय ३६
रामचरण अवलम्ब विन, परमारथ की आश ।
चाहत वारिद बुन्दगहि, तुलसी चढ़त अकाश ३७

आसनदृढ़ अर्थात् स्थिरचित्त हैं आहारदृढ़ अर्थात् संतोषी हैं सुमतिदृढ़ अर्थात् समचित्त हैं ज्ञानदृढ़ अर्थात् सारासार जानते हैं इत्यादि सब गुणभये अरु उपासना कहे दृढभक्ति एकरूप सब में व्याप्त हमारेही इष्ट है ऐसा नहीं मानते ते कैसे है।

यथा—विन पतिकी नारी परकीया वा गणिका जाही सों प्रयोजन भयो ताही को इष्ट माने पीछे कछु कार्य नहीं ते कैसे हैं।

यथा—काक बक उपासक कैसे है।

यथा—चातक चकोर छत्तीस वर्ण पयोधर दोहा है ॥ ३६ ॥

श्रीरघुनाथजी के चरणरूप जहाज जो भवसिन्धु पारकर्ता तिनकी अवलम्ब अर्थात् विना चरणन में दृढ प्रीति किये जे जन परमारथ कहे परलोककी आश करत ते कैसे अजानहैं जैसे कोऊ वारिद जो मेघ ताके बुन्दगहि आकाश चढा चाहत है आकाश ब्रह्महै भूंठ ब्रह्मज्ञान है सो बुन्द है भूंठही अहंब्रह्म कहि ब्रह्मलीन होन चाहत है सो दुर्घट है।

यथा—महारामायणे

"यो ब्रह्मास्मीति नित्यं वदति हृदि विना रामचन्द्राङ्घ्रिपद्मं तेबुद्धास्स्यक्रपोतास्तृणपरिनिचये सिन्धुमुग्रं तरन्ति"

अट्ठतीस वर्ण वानर दोहा है ॥ ३७ ॥

दोहा

रामनाम तरु मूलरस, अष्टपत्र फल एक।
युगलसन्त शुभचारि जग, वर्णत निगम अनेक ३८
राम कामतरु परिहरत, सेवत कलितरु ठूंठ।
स्वारथ परमारथ चहत, सकल मनोरथ भूंठ ३९

श्रीरामचरितरूप सुन्दर वृक्ष है सो कैसो है जगमें शुभ कहे

मङ्गल मोददायक एकरस चारिहू युगन में लसन्त कहे विराजमान है या बातको चारहू वेद अरु अनेकन आचार्य वर्णन करते हैं सो कैसा वृक्ष है श्रीरामनाम जामें जर है श्रीरामरूप पेड़ है धाम जामें स्कन्ध हैं लीला जामें शाखा हैं अरु रस।

यथा—शृङ्गार, हास्य, करुणा, वीर, रौद्र, भयानक, वीभत्स, अद्भुत इति आठौरसन में भगवत् यश को प्रचार तेई जा वृक्ष के पत्र हैं ज्ञानादि फूल भक्ति एक फल है माधुरी को अवलोकन रस है त्रिकल दोहा है ३८ श्रीरामरूप जो कल्पवृक्ष है ताको जे परिहरत अर्थात् भगवत् शरणागत ते विमुख हैं अरु कलितरु बहेरा।

यथा—"नाक्षस्तुषः कर्षफलो भूतावासः कलिद्रुम इत्यमरः"। सो बहेरा ठूंठको सेवत हैं प्रयोजन यह कि तन्त्रन में जहां प्रेतादि सिद्ध करिबेको लिखाहै सो बबूर बहेरा तर लिखा है ता हेतु कहत कि भूतादिकन के सिद्ध करिबे हेतु बहेरा को ठूंठ सेवत जो त्रिकाल में झूठ तामें मन लगाये हैं तामें स्वारथ लोकसुख परमारथ मुक्ति सो सब मनोरथ झूठे हैं कच्छ दोहा है ॥ ३९ ॥

दोहा

तुलसी केवल कामतरु, राम चरित आराम।
निश्चरकलिकरि निहततरु, मोहिकहतविधिवाम ४०
स्वारथ परमारथ सकल, सुलभ एकही ओर।
द्वार दूसरे दीनता, उचित न तुलसी तोर ४१

गोसाईंजी कहत कि; श्रीरामचरित रूप जो कामतरु है एक ताही में जीवको आराम कहे सुख है तेहिको कलियुग जो निशाचर है भगवद्भक्ति को विरोधी सोई कलियुग करि कहे जो हाथीरुप है रामचरित कामतरु को निहत कहे उचारि डारत है भाव एक तो

श्रीरामचरित में काहू को मन लागतै नहीं कदाचित् संयोग वश सत्संग में आये तौ कलियुग अनेक विघ्न लगाय ताते मन ऊबिकै छांडिदिये तब अनेक दुःख के भाजन भये जब दैविकादि तापनमें तपे तब मोहिकै मोहवश ह्वै कहत कि हमते विधाता वाम है यह कहना वृथा है जैसा बवोगे वैसाही लूनोगे कच्छ दोहा है ४० गोसाईजी कहत आपने मनते कि स्वारथ जो लोकसुख परमारथ जो परलोकसुख ते सकल तोको एक श्रीरघुनाथजीकी ओर सम्मुख रहे सब सुलभ हैं ताते दूसरे द्वार अर्थात् देवतादिकन ते आपनी दीनता सुनावना अब तोको उचित नहीं है भाव दृढ़ अनन्य ह्वै श्रीरघुनाथजीको भजु औ आश भरोसा तजु श्रीरघुनाथजी सों अधिक दानी कौन है ।

यथा—हनुमन्नाटके

"या विभूतिर्दशग्रीवे शिरश्छेदेऽपि शङ्करात् ।
दर्शनाद्रामदेवस्य सा विभूतिर्विभीषणे ॥"

पयोधर दोहा है ॥ ४१ ॥

दोहा

हितसनहित रति रामसन, रिपुसन बैर विहाव ।
उदासीन संसार सन, तुलसी सहज सुभाव ४२
तिलपर राखे सकलजग, विदित विलोकत लोग ।
तुलसी महिमा रामकी, को जग जानन योग ४३
जहां राम तहँ काम नहिं, जहां काम नहिं राम ।
तुलसी कबहीं होत नहिं, रवि रजनी इकठाम ४४

हित कहे मित्र मानि काहूसों मित्रता रिपु कहे शत्रु मानि काहूसन

वैर इत्यादि राग द्वेष विहाय कहे छांड़िकै सहज स्वभाव सब संसार सन उदासीनता मानि हे तुलसी ! श्रीरघुनाथजी सों रति कहे दृढ़ अनुराग करु याही में तेरो भला है त्रिकल दोहा है विहाय शब्द हिताहित में है तातें तुल्ययोग्यतालङ्कार है ४२ जो प्रभु ऐसा समर्थ है कि आपनी माया से एक तिलमात्र पर सब जग को राखे है वा स्वनेत्र के तिल अर्थात् कटाक्षमात्र जगत्की रचना है व देहधारिन के नेत्रन के तिलपर सब जग राखे है भाव जा तिल ते सब लोग जगको विदित कहे प्रसिद्ध देखत हैं ऐसी शक्ति नेत्रन के तिलमें दिहे है ऐसी महिमा श्रीरघुनाथजी की है ताको कौन जगमें जाननहार है बल दोहा है ४३ जहां श्रीरघुनाथजी के रूप को प्रकाश है तहां काम नहीं है क्योंकि जबतक जीव न निर्मल होइगो तबतक भक्ति काहे को होयगी अरु जहां काम है तहां श्रीराम नहीं क्योंकि चित्त तो कामासक्त है ईश्वर के सम्मुख काहेको सो याको दृष्टान्त देखावत हैं गोसाईंजी कहत कि कौन भांति काम और श्रीराम इकट्ठा नहीं होत।

यथा—सूर्य अरु रात्रि नहीं एकठौर होत तहां काम जीवको अन्ध करत क्योंकि यावत् लोक में कामासक्त हैं तिनको लोकलाज धर्मकी क्या परी आपने प्राणन को तृणसमं त्याग करत अरु ईश्वररूप जीव के अन्तर प्रकाश करत है सो ये दो कैसे इकट्ठा होइँ वा काम ईश्वरको समर्थ पुत्र है याते परस्पर संकोच राखते हैं ॥ बल दोहा है ॥ ४४ ॥

दोहा

राम दूरि माया प्रबल, घटत जानि मनमाहिं ।
बढ़ति भूरि रबि दूरि लखि, शिरपर पगुतरछाहिं ४५
सम्पति सकल जगत्र की, श्वासा सम नहिं होय ।
श्वास स्वई तजि रामपद, तुलसी अलग न खोय ४६

राम दूर कहें जाको मन श्रीरघुनाथजी सों विमुख है ताके मायाकृत प्रपञ्च देहको झूठा व्यवहार सो सब बढ़त जात अरु घटत जानि मनमाहि जाके मनमें श्रीरामरूप नामादि का प्रकाश है यह जानि माया प्रपञ्चघटत जात कौन भांति।

यथा—सूर्य को दूरि देखि छाहीं बढ़ि जात अरु जब सूर्य शीशपर होत तब छाहीं पाँवनतर है जात भाव प्रभु में प्रीति करो माया दासी है॥ निकल दोहा है ४५ राजश्री आदि यावत् सम्पत्ति जगत् की है सो सब स्वासासम नहीं है क्योंकि जब स्वासा नहीं तब सम्पत्ति वृथा है ताते स्वासा तनमें सारांश है सो बिना रघुनाथ जी के चरणन में प्रीति श्वासा वृथा न खोउ भाव हरिभक्ति में जीवको *कल्या ताको विहाय झूँठी बातमें मन लगाय जीवन वृथा न गवांउ।*

यथा—भागवते

"रायः कलत्रं पशवः सुतादयो गृहामहीकुञ्जरकोषभूतयः।
सर्वेऽर्थकामःक्षणभङ्गुरायुषः कुर्वन्ति मर्त्यस्य कियत् प्रियं चलाः॥"

वक्र दोहा है॥ ४६॥

दोहा

तुलसी सो अति चतुरता, रामचरण लौलीन।
पर मन परधन हरण कहँ, गणिकापरमप्रवीन ४७

गोसाईजी कहत कि; अति चतुरता तबै भली है जब श्रीराम-चरण सेवन में लवलीन होइ कौन भांति प्रथम प्रभुको स्वामी अपनाको सेवक मानि सन्ध्या तर्पणादि नित्य नैमित्य करै सो श्रीरामप्रीत्यर्थ करै पुनः जो अर्चारूप को पूजा करै तौ कूर्मचक्रादि भूमि शोधि वेदिका चौकी रचि तापै दशावरण यन्त्रराजपर अङ्ग देवन सहित श्रीराम जानकी स्थापित करि जैसा रामतापिनी

सुन्दरी तन्त्रादि पद्धतिन में आचार्यलोग लिखे हैं ताविधि सों पूजा करै जो ऐसा न ह्वैसकै तो प्रेमते लाड़ दुलार सहित षोड़शोपचार पूजन करै ।

यथा—"आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम् ।
मधुपर्काचमनं स्नानं वस्त्रं चाभरणानि च ॥
सुगन्धं सुमनो धूपं दीपं नैवेद्यवन्दनमित्यादि"

जो करै सो प्रेम लाड़ सहित करै ।

यथा—ऋतु अनुकूल वस्त्र भोजन उष्णकाल में खस बँगला टट्टी छिरिकि शयन करावना शीतकाल में तपावना भोजन वस्त्रादि में आपनी इच्छा न मानना भगवत्इच्छा मानि निवेदित करि ग्रहण करना भगवत्लीला का उत्सव यथाशक्ति करना राग भोगसहित विद्याध्ययन भगवत् यश अवलोकन हेत है लोक व्यवहार भगवत् राग भोग हेत है आठ पहर भगवत् स्मरण के सिवाय दूसरी बात में मन न लगावना इत्यादि जो मानसी करै तौ आठोंपहर पूर्वरीति मन में करना जो अनुभव उठै तौ श्रीरामयश की रचना करै या भांति मन तन कर्म-वचन की लैसों श्रीरामचरणन में लीन होइ सो तौ अति चतुरता है नाहीं तौ कोऊ वर्ण व आश्रम शैव, शाक्त, वैष्णव, स्मार्तादि यावत् है वेद पढ़े व शास्त्री भये व वैयाकरणी व पौराणिक व कवि व तन्त्री व ज्योतिषी व वैद्की व सामुद्रिक व कोकसार व गान नृत्य व सभाचातुरी आदि जो कुछ पढ़े उक्तियुक्ति अनेक कला देखाय लोक रिझाय द्रव्यादि लेते हैं ते आपनी चातुरीते अपना को श्रेष्ठ मानते हैं सो वृथा है काहेते इन सवनते बढ़िकै गणिका परमप्रवीण है जो आपनी सूरतिमात्र ते परारे मन सहित धन हरिलेती है तौ सबते श्रेष्ठहै यामें सूक्ष्मरीति ते गणिका नायिका के लक्षण वर्णन करे तहां जो उपासक

है एक इष्ट में अनुराग ते स्वकीया नायिकाहै जे उपासक नहीं वहुरूपन को इष्ट माने ते परकीयासम हैं अरु जे आपने प्रयोजन सिद्ध जासों करिपाये ताही देवादि को सेवते हैं ते गणिका समान हैं ॥ चालिस वर्ण कच्छ दोहा है ॥ ४७ ॥

दोहा

चतुराई चूल्हे परै, यम गहि ज्ञानहिं खाय ।
तुलसी प्रेम न रामपद, सब जरमूल नशाय ४८

चतुराई कर्मकांण्ड मीमांसावाले याके आचार्य जैमिनिमुनि धर्मज्ञ विषय है धर्मज्ञानही प्रयोजन है यथोक्त कर्मके अनुष्ठान ते परमपुरुषार्थ लाभ होत है यथोक्त यथा ऋणी धनी सिद्ध साध्य सुसिद्ध अरि विचारि कूर्मचक्रते भूमि शोधि आसन शुभ मुहूर्त छिन्नरुद्धादि निवारणार्थ जनन जीवन ताड़नादि संस्कारकरि पुरश्चरणादि कर्मचातुरी है सो भगवत् प्रीत्यर्थ करी तौ भली है नाहीं तौ वासनारूप चूल्हे में जरी सुखमें सुकृत नाश भई यथा पुण्ये क्षीणे मृत्युलोके । ज्ञान अर्थात् वेदान्तिवाले याके आचार्य वेदव्यास हैं जीव ब्रह्मैक्य शुद्ध चैतन्य विषय है अज्ञान निवृत्त आनन्द प्राप्त प्रयोजन है वैराग्य, विवेक, मुमुक्षुता, शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधानादि साधनकरि शान्तचित्त जितेन्द्रिय असार को त्यागि सारको ग्रहण माया आवरण त्यागि ब्रह्ममें लीन होना इत्यादि जो प्राप्तभयो तौ भगवत् प्रेममें लगे तौ भलो नाहीं जो चूके तौ पतित भये यथा एक राजा ते गोवध होगई राजाने कहे जो गायमें सो ब्रह्म मोमें दोष कौनको है हत्याने राजाकी पुत्री को बौरायदई वह राजासों रति मांगी कि जो तुम में सो ब्रह्म मोमें ताको राजा इन्कार कियो तैसे हत्या राजाको ऐसा पटकी जामें चूर है गये इत्यादि कर्त्तव्यता की तौ छीट नहीं वचनमात्र ज्ञान है ।

यथा—शंकराचार्येणोक्तं

"वाक्योच्चार्यसमुत्साहात्तत्कर्मकर्तुमक्षमः ।
कलौ वेदान्तिनो भान्ति फाल्गुने बालका इव ॥"

या भांति झूठे ज्ञानते कर्म कैसे नाश होइ याते झूठा ज्ञान यमराज पकरिकै खाउजाते है भात्र सांसति देते हैं गोसाईंजी कहत कि जिनको प्रेम श्रीरघुनाथजी के चरणारविन्दन में नहीं तिन के यावत् जप तपादि हैं ते सब जरमूल ते नाश होत ।

यथा—रुद्रयामले

"ये नराधमलोकेषु रामभक्तिपराङ्मुखाः ।
जपं तपं दयाशौचं शास्त्राणामवगाहनम् ॥
सर्वं वृथा विना येन शृणु त्वं पार्वति प्रिये"

पयोधर दोहा है ॥ ४८ ॥

दोहा

प्रेम शरीर प्रपञ्च रुज, उपजी बड़ी उपाधि ।
तुलसी भली सु बैदई, बेगि बांधई व्याधि ४६

प्रेम यथा भगवत्नाम व धामको प्रभाव व लीलास्वरूप की माधुरी छटा श्रवण नेत्रादि में परी तौ विष सी तनमें प्रवेश है रोम रोम पुलकित करि दियो ।

पुनः उमंग सब इन्द्रिन को स्थित कियो यथा नेत्रन में आसु कण्ठावरोधकरि मनको मोहित करिदियो इति प्रेम शरीर है तामें प्रपञ्च रोग भयो कुपथ पाय बड़ी व्याधि उपजी ।

यथा—"मोह सकल व्याधिनकर मूला। ज्यहिते पुनि उपजै बहुशूला ॥
काम बात कफ लोभ अपारा । क्रोध पित्त नित छाती जारा ॥
प्रीति करैं जो तीनों भाई । उपजै सन्निपात दुखदाई ॥
युग विधि ज्वर मत्सर अविवेका । कहँलगि कहौं कुरोग अनेका ॥"

इत्यादि रोग नाशबे हेत गोसाईंजी कहत कि सोई वैदई भली है जाते जल्दी व्याधि बाधई कहे रोग नाश होइ वैदई ।

यथा—"सद्गुरु वैद्य वचन विश्वासा । संजय यह न विषय की आसा॥ रघुपति भक्ति सजीवनि मूरी । अनूपान श्रद्धा मतिरूरी"

या भांति वैदई होइ तौ सहजे रोग नाश होइ ॥

चौंतिस वर्ण मराल दोहा है ॥ ४९ ॥

दोहा

राम विटपतर विशदवर, महिमा अगम अपार। जाकहँ जहँलग पहुँचहै, ताकहँ तहँलग डार ५०

श्रीरामरूप एक कल्पवृक्ष है सो अगम है जामें काहू की गमि नहीं पुनः अपार है जाको कोऊ पार नहीं पाइ सकत ताके तर जावे की विशद कहे उज्वरि वर कहे श्रेष्ठ महिमा है जाकी जहांतक पहुँच है ताकी तहांतक डार है तहां श्रेष्ठ महिमा है जाकी ऐसी जो भक्ति तामें जो मन लगावना सोई वृक्षतरे को जाना है जा भांति को भाव जाको भावत है सोई पहुँच है सोई भक्ति वाकी डार है।

यथा—नारदसूत्रन में लिखा है

"पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्यः, कथादिष्विति गर्गः, आत्मरत्य-विरोधेनेति शाण्डिल्यः, नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारतातद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति अस्त्येवमेवम् ।"

कोऊ सत्संग, कोऊ कथाश्रवण, कोऊ गुरुसेवा, कोऊ हरियशगान, कोऊ मन्त्रजाप, कोऊ साधुसेवा, कोऊ प्रेमभाव इत्यादि जो जैसा भाव करि ईश्वर को भजत ताको तैसेही ईश्वर की प्राप्ति होत सोई ताकी डार है अन्त कोऊ नहीं पावत है॥

यकतालिस वर्ण मच्छ दोहा है ॥ ५० ॥

दोहा

तुलसी कोसलराज भजु, जनि चितवै कहुँ ओर ।
पूरण राम मयङ्क मुख, करु निज नैन चकोर ५१
ऊँचे नीचे कहुँ मिलै, हरिपद परम पियूख ।
तुलसी काम मयूखते, लागैं कौनेउ रूख ५२

अब दुइ दोहन में श्रीराम पूरणचन्द्रकिरण पान करिबे को आपने नेत्र चकोर सम स्थापित करत ।

यथा—हे तुलसी ! कोसलराज को भजु और काहूकी ओर जनि चितवै कौन भांति कि श्री रघुनाथजी को जो मुख है सो शरत्पूरण चन्द्रमा है ताके अवलोकन हेत आपने नेत्र चकोर करु भाव पलक विक्षेप न करु उन्तालीस वर्ण त्रिकल दोहा है ५१ ऊँचे नीचे चाहे ऊँचे होइ चाहे नीचे होइ जाके सत्संग करिकै हरिपद परमपियूष कहे श्रीरघुनाथजी के चरणारविन्दन को प्रेम अमृत मिलै ताही को सत्संग करी ताको दृष्टान्त देखावत कि जब चन्द्रमा को चकोर निहारत ताके सम्मुख जो वृक्षादि परत ताको विचार कुछ नहीं करत काहेते वाको तौ प्रयोजन चन्द्रमा की मयूख जो किरणैं हैं तिनहींते है चाहे काहू वृक्ष है कै किरणैं चकोरके नेत्रनमें लागैं व रूख को विचार नहीं कि बबूर है व चन्दन है ताही भांति श्रीरामचन्द्र प्रेमरूप मयूख जो किरण जाके सम्मुख भये मिलै ताकी संगति करी नीच ऊँच विचारते कुछ प्रयोजन नहीं ।

यथा—श्रुतिः

"यश्चाण्डालोऽपि रामेति वाचं वदेत् तेन सह संवसेत् तेन सह संवदेत् तेन सह संभुञ्जीत" मराल दोहा है ॥ ५२ ॥

दोहा

स्वामी होनो सहज है, दुर्लभ होनो दास।
गाड़र लाये ऊन को, लागी चरै कपास ५३
चलब नीति मग रामपद, प्रेम निबाहब नीक।
तुलसी पहिरिय सो बसन, जो न पखारत फीक ५४

आज्ञा देवे को अधिकार जामें सो स्वामी आज्ञा पालिवे को अधिकार जामें सो सेवक तहां स्वामी होना सहज है काहेते सिद्ध देश स्वतन्त्र आज्ञा देनाही कर्म है अरु दास होनो दुर्लभ है काहेते साधन देश परतन्त्र आज्ञा पालनो कर्म है यह दुर्घट है कि स्वतन्त्र रहनो जीव को सौभाविक स्वभाव है सो स्वभावते प्रतिकूल।

पुनः श्रद्धा समेत परिश्रम करना यह दुर्लभ है यामें व्यंग्य उपदेश है कि ईश्वरने आपने दास होवे अर्थ जीवको उत्पन्न करो है ताकी सुधि नहीं कोऊ लोकनायक कोऊ दिक्पाल कोऊ महिपाल कोऊ आचार्य कोऊ पिता कोऊ गुरु इत्यादि अनेक भांति ते स्वामी बने आपने पुजाइवे में तत्पर हैं।

यथा—कोऊ गाड़र जो भेड़ी ताको लायो ऊन के हेत ऊन बीचै रहा वाके खेत में कपास रहै ताही को चरन लगी तथा जीव को हरिभक्ति बीचै रही आपनी भक्ति करावने लगे ॥ तीस वर्ण मण्डूक दोहा है ५३ अब दासन के लक्षण अर्थात् षट् शरणागती।

यथा—हरिअनुकूलग्रहण सो प्रेम निवाहना है हरि प्रतिकूल को त्याग सो नीति मग चलना है नीति।

यथा—"मद कुसंग परदार धन, द्रोह मान जनि भूल। धर्म राम प्रतिकूल ये, अभी त्यागि विष तूल ॥" इत्यादि को त्याग करै अरु श्रीरामपद प्रेम।

यथा—"नामरूप लीला सुरति, धाम वास सतसङ्ग। स्वाति-सलिल श्रीराम मन, चातक प्रीति अभङ्ग॥" इत्यादि जगत् के यावत् नेहनाता आश भरोसा छांड़ि श्रीरघुनाथजी में मन लगावना ऐसा प्रेम श्रीरघुनाथजी के चरणन में सदा निवाहना यही श्रीरामदासन को नीक है भाव बाहर भीतर कोई विकार न होय ताको गुसाईंजी कहत कि बसन जो कपड़ा ऐसा पहिरिये जो रङ्ग पखारत कहे धोये पर रङ्ग फीका न परै भाव देखाव में सज्जन भीतर छली ऐसी रीति न चलिये बाहर भीतर एक रस पक्का रङ्ग होय॥ अड़तिस वर्ण वानर दोहा है॥ ५४॥

दोहा

तुलसी रामकृपालु ते, कहि सुनाव गुन दोष।
होउ दूबरी दीनता, परम पीन सन्तोष ५५

कृपा, दया, करुणा, उदारता, सुशीलादि प्रभु के गुण विचारना यह गोप्तृत्वता शरणागती है।

यथा—"केवट कपि कृत सख्यता, शबरी गीध पषान। सुगति दीन रघुनाथ तजि, कृपासिन्धु को आन॥" ताको श्रीगोसाईंजी कहत कि श्रीरघुनाथजी कृपा के स्थान हैं हे मन! ऐसा विचारि तिन ते आपने गुण दोष कहिकै सुनाव यह कार्पण्यता शरणा गती है।

यथा—"कायर क्रूर कुपूत खल, लम्पट मन्द लबार। नीच अघी अतिमूढ़ मैं, कीजै नाथ उधार॥" ताको कहत कि दीनता करि मनते दुर्बलता होउ मनते मोटाई को त्याग करु अरु सन्तोष करिकै परमपीन कहे मोटा हो भाव दूसरेते दीनता न सुनाउ॥ अराल दोहा है॥ ५५॥

दोहा

सुमिरन सेवन रामपद, रामचरण पहिचानि।
ऐसहु लाभ न ललकु मन, तौतुलसीहितहानि ५६
सव संगी वाधक भये, साधक भये न कोइ।
तुलसी रामकृपालु ते, भली होय सो होइ ५७

रामपद कहे शब्द अर्थात् श्रीरामनाम स्मरण कीन्हे पुनः रामपद सेवन कीन्हे रामचरण की पहिचान कहे श्रीरामरूप की प्राप्ति होती है जैसे अम्बरीपादि की रक्षा करे ऐसो लाभ विचारि मन में ललक होना यह रक्षा में विश्वास शरणागती है।

यथा—"अम्बरीष प्रह्लाद ध्रुव, गज द्रौपदि कपिनाथ। भे रक्षक अब मेरहू, करिहैं श्रीरघुनाथ॥" ऐसो लाभ विचारि जाके मन में ललक न आई अर्थात् श्रीरघुनाथजी के स्मरण सेवनादि में मन न लगायो ताको लोक परलोक को यावत् हित है ताकी विशेष हानि होइगी भाव दूसरा कौन रक्षक है छन्तालिस वर्ण त्रिकल दोहा है ५६ मोहादि जे बाधक हैं ते सब संगी भये भाव क्षणमात्र जीवते विलग नहीं होते हैं अरु विवेक आदि जे साधक हैं ते कोई संगी न भये भाव ये भूलिहू के नहीं आवते हैं अथवा जाति, विद्या, महत्त्व, रूप, यौवनादि जे संगी है ते एकहू भक्ति के साधक न भये सब बाधक भये ये काहे ते मान के मूल हैं ताते भक्ति के कण्टक हैं।

यथा—पञ्चरात्रे

"जातिविद्यामहत्त्वं च रूपयौवनमेव च।
यत्नेन परिवर्ज्याः स्यु पश्चैते भक्तिकण्टकाः॥"

ताते अब और कुछ बनि न परैगो भाव यावत् धर्म कर्म हैं तिन

सहित आत्मा प्रभु पर वारन है यह आत्मनिक्षेप शरणागती है।

यथा—"दान दया दम तीर्थ व्रत, संयम नेम अचार।
मन वच कायक कर्म सह, आत्म रामपदवार ॥"

सो गोसाईंजी कहत कि श्रीरामकृपालु ते जो कुछ भली होइ सोई भली है और भरोस नहीं ॥ तेंतिस वर्ण नर दोहा है ॥ ५७ ॥

दोहा

तुलसी मिटै न कल्पना, गये कल्पतरु छाह।
जबलगि द्रवैं न करि कृपा, जनकसुता को नाह ५८

जब लौं सीतापति कृपा करिकै न द्रवैं न प्रसन्न होइँ तब तक जो कल्पवृक्ष की छाँह में जाय तबहूँ वा जीव की कल्पना कहे चाह वा दुःख न मिटै अर्थात् पूर्व दोहा में आत्मनिक्षेप कहे हैं ताको पुष्ट करत कि जप, यज्ञ, तीर्थ, व्रत, शम, दम, दया, सत्य, शौच, दानादि यावत् सुकर्म हैं तिनको सवासनिक करि स्वर्ग लोक की प्राप्ति होत है ते आवागमन ते रहित नहीं होते हैं।

यथा—"पुण्ये क्षीणे मृत्युलोके"

जब पुण्य क्षीण भई तब फिरि मृत्युलोक को आये तौ जीव की कल्पना कहां मिटी ताते जो सुकर्मादि कीजै सो श्रीरामप्रीत्यर्थ कीजै काहे ते जबलौं श्रीजानकीनाथ कृपा करि प्रसन्न नहीं होते तब तक जीवको कल्याण नहीं होत ताते बिना हरि भक्ति सब साधन वृथा हैं।

यथा—"पठितसकलवेदश्शास्त्रपारंगतो वा
यमनियमपरो वा धर्मशास्त्रार्थकृद्वा।
अटितसकलतीर्थव्राजको वाहिताग्नि-
र्नहि हृदि यदि रामः सर्वमेतद्वृथा स्यात्।"

पयोधर दोहा है ॥ ५८ ॥

दोहा

विमल बिलग सुख निकट दुख, जीवन समै सुरीति।
रहित राखिये राम की, तजेते उचित अनीति५६
जाय कहब करतूति बिन, जाय योगबिन क्षेम।
तुलसी जाय उपाय सब, बिना राम पद प्रेम ६०

जग में जे जीवन ने जासमै सुरीति कहे सुकर्म सहित रीति जो प्रीति श्रीराम की रहित है तिनको अनीति उचित है काहे ते हरि विमुखन को अनीति ही अच्छी लागत ताको परिणाम फल यह कि विमल जो निर्मल सुख उनते बिलग कहे अलग है अरु दुःख निकट है भाव त्रिताप वा जन्म मरण नरक वा चौरासी भोगना इत्यादि सदैव हैं।

पुनः जा समय जे जीवन ने सुरीति सुन्दरि प्रीति श्रीराम की राखिये अर्थात् श्रीराम प्रीति राखे हैं तिनको अनीति तजे ते उचित है काहे ते हरि भक्त अनीति की ओर देखत ही नहीं हैं तिनको परिणामफल का है कि विमल सुख जो सदा स्वतन्त्र परमानन्द सो निकट है अरु दुःख बिलग है ॥ त्रिकल दोहा है ५६।

जाय कहब अर्थात् वेदान्त शास्त्रवाले अनेक वचन कहते हैं।

यथा—वैराग्य, विवेक, मुमुक्षुता, शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधानादि साधनादि कहते हैं बाकी कर्तव्यता में समर्थ नहीं हैं तौ उनको कहवु जाय कहे वृथा है।

यथा—फागुन में बालक सब ग्राम नारिन के साथ जबानी संग भोग करि लेते हैं स्वाद कुछ नहीं।

पुनः योग यथा यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार,

ध्यान, धारणा, समाधि इत्यादि अष्टाङ्गयोग करनेवालेन को विन क्षेम बिन निर्विघ्न निवहे जाय कहे वृथा है।

यथा—काहू ने वृक्ष लगावा फल न लागै पाये वृक्ष उचरिगयो।

पुनः जप, यज्ञ, तीर्थ, व्रत, दया, सत्य, शौच, तप, दानादि कर्मकाण्ड के यावत् उपाय हैं तिनको गोसाईंजी कहत कि विना श्रीजानकीनाथ के चरणारविन्दन में प्रेम भये यावत् उपाय हैं ते सब जाय कहे वृथा हैं काहेते सुखभोग में नाश होइ जायँगे।

यथा—विना सोतको पानी ॥ वल दोहा है ॥ ६० ॥

दोहा

तुलसी रामहिं परिहरै, निपटहानि सुनुमोद।
जिमिसुरसरि गत सलिलबर, सुरासरिसगङ्गोद ६१

श्रीराम प्रेम दृढता हेतु जीवन को शिक्षा है कि, जे श्रीरामप्रेम में मग्न हैं तिनके जे विघ्नकर्ता हैं तेऊ मङ्गलकर्ता ह्वै जाते हैं भाव एकहू विघ्न नहीं व्यापते हैं।

यथा—नृसिंहपुराणे प्रह्लादवाक्यं.
रामनाम जपतां कुतो भयं सर्वतापशमनैकभेषजम्।
पश्य तात मम गात्रसन्निधौ पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना ॥

अरुकैसहू पतित अपावन होइ श्रीरामशरण जातही महापावन होत।

यथा—अपावन जल गङ्गाजी में गये वर कहे श्रेष्ठ ह्वैजात ऐसी लोकपावन करनहारी जो प्रभुकी भक्ति है ताको जे त्याग करैं तिन को गोसाईंजी कहत कि जे श्रीरघुनाथजी को परिहरैं कहे त्याग करते हैं ताको फल सुनु उनको मोद जो परमसुख है सोभी निपट-हानि होती है।

यथा—पाद्मे

"येषां न मानसं रामे लग्नं नेह मनोरमे।
वञ्चिता विधिना पापास्ते वै क्रूरतरा मताः॥"

पवित्र भी अपावन हैजाते हैं जैसे गङ्गाजीको ब्द्द्दान जल मदिर सम होत॥ कच्छ दोहा है॥ ६१॥

दोहा

हरे चरहिं तापहिं वरे, फरे पसारहिं हाथ।
तुलसी स्वारथ मीत जग, परमारथ रघुनाथ ६२

ह्रूल वेलि तृण अन्नादि वनस्पतिन को नर, पशु, पक्षी, कीटादि यावत् जङ्गम हैं ते आहार द्वारा वा ओषधी द्वारा भाजी आदि सब हरी वनस्पतिन को चरते हैं।

पुनः सूखे अग्नि में परि वरे पर सब तापते हैं पुनि फल लागे-पर सब हाथ पसारत फल पाइवे हेत यह दृष्टान्त है अव दार्ष्टान्त।

यथा—हरे चरैं जबलों अन्न धन परिपूर्ण है तवलग सब खाने-हेत लपटाते हैं जब विगरिगयो तब दुःख ताप में वरते देखि सब तापते भाव खुशीते सब तमाशा देखते हैं दैवयोग फिरि धनरूप फल भये तब फिरि सब हाथ पसारत आसरेवन्द होत ताते गोसाईंजी कहत कि सब संसार स्वार्थही को साथी है परमार्थ जीवको दुःख निवारणहेतु एक श्रीरघुनाथजी है॥ वल दोहा है॥ ६२॥

दोहा

तुलसी खोटे दासकर, राखत रघुवर मान।
ज्यों मूरुख पूरोहितहि, देत दान यजमान ६३

जो पूर्व कहे कि परमार्थ के साथी श्रीरघुनाथजी हैं तापै कोऊ सदेह करै कि जो सांची प्रीति नहीं तौ प्रभु साथी कैसे होयँगे

तातें श्रीगोसाईजी कहत कि जो खोटा अर्थात् ऊपरते बनावट शरणागतकी करे है तो श्रीरामनाम व भगवत् अर्चा यश श्रवणादि कछु करी सो ।

यथा—विषयीनायक मुग्धानायकनके गुणै देखत अवगुण देखतही नहीं तथा श्रीरघुनाथजी मुग्धभक्तन के गुणै देखे अवगुण नहीं देखे ।

यथा—वाल्मीकीये

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥

खोटे भी भक्तको मान राखत कौन भांति ।

यथा—अपढ पुरोहित कर्मकाण्ड नहीं कराइ सकत ते खोटे आचार्य है परन्तु यजमान आपनो पुरोहित मानि वाहीको दान देता है ताकी पुष्टता अजामील यवनादिकी कथा पुराणन में प्रसिद्ध हैं ॥ पदकल दोहा है ॥ ६३ ॥

दोहा

ज्यों जग वैरी मीनको, आपु सहित परिवार ।
त्यों तुलसी रघुनाथ बिन, आपनिदशा बिचार ६४
तुलसी रामभरोस शिर, लिये पाप धरि मोट ।
ज्यों व्यभिचारीनारिकहँ, बड़ी खसमकी ओट ६५

जाभाति मीन जो मछरी ताको सब वैरी है कि आपने खाने हेत मारि डारते ।

पुनः आपहू अपने जीवकी वैरी है कि ऊंचे चढिजाती कि सहजही लोग पकरिलेते हैं वा बंसीआदि में आपही फँसिजाती है।

पुनः परिवार भी वैरी कि बडी मीन छोटीको खाय जाती है जीवन सों गोसाईजी कहते हैं कि विना श्रीरामसनेह आपनी भी दशा

ताही भांति जानो कि सब जग स्वार्थहेत भवसागर की राह वतावत।
.पुनः विषय चाराहेत काम वंसी में आपु फँसो वा जाति महत्त्वादि अभिमान चढ़ि भव में परो तथा परिवार आपने खाने हेत भक्तिविरोधी हैं ॥ मदकल दोहा है ॥ ६४ ॥

: गोसाईंजी कहत कि जे श्रीरघुनाथजी के शरणागत के भरोसे हैं अरु जग में कदाचित् पाप भी करें कि चडुरिकै गठरी होगई चाको शीश पर धारण करे हैं भाव सब जगमें प्रसिद्ध हैं तौ भी उनको भगवत् शरण भरोसे मन अभय रहत कि जो अधम उधारता पतितपावनता दीनदयालुता दिवानाकी लाज भगवत् करेंगे तो ।

यथा—यवन अजामीलादिको उबारे तैसे मोको भी उबारेंगे सो कौन भांतिको भरोसा है कि ।

यथा—व्यभिचारी जो परपतिरत स्त्री है वाको आपने खसम की बड़ी ओट है कि जो किसी करिकै गर्भ रहिजायगा तौ जो मेरा पति बना है तौ कौन मोको दोष लगाइ सक्ता है ये दोऊ रीतें लोकवेद में प्रसिद्ध हैं ।

यथा—युधिष्ठिरादि अरु असंख्य स्त्री वर्तमान में ठहरैंगी अरु भगवत् को तौ जेतनी सामर्थ्य उद्धार करिवेको है तेतरा पाप करिवे को जीवको गति है नयनहीं ॥ मदकल दोहा है ॥ ६५ ॥

दोहा

स्वामी सीतानाथ जी, तुम लग मेरी दौर ।
तुलसी काक जहाज़ को, सूझत और न ठौर ६६

अब पुष्ट शरणागती को लक्षण देखावत हे स्वामी, सीतानाथजी !. और आधार नहीं मोको आश भरोसा एक आपही तक गति है कौन भांति ।

यथा—जहाज पर को काकपक्षी सिवाय जहाज के और जहां दृष्टि करत तहां समुद्रै देखात दूसरा ठौर नहीं देखात जहां जाय तैसे मैं जहां दृष्टि करत तहां भवसागरै देखात ताते जहाज रूप आपकी शरणागती के भरोसे हौं ताते मेरा उद्धार आपही के हाथ है जानकीजी विशेष दयालु हैं ।

यथा—बालक पै माता ताते सीतानाथ कहे ।

यथा—मन्त्रार्थे

जानक्या सह आत्रेशो रघुनाथो जगद्गुरुः ।
रक्षकः सर्वसिद्धान्त वेदान्तेषु प्रगीयते ॥

बत्तिस वर्ण करभ दोहा है ॥ ६६ ॥

दोहा

तुलसी सब छल छांड़िकै, कीजै राम सनेह ।
अन्तर पति से है कहा, जिन देखी सब देह ६७

छल यथा—देखाव में उपासक अरु उपासना विरुद्ध धर्म मन में देखाव में कथा श्रवण अरु पर अवगुण दुष्टन के चरित्र में मन देखाव में भगवत्कीर्तन अरु मिथ्या बात चुगली क्रोध वचन निन्दा में मन देखाव में कण्ठी तिलकादि वेष आभूषण वसनादि में मन देखाव में गुरुमुख अरु चोर जुवांरी कपटी धूर्तादि के उपदेश में मन देखाव में पूजा भगवत् की करते अरु वेश्या परस्त्री सेवन में मन देखाव में दयावन्त अरु हिंसा कपट पर हानि क्रोध में मन देखाव में भगवत् प्रसाद पावत अरु सत् असत् विचार रहित स्वाद में मन देखाव में सज्जनन को सत्संग अरु नाच गान तमाशा स्त्रिन की वार्ता में मन देखाव में साधु सेवा अरु साधु अवगुण निन्दा में मन देखाव में ज्ञान वैराग्य अरु मोह लोभ में मन देखाव में

रामदास अरु कामसेवा में मन देखाव में प्रेमी मन कठोर इत्यादि छल छांड़ि विकार त्यागि अर्थात् असत् में मन खुशी ते न जान दीजै भूलिकै चलाजाय तौ धिक्कार दै रोंकि भगवत् में लगाइये असत् को कारण वराये रहिये।

यथा—बालकन को अभ्यास ते विद्यादि परिपक्व होत तैसे लागे लागे मन भगवत् में लागि जात जो भूलिकै चला जाय ताको खैंचि भगवत् से सुनाय क्षमा मांगै काहे ते अन्तर्यामी भीतर सब देखत तासों छल वृथा है कौन भांति कि नारी ते पतिते क्या परदा है जाते सब अङ्ग अङ्ग देह देखौ॥ चौतिस वर्ण म-राल दोहा है॥ ६७॥

दोहा

सबहीं को परखे लखे, बहुत कहे का होय।
तुलसी तेरो राम तजि, हित जग और न कोय ६८
तुलसी हमसों राम सों, भलो बनो है सूत।
छांड़े बनै न संग्रहे, जो घर माहँ कूपूत ६६

ब्रह्मा शिव इन्द्रादि यावत् देवता हैं, तिन सबहिन को परखि कै लखे कहे देखि लिये कि सब में खोटाई है।

यथा—ब्रह्माजी के आशीर्वाद ते हिरण्यकशिपु अचल ह्वै गयो रहै ता भक्त द्रोहते नृसिंहजी ने नाश करि दियो ब्रह्मा शिवने रावण को अजीत करि दियो ताको रघुनाथजी ने नाश करि दियो इन्द्रने आशीर्वाद दै बालि को अजीत करि दिया ताको श्रीरघु-नाथजी नाश करि दियो इत्यादि सब को जानि लिया तौ बहुत कहे क्या होत ताते हे तुलसी! तेरो हित श्रीरघुनाथजी त्यागि

दूसरा नहीं है जो तेरे जीव को कल्याण करै ऐसा जानि सब त्यागि दृढ़ श्रीरामशरण गहु ॥ मदकल दोहा है ६८ ॥

जो कोई संदेह करै कि जब जीव विकार त्यागि निर्मल है सांची प्रीति करै तब प्रभु शरण में राखते हैं जो तुम निर्मल न हो तौ कैसे प्रभु शरण में राखैंगे तापै कहत कि यद्यपि हमारे सब विकार भरे परन्तु सब को त्यागि कै श्रीरामशरण भरोसे रहैं तौ हम सों श्रीरघुनाथजी सों भलो सूत कहे नाता बनिपरो है (अथवा) यथा अरझा सूत लालचते त्यागत नहीं बनत अरझेते संग्रहे कहे राखत नहीं बनत तौ यही बनत कि याको अरझा छँड़ाय डारिये तौ काम आवैगा या भांति मेरा भी जीव विकार में अरझा श्रीरामशरण तौ अरझा प्रभु छँड़ावैंगे अर्थात् विकार मिटाय शरण में राखैंगे।

यथा—घरमें कुपूत है ताको पिता यही उपाय करत कि जामें वाके ऐब मिटिजायँ वाको त्यागत नहीं ॥ करभ दोहा है ॥ ६९ ॥

दोहा

कोटि बिघ्न संकट बिकट, कोटि शत्रु जो साथ।
तुलसी बल नहिं करिसकै, जो सुदृष्टि रघुनाथ ७०
लग्न मुहूरत योग बल, तुलसी गनत न काहि।
राम भये जेहि दाहिने, सबै दाहिने ताहि ७१

विघ्न कहे हितकार्य में हानिकर्ता अरु संकट कहे जामें जीव व्याकुल होय।

यथा—धर्म संकट हरिश्चन्द को युद्ध संकट सुग्रीव को भयो तब वालि को प्रभु मारे।

यथा—गजलाज संकट द्रौपदी दरिद्रसंकट सुदामा।

पुनः शत्रु जो सदा प्राण को गाहक इत्यादि जो करोरिन

साथ ही होइँ ताको गोसांईजी कहत कि जो श्रीरघुनाथजी की सुदृष्टि बनी है तौ कोऊ बल नहीं करि सकते हैं।

यथा—प्रह्लाद अम्बरीपादि प्रसिद्ध हैं॥ बल दोहा ७०॥

मेषादि जो द्वादश लग्नैं हैं जा राशिपै सूर्य सो लग्न प्रभात यही क्रम ते सब आठ याम में व्यतीत होती है अरु सूर्यादि नवग्रह सब राशिन पर विचरते हैं सो जौन लग्न जा काम को शुभ है ता लग्न के शुभ स्थान में सब लग्न है पावैं तौ वा लग्न में कार्य किहे विशेष उत्तम होत विपरीत ते विपरीत।

पुनः मुहूर्त कहे तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण, लग्न, ग्रह, तारा आदि सब कार्य के अनुकूल जा मुहूर्त में मिलैं ता समय कार्य कीन्हे उत्तम विपरीत ते विपरीत योग कहे तिथि, वार, नक्षत्रादि मिले कोई योग बधि जाता।

यथा—गोविन्दद्वादशी महावारुणी वा यमघण्टादि अपर आनन्दादि जो सदा बनि जाते हैं इत्यादि शुभाशुभ तुलसी एकहू नहीं गनत कि का आदि भाव क्या करि सकै हैं काहे ते जेहि के श्रीरघुनाथजी दाहिने भये भाव जो सब त्यागि प्रभु में मन लगायो ताके लग्नादि सब दाहिने कहे शुभ कर्ता बली होजाते हैं।

यथा—महोदधौ

तदेव लग्नं सुदिनं तदेव तारावलं चन्द्रबलं तदेव।
विद्याबलं दैवबलं तदेव सीतापतेर्नाम यदा स्मरामि॥

पयोधर दोहा है॥ ७१॥

दोहा

प्रभु प्रभुता जा कहँ दई, बोल सहित गहि बांह।
तुलसी ते गाजत फिरहिं, रामछत्र की छांह ७२

प्रभु श्रीरघुनाथ बोलसहित बांह गहि जाको प्रभुता कहे ऐश्वर्य बड़ाई दिये।

यथा—विभीषण को भक्ति मुक्ति सहित अचलराज्य दिये।

यथा—अध्यात्मे

"तस्मात्त्वं सर्वदा शान्तः सर्वकल्मषवर्जितः।
मां ध्यात्वा मोक्ष्यसे नित्यं घोरसंसारसागरात्॥
यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावत्तिष्ठति मेदिनी।
यावन्मम कथा लोके तावद्राज्यं करोत्यसौ॥"

इत्यादि हनुमान, काकभुशुण्ड्यादि कहांतक कहिये प्रभु की यही प्रतिज्ञा है।

यथा—"सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥"

अभिप्राय कि जे प्रभु के शरण हैं तिनहीं के अर्थ इत्यादि वचन हैं तिनहीं की बाह गहे हैं तिनहीं को प्रभुता दिये हैं तीनिउँ काल में ताको गोसाईंजी कहत कि जे प्रभु की शरणागती के भरोसे हैं ते सदा गाजत निर्भय फिरते हैं कौनिउ ताप नहीं व्यापती है काहे ते श्रीरामकृपारूप छत्र के छाँह में रहते हैं॥ पयोधर दोहा है॥ ७२॥

दोहा

**साधन साँसति सब सहत, सुमन सुखद फल लाहु।
तुलसी चातक जलद की, रीझि बूझि बुधि काहु ७३**

सन्मार्गरूप एक वृक्ष है यथा श्रद्धा क्षेत्र है गुरुमन्त्र बीज है गुरुकृपा जल है सत्संग मूल है सन्मार्ग में चित्त की प्रवृत्ति वृक्ष-शाखा है हर्ष पत्ता है सत्कर्म अर्थात् पूजा जप, तप, क्रिया, आचारादि फूल है विवेक, वैराग्य, मुमुक्षुता, शम, दम, उपरति,

तितिक्षा, श्रद्धा, समाधानादि साधन करि आपने शुद्धस्वरूप को चीन्हना अर्थात् ज्ञान फल है नवधा प्रेमापराआदि अर्थात् भक्ति उपासना सो फल को रस है तहां सुखद कहे सुखदेनहार सुमन कहे फूल अर्थात् भगवत् प्रेम रहित सकामिककर्म सुख फल लाभ हेत करते हैं ताके साधन में अनेक साँसति सहते हैं या रीति में बहुत लगे हैं अथवा फल जो ज्ञान ताके लाभ हेत वैराग्यादि साधन की साँसति सहते हैं ऐसे बहुत हैं सोऊ बिना भगवत् प्रेम वृथा हैं गोसाईंजी कहत कि जैसी चातक की रीझि बूझि स्वाती के जलद की है ऐसी प्रेमासक्त श्रीरामरूप में रीझि बूझि काहू २ बुधजन को है जो श्रीरघुनाथजी की माधुरी में नेत्रासक्त और जानत ही नहीं ॥ त्रिकल दोहा है ॥ ७३ ॥

दोहा

चातक जीवत जलद कहँ, जानत समय सुरीति।
लखत लखत लखि परत है, तुलसी प्रेमप्रतीति ७४

जो कोऊ कहै कि बिना कर्म ज्ञानादि साधन जीव की शुद्धता ईश्वर की पहिचान कैसे एकीएका प्रेम होइगा ताके हेत कहत कि जो ज्ञानी मार्ग में चलत ताकी रीति अरु समय जाननहारनते पूछि सौभाविक आपु जानि लेता है।

यथा—चातक आपने प्रियजलद मेघन की समय अर्थात् शरदऋतु कार्तिकमास में स्वाती लागती है ताकी सुरीति अर्थात् ऊर्द्धमुख करि बुन्द मुख में लेना यह सब बात पुराने चातकन को देखत २ बचा भी सीख जाते हैं गोसाईंजी कहत कि ताही भाँति जे प्रेमीजन है तिन के सत्संग में उनकी रीति लखत कहे देखत २ श्रीराम प्रेम की प्रतीति लखि परत तहां भक्ति शरदऋतु है भगवद्लीला कार्तिक है नामस्मरण स्वाती है रूप मेघ है माधुरी

शोभा जल है प्रेमीजन चातक हैं निमेषहीन अवलोकन बुन्द की प्राप्ति है लीलाश्रवण कीर्तनादि में जो प्रेम उमंग वर्षने को समय है ॥ कच्छ दोहा है ॥ ७४ ॥

दोहा

जीव चराचर जहँ लगे, है सबको प्रिय मेह।
तुलसी चातक मन बसो, घन सों सहज सनेह ७५

जग में चर व अचर यावत् जीव हैं सबको मेघ अत्यन्त प्रिय हैं काहे ते बिना जल वर्षे काहू को जीवन नहीं रहि सकत याते जीव को रक्षा करनहार एक मेघ ही है परन्तु सब छांडि एक मेघ ही आधार और काहू जीव को नहीं है गोसाईंजी कहत कि घन सो सहज ही में दृढ सनेह एक चातक ही के मन में बसो यह दृष्टान्त है दार्ष्टान्त यथा जग में यावत् चर अचर हैं सबको पालन पोषणादि रक्षक एक भगवत् है ताते साधारण रीति सब को भगवत् प्रिया भी है परन्तु चातक सम अनन्य प्रेमी भक्त कोऊ कोऊ है जाकी चित्त की अखण्डवृत्ति तैलधारवत् एक रघुनाथजी में प्रेमासक्ति है ॥ बल दोहा है ॥ ७५ ॥

दोहा

डोलत विपुल बिहंग बन, पियत पोखरी वारि।
सुयश धवल चातक नवल, तोर भुवन दशचारि ७६

बिहंग जो पक्षी विपुल कहे बहुत वन में डोलत फिरते पोखरी कहे तडागन में जल पीते हैं तिन काहू पक्षी को यश विशेषि नहीं विदित है अरु हे चातक! तेरा सुयश धवल कहे उज्ज्वल नवल नित्यनवीन चौदहौं भुवन में विदित है तैसे संसार वन में अनेकन साधु पक्षीरूप घूमते हैं शास्त्रस्मृतिरूप पोखरी में पूजा जपरूप

जल पीते हैं तिनको भी विशेषि यश नहीं अरु जे अनन्य हैं।
यथा- कवि वाल्मीकिजी ने सौ करोरि रामचरित निर्माण किया सिवाय रामचरित और एक अक्षर नहीं कहा तिनको धवल नवल सुयश श्रीरामचरित सम्बन्ध ते चौदहौं भुवन में विदित है भविष्य रामचरित वरने यह धवलता है कथा श्रवण कीर्तन सदैव याते नवल है ॥ कच्छ दोहा है ॥ ७६ ॥

दोहा

मुख मीठे मानस मलिन, कोकिल मोर चकोर।
सुयश ललित चातक वलित, रहोभुवन भरि तोर ७७
मांगत डोलत है नहीं, तजिघर अनत न जात।
तुलसी चातक भक्त को, उपमा देत लजात ७८

तीनि पक्षी और भी किञ्चित् आशक हैं।
यथा—कोकिल वसन्त में आनन्दित शब्द करत।
यथा—आरतभक्त दुःख गये भगवत् में प्रेम करत।
पुनः मोर घन दामिनि देखि नाचत।
यथा—अर्थार्थी प्रयोजन पाय हरि में प्रेम करि कीर्तन करत।
पुनः चकोर चन्द्रमा को हेरत।
यथा—जिज्ञासु भक्त भगवत्रूप को हेरत इत्यादि की ऐसी प्रीति नहीं कि इष्ट की अप्राप्ति में और दृष्टि न करै ताते गोसाईं-जी कहत कि कोकिल मोर चकोरादि को वेष भी सुन्दर मुखते भी मीठे की शब्द मधुर बोलने हैं परन्तु मानस मलिन है कि और भी वासना रखने हैं हिंमारत है अरु हे चातक! तेरो सुयश ललित सुन्दर निर्मल भुवन भरे में वलित कहे फैलि रहा है ॥ विकल दोहा है ॥ ७७ ॥

कैसा चातक दृढ़ प्रेमी है जो काहू से कछु मांगत नहीं डोलत फिरत आपनो घर त्यागि अनत जात नहीं केवल एक स्वाती बुन्द के आसरे निराधार रहत ऐसा चातक भक्त है कि वाकी उपमा दूसरे के देने में लाज लागत बाजे चातक सम हरिभक्त हैं तिनकी भी चातक की उपमा देत लाज होत कि भक्तन में कोई अङ्ग खण्डित न ठहरै ॥ पयोधर दोहा है ॥ ७८ ॥

दोहा

तुलसी तीनों लोक महँ, चातकही को माथ।
सुनियत जासु न दीनता, किये दूसरे नाथ ७९

गोसाईंजी कहत कि तीनोंलोक में सब सवसों ऊंचा एक चातक ही को माथ है काहे ते यह सुनियत है कि जासु चातक ने आपने नाथ स्वाती को सिवाय और दूसरे नाथ सों दीनता नहीं कियो भाव दूसरे को माथ नहीं नवाये ऐसी गति हरिभक्तन में कम देखात ॥ नर दोहा है ॥ ७९ ॥

दोहा

प्रीति पपीहा पयद की, प्रकट नई हिंचानि।
याचक जगत अधीन इन, किये कनोड़ो दानि ८०
ऊंची जाति पपीहरा, नीचो पियत न नीर।
कै याचै घनश्याम सों, कै दुख सहै शरीर ८१

पपीहाकी अरु पयद कहे मेघकी जो प्रीति है सो प्रसिद्ध में एक नई रीति पहिंचानि कहे जानिपरत है काहेते तीनों लोक की यह रीति है कि यावत् जगत् में याचक हैं ते सब दानीसों आधीन रहते इन चातकने दानी को कनौडो कियो ताको भेद

आगे कहत॥ पयोधर दोहा है ८० पपिहरा ऊंची जाति है काहेते सरिता तड़ागादि में नीचो जल नहीं पियत कैतौ घनश्याम स्वाती में घनसों याचै कैतौ पियाससे शरीरपै दुःख सहै और जल न पीवै ताही भांति हरिभक्त ऊंचीजाति है।

यथा—शिवसंहितायाम्

"रामादन्यः परोध्येयो नास्तीति जगतां प्रभुः।
तस्माद्रामस्य ये भक्तास्ते नमस्याः शुभार्थिभिः॥"

इत्यादि श्रीरामभक्त ऊंचे हैं तौ नीचे जल भी नहीं पीवते हैं अर्थात् नीचेके धर्मनपर मन नहीं देते हैं कैतो घनश्याम श्रीरघुनाथ जी सों याचना करैं यह आरत अर्थार्थी भक्तन को लक्षण है कै दुःख सहै शरीरभाव जो दुःख परै सो सहिलेइ प्रभु सों भी न याचना करै प्रेमीभक्तनको ऐसा चही॥ करभ दोहा॥ ८१॥

दोहा

कै बरषै घनसमय शिर, कै भरि जनम निराश।
तुलसी चातक याचकहि, तऊ तिहारी आस ८२
चढ़त न चातक चित कबहुँ, पिय पयोद के दोष।
याते प्रेम पयोधिवर, तुलसी योग न दोष ८३

लोकमें यह रीति है कि जो याचक एक दो बार याचना करी दानीने न दई तब वाको आसरा छोड़ि और को याचता है अरु हे घन! तुम स्वातीसमय चातक के शिरपर बरषैके जन्मभरि निराश रहै अर्थात् चहै जन्मभरि न बरषै गोसांईजी कहत कि ताहूपर चातक याचकको हे घन! तुम्हारीही आश है सोई रीति अनन्य भक्तन की श्रीरघुनाथजीसों है॥ बल दोहा है ८२ प्रिया प्यारा पयोद जो मेघ है ताके न बरषेको दोष चातकके चित्त में

कबहूँ भूलिहूकै नहीं चहत जो आपने प्यारेके औगुणनपर दृष्टि नहीं देत याते वर कहे श्रेष्ठ प्रेमको पयोधि कहे समुद्र है अर्थात् अथाह प्रेम है ताते गोसाईंजी कहत कि चातक दोष लगावबे योग्य नहीं है काहेते जो एक प्रेम में मगन वाको दूसरे के प्रेमते व माहात्म्यते क्या प्रयोजन है ताहीभांति जे अनन्यभक्त हैं ते श्रीरामप्रेम में मगन और को नहीं जानते तेभी अदोष हैं।

यथा—सुतीक्ष्ण श्रीरामरूपमें मगन रहे चतुर्भुजरूप मन में न भायो ताको कुछ दोष नहीं ॥ त्रिकल दोहा है ॥ ८३ ॥

दोहा

तुलसी चातक मांगनो, एक एक घनदानि।
देत सो भूभाजन भरत, लेत घूंटभरि पानि ८४
है अधीन याचत नहीं, शीश नाय नहिं लेय।
ऐसे मानी मांगनहिं, को बारिद विन देय ८५

गोसाईंजी क त कि मांगनो कहे याचक चातक एकही है वाकी समताको दूसरा नहीं है काहेते सिवाय एक घन के दूसरे को नहीं याचत अरु दानीघन कहे मेघ भी एकही है काहेते ऐसा दानरूप जल वरषत जो भ कहे भूमि रूप पात्र जल सों परिपूर्ण है जात और याचक ऐसा संतोषी कि एक घूंटभरि पानी लेत और अन्न मुक्तादि लोक के अनेक कार्य होत तैसे अनन्य भक्त भी एक श्रीरघुनाथजी सों याचत तैसे श्रीरघुनाथजी दानी जो भक्तन पर कृपा करते हैं ताते जग को भला होत।

यथा—मनु महाराज के पुत्र हैं सब संसार को भला कीन्हे मनु महाराज को दर्शन ते प्रयोजन ॥ मदकल दोहा है ॥ ८४ ॥

कैसा चातक है कि आधीन अर्थात् दीनता सुनाय याचन करे

मांगत नहीं अरु दान पाये पर भी शीश नवायकै जल को लेता नहीं ऐसे मानी याचक को वारिद जो घन तिहि विना और कौन दे सक्ता है भाव वारिद निरहेत महादानी है ताही भांति प्रेमी अनन्य भक्त हैं कि प्रभु सों भी आधीन है कछु नहीं मांगते अरु देव तीर्थादिकन में शीश नायकै कुछ नहीं लेते हैं ऐसे अनन्य मानी भक्तन को विन। श्रीरघुनाथजी दूसरा कौन देसक्ता है॥ तेंतिस वर्ण नर दोहा है॥ ८५॥

दोहा

पविपाहन दामिनि गरज, अति भकोर खरखीभि।
दोष न प्रीतम रोपलखि, तुलसी रागहि रीभि ८६

पवि वज्रपात गिरी गाजादि आसमानी पाहन पत्थर दामिनि चमक गरजनि अत्यन्त पानी पवन की भकोर इत्यादि खर कहे तीक्ष्ण कैसेहू होय इत्यादि प्रीतम जो घन ताको रोप रिस देखि दोष नहीं मानत न आपने मन में खीभै तैसे किरात गान करि मृग को मोहित करि वाण मारत ताको दोष नहीं मानत मृगा एक रागही पर रीभि मानत तथा अनन्य प्रेमी भक्त भी आपनो दुःख सुख नहीं मानत प्रभु में प्रेम दृढ़राखत॥ वानर दोहा है॥ ८६॥

दोहा

को न जिआये जगत महँ, जीन दायक पानि।
भयो कनौड़ो चातकहि, पयद प्रेम पहिंचानि ८७

जीवन को राखनहार जो पानी ताको देकै वर्षा के मेघ जग में काको नहीं जियावत भाव जल वर्षे सब की जीविका होत परन्तु पयद जो मेघ सो अखण्ड प्रेम पहिंचानि चातक ही के कनौड़ो

भयो ताही भांति श्रीरघुनाथजी सब जग के जीवनदाता हैं तेऊ भक्तन के कनौड़े हैं।

यथा—हनुमान्‌जी के प्रेम पर बिकाइ गये॥ पयोधर दोहा है॥८७॥

दोहा

मान राखिबो मांगिबो, प्रिय सों सहज सनेह।
तुलसी तीनौं तब फबैं, जब चातक मत लेह ८८

आपनो मान राखना अर्थात् आधीन है गर्जन सुनावना अरु मांगना तौ ऐसी रीति सों मांगना जामें मांगनो सूचित न होय।

यथा—"चातक रटत कि पीव कहा"

यामें जल मागनो नहीं सूचित होत प्यारे घन को प्रेम ही सूचित होत।

पुनः पीव सों सहज सनेह अर्थात् दुःख सुख में एक रस बना रहै गोसाईंजी कहत कि जो ये तीनों पूर्व कहे हैं ते सब तबहीं फबैं कहे शोभित होइँ जब चातक को मतलेहु कौन मत है कि बिना स्वाती बुन्द गङ्गादि सब जल धूरि सम है।

पुनः स्वाती सों भी आधीन है याचना नहीं स्वामी सों सदा सनेह निबाहना यही रीति अनन्य भक्तन को चाही।

यथा—"जलद जन्म भरि सुरति बिसारै।
याचत जल पवि पाहन डारै॥
चातक रटनि घटन घटि जाई।
बढ़े स्वामि पद प्रेम सवाई॥"

पुनः "अर्थ धर्म कामादि रुचि, गति न चहौं निर्बान।
जन्म जन्म रति रामपद, यह बरदान न आन॥"

यथा—अध्यात्मे
धर्माधर्मान्परित्यज्य त्वामेव भजतोनिशम्॥

निर्द्वन्द्वोनिःस्पृहस्तस्य हृदयं ते सुमन्दिरम् ।

भगवद्गीतायाम् ।

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रजेति ।

महारामायणे ।

अन्ये विहाय सकलं सदसच्च कार्यं श्रीरामपङ्कजपदं सततं स्मरन्ति । मदकल दोहा है ॥ ८८ ॥

दोहा

तुलसी चातकही फबै, मान राखिबो प्रेम ।
बक्रबुन्द लखिस्वाति को, निदरि निबाहत नेम ८९
उपल बरषि गर्जति तरजि, डारत कुलिश कठोर ।
चितवकिचातकजलदतजि, कबहुँ आनकी ओर ९०

जो पूर्व दोहा में कहे है कि मान राखि मांगना पिय सों सहज सनेह चातक ही में है ताको अब देखावत हैं कि मान को राखिबो और प्यारे सों प्रेम निबाहिबो इत्यादि चातक ही को फबत कहे शोभित होत काहे ते स्वाती को बुन्द जो सीधे मुख में परै ताही को पीवत है अरु बक्र कहे टेढो जो मुख के निकट निसरि जात ताको निदरि त्यागि आपनो नेम निर्बाहत भाव सीधे मुख में जो परत सोई ग्रहण करत यह नेम है तैसे अनन्य भक्तन को चाही जो स्वाभाविक प्राप्त होइ सो भी प्रयोजनमात्र ग्रहण करना कुछ उपाय व दूसरे को भरोसा न करना ॥ मराल दोहा है ॥ ८९ ॥

मेघ गरजि कै उपल कहे आसमानी पत्थर बरषै ।

पुनः तराजि कहे तड़पि कै कठोर कुलिश कहे वज्रपात अर्थात् चिरी गाज आदि डारत इत्यादि ताड़ना कैसहू करै ताहू पै चातक ऐसा प्रेमी है कि जलद जो मेघ ताको तजि कबहूं कि और की

ओर चितवै भाव और दिशि न चितवै तैसे अनन्य भक्तन को चाही कि कैसेहू विघ्न व दुःख परै ताहू पर सिवाय भगवत् की ओर दूसरी दिशि मनु न देइ यह स्वाभाविक चाही ॥
बयालीस वर्ण शार्दूल दोहा है ॥ ९० ॥

दोहा

वरषि परुष पाहन जलद, पक्ष करै टुक टूक।
तुलसी तदपि न चाहिये, चतुर चातकहि चूक ९१
रटत रटत रसना लटी, तृषा सूखिगो अङ्ग।
तुलसी चातक के हिये, नित नूतनहि तरङ्ग ९२

जलद जो मेघ सो परुष कहे कठोर पाहन कहे पत्थर वरषि के पक्ष जो पखना तिन को तोरि टूक टूक करै गोसाईंजी कहत कि ताहू पर चतुरचातक को चूकना न चाहिये भाव आपनो नेम प्रेम न छांडै तैसेही प्रेमी भक्तन को चाहिये कि प्रारब्ध वश कैसेहू दुःख परै परन्तु भगवत् प्रेम नेम में न चूक परै भाव दुःख सुख देह को भाव है मनु श्रीरघुनाथजी में लगा रहै ॥
त्रिकल दोहा है ॥ ९१ ॥

पीव कहा इत्यादि रटत रटत रसना जो जीभ सो लटी भाव थकिगई अरु तृषा कहे पियासते कण्ठ आदि अङ्ग सूखि गयो गोसाईंजी कहत कि ताहू पर हित जो स्वाती घन ताके प्रेम को रङ्ग चातक के हिय में नित नूतन कहे सदा नवीन बढ़त जात तैसे अनन्य प्रेमी भक्तन पै कैसेहू दुःख परै ताको कुछ न मानै अरु श्रीरघुनाथजी के विषे प्रेम बढ़त जाय यह उनको लक्षण है।
यथा—"राम प्रेम भाजन भरत, बड़ी न यह करतूति।
चातक हंस सराहियत, टेक विवेकविभूति ॥"

देह दिनदिदिन दूवरि होई । घट न तेज वल मुखछवि सोई ॥
नितनव राम प्रेम पण पीना । वढत धर्म दल मन न मलीना ॥
पयोधर दोहा है ॥ ६२ ॥

दोहा

गङ्गा यमुना सरस्वती, सात सिन्धु भरिपूरि।
तुलसी चातक के मते, बिन स्वाती सबधूरि ६३

गङ्गा अरु यमुना अरु सरस्वती इत्यादि प्रयागजी में एक ठौर हैं जाके मज्जनते चारिहू फल प्राप्त होत है इन आदि सब नदी अरु सातहु समुद्र जलसों भरिपूरि है सब संसार जल पीवत गोसाईंजी कहत कि चातक के मत ते विना स्वाती और यावत् गङ्गादि जल है सो जल नहीं सब धूरि है यह उत्तम पतिव्रतन को लक्षण है ।

यथा—"उत्तमके अस वसमनमाहीं । सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं॥"

तैसे अनन्य भक्तन को भी धर्म है कि सिवाय श्रीरामजानकी और रूप में मन न जाय ।

यथा—"भूप रूप तव राम दुराना । हृदय चतुर्भुज रूप देखावा ॥
मुनि अकुलायउठा तव कैसे । विकल हीन मणि फणिवर जैसे॥"

सो यह धर्मवालेनको किसी के माहात्म्य भक्तको दोष भी नहीं।

यथा—पार्वतीजी कहे

"महादेव औगुण भवन, विष्णु सकल गुणधाम ।
जाकर मन रत जाहिसों, ताहि ताहिसन काम ॥"

ताते रामानन्य दूसरो रूप नहीं मानत ।

यथा—शिवसंहितायाम्

"मधुरे भोजने पुंसो विषवद्भोजने मलम् ।
मलं स्यादन्यदेवानां सेवनं फलवाञ्छया ॥

तस्मादनन्यसेवी सन्सर्वकामपराङ्मुखः ।
जितेन्द्रियमनःकोपो रामं ध्यायेदनन्यधीः ॥"

यथा—स्त्री को पति तथा उपासक को अपना इष्ट मानना किसी सों दुर्भाव न करै ॥
मराल दोहा है ॥ ६३ ॥

दोहा

तुलसी चातक के मते, स्वाती पियत न पानि।
प्रेम तृषा बढ़ती भली, घटे घटैगी कानि ६४
सर सरिता चातक तजे, स्वाती सुधि नहिं लेइ।
तुलसी सेवकवश कहा, जो साहब नहिं देइ ६५

गोसाईंजी कहत कि पुनः चातक को मत कैसा है कि स्वाती को भी पानी इच्छाभरि नहीं पीवत काहेते जो ऊर्ध्वमुखकरि जो सीधे मुख में बुन्द परिगया सोई पीवत कछु उपाय नहीं करत तामें पूर्णता कहाँ होत याको प्रयोजन कि जब तृषा अर्थात् प्यास बढ़ी तब प्रेम बढ़ी जो इच्छाभरि पीजाई तब पियास घटि जाई तब कानि कहे दवाव अर्थात् प्रेम कम परिजाई भाव संतोषी सेवक को दबाव स्वामी राखत जो २ इच्छाभरि मांगिलियो तब स्वामी छुट्टी पाय गयो।

तथा—भक्तन को भी मत

कि स्वामी सों कछु न मांगना काहेते जो मागे मनोरथ पूर्ण भयो तब सुख में परि प्रेम घटिगयो उधर मालिक छुट्टी पायगयो जो प्यास बनी रहैगी तो प्रेम बढैगो ॥ नर दोहा है ॥ ६४ ॥

सर तडाग सरिता नदी आदि को जल चातक तज अर्थात् नहीं पीवत अरु जो स्वाती भी न सुधि लेइ भाव न बरसै तब का

करैं, ताको गोसाईंजी कहत कि सेवक की क्या वश है जो स्वामी नहीं देवैं याते मांगने से क्या होता संतोषही भला है यह समुझि प्रेमी भक्त अचाह रहते हैं-ताते भगवत् आपु उनके वश रहत अरु सर्वोपरि बड़ाई देत ॥ पयोधर दोहा है ॥ ६५ ॥

दोहा

आश पपीहा पयद की, सुनु हो तुलसीदास।
जो अचवै जल स्वाति को, परिहरि बारहमास ६६
चातक घन तजि दूसरे, जियत न नाई नारि।
मरत न मांगे अर्धजल, सुरसरिहू को वारि ६७

गोसाईंजी आपने मनते कहत कि पयद जो मेघ ताकी आश जैसी पपीहा की है ताको सुनु अर्थात् धारण करु कि बारह महीनन में मेघहू बरसत ता जल को परिहरि कहे त्यागि कै जो अचवै कहे पीवै तौ जो स्वाती में बर्षै ताही जल को पीवै सो शरदृऋतु कार्त्तिकमास में स्वाती होत तासमय जो मेघ वर्षै सो जल को बुन्द ऊर्ध्व किंहे जो मुख में परिजाइ ताको पीवत तहां भक्ति शरदृऋतु है सगुन माधुर्य लीला कार्त्तिक है नाम स्मरण स्वाती है भगवत् रूप मेघ है लीलावलोकन श्रवण कीर्त्तनादि को समय में उमंग होना वरषने को समय है माधुरी शोभा जल है प्रेमीजन चातक हैं निमेष हीन ऊर्ध्वमुख है अवलोकन बुन्द प्राप्ती है अपरस्वपन लीला अन्यमास है ॥ मदकल दोहा है ॥ ६६ ॥

तीनि दोहन का अन्वय एक में है सिवाय एक स्वाती के मेघ को और दूसरे जल को आपने जीवत लौं चातक ने नारि कहे ग्रीवा नहीं नवाई ताको हेत कहत कि एक समय बधिक के मारे अधमरी गङ्गाजी में गिरी अर्धजल कहे आधी बूड़ी उतरात बही सो मरत

कितौ पियास गङ्गाजल में परी ताहू जल को न मागी चोंच न बोरी ॥ पयोधर दोहा है ॥ ९७॥

दोहा

ब्याधा बधो पपीहरा, परो गङ्ग जल जाय।
चोंच मूंदि पीवै नहीं, धिकपीवन प्रणजाय ९८
बधिकबधो परि पुण्यजल, उपर उठाई चोंच।
तुलसी चातक प्रेमपट, मरत न लाई खोंच ९९

पपीहरा को ब्याधा ने बधो कहे मारो अधमरा गङ्गा जी के मध्य जल में जायपरो गिरते ही चोंच मूंदि लियो जामें जल मुख में न चलाजाय काहेते ऐसे जल पीवे की धिक्कार है जाके पीने से हमारो प्रण छूटिजाइ ॥ नर दोहा है ॥ ९८ ॥

वधिक के मारे घायल है पुण्यजल गङ्गाजी में परो कैसा जल है जाके स्पर्शमात्र ते महापातकी भगवद्धामपावत ता जलको त्याग हेत चोंच ऊपर को उठाय लई गोसांईजी कहत कि चातक ऐसा अनन्य प्रेमी है कि मरतसमय आपने प्रेमरूप पटमें खोंच न लगाई भाव प्रेमपट फाटने न पायो यहां स्वाती घन जलंधर दैत्य है वाकी नारी वृन्दा पतिव्रता चातक है वधिक महादेव ने जलंधर को मारा तहां पति को मरना पतिव्रतन को आधा मरन है जो भगवत्ने छलकरि वृन्दा सों सभोग किया सो भगवत्रूप की प्राप्ति पुण्यजल गङ्गाजी में परना है आपने पतिव्रत को दृढ़करि भगवत् को शाप दै मुख फेरि लेना सो चोंच उठावना है इत्यादि आपने पतिव्रता दृढ़ता हेत भगवत् को निरादर किया ताको लोक वेद में कौन दूषण लगाइ सक्ता है अरु वाके व्रतभग करिवे की कानि मानिकै भगवत् तुलसी रूप वृन्दा को सदा शीशपर राखत।

पुनः—लोकरीति यथा

"नव यौवन गौर स्वरूपभरी मृगनैन गली गजकी निदरै।
मुखचन्द सदा रसहास लिये मृदुबोलन सों जनु फूल झरें॥
हित लाजभरी गुरुलोगनसों पति सेवन सों नहिं नेकु टरै।
रति और पती लखि बैजसुनाथ गुनार्नवती पति प्राण हरै॥"
पुनः "गत यौवनरूप कुरूप तिना जनु बोलत बैन पषान दरै।
अतिही मलिनी रुजगात भरी कलही नित फूहर खोयघरै॥
दुविजात हिताहित कौनगनै गुरुलोगन पै जनु आगिबरै।
इन औगुण को तजि बैजसुनाथ पतिव्रत पै पति प्यार करै॥"
बल दोहा है॥ ६६॥

दोहा

चातकसुतहि सिखावनित, आन नीर जनि लेहु।
यह हमरे कुलको धरम, एक स्वातिसों नेहु १००

, चातक आपने सुत कहे पुत्र को सदा सिखावत कि आन नदी तडागादि को नीर जनि लेहु अर्थात् न पीवहु काहेते कि हमारे कुल को यह धर्म है कि एक स्वातीसों नेह करना भाव स्वाती बर्षे ताही बुन्द को ऊर्ध्वमुख पीना तैसेही अनन्यभक्त आपने शिष्यन को सिखावत कि हमारे कुल को यह धर्म है कि और देवादिकन की ओर मन न देना एक श्रीरघुनाथजी सों प्रेम करना सोऊ अचाह है शरण में रहना तहां आचार्यन के वचन सोई सिखावना है।

यथा—हारीते

दास्यमेव परं धर्मं दास्यमेव परं हितम्।
दास्येनैव भवेन्मुक्तिरन्यथा निरयं व्रजेत्॥

पयोधर दोहा है॥ १००॥

दोहा

दरशन परसन आनजल, बिन स्वाती सुनु तात।
सुनत चेंचुवा चितचुभो, सुनत नीति बरबात १०१
तुलसी सुत से कहत है, चातक बारम्बारि।
तात न तर्पण कीजियो, बिना बारिधर बारि १०२

पुनः चातक आपने पुत्र सों सिखावत कि हे तात! बिना स्वाती और जल को दर्शन मात्र आंखि सों न देखना परसन देह में न लगावना ऐसी नीति की बर कहे श्रेष्ठ बात सुनतही चेंचुआ जो चातक को बचा ताके चित्त में ये वचन चुभिगये भाव चित्त में पुष्ट धारण करिलियो तैसेही आचार्यन के उपदेश शिष्यनमति हैं।

यथा—शिवसंहितायाम्

"मधुरे भोजने पुंसो विषवद्भोजने मलम्।
मलं स्यादन्यदेवानां सेवनं फलवाञ्छया॥
तस्मादनन्यसेवी सन सर्वकामपराङ्मुखः।
जितेन्द्रियमनःक्रोधो रामं ध्यायेदनन्यधीः॥"

ऐसे शास्त्रप्रमाण नीति के वचन वर कहे श्रेष्ठ समुझिके शिष्यन के चित्त में चुभिजात ताते वैभी अनन्य है प्रभुको भजत॥
त्रिकल दोहा है॥ १०१॥

गोसाईंजी कहत कि चातक आपने पुत्र सों वारम्वार कहत कि वारिधर मेघ अर्थात् विना स्वाती में बरसे जल और जलसों तर्पण न कीजियो और जल सों तिलाञ्जलि न दीजियो यही उपदेश भगवत् अनन्य आपने बालकन सों करत कि ऊर्ध्वपुण्ड्रादि संस्कारकरि भगवत् को स्मरण सहित श्राद्ध तर्पणादिक करना सो आचार्यन के द्वारा वेद में प्रसिद्ध है।

पाराशरे

"श्राद्धे दाने च यज्ञे च धारयेदूर्ध्वपुण्ड्रकम्।
सन्ध्याकाले जपे होमे स्वाध्याये पितृतर्पणे॥"

पुनः—आगमे

"तावद्भ्रमन्ति संसारे पितरः पिण्डतत्पराः।
यावद्वंशे सुतो रामभक्तियुक्तो न जायते॥"

इत्यादि मदकल दोहा है॥ १०२॥

दोहा

बाजचञ्चुगतचातकहि, भई प्रेम की पीर।
तुलसी परवश हाड़मम, परिहै पुहुमी नीर १०३
अण्डफोरि किय चेंचुवा, तुषपरो नीर निहारि।
गहि चंगुल चातकचतुर, डास्यो बाहर वारि १०४

काहू समय चातक को बाज ने पकरि लियो जब वाके चंगुल में परो तब जीव की पीर न भई गोसाईंजी कहत कि स्वामी के प्रेम की पीर भई कि मैं परवश हौं मेरा मास खाय हाड डारि देइगा तौ कहूँ भूमि नीर में न परिजाय तैसे कालरूप बाज के चोंच में परे अनन्यभक्तन को यह पीर होत कि हमारा मृतक भी शरीर भगवत् धाम ते बाहेर न जाय॥ पयोधर दोहा है॥ १०३॥

चातक ने आपने अण्ड फोरि चेंचुवा कहे बचा प्रकट करे जो अण्ड के तुष कहे फोकला जाय नीर में परे देखिकै ताके उठायबे हेत चातक चतुरने चोंच न बोरी चगुलसों पकरि पानीसों बाहेर भूमि में डारि दई तथा अनन्यभक्त आपर दयाकरि अण्डरूप स्थूल देह सों शुद्धस्वरूप की चैतन्यता कराई तब तुष सरीखे स्थूल देह

कुसंगरूप जल में परत देखि शास्त्ररूप वचन पञ्जनसों गहि कुसंग रूप जल को त्याग करावे ॥ पयोधर दोहा है ॥ १०४ ॥

दोहा

होय न चातक पातकी, जीवन दानि न मूढ़ ।
तुलसी गति प्रह्लादकी, समुझि प्रेमपद गूढ़ १०५

कोऊ कहै कि एक स्वाती के प्रेम ते गङ्गा यमुनादि महापावन जलको निरादर किया तौ चातक पातकी है ता हेत कहत कि चातक पातकी नहीं होय है काहेते जामें प्रेम लगाये है अर्थात् जीवन जल ताको दानि मेघ सो मूढ़ नहीं है कि सबको त्यागि वाही में प्रेम लगाई ता सेवक को कोऊ पातक लगाय वाको विघ्न कीन चाहै तौ स्वामी के अख्त्यारभरि विघ्न न होने पावैगो ताही भांति जो सबको त्यागि भगवत् में प्रेम लगायो वा भक्त को कोऊ दोष लगाय दण्डदीन चाहै तौ भगवन् मूर्ख नहीं है देखो अम्बरीष के हेत दुर्वासाऋषि की कैसी दशा भई कि जब अम्बरीष की शरण आये तब प्राण बचे सो गोसाईंजी कहत कि प्रह्लाद की गति देखो कि याने किसी को कहा न माना सिवाय श्रीरामनाम की दूसरी बात मुखते न कहे तापै हिरण्यकशिपु ने अनेक बाधा करी कुछ न व्यापी जब प्रह्लादजी के मारने की इच्छा करी तब खम्भ फोरि प्रकट है श्रीनृसिंहजी तुरत हिरण्यकशिपु को मारि डारा ऐसा एकागी प्रेम को पद गूढ़ है ताको समुझिले अर्थात् ऐसे भक्तन के भगवत् आधीन है ।

यथा—भागवते

"अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इवद्विजः ।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रिय. ॥"

पयोधर दोहा है ॥ १०५ ॥

दोहा

तुलसी के मत चातकहि, केवल प्रेम पियास।
पियत स्वाति जल जानजग, तावत बारहमास १०६
एक भरोसो एक बल, एक आश विश्वास।
स्वाति सलिल रघुनाथवर, चातकतुलसीदास१०७

गोसाईंजी कहत कि हमारे मत ते केवल शुद्ध प्रेम की पियास एक चातक ही को है काहेते यह बात प्रसिद्ध सब जग जानत है कि बारहमासन में तावत कहे पियासन मरत एक स्वाती के बर्षे जल को पीवत अर्थात् स्वाती कार्त्तिक में लागत ता समय जो बर्षे न तौ कार्त्तिक में भी पियासन मरै याते बारहौमास कहे सोई चातक की रीति गोसाईंजी आपनी आगे कहत ॥ सरल दोहा है ॥ १०६ ॥

एक भरोसो अर्थात् दूसरे को कुछ भरोसा नहीं है एक श्री रघुनाथजी की शरणागतको भरोसा है कि प्रभुको वचन है कि–

कोटि विप्र अघ लागैं जेही। आये शरण तजौं नहिं तेही॥

यथा—वाल्मीकीये

"सकृदेवमपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥"

पुनः एक बल भाव दूसरे को बल नहीं एक श्रीरघुनाथजी भक्तवत्सल ताको बल है॥

यथा—"सुनु मुनि तोहिं कहौं सहरोसा। भजै मोहिं तजि सकल भरोसा।
सदा करौं ताकी रखवारी। जस बालक राखै महतारी॥"

यथा—अध्यात्मे

"मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथञ्चन।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात्सतामेतदगर्हितम्॥"

पुनः एक आश भाव दूसरे की आश नहीं सब आशा छांड़ि एक श्रीरघुनाथजी की आशा है।

यथा—"राम मातु पितु बन्धु, सुजन गुरु पूज्य परम हित।
साहेब सखा सहाय, नेह नाते पुनीत चित ॥
देश कोश कुल कर्म, धर्म धनधाम धरणिगति।
जातिपांति सबभांति, लागि रामहिं हमारिपति ॥
परमारथस्वारथ सुयश, सुलभ रामते सकलफल।
कहतुलसिदास अब जबकबहुँ, एकरामते मोर भल ॥"

यथा—शिवसंहितायाम्

"लौकिका वैदिका धर्मा उक्ता ये गृहवासिनाम्।
त्यागस्तेषां तु पातित्यं सिद्धौ कामविरोधिता ॥"

पुनः विश्वास एक अर्थात् सबका विश्वास त्यागि एक श्रीरामनाम का विश्वास है।

यथा—कवित्त

"सब अङ्गहीन सब साधनविहीन मन, वचन मलीन हीन कुल करतूति हौं। बुद्धि बलहीन भाव भगति विहीन दीन, गुणज्ञान हीन हीन भागहू विभूति हौं ॥ तुलसी गरीबकी गई बहोरि रामनाम, जाहि जपि जीह रामहू को बैठो धूति हौं। प्रीति रामनाम सों प्रतीति रामनाम की, प्रसाद रामनाम के पसारि पाँय सूतिहौं॥"

यथा—केदारखण्डे शिववाक्यम्

"रामनामसमं तत्त्वं नास्ति वेदान्तगोचरम्।
यत्प्रसादात्परां सिद्धिं सम्प्राप्ता मुनयोमलाम् ॥"

अध्यात्म्ये

"अहं भवन्नामगृणन्कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेहं दिशामि मन्त्रं तव रामनाम ॥"

ब्राह्मणे ब्रह्मवाक्यम्

"प्रमादादपि संस्पृष्टो यथानलकणो दहेत्।
तथौष्ठपुटसंस्पृष्टं रामनाम दहेदघम्॥"

आदिपुराणे कृष्णवाक्यम्

"श्रद्धया हेलया नाम वदन्ति मनुजा भुवि।
तेषां नास्ति भयं पार्थ रामनामप्रसादतः॥"

ऋग्वेदे

"परंब्रह्मज्योतिर्मयं नाम उपास्यं मुमुक्षुभिः॥"

यजुर्वेदे

"रामनाम जपेन्नैव देवताद्दर्शनं करोति कलौ नान्येषाम्॥"

सामवेदे

"रामनाम जपादेव मुक्तिर्भवति॥"

अथर्वणे

"यश्चाण्डालोपि श्रीरामेतिवाचं वदेत् तेन सह
संवसेत् तेन सह संवदेत् तेन सह संभुञ्जीत॥"

अरु स्वाती को सलिल कहे जल श्रीरघुनाथजी हैं वर कहे श्रेष्ठ हैं तहां सब पासन में जल वर्षन सो सामान्य हैं अरु स्वाती को जल उत्तम है काहेते जा जल ते मुक्ता कर्पूरादि अनेक पदार्थ पैदा होते हैं तथा श्रीरघुनाथजी सब रूपन में श्रेष्ठ हैं काहेते जिनको नाम सुलभ लोकपावन है अरु रूप में बल, प्रताप, यश, कीरति, उदारता, सौलभ्यता, सुशीलता, सौहार्दता, वत्सलता, माधुरी आदि रूप में अनेक गुण सेवकन के सुखदायक हैं ताते स्वाती को जल है तिनहीं की एक आश भरोस विश्वास है ताते श्रीगोसाईं जी चातक हैं भाव केवल श्रीरामरूप में प्रेमासक्त हैं और द्विति मन नहीं आन देत ऐसे अनन्य हैं॥ पदवन्न दोहा है॥ २०७॥

दोहा

आलबाल मुक्ताहलनि, हिय सनेह तरुमूल।
हेरुहेरु चितचातकहि, स्वाति सलिलअनुकूल १०८

यामें प्रथम सनेहरूप वृक्ष वर्णनकरत ताको प्रथम आलवाल अर्थात् थाल्हा चाहिये सो कहत कि हिय हृदयरूप आलबाल करु कैसा होय मुक्ताहलनि अर्थात् हृदय मुक्तनसम निर्मल हल कहे सघन तहा हल कहे स्वररहित वरण संयोगी होत भाव एक में मिलि रहत तथा विवेक, वैराग्य, शम, दम, क्षमा, शान्ति, सन्तोषादिगुण निर्मल सघन सोई मुक्ताहलनि करि हृदयरूप आलवाल है ता विषे सनेह कहे श्रीराम प्रीतिरूप तरु ताकी मूल को हेरु भाव मूल के सेवन ते वृक्ष हरित रहत सो आपने चित्तते गोसाईं जी कहत कि श्रीराम प्रीतिकी जो मूल है ताको सेवनकरु प्रीति की मूल का है सो।

यथा—भगवद्गुणदर्पणे

"ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यं वक्ति च पृच्छति।
भुङ्क्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीतिलक्षणम्॥"

सो दिहे लिहे गुप्त पूछे कहे खाये खवाये इत्यादि षड्विधि प्रीति की मूल हैं इहां आत्मसमर्पण देनो है भगवत् की दया को लेना आपने अवगुण कहनो प्रतिक्षण सेवा सो पूछना है भोग लगावना प्रसाद खाना इत्यादि पर सदा दृष्टि वनी रहै तव प्रीति तरु नित्यनवीन रहै सो प्रीति को सागवर्णन करत हौं।

यथा—"प्रणयप्रेम आसक्त पुनि, लगन लाग अनुराग।
नेह सहित सब प्रीति के, जानव अङ्ग विभाग॥"

इत्यादि तुम हमारे हम तुम्हारे यह प्रणय है याकी सौम्यदृष्टि

है यामें आसक्त होना सो आसक्ती है याकी यकटक दृष्टि है ये दोऊ अहंकार के विषय हैं।

पुनः प्रीति उमँगि नेत्र कण्ठ भरिजायँ ताको प्रेम कही याकी विह्वल दृष्टि है प्रतिक्षण सुधि होना यह लगन है याकी उत्कण्ठा दृष्टि है ये प्रेम लगन दोऊ मन के विषय हैं चित्त की जो चाह सो लाग है याकी चोप दृष्टि है जाके रङ्ग में चित्त रँगारहै ताको अनुराग कही याकी मत्त दृष्टि है ये लाग अनुराग दोऊ चित्त के विषय हैं मिलनि बोलनि हँसनि सो प्रसन्नता सो स्नेह है याकी ललित दृष्टि है चिक्कणता शोभा सहित सर्वाङ्ग व्यवहार सो प्रीति याकी आधीन दृष्टि है इत्यादि अहंकार मन चित्त बुद्धि द्वारा सब विषय अनुकूल है ज्यहि रसको अत्यन्त भोगी है सर्वाङ्ग परिपूर्ण है जाइ ताको प्रीति कही।

यथा—भगवद्गुणदर्पणे

"अत्यन्तभोग्यता बुद्धिरानुकूल्यादिशालिनी।
अपपूर्णस्वरूपा या सा स्यात्प्रीतिरनुत्तमा॥"

ऐसी श्रीराम प्रीति अर्थात् स्नेहरूप द्रुम हरित रहने हेतु याकी मूल जो प्रथम कहि आये हैं ताको सदा सेवापूर्वक हेरत रहु यह प्रेम की पुष्टता करि।

पुनः कहत हे चित्त! जा भांति स्वाती को सलिल अर्थात् जल ताकी अनुकूल चातक है भाव दूसरी ओर मन नहीं लगावत तैसे तू सदा श्रीरघुनाथजी के अनुकूलरहु भाव श्रीरघुनाथजी को छांड़ि दूसरी दिशि मन न लागै यामें अनन्यता पुष्ट है या दोहा में प्रेम अरु अनन्यता दोऊ पुष्ट वर्णन करे॥ बल दोहा है॥१०८॥

दोहा

राम प्रेम बिन दूबरे, राम प्रेम सह पीन।

बिशदसलिलसरवरबरण, जनतुलसोमनमीन १०६
आप बधिक बर बेषधरि, कुहे कुरङ्गम राग।
तुलसी जो मृगमनमुरै, परै प्रेमपट दाग ११०

इति श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासविरचितायां सप्तशतिकायां
प्रेमभक्तिनिर्देशः प्रथमस्सर्गः ॥ १ ॥

यथा तड़ागादि अगाधजल में मीन मछली पीन कहे पुष्ट रहत बिन जल दूबरी अर्थात् मृतकमाय होत तथा जन तुलसी को हृदय सरवर बर्ण कहे तड़ागरूप है तामें श्रीरामप्रेमरूप विशद कहे सुन्दर निर्मल सलिल कहे जलरूप है तामें तुलसी को मन मीनरूप सदा मग्न रहत सो श्रीरामप्रेम बिन दूबरे अर्थात् या समय कुसंगरूप ग्रीष्म प्राप्त भयो श्रीराम प्रेमरूप जल सोकि गयो तब मनरूप मीनदूबरे अर्थात् दुःखित भयो या समय श्रीरामलीला श्रवण कीर्तन आदि सत्संग रूप बर्षा भयो तब श्रीराम प्रेमरूप जल अगाध भयो तब मनरूप मीन पीन कहे पुष्ट अर्थात् आनन्द रहत भाव बिना श्रीरामप्रेम हमारो मन आनन्द नहीं रहत ॥ त्रिकल दोहा है ॥ १०६ ॥

कदापि मित्र वा स्वामी करिकै कछु दुःख भी प्राप्त होइ तबहूं प्रेम नवीन बना रहै ताते मृग की प्रीति राग में कहत कि आपु बधिक आपनी देह में बरबेष कहे पदिरावादि श्रेष्ठ धारण काहेते व्याधवेष मृगचीन्हि लेते है सो वाके देखत ही भागि जाय ताते मनोहर वेष बनाये शीश पर दीपकबारि धरि कुरङ्गराग जो मृगन को मनमोहन राग ताको कहैं बीणादि बाजा में राग आलापत ताको सुन्दर वेष देखि राग सुनि मृग मग्न है बेसुधि है जात तब बाणादि ते मारत इत्यादि चरित्र देखि अपर मृग क्यों नहीं

भागिजात तापै गोसाईंजी कहत कि जो मृग को मन मुरिजाय भाव विमुख होय तो प्रेमपट कहे वसन में दाग लागै भाव फिरि मृगा प्रेमिन में न गनाजाय काहेते प्रेम को स्वरूप ऐसा है कि जाके प्रेम उमगत ताकी सुधि बुधि भूलिजात तैसे आपु श्रीकोसलकिशोर चित्तचोर स्वाभाविक सुवेष धारण किहे बधिक हैं अरु अहल्या, गुह, कोल, जटायु, शबरी आदिकन पै दया सीलभवता पतितपावनतादि गुण मोहन राग को आलाप है ताको सुनि तुलसी को मनरूप मृग मोहित भयो ता समय कुटिल भृकुटी धनुष कटाक्षबाण माधुरी छटारूप विष सों बोरे बाण ते ऐसा मारा कि चौरासीरूप तनुते प्राण निसरिगये यह प्रेमकी दशा सांची जनकपुर में विवाह समय जनकपुर स्त्रियों पर व्यतीत भई ।

यथापद—अद्भुतगति रघुनन्द करी री ॥

सखि समाज तजि लाज श्रवश है अवलोकत नहिं पलक परी री ।
नेह नवाय कुटिल भृकुटीधनु सजि कटाक्ष विष प्रेम भरी री ॥
नैनबाण ज्यहि लाग सखी उर तरफरात बिन होश परी री ।
मृदुमुसक्यानि कृपान म्यान मुख द्विजप्रकाश खरसान धरी री ॥
घायल गात दिखात घाव नहिं काढि हियो दुइटूक करी री ।
शीलरसील प्रकाश निशित अति तारिसहित गहि चाह फरी री ॥
लागत वचन कटार सखी उर विरह पीर बुधि ज्ञान हरी री ।
विन अपराध व्याध कोसलसुत सखिसमाज कुलि कतल करी री ।
बैजनाथ परि क्यों उबरै तिय प्रेम गांठि गर फांस परी री ॥११०॥

इति श्रीरसिकलताश्रितकल्पद्रुमसियवल्लभपदशरणबैजनाथ विरचिते सप्तशतिकाभावप्रकाशिकायां प्रेमभक्ति अनन्यताप्रकाशः प्रथमप्रभा समाप्ता ॥ १ ॥

दोहा

जगारन्य घन गूढ़ इन, दुर्गम सुधी कलान।
बद्धजनार्था नौभिगुण, गुणनिधि प्रणयालान १
सियास्याब्जमधुव्रतहरि, मुखशशिसीय चकोरि।
प्रणयामलवन मनसरहि, सुमुद कुमुदधी मोरि २

यहि सर्ग विषे पराभक्ति अरु उपासना वर्णन है तहां उपासना को कैसा स्वरूप है सो।

यथा—"उपासनन्नामतैलधारावदविच्छिन्नतया समानप्रत्ययप्रवाहः"

यथा—तैलकी धार, ऊर्ध्वते गिरती अविच्छिन्न कहे टूटती नहीं तेही समान जो प्रत्यय परतीति आत्मा परमात्मा की एकता प्रवाह धारारूप ताको उपासना कही अथवा—उपसमीपे आस्यते उपविश्यते मायाधीशोऽनया॥ समीप के विषे प्राप्त होइ सगुण ब्रह्म जेही करिकै ताको नाम उपासना।

पुनः पराभक्ति काको कही जैसे शाण्डिल्यसूत्र में है।

सापरानुरक्तिरीश्वरे ईश्वरे अनुरक्ति सा पराभक्तिः।

ईश्वर विषे जो अखण्ड अनुराग ताको पराभक्ति कही अरु ईश्वर के गुण सुनि अथवा रूप देखि रोमाञ्च कण्ठावरोध आंसू आदि मनकी उमंग ताको प्रेमाभक्ति कही तहां प्रेम की द्वादश दशा हैं तामें अन्त दशा को नाम अनुराग सो है सब दशा क्रमते लिखी जाती हैं प्रथम दशा को नाम उम्र है।

यथा—"प्रियगुण सुनि वा रूपलखि, तेहि तजि और न चाहि।
वागमध्य सियरामइव, उम्र दशा सो आहि॥ १॥"

दूसरी यत्त दशा

यथा—"सुनि वियोग संदेशवा, निकटहु अगम जु भीप।

मिथिलागम हरिपुर तिया, यच दशा गोपीय ॥ २॥"

तीसरी ललित दशा

यथा—"ललित दशा गुरुलाज तजि, प्रिय देखन की आस।
रङ्गभूमि रघुनाथ कित, जनकलली दृग प्यास ॥ ३॥"

चौथी दलित

यथा—"प्रिया वियोग दुखातें में, ध्यान दृग दृग नीर।
दलित दशा सिय लङ्क में, विवरन भयो शरीर ॥४॥"

पँचईं मिलित दशा

यथा—"प्रिया वियोग मनोर्थ जो, प्राप्त होत सुख होय।
मिलित दशा जब लङ्क में, राम मिलनमो सीय ॥५॥"

छठईं कलित

यथा—"ध्याल मिलन अथवा प्रकट, रहस्य मिलित सुख होइ।
रामव्याह पुरतिय मगन, कलित दशा है सोइ ॥६॥"

सतईं छिलितदशा

यथा—"हित स्नेह अतिहीय सुख, सरुप कहै कै रोइ।
भरतागमवन लषण जियि, छिलितदशा है सोइ ॥७॥"

आठईं चलित दशा

यथा—"तनु त्यागत प्रियचरणरति, जन्म जन्म चाहि जौन।
सती शम्भु हरि वालि ज्यों, चलितदशा है तौन ॥८॥"

नवईं क्रान्त १ विक्रान्त २ संक्रान्त ३ भेदक्रमते

यथा—"देहभूलि सुख ध्यान प्रिय, दशाक्रान्त की बाढ़े।
जैठ सुतीक्षण अचलमग, राम जगावत आदि ॥ १ ॥
द्वितिय भेद विक्रान्तमिलि, इष्ट हर्ष सरसात।
यथा सुतीक्षण राम लखि, भाग्य सराहतगात ॥ २ ॥
तृतियभेद संक्रान्त जब, तन मन सुखहि समाप।

द्विरागमन इस लोकमें, दम्पति प्रथम मिलाप ॥३१९॥"

दशईं संहृत विहृत दशा

यथा—"कलह मान जब इष्टसों, संहृत दशा बखान ।
पुनि पीछे पछिताय तब, विहृत ताहि में जान ॥१०॥"

गेरहीं गलित

यथा—"गुण गावत नाचत विसुधि, गलित दशा दरशात ।
मगन सुतीक्षण राम के, मिलन राह में जात ॥११॥"

बारहीं संतप्त दशा अनुराग को पूर्णरूप

यथा—"साधन शून्यलिये शरणागत नैन रँगे अनुराग बसा है ।
पावक व्योम जलानिल भूतल बाहर भीतर रूप बसा है ॥
चिन्तवना इम बुद्धिमयी मधु ज्यों मखिया मनजाहि फँसा है ।
बैजनाथ सदारस एकहि या विधिसों संतप्त दशा है ॥१२॥"

"पाल जानकी जानकी, निरय जानकीवार ।
जैति रामकी रामकी, कृपा रामकी सार ॥"

(अर्थात्)

जिनके मन भगवत् के अनुराग में रँगे और कुछ नहीं जानते हैं ऐसे जे अनुरागी भक्त हैं तिनके रक्षक श्रीराम जानकी को भक्त-वत्सलता गुण देखावत ॥

दोहा

खेलत बालक व्यालसँग, पावक मेलत हाथ ।
तुलसी शिशु पितु मातुइव, राखत, सिय रघुनाथ १

लोक में बालक व्याल जो सर्प ताके साथ खेलत ।

पुनः पावक जो अग्नि तामें हाथ मेलत कहे पकरिलेबेकी इच्छा करत काहेते सर्प अरु अग्नि के विकारको नहीं जानत परन्तु पितु मातु के अनुराग में रत रहत ताहीते माता पिता की दृष्टि सदा

बालक ही पर रहत अग्नि सर्पादि भयते सदा रक्षा करत, इति दृष्टान्त।

अब दार्ष्टान्त कहत कि याही भांति ये सदा भगवत् अनुराग में मग्न हैं और सब बातते अजान बालसम ते विषयरूप सर्प के संग खेलते हैं भाव स्त्री पुत्र धन धाम राज्यादि के संग रहत।

यथा—अम्बरीष प्रह्लादादि

पुनः पावक में हाथ मेलत भाव काम क्रोध लोभ मोहादि को संग राखत।

यथा—सुग्रीव विभीषण कामवश भाव जामें रत भये ध्रुव क्रोधवश कुबेर पै चढ़े बलि लोभवश देवन की राज्य छीने पुत्र के मोहवश अर्जुन अधीर भये इत्यादि विषयरूप सर्प क्रोधादि अग्नि इनकी बाधा निवारण हेतु श्रीराम जानकी माता पिता की समान भक्तरूप बालकन को सदा रक्षा करत याको विकार कुछ नहीं जाने पावत कैसे कि भगवद्भक्ति का यह प्रभाव है कि देह ते चहैं सो करै मन काहू बात में आसक्त होतही नहीं मन भगवत् में रहत ताते विषय आदि बाधा करी नहीं सकत जो कदापि काहू बात में मन लागि गयो तब ऐसा दुःख है गयो जामें ऊबिकै आपही मन हटि आयो यही भगवत् की रक्षा है॥

अड़तिस वर्ण वानर दोहा है॥ १॥

दोहा

तुलसी केवल राम पद, लागैं सरल सनेह।
तौ घर घट वन बाट महँ, कतहुँ रहै किन देह २

गोसाईंजी कहत कि सत् असत् कार्य त्यागि हर्ष शोक रहित सबकी आश भरोसा छांड़ि केवल एक श्रीरघुनाथजी के पदकमलन में सरल कहे सहज में एकरस सदा सनेह बना रहै कौन भांति

यथा स्त्री, पुत्र, धन, धामादि में बिना यत्न कीन्हें सहजही में मन मग्न रहत ताही भांति श्रीरामरूप स्नेह को नशा ऐसो सदा नेत्रन में चढ़ा रहै यही अनुराग पराभक्ति को लक्षण है।

यथा—महारामायणे

"अन्ये विहाय सकलं सदसच्च कार्यं श्रीरामपङ्कजपदं सततं स्मरन्ति। श्रीरामनामरसनां प्रपठन्ति भक्त्या प्रेम्णा च गद्गदगिरोऽपथ हृष्टलोमाः। सीतायुत रघुपतिं च विशोकमूर्तिं पश्यन्ति नित्यमनघाः परमामुदातम्"

जो ऐसा स्नेह बना रहै तो घरमें औघट कहे नदीके औघट घाट में बनमें बाट कहे राहमें इत्यादि में कतहूं किन कहे काहे न देह रहै अर्थात् लोक परलोक की कुछ भय नहीं है तहां लोक घरमें मोहादि नहीं बाधा करत परलोक घर में स्वर्ग नरकादि नहीं बाधा करत लोकमें नदिन के घाट परलोकमें भवसागर दोऊ विघ्नबाधक नहीं होत लोक बनमें व्याघ्रादि परलोक बनमें कामादि सोऊ नहीं बाधक होत लोकमार्ग में ठग परलोकमें यमगण सोऊ बाधक नहीं काहेते श्रीरघुनाथजी सदा रक्षा करत।

यथा—रामरक्षायाम्

आत्तसज्जधनुषा विषुस्पृशावक्षयाशुगनिषङ्गसंगिनौ।
रक्षणाय मम रामलक्ष्मणावग्रतः पथि सदैव गच्छताम्॥
बानर दोहा है॥ २॥

दोहा

कै ममता करु राम पद, कै ममता करु हेल।
तुलसी दोमहँ एक अब, खेलछांड़ि छलखेल २
कै तोहिं लागहिं रामप्रिय, कै तु रामप्रिय होहि।
दुइमहँ उचित सुगमसमुझि, तुलसी करतब तोहि ४

क्यों होते हैं तापर गोसाईंजी कहत कि भक्तनके पनि जो श्रीरघुनाथजी तिनके दरबार में अर्थ, धर्म, काम, मोक्षादि कछु वस्तु कमी नहीं है भक्त के इच्छा करतही ऋद्धि सिद्धि सब प्राप्त होती है परन्तु मन प्रभुही में लागरहै तौ भला है कदापि काहू और बात में मन लागि गयो तौ चाकरी में चूक परी ताते कर्महीन भयो ताको फल दुःख तामें दुःखी है कलपत फिरत भाव सुखद तौ त्यागे सुख कैसे होई ॥ यह दोहा है ॥ ६ ॥

श्रीरघुनाथजी तो गरीबनिवाज हैं आपनो जन जानि राज कहे लोक परलोक को पूर्ण सुख देते हैं लोक में अर्थ, धर्म, काम, परलोक में मुक्ति भाव, धन, धाम, स्त्री, पुत्र, राज्य, ऋद्धि, सिद्धि, इच्छा करतही सब प्राप्त होत तब उचित तौ यह है कि जा प्रभु की शरणागत ते यह सब ऐश्वर्य आपही प्राप्त होत ता प्रभु में इककरि मन लगावा चाहिये सो तौ करतै नाहीं का करता है सो गोसाईंजी कहत कि युवतिनियाकी बानि जो स्वभाव ताको मन छांड़तै नहीं भाव लोक वस्तुनकी चाह नहीं छांड़त याते कल्पलता बनी रहत याते यहीं गई वहीं गई याते सन्तोष सहित प्रभु सनेह चाहिये ॥ दोहा पूर्वही को है ॥ ७ ॥

दोहा

घर कीन्हें घर होत है, घर छांड़े घर जाय।
तुलसी घर बन बीचही, रहौ प्रेम पुर छाय ८
रामनाम रटिबो भलो, तुलसी खता न खाय।
लरिकाई तें पैरबो, धोखे बूड़ि न जाय ९

प्रभुकृपाते सब वस्तु प्राप्त भये पर भी वासना न गई ताही ते शोक को पात्र भायो ताके हेतु कहत कि घर कीन्हे घर होत है जब

तक जीवत रहे तबतक घरही में आसक्त रहे जब मरे जामें वासना लागि रही ताही में पैदा भये।

पुनः घर छांड़े घरजाय घर छांड़ि बनमा बसे लोकवासना न गई तौ परलोक भी न बना इधर घर भी गया ताते घर वन दोऊ के बीच अर्थात् देह व्यवहारमात्र घरमें रहै लोकवासना त्याग रुपयन में रहै तिन दोउन के बीच प्रेमपुर श्रीराम प्रेमकी दशन में मन सदा मगन रहै।

अथवा घर कर्मकाण्ड ताके किहे घर जो नरक स्वर्ग सोई होत भाव बन्धन ते नहीं छूटत और घर छांड़े जो कर्म छांड़िदीजै तौ घरजाय भाव वेद आज्ञाभङ्ग ते पतित नास्तिक होइ ताते घर वन दोऊके वीच प्रेमपुर में छाइये भाव फल की वासना त्यागि कर्म करिये आत्मशुद्धि हेतु ज्ञान करिये दोऊ के वीच प्रेम सहित मन श्रीरामरूप में बसा रहै यह उपासना है॥

पैंतिस वर्ण मदकल दोहा है॥ ८॥

जो घरमें आसक्त हैं अरु श्रीरामनाम रटत तिनको कैसा होइगा तापै कहत कि विषयासक्तन को भी राम राम रटिवो भला है काहेते जब मृत्युसमय आई तबहूं पूर्वाभ्यास ते श्रीरामनाम उच्चारण बनिपरा तौ भवसागर ते पार ह्वै गये काहेते यवनादिकी कथा पुराणन में प्रसिद्ध है कि मृत्युसमय विना जाने रामनाम कहे मुक्त भये अरु जो सदा राम राम कहत रहै कुछ काल में सब पाप नाश होइँगे तब आप शुद्ध ह्वै जाइगो ताते राम राम रटिवो वृथा नहीं जात कौन भांति।

यथा—लरिकाईते जे जलमें पैरते हैं ते इत्तिफ़ाक़ परे पर अगाध जल में परे पर भी धोखे सों वूड़ि नहीं सक्ते हैं तैसे राम राम रटै तौ खता न खाइ॥

वत्तिस वर्ण करभ दोहा है॥ ६॥

दोहा

तुलसी बिलँब न कीजिये, भजि लीजे रघुबीर।
तन तरकस ते जात है, श्वास सारसो तीर १०
रामनाम सुमिरत सुयश, भाजन भये कुजाति।
कुतरु कुसरु पुरराजबन, लहत भुवन बिख्याति ११

कामादि शत्रुन करिकै घेर में परो है ताते उवारको उपाय गोसाईंजी कहत अब विलम्ब न कीजै भजि कहे भजन करिकै श्रीरघुवीर की शरण लीजै कौन भांति सो कहत कि तनुरूप तरकसमें श्वास सारांश है ते व्यर्थ सम वृथा जात ताते श्रीरामनाम रूप मन्त्र मन्त्रित करि भाव नाम स्मरण सहित श्वासरूप बाण छांड़िये तब लोकरूपुते बीच पाइ श्रीरघुवीरकी शरण में प्राप्त हो तब अभय हो भाव जब तक श्रीरघुनाथजी में मन लागरही तब तक लोकशत्रु बाधा न करिसकी ॥ पैंतिस वर्ण मदकल दोहा है ॥ १० ॥

श्रीरामनामको सुमिरत सन्ते कुजाति भी सुयश के भाजन भये सुयश काको कही।

यथा—"होत जो स्तुति दानते, कीरति कहिये सोइ।
होत बाहुबल ते सुयश, धर्म नीतिसह होइ॥"

ताते बाहुबल करिकै सुन्दर यश होइ ताको सुयश कही सो कौन को भया है जा समय चित्रकूट को भरतजी जात रहें ता समय निषादराजने भरतजी सों युद्ध की तैयारी करी ताते जगमें यश भयो।

पुनः गृद्धराज रावणते युद्ध करो ताको यश भयो।

पुनः राजवन कहे दण्डकवन शुक्राचार्य के शापते राजा दण्डक की राज्यभरि भस्म होगई रहै ता दण्डकवन में कुतरु जे कुत्सित वृक्ष

रहे कुसर कुत्सित ताल आदि पुर ग्रामादि सब जासमय श्रीरघुनाथ जीके पदकमल प्राप्त भये ताही समय सब मङ्गल के मूल है गये।
यथा—" मङ्गलमूल भयो वन तबते, कीन निवास रमापति जबते"
याही ते लहत भुवन विख्याति सब भुवन में जाकी बड़ाई प्रकट भई।
यथा—जेहि तरुतर प्रभु बैठहिं जाई। करहिं कल्पतरु तासु बड़ाई॥
इति कुतरु भी बड़ाई पाये।
जे सर सरित राम अव गाहहिं। तिनहिं देव सुर सरित सराहहिं॥
इत्यादि चालिस वर्ध कच्छ दोहा है॥ ११॥

दोहा

नाम महातम साखि सुनु, नरकी केतिक बात।
सरवरपर गिरिवर तरे, ज्यों तरुवर को पात १२
ज्ञान गरीबी गुण धरम, नरम बचन निरमोष।
तुलसी कबहुँ न छांड़िये, शील सत्य संतोष १३

श्रीरामनामको माहात्म्य वेद पुराणन में वर्णन है ताको साक्षी प्रसिद्ध है सो सुनु सरवर समुद्र में गिरिवर पर्वततरे कौन भांति।
यथा—तरुवर वृक्षको पाता तैसे पर्वत उतराने जा समय सेतु बांधत रहैं तब एक में रकार एकमें मकार लिखि जल में छांड़िदेई ताते एक में मिले उतरान करैं तौ पहाड़ जे जड़ हैं तेऊ तरे तौ नरके तरिवे की केतनी बात है काहेते चैतन्य है जो मृत्युसमय भूलिकै नाम निसरिगयो तेऊ भवसागर तरे।

यथा—यवनादि को चरित प्रसिद्ध है॥ त्रिकल दोहा है॥ १२॥
जो पट्शरणागति में कहे कि अनुकूलको ग्रहण प्रतिकूल को

त्याग ताको गोसाईंजी कहत कि ज्ञानादिको कबहूं न छांड़िये इनते विपरीत को त्यागिये।

यथा—ज्ञान कहे नित्यानित्य को विवेक सो न छांड़िये अज्ञान छांड़िये।

पुनः गरीबी अर्थात् जातिविद्या महत्वरूप यौवनादि को मद त्यागि दीनता बनी रहै।

पुनः रजोगुण, तमोगुण त्यागि सतोगुण न छांड़िये।

पुनः सब आश त्यागि निश्छल प्रभु में प्रीति ऐसा धर्म न छांड़िये अधर्म छांड़िये।

पुनः नरम वचन न छांड़िये कठोर वचन छांड़िये।

पुनः निर्मोष कहे अमान रहिये मान त्यागिये।

पुनः शील न छांड़िये कुशीलता त्यागिये।

पुनः सत्य कहे सांचे आचरण सों रहिये झूंठे त्यागिये।

पुनः संतोष न छांड़िये असन्तोष त्यागिये॥

सैतिस वर्ण बल दोहा है॥ १३॥

दोहा

असन वसन सुत नारिसुख, पापिहु के घर होय।
सन्त समागम रामधन, तुलसी दुर्लभ दोय १४

तुलसी तीरहि के बसे, अवशि पाइये थाह।
वेगहि जाइ न पाइये, सरसरिता अवगाह १५

असन सुअन्नादि भोजन वसन दुशाला आदि पुत्र नारी इत्यादि यावत् सुख तेतौ पापिन हूं के घरमें होत काहे ते सुकृत उदय भयो तौ इनते सुख भयो जो पाप उदय भयो तौ येई दुःखदायी होत।

यथा—आत्मदेव की स्त्री धुन्धुली पुत्र धुन्धकारी ताते लोक सुख में न भूलौ गोसाईंजी कहत कि सन्तन को समागम सत्संग और रामधन कहे श्रीरामभक्तिरूप धन ई दुइ बातें लोक में दुर्लभ हैं बड़ी भाग्य होइ तौ प्राप्त होइँ जामें सिवाय सुख दुःख हई नहीं ॥ अड़तिस वर्ण वानर दोहा है ॥ १४ ॥

सर ताल सरिता नदी आदि अवगाह पैठिकै वेगि पार जावा चहै तौ न बानि परै काहे ते अथाह जल में परै बूड़िजाइ ताते गोसाईंजी कहत कि जो कछु काल तीरमें वास करै तौ जानत २ अवशिकै थाह जानि लेइ तौ सुगम से पार उतरि जाय ताते सत्संग में बना रहै तौ देखत सुनत साधुन की कृपाते मन लागत २ श्रीरामभक्ति में मन लागि जाइ भक्त है जाइ अथवा यथा सर सरिता को वेगि पार जावा चहै तौ थाह न पावै बूड़िजाय तथा लोक समुद्र वेगि पार जावा चहै तौ थाह न पावै बूड़िजाय भाव वासना तौ गई नहीं लोक त्याग दिये जब वासना जागी फिरि संसार में परे ताको गोसाईंजी कहत कि लोकसिन्धु के तीर वसेते भाव संसार में रहै मन किनारे किहे भजन करै तौ लोककी थाह पाइये भाव लोक में जीव पचिमरत हाथ कछु नहीं लागत इत्यादि जीवन के दुःख देखि थाह मिलि गई कि लोकव्यवहार सब झूठा है ऐसा जानि मन खैंचि भगवत् सांचे जानि भक्ति में मन लागि गयो लोक सिन्धु ते पार है गयो ॥ पैंतिस वर्ण मदकल दोहा है ॥ १५ ॥

दोहा

डगअन्तर मग अगमजल, जलनिधि जलसंचार।
तुलसी करिया कर्म बश, बूड़त तरत न वार १६

परलोककी मार्ग में डग कहे पगके अन्तर अगम जल है कैसा अगम है जलनिधि जो समुद्र तद्वत् जलसंचार।

" चर गतिभक्षणयोः "

धातु ते संचार होत अर्थात् सम्पूर्ण अथाह भये लहरिन करिकै चलिरहा है यहां प्रसिद्ध जलनिधि नहीं कहे जलनिधि जल संचार याते कहे कि जब लोकसिन्धु को त्यागि कर्म ज्ञान उपासनादि परलोक मार्ग पै आरूढ भयो तब डग जो पग जीव को पग श्वास है श्वास के अन्तर अगम जल लोक आशारूप नदी मनोरथरूप जल लोकसिन्धुही के तुल्य है तृष्णारूप तरङ्ग सों चलै है नरदेहरूप नाव है गुरुवचन केवट है या भांति तरत समय गोसाईंजी कहत कि कर्मरूप करियाके बरते बूड़त वार नहीं लागत तहां प्रारब्ध कर्म करिया है जो देहरूप नावके पाछे लाग है क्रियमाण कर्म करिया को थांभनेवाला है जो शुभकर्म करै तौ प्रारब्ध को परलोककी ओर फेरिदिये जो अशुभ कियो तौ प्रारब्ध को लोक की ओर फेरिदिये आशारूप नदी है लोकसिन्धु में परि बूड़िगयो ॥

चालिस वर्ष कच्छ दोहा है ॥ १६ ॥

दोहा

तुलसी हरि अपमानते, होत अकाज समाज।
राजकरत रजमिलिगयो, सदलसकुलकुरुराज १७
तुलसी मीठे वचन ते, सुख उपजत चहुँओर।
वशीकरण यह मन्त्र है, परिहरु वचनकठोर १८

भगवान्की जो आज्ञा है ताको जे नहीं करत तेई आज्ञाभङ्ग रूप भगवान् को अपमान करत ताको गोसाईंजी कहत कि हरि को अपमान कीन्हे ते समाजसहित अकाज कहे नाश होत कौन भांति । यथा—कुरुराज जो दुर्योधन भगवान् को कहा न माने ते राज करत में कुल और सेना सहित रज जो धूरि तामें मिलि

गये भाव नाश है गये ताते भगवान् की आज्ञा करनो उचित है कौन आज्ञा है।

यथा—"नरतन भववारिधि कहँ बेरा।
सम्मुख मरुत अनुग्रह मेरा॥"
(भागवते एकादशे)
"नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान्भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा॥"
त्रिकल दोहा है॥ १७॥

प्रथम कहि आये कि संसार के निकट रहिकै भजन करिये तापै कोऊ संदेह करै कि संसार के निकट रहै तौ काहू ते प्रीति काहू ते वैर तहां निर्वाह की रीति गोसाईंजी कहत कि मीठे वचन बोलिबेते भूमिमैं चारहू दिशि सुख उपजत काहे ते यह मीठा वचन एक वशीकरण मन्त्र है ताते कठोर वचन परिहरु कहे त्याग करु सब जगत् तेरो मित्र है॥

उन्तालिस वर्ण त्रिकल दोहा है॥ १८॥

दोहा

राम कृपा ते होत सुख, राम कृपा विन जात।
जानत रघुवर भजन ते, तुलसीशठअलसात १९
सम्मुख ह्वै रघुनाथ के, देहु सकल जग पीठि।
तजे कैंचुरी उरग कहँ, होतअधिकअतिदीठि२०

जीवको सुख कौन प्रकार होत श्रीरामकृपा ते।

यथा—सुग्रीव विभीषण अरु विना श्रीरामकृपा सुख जात यथा बालि रावणको सो कृपा कौन भांति होत श्रीरघुवर के भजन कीन्हे ते कृपा होत जाके भये दुःखद वस्तु सुखदायक होत।

(यथा महोदर्धा)

" तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव ।
विद्याबलं देवबलं तदेव सीतापतेर्नाम यदा स्मरामि ॥"

यथा—अम्बरीष पे प्रभु की कृपा न होती तौ दुर्वासा के शापते कैसे बचते ऐसा जानत ताहू पे है शठ, तुलसी ! श्रीराम-भजन में आलस करत तौ कैसे सुख होई ।

यथा—चौ० कह हनुमन्त विपति प्रभु सोई ।
जब तब सुमिरन भजन न होई ॥

(भागवते)

"तावद्भयं द्रविणगेहसुहृन्निमित्तं शोकः स्पृहापरिभवो विपुलश्च लोभः।
तावन्ममेत्य सदवग्रह आर्तिमूलं यावन्न तेऽङ्घ्रिमभयं प्रवृणीत लोकः॥"

सैंतिस वर्ण बल दोहा है ॥ १६ ॥

जब श्रीरघुनाथजी की दिशि मन सम्मुख है जाइ तब सब जगकी दिशि पीठिदेहु भाव लोकवासना मन में न आवै काहेते हृदयकी दृष्टि को मैल करनेवाली है कौन भांति ।

यथा—उरग कहे सर्प के जब भीतर त्वचा तुष्ट है गई तबते जब लग केंचुरि नहीं छांड़त तब तक नेत्रनते साफ नहीं देखात जब केंचुरि छोड़िदियो तब आंखिनको भी पटल उतरि गयो ताते दृष्टि अधिक साफ हैगै तैसे हरिदासन के लोकवासना त्यागे उरग के नेत्र निर्मल होत ॥ बल दोहा है ॥ २० ॥

दोहा

मर्यादा दूरहि रहे, तुलसी किये विचारि ।
निकट निरादार होत है, जिमिसुरसरिवरवारि २१

गोसाईंजी कहत कि हम विचारि करि लिये है तब कहते हैं

कि लोकते दूरि रहेते मर्यादा रहत सदा निकट रहे मर्यादा नहीं रहत और निरादर है जात कौन भांति।

यथा—सुरसरि गङ्गाजी को वर कहे श्रेष्ठ वारि कहे जल जो देवतन करिकै पूज्य जाको शिवजी शीशपर धारण किह जामें परे महापापी गति पावत ताके निकटवासी मलमूत्र करत ताते दूरि रहनो उचित है ॥

सैंतिस वर्ण वल दोहा है ॥ २१ ॥

दोहा

रामकृपानिधि स्वामिमम, सब विधि पूरणकाम।
परमारथ परधाम वर, सन्तसुखद बलधाम २२
रामहिं जानहिं रामरट, भजु रामहिं तजु काम।
तुलसीराम अजान नर, किमि पावहिं परधाम २३

जो लोकते अलग रहै जो कुछ भय होय तौ कौन रक्षा करै व पालन पोषण कैसे होइ तापै कहत कि हमारे स्वामी जे श्री रघुनाथजी हैं ते कृपासिन्धु हैं जे लोक को पालन पोषण करत ते आपने दास को कैसे न पालन करैंगे।

यथा—भारते

"भोजने छादने चिन्ता वृथा कुर्वन्ति वैष्णवाः।
योऽसौ विश्वंभरो देवः स भक्तान्किमुपेक्षते॥"

पुनः कैसे प्रभु हैं पूरणकाम है कुछ वलि पूजा चाहत नहीं केवल एक प्रेमते प्रसन्न होत।

पुनः परमार्थ कहे मुक्तिदायक हैं।

पुनः सर्वोपरि वर कहे श्रेष्ठ है धाम जिनको।

यथा—श्रुतिः

" याऽयोध्यापुरी सा सर्ववैकुण्ठानामेव मूलाधारा मूलप्रकृतेः परात्सत् । ब्रह्ममया विरजोत्तरा दिव्यरत्नकोशाढ्यातस्या नित्यमेव सीतारामयोर्विहारस्थलमस्तीति ॥" इत्यथर्वणि उत्तरार्द्धे ।

पुनः सन्तन के सुखदायक हैं अरु बल के धाम हैं जापै क्रोध करैं ताको कोऊ रक्षक नहीं ।

यथा—हनुमन्नाटके

" ब्रह्मा स्वयंभूश्चतुराननो वा इन्द्रो महेन्द्रः सुरनायको वा ।
रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा त्रातुं न शक्ता युधि रामवध्यम् ॥"

अड्तिस वर्ण त्रिकल दोहा है ॥ २२ ॥ पूर्व दोहा का अभिप्राय लैकै यह दोहा है ।

यथा—रामहिं जानहिं कौन भांति कि श्रीरघुनाथजी कृपानिधि हैं तौ मेरे भी ऊपर कृपा करहिंगे ऐसा श्रीरघुनाथजी को जानहिं ।

पुनः रामरट कौन भांति अर्थात् पूरणकाम हैं कुछ वलि पूजा नहीं चाहत केवल एक प्रेम चाहत ताते प्रेमसमेत श्रीरामनाम रट ।

पुन भजु रामहिं कैसे कि सन्तन के सुखदायक हैं याते अभय है श्रीरघुनाथजी को भजु कहे सेवा करु कैसे सेवा करु तजि काम ।

यथा—जहां काम तहँ राम नहिं, जहां राम नहिं काम ।
तुलसी दोनहुँ नहिं मिलैं, रवि रजनी यकठाम ॥

ताते जे काम को नहीं तजे ते श्रीराम को कैसे जानहिं ताको गोसाईंजी कहत कि जे अपनो को सेवक करि श्रीरघुनाथजी को स्वामी करिकै नहीं जानत ते कैसे परधाम पावहिं भाव न पावहिं ॥ अड्तीस वर्ण वानर दोहा है ॥ २३ ॥

दोहा

तुलसी पति रति अङ्कसम, सकल साधना सून।
अङ्करहित कछु हाथ नहिं, सहित अङ्कदशगून २४
तुलसी अपने राम कहँ, भजन करहु इक अङ्क।
आदि अन्त निरबाहिबो, जैसे नव को अङ्क २५

गोसाईंजी कहत कि आप सेवक है पति श्रीरघुनाथजी में रति प्रीति अर्थात् भक्ति सो एकादि अङ्क सम है अरु शून्य ब्रह्म के प्राप्त्यर्थ वैराग्यादि सकल साधन शून्य सम है सो भक्तिरूप अङ्क रहित साधनरूप शून्य करि कछु हाथ नहीं भाव निराकार की प्राप्ति दुर्घट है अरु भक्तिरूप अङ्कसहित विवेकादि साधनरूप शून्य दीन्हे ते दशगुणा बढ़त जात।

यथा—"सोह न राम प्रेम बिन ज्ञानू।
कर्णधार बिन जस जलयानू॥"

महारामायणे

"ये रामभक्तिममलां सुविहाय रम्यां ज्ञाने रताः प्रतिदिनं परिक्लिष्टमार्गे। आरान्महेन्द्रसुरभीं परित्यक्तमूर्खा अर्कं भजन्ति सुभगे सुखदुग्धहेतुम्॥"

त्रिकल दोहा है॥ २४॥

शुद्ध सतोगुणी जीव एक अङ्क है प्रकृति मिले द्वै बुद्धि मिले तीनि अहंकार मिले चारि शब्द मिले पांच स्पर्श मिले छः रूप मिले सात रस मिले आठ गन्ध मिले नव इति एक शुद्ध सतोगुणी जीव आठआवरणकरि नव भूमिका है तामें सात भूमिका लौं ज्ञान रहत तवलौं जीव विरक्त है आठई भूमिका में विमुख भयोनवईं में जीव विषयी भयो याहेतु नवधा भक्ति है।

यथा—विषयी जीव सन्तन की संगति करै तौ विषय ते विरक्त होय भूतत्त्व गन्ध आवरण को जीतै।

पुन• विमुख जीव हरि यश सुनै तब भगवत् के सम्मुख होइ तब जलतत्त्व रस आवरण जीतै।

पुन• अपान दै गुरुकी सेवाकरै तब अग्नितत्त्वरूप आवरण जीतै।

पुन• कपट तजि हरियश गानकरै तब पवन तत्त्व स्पर्श आवरण जीतै।

पुनः मन्त्रजाप अर्थात् भजन करै तब आकाश तत्त्व शब्द आवरण जीतै।

पुन• दमशील विरति शुभकर्मादि सज्जनता करि अहंकार आवरण जीतै।

पुनः ईश्वरमय जगत् जानि अविरोध है सन्तन को अधिक जानै तब बुद्धि आवरण जीतै।

पुनः यथा लाभ तथा सन्तोष काहू को दोष न देखै तब प्रकृति आवरण को जीतै।

पुन• हर्षशोकहीन सबसों सरल छलरहित ईश्वर को भरोसा सतोगुणी शुद्धजीव प्रेमसहित ईश्वर को भजै गोसाईंजी कहत कि आपते स्वामी श्रीरघुनाथजी को एक अङ्क है शुद्ध प्रेमसहित भजन करौ कौन भांति आदि अन्तलौं निर्वाह करौ जैसे एकते लैकै नव को अङ्क है तैसे नवधाभक्ति करि पूर्व जो कहि आये ताही क्रमते नव आदि दै एकाङ्क पर्यन्त पहुँचि शुद्ध है प्रेमसहित प्रभुको भजनकरै सो उत्तम भक्त है बिन जीव शुद्ध भये भक्ति नहीं होत।

यथा—महारामायणे

ये कल्पकोटि सततं जपहोमयोगैर्ध्यानैःसमाधिभिरहो रतब्रह्मज्ञाना.।
ते देवि धन्यमनुजा हृदि बाह्यशुद्धा भक्तिस्तदा भवति तेष्वपि रामपादौ॥

छतिम वर्ण पयोधर दोहा है॥ २७॥

दोहा

दुगुने तिगुने चौगुने, पंच षष्ठ औ सात।
आठौं ते पुनि नौं गुने, नौंके नौं रहिजात २६
नव के नव रहिजात हैं, तुलसी किये बिचार।
रमो राम इमि जगत में, नहीं द्वैत बिस्तार २७
तुलसी राम सनेह करु, त्यागु सकल उपचार।
जैसे घटत न अङ्कनव, नवकरलिखत पहार २८

प्रथम एक अङ्क है दुगुन कहे द्वै भये याही क्रम तीनि चारि पांच छः सात आठ नव गुन किहे नव भये।

पुन• नव के नवै रहि गये याही भांति नवैं अङ्कन को विस्तार है याको भेद आगे के दोहन में कहब॥ यकतिस वर्ण मर्कट दोहा है॥ २६॥

यथा—एक अङ्क ते नव तक भये।

पुन• नव के नवै रहि गये ताको गोसाईंजी विचार करि कहत कि याही भांति जगत् में एक रघुनाथजी रमे हैं।

यथा—एक ते नव तक अङ्कन को विस्तार।

तथा—पूनस्थाने श्रीरघुनाथजी परब्रह्म विद्यामाया करि शुद्ध जीव भयो भक्त ते, बुद्धि, अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि आवरण मिल नवईं भूमिका उतरि विषयी जीव है गयो या भांति जगत् को विस्तार भयो तामें द्वैत कहां है दूसरा नहीं है।

यथा—सेर भरे दूध में आठ सेर पानी मिले नव सेर को विस्तार भयो जब पानी को अभाव होइ तब दूध एक ही सेर रहै॥ मराल दोहा है॥ २७॥

बद्ध जीवन के भवरोगनाशक कर्मज्ञानोपासनादि तीनि उपचार हैं।

यथा—क्वाथ वटी चूर्ण अवलेहादि ओषधी सो कर्म है।

पुनः धातु उपधातुआदि रस सो ज्ञान हैं अर्क शरबत मुरब्बादि उपासना है तहां पांच भूमिका कर्म है।

यथा—श्रद्धा १ दीक्षा संस्कार २ जपपूजादि ३ मानसी पूजा जपादि ४ भगवत् में मन लगाना ५।

पुनः सात भूमिका ज्ञान।

यथा—"सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई।
परम धर्म मय पय दुहि भाई॥
अवटै अनल अकाम बनाई" इत्यादि।

पुनः नवभूमिका भक्ति की।

यथा—"प्रथम भक्ति सन्तन कर संगा।" इत्यादि तहां कर्म ज्ञान तौ उत्तम जीव ताहू में उत्तम जाति को अधिकार है तौ नीच पतित विषयी जीवन को उद्धार कर्म ज्ञान कैसे करि सकत अरु भक्ति सबको उद्धार करि सकत काहे ते प्रथम भूमिका सन्तन को सत्संग सो सबको सुलभ सो सत्संग करि विषय ते विमुख भयो दूसरी भूमिका हरियशश्रवण सोऊ सुगम हरियश सुने मन हरिसम्मुख भयो तब गुरुमुख संस्कार पाय श्रीरामनाम उच्चारण करि पतित भी महापावन ह्वै गयो।

यथा—"राम राम कहि जे जमुहाहीं।
तिनहिं न पापपुञ्ज समुहाहीं॥"

वाराहपुराणे

"दैवाच्छूकरशावकेन निहतो म्लेच्छो जराजर्जरो
हा रामेति हतोस्मि भूमिपतितो जल्पंस्तनुं त्यक्तवान्॥

तीर्णो गोष्पदवद्भवार्णवमहो नाम्नः प्रभावात्पुनः
किं चित्रं यदि रामनामरसिकास्ते यान्ति रामास्पदम् ॥"

अथर्वणे श्रुतिः

"यश्चाण्डालोऽपि रामेति वाचं वदेत् तेन सह संवसेत् तेन सह संवदेत् तेन सह सम्भुञ्जीत ॥"

इत्यादि जब उत्तम है गये तब कपट छांड़ि हरियश गान करने लगो पतित पावनादि गुण सुमिरि विश्वास आई भजन करने लगो।

यथा—सतयुग में दासीपुत्र नारद सत्संग करि उत्तम है गये।

तथा—वाल्मीकि।

पुनः त्रेता में शबरी द्वापर में श्वपच कलियुग में सधन रैदास और गोसाईं वैरागी नीचनको शिष्य संस्कार करि उत्तम बनाय देते हैं यह भक्ति की प्रथम भूमिका सत्संग को प्रभाव है।

तथा—कर्म ज्ञानादि पतित विषयिन को उत्तम नहीं करिसकत ताते गोसाईंजी कहत कि, सब उपचार त्याग श्रीरामसनेह करु कर्म ज्ञानादि करि विषयी जीव मुक्त नहीं है सकत कैसे जैसे नव को पहार लिखत में नव को अङ्क नहीं मिटत तहां एक जीव आठ प्रकृति आवरण में परि विषयी जीवन के अङ्क सम भयो जो कर्म ज्ञानादि साधन करने लगो प्रथम आवरण विषय जीतवे हेतु वैराग्य कीन्हो सो मानो जीव की प्रकाश दूनी भई।

यथा—नव को दून अठारह तहां गन्ध आवरण जीते एक घटे नव ते आठ रहे सो अठारह में ऊपर देखात परन्तु वासना भीतर बनी है सो अठारह में एक को अङ्क है जब आठ में एक मिलावो। पुनः नव होत।

पुनः दूसरी भूमिका विवेक करि असार त्यागि सार ग्रहण करै सो जीव तिगुनी प्रकाश भई।

यथा—नव तिगुन सताइस तहा गन्धरस द्वै आवरण जीते सत्ताईस पूरे सात रहे सो सताइस में सात ऊपर देखात जो वासन बनी रही सो द्वै को अंक तरे है जब सात अरु द्वै मिलावै।

पुनः नव भये।

पुनः ब्रचित्त में छः तीनि नव है या भाति ज्ञान की भूमिका चढ़त विषय आवरण नॉघत ब्रह्म प्राप्ति तक जो विषय वासना बनी तौ।

यथा—नवदहाँ नब्बे शून्य ब्रह्म तक प्राप्त।

पुनः नव बने हैं भाव विषयी बने रहे मुक्त न भये तैसे सवासना कर्म है॥ उनतालिस वर्ण त्रिकल दोहा है॥ २८॥

दोहा

अङ्क अगुन आखर सगुन, सामुझ उभय प्रकार।
खोये राखे आपु भल, तुलसी चारु विचार २६

एक १ आदि नव ९ पर्यन्त जो अङ्क हैं ते निर्गुण हैं अरु अकार आदि खकार पर्यन्त जो आखर वरन है इति सामुझ उभय कहे दुइ प्रकार की है ताको आदि कारण श्रीराम नाम है तामें परवस्तु है रेफ सो परब्रह्म है मकार को अकार जीव है रकार को अकार महानाद है रकार की दीर्घ आकार स्वर है मकार व्यञ्जन दिव्य माया है अनुस्वार बिन्दु है।

पुनः तीनि गुन मिले नव भये तब ओंकार उत्पन्न भई।

यथा—'राम' अस पद स्थिति भयो तहा रकार और अकार को वर्ण विपर्यय भयो 'अ.र.म' अस भयो 'सोर्विसर्ग.' सकार रेफ-योर्विसर्जनीयादेशोभवति 'अःम' असभयो 'हवे' अकारात्परस्य विसर्जनीयस्य उकारो भवति हवे परे।

'अउम' अस भयो।

'उओ' अवर्णउवर्णे परे सह ओ भवति।

'ओम' अस भयो 'मोनुस्वारः' मकारस्यानुस्वारो भवति, 'ओं' सिद्ध भयो तामें अकार सतोगुण सो विष्णु है उकार रजोगुण सो ब्रह्मा है मकार तमोगुण सो महादेव तातें चराचर तीनि गुणमय है।

यथा—महारामायणे

"रामनाम महाविद्ये षड्भिर्वस्तुभिरावृतम्
ब्रह्मजीवमहानादैस्त्रिभिरन्यद्वदामि ते॥
स्वरेण विन्दुना चैव दिव्यया मायया ऽपि च
पृथक्त्वेन विभागेन साम्प्रतं शृणु पार्वति॥
परब्रह्ममयो रेफो जीवोऽकारश्च मश्च यः
ह्रस्वाकारोमयोनादो राया दीर्घस्वरामयाः॥
मकारं व्यञ्जनं विन्दुर्हेतुः प्रणवमाययोः।
अर्धमात्रादुङ्कारः स्यादकारान्नादरूपिणः॥
रकारगुरुराकारस्तथा वर्णविपर्ययः।
मकारव्यञ्जनं चैव प्रणवं चाभिधीयते॥
रामनाम्नः समुत्पन्नः प्रणवो मोक्षदायकः।
रूपं तत्त्वमसेश्चासौ वेदतत्त्वाधिकारिणः॥
अकारः प्रणवे सत्त्वमुकारश्च रजोगुणः।
तमोहलमकारः स्यात्त्रयोहंकारमुद्भवे॥
प्रिये भगवतो रूपे त्रिविधो जायतेऽपि च।
विष्णुर्विधिरहं चैव त्रयो गुणविधारिणः॥"
इति सगुण वर्णरूप प्रणव अगुणरूप।

यथा—जो नव वस्तु पूर्व कहे ताहीते नव अङ्क प्रगटे।

यथा—रेफ को रूप नाद अकार को रूप । दीर्घाकार ॥ स्वर इति राकार विन्दु० दिव्यमाया जीवकी अकार । इति मकार ।

पुनः सतोगुणरूप रजोगुणरूप तमोगुणरूप इनहीं ते नव अङ्क । यथा—विन्दु में जीव की अकार सतोगुण लागे १ एक भयो तामें रजोगुण लागे २ द्वै भये तामें तमोगुण लागे ३ तीन भये पुनः विदु में दिव्यमाया लागे ४ चार भये मायाजीव मिले ५ पाँच भये तमविन्दु माया मिले ६ छः भये विन्दु में तमोगुण मिले ७ सात भये रजोगुण माया मिले ८ आठ भये माया तमोगुण मिले ९ नव भये इनहीं नवौ अङ्क श्रो या प्रणव में प्रसिद्ध हैं विचारिकै देखि लेव यह श्रवगुण रूप प्रणव है अब आखरन की उत्पत्ति रामशब्दते ।

यथा—जीव के ज्ञान ते सोहं हंसः ऐसा शब्द उच्चारण करो तब रेफादि पद मात्रा तीनिगुण सकार इकार करि सब वर्ण प्रकटे ।

यथा—नाद अकार सतोगुण मिले इकार भई रेफविसर्ग है उकार भई रेफ इकार मिले ऋकार विकल्पकरि लृकार भई 'अइए' 'एऐऐ' 'उओ' 'ओऔऔ' 'अइ' मिले 'ए' भई 'अए' मिले 'ऐ' भई 'अउ' मिले 'ओ' भई 'अऔ' मिले 'औ' भई 'इअ' मिले 'य' भई 'ऋअ' मिले 'रकार' 'लृअ' मिले 'लकार' 'उअ' मिले 'व' भई स्थान भेदने 'स श ष' भई।

पुनः अकार विन्दु मिले गकार मर्कटी गह मिले घह भई 'वात्सारने' इति धकार की क भई कह मिले ख भई 'कुहोश्चुः' इति कवर्ग को चवर्ग भयो चवर्ग ते तवर्ग तवर्ग ते टवर्ग भयो व विकल्प व भई वह मिले भ "वावसाने" इति 'प' भई पह मिले 'फ' भई ।

पुनः विन्दु अकार मिलि कण्ठ में उच्चारे ङकार प्रकट में 'ञ' तालुमें 'न' मूर्धनि नासिका में 'ण' दन्त में 'न' ओष्ठमें 'म'

भई 'कृपसंयोगे क्षः' 'जज्ञोर्ज्ञः' तरसंयोगे 'त्र' इत्यादि याभांति प्रकटे तैसे लोप भये 'राम' ऐसा शब्द शेष रहो ताहींभांति शुद्धजीव प्रकृति आदि आवरणकेरि विमुख विषयी हैगयो।

यथा—दूध में जल मिलि गयो ताको गोसाईजी कहत कि खोये राखे अपमल विषय जलको खोये शुद्ध आपनो रूप राखेते भला काहे जीवको कल्याण है कौन भांति चारु कहे सुन्दर विचार करिकै सो।

यथा—अङ्क सौ अगुण सो ज्ञानमार्ग आखर सगुण सो उपासना मार्ग॥

छत्तिस वर्ण पयोधर दोहा है॥ २९॥

दोहा

यहि विधिते सब राममय, समुझहु सुमति निधान।
याते सकल विरोध तजु, भजुसबसमुझु न आन ३०

पूर्व दोहनकी अभिप्राय लैकै गोसाईजी कहतहैं कि भगवत् तत्त्व जाननेवाली सुन्दरि बुद्धि है जिनके तिनते कहत कि हे सुमतिनिधान! जो पूर्व कहेहैं यहि विधिते सब चराचर श्रीराममय समुझउ आन कहे दूसरा न समुझउ याते जीवमात्र सकल में विरोध तजु सबमें व्यापक मानि श्रीरामको भजु।

यथा—"चौ० सिया राममय सब जग जानी।
करौं प्रणाम जोरि युगपानी॥"

पुनः महारामायणे

"भूमौ जले नभसि देवनरासुरेषु भूतेषु देवसकलेषु चराचरेषु। पश्यन्ति शुद्धमनसा खलु रामरूपं रामस्य वे क्षितितले समुपासकाश्च"॥

एकतालिस वर्ण मच्छ दोहा है॥ ३०॥

दोहा

राम कामना हीन पुनि, सकल काम करतार ।
याही ते परमातमा, अव्यय अमल उदार ३१

श्रीरघुनाथजी कैसे हैं कामनाहीन भाव काहूते कछु चाहत नहीं।
पुनः कैसे हैं सकल कहे सबके कामनाके पूरणकरणहार हैं याही ते परमातमा कहे परब्रह्म अव्यय कहे अविनाशी हैं कबहू नाश नहीं होत ।

पुनः कैसे अमल जामें कछु मल नहीं ।
पुनः कैसे उदार दानी जाको देत ताको अचाह करिदेत।
यथा—ध्रुवादि । पैंतिस वर्ण मदकल दोहा है ॥ ३१॥

दोहा

जो कछु चाहत सो करत, हरत भरत गत भेद ।
काहु सुखद काहू दुखद, जानत है बुधवेद ३२
सन्तकमल मधु मास कर, तुलसी बरण बिचार।
जगसरवर तर भरनकर, जानहु जलदातार ३३

जो कछु चाहत सोई करत भाव स्वतन्त्र हैं।

पुनः कैसे हैं हरंत भरत काहू को सर्वस हरत काहू को सर्वस भरत याहीते काहू को सुखद हैं सुख देत काहू को दुःखद दुःख देत यह समुझनो अज्ञानदशा है काहेते जीवको सुख दुःख प्रारब्धाधीन है सो प्रारब्ध क्रियमाणते बनो ताते वेद अनुकूल कर्म कीन्हे सुख वेद प्रतिकूल कीन्हे दुःख यह बात वेद करिकै विदित है सो बुद्धि-मान जानत ताते ईश्वर भेदगत हैं भेदरहित सबको एकरस सबको

जानत दूसरी दृष्टि नहीं काहेते जाड घाम मांदगी सबको एकही भांति होत अधिकी कमती कर्माधीन है ॥ पैंतिस वर्ण वानर दोहा है ॥ ३२ ॥

जे सब आश भरोस छांड़ि भगवत्सनेह में मग्न हैं तिन के रक्षक हैं कौन भांति ।

यथा—मधु कहे चैतमास में जब घाम करि पानी सूखन लागो तब कमल सुखाने लगे जब दैवयोग मेघ बरषि दिये फिरि ताल भरि गये कमल सुखी भये सो कहत कि सन्तजन मधु कहे चैत-मास के कमल हैं लोकसर विषे दुःख तापते सुखरूप जल सूखन लगो तिनके रक्षाहेतु श्रीराम ऐसे जो द्वै वर्ण हैं तिनको गोसाईंजी कहत कि विचार करिकै दोऊ वर्ण जलदातार कहे मेघसम जानहु ये सुखरूप जल बरषि जगरूप सर कहे ताल वर कहे श्रेष्ठ तिनको भरन कहे भरिदेत ।

यथा—गज सुग्रीवादिकन के आरत मिटाये तब सन्तरूप कमल हरित है प्रफुल्लित भये ।

यथा—आदिपुराणे श्रीकृष्णवाक्यम्

"श्रद्धया हेलया नाम वदन्ति मनुजा भुवि ।
तेषां नास्ति भयं पार्थ ! रामनामप्रसादतः ॥"

मच्छ दोहा है ॥ ३३ ॥

दोहा

एकसृष्टि महँ जाहिविधि, प्रकट तीनितर भेद ।
सात्त्विक राजस तमसहित, जानत हैं बुधवेद ३४
ता विधि रघुवर नाम महँ, वर्त्तमान गुण तीन ।

चन्द्रभानुअपिअनल विधि, हरिहरकहहिंप्रवीन ३५
अनल रकार अकार रवि, जानु मकार मयङ्क।
हरि अकार रकार विधि, मम महेश निःशङ्क ३६
वन अज्ञानकहँ दहनकर, अनल प्रचण्ड रकार।
हरि अकार हरमोहतम, तुलसी कहहिं विचार ३७

जा भांति एक रूहिमें तर कहे अत्यन्त करिकै तीनिभेद प्रकट हैं कौन सतोगुण रजोगुण।

यथा—भगवान् शक्ति को ग्रहण कीन तब महातत्त्व प्रकटो ताते अहंतत्त्व प्रकटो सो तीनि प्रकार सतोगुण अहंकार ते इन्द्रिन के अधिष्ठाता दिशादि देवता प्रकटे रजोगुणी अहंकार ते इन्द्रिय प्रकटी तमोगुणी अहंकार ते सूक्ष्मभूत ताते ब्रह्माण्ड इत्यादि वेदन करिकै बुद्धिमान् जानत ॥ अड़तिस वर्ण वानर दोहा है ॥ ३४ ॥

ताही भांति रघुवर के श्रीरामनाम में वर्तमान तीनिउ गुण हैं ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि तीनिउ देव और अग्नि, भानु, चन्द्रमा तीनिउ कारण हैं इत्यादि जे श्रीरामतत्त्व जानवे में प्रवीण हैं ते कहत हैं ॥ चालिस वर्ण कच्छ दोहा है ॥ ३५ ॥

अनल कहे अग्नि सो रकार है रवि सूर्य सो अकार है मयङ्क चन्द्रमा सो मकार जानु।

पुनः अकारको हरि जानु रकारको ब्रह्मा जानु मकार को महादेव जानु यामें शङ्का नहीं ॥ उन्तालिस वर्ण त्रिकल दोहा है ॥ ३६ ॥

अज्ञानरूप वन ताको भस्म करिबे हेतु रकार प्रचण्ड अग्नि है।

पुनः मोहरूप तम अन्धकार हरिवेहेतु अकार हरि कहे सूर्य हैं इत्यादि वेद में विचारिकै गोसाईंजी कहत ॥ मदकल दोहा है ॥ ३७ ॥

दोहा

त्रिविध ताप हर शशि सतर, जानहु मर्म मकार।
विधि हरि हर गुण तीनिको, तुलसीनामअधार ३८

अब मकार को चन्द्रमा करि कहत तामें द्वैभेद एकतो दैहिक, दैविक, भौतिकादि तीनों तापन के सतर, कहे शीघ्रही हरिवेहेतु मरम कहे कठिन है अरु शीतल आह्लाद करिवेहेतु अत्यन्त सुन्दर है शीतल है याते सतर कहे सत्त्व तम रजादि तीनिउ गुण औ ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिकनको आधार श्रीरामनाम है।

यथा—महारामायणे

"रकारो नलवीजं स्याद्ये सर्वे वाडवादय ।
कृत्वा मनोमलं सर्वं कर्म भस्म शुभाशुभम् ॥
अकारो भानुवीजं स्याद्वेदशास्त्रप्रकाशकम् ।
नाशयत्येव सद्दीप्त्या या विद्या हृदये तमः ॥
मकारश्चन्द्रवीजं च सदन्योपरिपूरणम् ।
त्रितापं हरते नित्यं शीतलत्वं करोति च ॥
रामनाम्नः समुत्पन्नः प्रणवो मोक्षदायकः ।
अकारः प्रणवे सत्त्वमुकारश्च रजोगुणः ॥
तमोहलमकारः स्यात्त्रयोङ्कारमुद्भवे ।
प्रिये भगवतोरूपे त्रिविधो जायतेऽपि च ॥
विष्णुर्विधिरहं चैव त्रयो गुणविधारिणः ।
चराचरसमुत्पन्नो गुणत्रयविभावतः ।
अतः प्रिये रघुक्रीडारामनाम्नैव वर्त्तते ॥"

चालिस वर्ण कच्छ दोहा है ॥ ३८ ॥

दोहा

भानु कृशानु मयङ्क को, कारण रघुवर नाम।

बिधिहरि शम्भु शिरोमणि, प्रणतसकल सुखधाम ३९
अगुण अनूपम सगुणनिधि, तुलसी जानत राम।
कर्ता सकल जगत को, भरता सब मन काम ४०

भानु सूर्य कृशानु अग्नि मयङ्क चन्द्रमा इत्यादि को कारण श्रीरामनाम है।

पुनः श्रीरामनामही के आधार ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि देवन में शिरोमणि हैं जे प्रणत शरणागतन के सकल सुख के धाम कहे सुख देनहार हैं॥ वानर दोहा है॥ ३९॥

पुनः कैसा श्रीरामनाम है अगुण है भाव तीनिउ गुणन ते पर है अनूपम जाकी उपमा को दूसरा तत्त्व नहीं है।

केदारखण्डे शिववाक्यम्

"रामनामसमं तत्त्वं नास्ति वेदान्तगोचरम्।
यत्प्रसादात्परां सिद्धिं संप्राप्ता मुनयोऽमलाम्॥"

पुनः सगुणनिधि दिव्य गुणन को धाम है गोसाईंजी कहत ता नाम को प्रभाव एक श्रीरघुनाथजी जानत दूसरा नहीं।

यथा—महारामायणे शिववाक्यम्

"वेदाः सर्वे तथा शास्त्रं मुनयो निर्जरर्षभाः।
नाम्नः प्रभावमत्युग्रं ते न जानन्ति सुव्रते॥
रामएवाभिजानाति वृत्स्नं नामार्थमद्भुतम्"

पुनः कैसा है श्रीरामनाम सकल जगको कर्ता और सब के मनोरथ को भर्ता पालनहार है॥ त्रिकल दोहा है॥ ४०॥

दोहा

छत्रमुकुट सम बिन्दु अल, तुलसी युगलहलन्त।
सकल बरन शिरपर रहत, महिमा अमल अनन्त ४१

रामानुज सतगुण विमल, श्याम राम अनुहार।
भरता भरत सो जगतको, तुलसी लसत अकार ४२

श्रीरामनाम के जे दोऊ वर्ण हैं ते छत्रमुकुट की समान विद्धि कहीं जानहु कौन भांति ते युगल हलन्त स्वर रहित रेफ अनुस्वार तहां छत्रमुकुट तौ राजन के शीश पर रहत इहां सकल वर्ण जो अक्षर तिनके शीश पर रेफ छत्रसम अनुस्वार सुन्न सो मुकुट सम रहत छत्रमुकुट करि श्रेष्ठता देखात इहां रेफ अनुस्वारकरि वर्ण गुरुता पावत।

यथा–धर्म

इहां धकार सेवक सम रेफ छत्र सम लगाये सो भी गुरुता पाये औ मकार के शीश पर छत्रमुकुट दोऊ सो गुरुस्वामी की जगह है।

पुनः कैसे हैं दोऊ वर्ण अल कहे समर्थ जाकी महिमा अमल है जाको वेदादि अन्त नहीं पावत।

यथा–महारामायणे

"वेदाः सर्वे तथा शास्त्र मुनयो निर्जरर्षभाः।
नाम्नः प्रभावमत्युग्रं वै न जानन्ति सुव्रते॥
निवर्ण रामनामेदं केवलं च स्वराश्रिपम्।
मुकुटच्छत्रे सर्वेषा मकारो रेफव्यञ्जनम्॥"

चवालिस वर्ण शार्दूल दोहा है॥ ४१॥

अब तीनिउँ देव तीनिउँ भाइन को रामनाम में देखावत।

यथा––श्रीराम के अनुज कहे छोटे भाई कौन जे रामही की अनुहार श्याम सतोगुणरूप विमल जो भरत ते जगके भर्ता पालनहार विष्णु हैं तिनको गोसाईंजी कहत कि अकार है॥ उन्तालीस वर्ण त्रिकल दोहा है॥ ४२॥

दोहा

राजत राजसता अनुज, वरद धरणिधर धीर।
विधिविहरतअतिआशुकरि, तुलसीजनगनपीर ४३
हरण करन संकट सतर, समर धीर बलधाम।
मनमहेश अरिदवन वर, लषणअनुजअरिकाम ४४
राम सदा सम शीलधर, सुखसागर पर धाम।
अज कारन अद्वैत नित, समतर पद अभिराम ४५

ता भरत के अनुज छोटे भाई ते राजस रजोगुणरूप राजत कैसे हैं वरदायक भूमि के धरणहार धीरज के धरणहार जे लक्ष्मणजी ते विधि कहे ब्रह्मारूप हैं उत्पत्तिकर्ता गोसाईंजी कहत कि हरिजनन के गण जो समूह तिनकी भवसागर की व तीनिउँ तापन की जो पीर ताको शीघ्रही हरिलेत भाव रामभक्ति के आचार्य हैं। एकतालिस वर्ण मच्छ दोहा है ४१ सतर कहे शीघ्र ही संकट ताके हरणहार हैं दुष्ट शत्रु तिनके हरण कहे नाश करिवे हेतु समर में धैर्यवान वल के धाम अरिदवन जे शत्रुहन श्रेष्ठ लक्ष्मणजी के अनुज ते महेश हैं कौन काम के अरि सो मकार है अहिवर दोहा है ४४ श्रीराम कैसे हैं शत्रु मित्र रहित सम कहे एकरस सब जीवमात्र पै शील धारण किहे हैं पुनः सुख के समुद्र हैं सर्वोपरि धाम है जिनको पुनः अज हैं जिनको कबहूं जन्म नहीं पुनः अद्वैत कहे एक आपही हैं दूसरा नहीं सबके आदि कारण हैं जिनके पद कमल नितही समतर हैं भाव सेवा करिवे में सदा सुगम हैं अभिराम कहे आनन्ददायक हैं व जिन को नाम स्मरण करिवे में नित समतर पद है भाव कुछ विषमता नहीं स्वाभाविक स्मरणमात्र

सो अभिराम आनन्दपद को देनहार है ॥ उन्तालिस वर्ण त्रिकल दोहा है ॥ ४५ ॥

दोहा

होनहार सहजान सब, बिभव बीच नहिं होत ।
गगन गिरह करिबो कबै, तुलसी पढ़त कपोत ४६
तुलसी होत सिखे नहीं, तन गुण दूषन धाम ।
भषनशिखिनिकवने कह्यो, प्रकटबिलोकहु काम ४७
गिरत अण्ड संपुट अरुण, जमत पक्ष अन्यास ।
अललसुवनउपदेशकेहि, जात सुउलटि अकाश ४८

जो कुछ होनहार होत सो सब सह कहे साथही जीव के है ऐसा जानना चाहिये ताते काहू भांति को विभव कहे ऐश्वर्य बीच में नहीं है सकत कौन भांति ।

यथा—कपोत कबूतर को गगन आकाश में गिरह करिबो भाव उड़त में कला खायबो कब पढ़त भाव वाके कुलको स्वाभाविक धर्म है तैसे सज्जनतारूप कुल में प्रकट होतही सत् वस्तु में मन लागत ।

यथा—ध्रुव प्रह्लाद जन्मतही भक्ति पर आरूढ भये ।

पुनः काकभुशुण्डि ।

यथा—"खेलहुँ खेल बालकन मीला । करहुँ सदा रघुनायक लीला ॥" वानर दोहा है ॥ ४६ ॥

तन जो देह सो गुणन को धाम व दूषणन को धाम भाव गुणी अवगुणी इत्यादि सिखे नहीं होत गोसाईंजी कहत कि प्रसिद्ध देखो शिखिनि मयूरी ताको काम को खायबो कौन सिखा-

वत जा समय मयूर नाचत पीछे मुख द्वारा काम पतित होत ताको मयूरी खात ताते गर्भ रहत यह प्रसिद्ध है॥ वानर दोहा है॥४७॥

अलल नाम पक्षी सदा आकाशही में उड़त रहत कहूँ बैठत नहीं जासमय अण्डदेत जव नीचे को चलो आधे ही दूरि में अण्ड फूटि ताके संपुट लालरङ्ग के भूमि में गिरे ना वंचा के अनायास विना सेवा कीन्हें सहजही पंख जामि आये उलटि पुनः आकाश को उड़िजात ऐसा जो अलल पक्षी को सुवन बच्चा ताको कौन उपदेश करत कि तू ऊपर को उड़िजा॥ मच्छ दोहा है॥ ४८॥

दोहा

विविधचित्र जलपात्र बिच, अधिक न्यूनसममूर।
कव कौने तुलसी रचे, केहिविधि पक्ष मयूर४९
काकसुता ग्रहना करे, यह अचरजबड़ वाय।
तुलसी केहि उपदेश सुनि,जनितपिताघर जाय५०
सुपथ कुपथ लीन्हे जनित, स्वस्वभाव अनुसार।
तुलसी सिखवतनाहिं शिशु, मूषक हनन मजार ५१

जलपात्र सरिता तड़ागादिकन में पवन प्रसंग करि सूर जो सूर्य तिनकी प्रतिबिम्ब की चित्रसारी जल बीच में कहीं अधिक कहीं न्यून कहे कम कहीं सम कहे बराबरि इत्यादि विविधभांति की देखात तिनको कौन बनावत गोसाईंजी कहत ताही भांति मयूरन के पक्षन में अनेक रङ्ग के चित्र हैं तिनको केहि विधि ते कौन ने बनायो है॥ वानर दोहा है॥ ४९॥

काकसुता काकपाखी अर्थात् कैली ग्रहण करे आपने घरमें

अण्ड नहीं सेवत जहाँ काक के अण्ड देखत उन्हें गिराय आपने अण्डे धरिदेत आपने जानि काक सेवाकरि तैयार कीन्हे जब उड़े थैली-के पास है रह्यो गोसाईंजी कहत बड़ो आश्चर्य है वाय कहे वाहि बचा को कौन ने उपदेश दियो जाको सुनि जनित जासे उत्पन्न ताही पिता के घर को गयो ॥ त्रिकल दोहा है ॥ ५० ॥

स्वनाम अपने कुलके स्वभाव के अनुसार सुपथ सुमार्गी कुपथ कुमार्गी रीति लीन्हे जनित नाम उत्पन्न होत गोसाईंजी कहत कि मूषक मूसा ताके हनन मारने को आपने शिशु पुत्र को मंजार बिलाई नहीं सिखावत वह कुल स्वभाव ते सहजही मूसा मारत ॥ त्रिकल दोहा है ॥ ५१ ॥

दोहा

तुलसी जानत है सकल, चेतन मिलत अचेत।
क्रीट जात उड़ि तिय निकट, बिनहिं पढ़े रतिदेत ५२
होनहार सब आपते, बृथा शोचकर जौन।
कञ्ज भृङ्ग तुलसी मृगन, कहहु अमेठत कौन ५३
सुख चाहत सुख में वसत, है सुखरूप विशाल।
संतत जाविधि मानसर, कबहुँ न तजत मराल५४

गोसाईंजी कहत कि सकल जीव आपने कुलकी रीति जानते हैं काहेते जे चेतन अचेत के पास जात सोऊ भाव जानि जात आपही मिलत कौन भांति यथा कीट पतङ्गादि जे चेतन भाव जानिकै स्वजाति की तिया के पास को उड़िके जात वह अजान है परन्तु कामवेग ते वासना उठि आयत बिना पढ़े बिना रतिकला जानेही रतिदान देत ॥ त्रिकल दोहा है ॥ ५२ ॥

जो कुछ होनहार है सो आपही होत जौन कोऊ शोच करत सो वृथा है कौन भांति यथा कञ्ज कमल दिन में फूले राति में संपुटित कौन करत अरु मृगन के शृङ्ग ऐंठेही जामत गोसाईंजी कहत कि उनको कौन अमेठत ताते जो होनहार होत सो आपही होत इत्यादि वैशेषिक शास्त्र को मत है ॥ पयोधर दोहा है ॥ ५३ ॥

सुख को रूप लघु नहीं है जो कोऊ न देखै काहे ते सुखको रूप विशाल नाम बड़ा है सब कोऊ देखत भाव सुमारग करिकै सुख होत सो सब जानत ताते जे सुख को चाहत ते सुख में कहे सुखदस्थान में बसत अर्थात् कर्म ज्ञान उपासनादि सुख के स्थान हैं तिनमें सदा बसत कबहूं तजत नहीं कौन विधि जा विधि मराल जो हंस ते सन्तत कहे सदा मानसरही में वास करत कबहूं नहीं तजत ॥ त्रिकल दोहा है ॥ ५४ ॥

दोहा

नीतिप्रीतियशअयशगति, सबकह शुभ पहिंचान।
बस्ती हस्ती हस्तिनी, देत न पति रतिदान ५५
तुलसी अपने दुःख ते, को कहु रहत अंजान।
कीश कुन्त अंकुर बनहिं, उपजत करत निदान ५६

नीति अनीति अर्थात् उचित करावना अनुचित रोकना।
यथा—श्वान चोर देखि शब्द करत प्रीति वैर।
यथा—"मुनि जन निकट विहँग मृग जाहीं। बाधक बधिक विलोकि पराहीं॥"
यथा—गुणनकी प्रशंसा सो यशहै अवगुणन की निन्दा सो अयश।
यथा—श्वान बावर भये पर भी स्वामी को नहीं काटत गति कहे पहुँच।

यथा—पशुभी पालनहार सों भूख जनावत शुभाशुभ आपनो भल अनभल इत्यादि सब पहिंचानत अथवा नीति प्रीति यश अयश की गति शुभ कहे नीकी भांति सब जानत देखो लाज वश ते बस्तिन विषे हस्तिनी हस्ती पतिको रतिदान नहीं देत इत्यादि भलाई बुराई सब जानत परन्तु काल कर्म स्वभाव वश जो होनहार होत सोई करत विचार नहीं राखत॥ बल दोहा है ॥ ५५ ॥

जो कोऊ कहै कि विना जाने बुरे काम करत ताहेत गोसाईंजी कहत कि आपने दुःखद कहे दुःख देनहार ते कहौ कौन अजान रहत भाव नर पशु पक्षी आदि सब जानत देखो वन में कीश जो वानर जहां रहते हैं तहां कुन्त गड़िजाने की वस्तु कांटादि तिनको उपजतही निदान कहे नाश करिदेते हैं कि हमारे गड़ैंगे ॥ त्रिकल दोहा है ॥ ५६ ॥

दोहा

यथा धरणि सब बीजमय, नखत निवास अकाश।
तथा राम सब धर्ममय, जानत तुलसीदास ५७
पुहुमी पानी पावकहु, पवनहुँ माहँ समात।
ताकहँ जानतराम अपि, बिनुगुरुकिमिलखिजात५८

सब प्रकार के बीज भूमि में आपही जामत सो ।

यथा—धरणी सब बीजमय है ।

यथा—आकाश में जहां देखो तहां नक्षत्रही देखात ताही भांति श्रीरघुनाथजी सब धर्ममय हैं ताको गोसाईंजी कहत कि भगवत्‌दास जानत काहेते गुण अवगुण को हाल सेवक नीकी भांति जानत तहां वीरता जो गुण है ताके अन्तर धर्मादि अनेक दिव्यगुण हैं सो पञ्च प्रकार वीरता परिपूर्ण श्रीरघुवीर में है ।

यथा–भगवद्गुणदर्पणे

"त्यागवीरो दयावीरो विद्यावीरो विचक्षणः।
पराक्रममहावीरो धर्मवीरः सदा स्वतः॥
पञ्च वीराः समाख्याता राम एव स पञ्चधा।
रघुवीर इति ख्यातः सर्ववीरोपलक्षणः॥"

इति मिश्रितऐश्वर्यार्थः

यथा—वेद शास्त्रादिकन में यावत् धर्म है तिनके आधार श्री-रघुनाथजी हैं।

यथा–पाद्मे

"सर्वेषां वेदसाराणां रहस्यान्ते प्रकाशितम्।
एको देवो रामचन्द्रो व्रतमन्यन्न तत्समम्॥"

वानर दोहा है॥ ५७॥

पुहुमी भूमि पानी पावक अग्नि पवन इत्यादि सब जड़ हैं ताते परस्पर विरोध है तिन, एक में मिलाइ तामें आप समात तब चैतन्य होत ता अन्तरात्मा ताको जानत विचार करि जानि तौं अपि कहे निश्चय करिकै श्रीरामही हैं।

यथा–महेश्वरतन्त्रे

"इति रामो विग्रहवान् स्वयं ब्रह्म सनातनः।
आत्मारामश्चिदानन्दो ,भक्तानुग्रहकारकः॥"

परन्तु विना गुरु के उपदेश कैसे देखि परै॥ वानर दोहा है॥५८॥

दोहा

अगुण ब्रह्म तुलसी सोई, सगुण विलोकत सोइ।
दुख सुख नानाभांतिको, तेहि निरोध ते होइ ५६
शूर यथा गण जीतिअरि, पलटि आव चलिगेह।

तिमि गतिजानहिं रामकी, तुलसी सन्त सनेह ६०
परमातम पद राम पुनि, तीजे सन्त सुजान।
जे जगमहँ बिचरहिं धरे, देहबिगत अभिमान ६१

तीनों गुणन ते रहित निर्गुण ब्रह्म तेऊ सोई रघुनाथजी हैं। पुनः गोसाईजी कहत कि जब भक्तवत्सलतादि गुण धारण करि भक्तन के हेत प्रकट विलोकत कहे देखि परत जो सगुण वही सोई है। यथा—खम्भ ते नृसिंह प्रकट भये ताके विरोध कहे विमुख भये शुभाशुभ कर्मवश ते अनेक प्रकार को दुःख सुख होत और जो प्रभु के सम्मुख हैं ताको न दुःख है न सुख है॥ पयोधर दोहा है ५९ अरि जो शत्रु तिनके गणसमूह तिनके जीतवे हेत मित्रन सहित स्वसैन्य सजि निःशङ्क ह्वै उत्साहसहित युद्ध करि शत्रुन को जीति जय सहित आपनो देश पाय यथा शूरवीर पलटि घर को चला आवै गोसाईजी कहत ताही भांति सन्त सनेह रूप मित्रनकी सैन्य ज्ञानादि स्वसैन्य साजि मोहादिशत्रुन को जीति हरिसनेहरूप जय पाय स्वदेश श्रीरामकी गति जानहिं॥ बल दोहा है॥ ६०॥

परमातमपद अर्थात् अन्तरात्मा सर्वव्यापी निर्गुण रूप भाव ज्ञान मार्ग दूसरा दिव्यगुणन को धाम दशरथनन्दन श्रीरामरूप भाव भक्तिमार्ग तीसरे सन्त जे ज्ञानभक्ति में सुजान जे अभिमान त्यागे नरदेह धारण किहे मुक्तरूप आनन्दते जग में विचरत हैं अर्थात् जे ज्ञान भक्ति दोऊ मार्ग देखाइ सकत ये तीनिहूं भवतारक हैं इनकी शरण होना चाहिये॥ वानर दोहा है॥ ६१॥

दोहा

चौथी संज्ञा जीवकी, सदा रहत रत काम।

ब्राह्मण से तनरामपद, निशिवासर वशवाम ६२
सुख पाये हर्षत हँसत, खीझत लहे विषाद।
प्रकटत दुरत निरय परत, केवल रत विष स्वाद ६३
नानाविधि की कल्पना, नानाविधि को शोग।
सूक्ष्म अरु अस्थूल तन, कबहुँ तजत नहिं रोग ६४

चौथी संज्ञा जीवकी जो हरिविमुख विषयी जे आपनो शुद्ध स्वरूप विसारि सदा कामही के वश हैं काहेते सब वस्तु को अधिकारी साधनको धाम मुक्तिको द्वारा चारिवर्णं में उत्तम ब्राह्मण ऐसी देह पाय जो रामही पद है भाव जाको पूजि और भी मुक्ति पावत सो ब्राह्मण हैकै मुक्ति की मार्ग त्यागि दिनरात्रि वाम कहे स्त्री के वश जाको नामही वाम है भाव निरयमार्ग लखावनहारी है॥ मदकल दोहा है॥ ६२॥

अब जीवकी चेष्टा देखावत कि जब सुख पाये तब हर्षत कहे खुशी होत हँसत जब विषाद कहे दुःख लहे दुःख पाये तब खीझत रोदन करत ताते सुखहेत विषयरूपी विष के स्वाद में रत रहत वाको फल यह कि लोक में प्रकटत कहे जन्मत।

पुनः दुरत कहे मरत तब निरय कहे नरक में परत अनेक भांति की सांसति सहत॥ मच्छ दोहा है॥ ६३॥

पाच तत्त्व चारि अन्तःकरण नवतत्त्व को स्थूलशरीर है और दशेन्द्रिय पञ्च प्राण मन बुद्धि इन सत्रह तत्त्वन को सूक्ष्मशरीर है ये दोऊ शरीर रोग को नहीं तजत भाव सदा रोगी रहत कौन भांति स्थूल तन में ज्वरादि अनेक रोगन करिकै शोग कहे दुःख बना रहत है।

पुनः सूक्ष्मतन में अनेक भांति की कल्पना भाव काम क्रोध

लोभादि चाहकी तर्कणा ताको कबहूं नहीं तजत भाव सदा मानसी रोग बना रहत।

यथा—"काम वात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा॥" इत्यादि मदकल दोहा है॥ ६४॥

दोहा

जैसे कुष्ठी को सदा, गलित रहत दोउ देह।
बिन्दहुकी गति तैसिये, अन्तरहू गति येह ६५
त्रिधा देहगति एक विधि, कबहूं नागति आन।
बिबिध कष्ट पावत सदा, निरखहिं सन्त सुजान ६६

जैसे कुष्ठ रोगी की स्थूल सूक्ष्म दोऊ देह कुष्ठरोग करिकै गलित रहत कौन भांति कि बिन्दु कहे बीज की गति अर्थात् कुष्ठी को पुत्र भी कुष्ठी होत यह स्थूलको भाव है।

पुनः तैसेही भांति अन्तरहू गति यह कही ऐसेही जानिये पूर्वजन्म पापन करि कुष्ठ होत जबतक भोग नहीं है जात तवतक प्रति जन्म बनारहत यह लोक में प्रसिद्ध है।

उक्तं च मिताक्षरायाम्

"नोऽभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृत कर्म शुभाशुभम्॥"

मराल दोहा है॥ ६५॥

त्रिधा कहे तीनि जन्म देहकी गति एकही भांति है अर्थात् पूर्वजन्म में जैसा कर्म करत रहा तैसेही स्वभाव पूर्व कर्मन को फल या जन्म में है अबको स्वभाव कर्मन को फल आगे प्राप्त होइगो ताते आन भांति की गति कबहूं न होइगी।

भाव

पापी ते पुण्य सुकृती ते पाप न होई अथवा स्थूल सूक्ष्म कारणादि देह त्रिधा कहे तीनि भांति तिनकी गति एकही भांति की है काहू देहकी गति आनभांति की नहीं काहे ते कारण देह आकारहीन है औ सूक्ष्म देह इन्द्रिय प्राण मन बुद्ध्यादि सत्रह तत्त्वको है स्थूल याके आधीन है सो सूक्ष्मही वासनायुत कर्म करत ताको फल विविधभांति को दुःख सदा पावत है सो तमाशा सुजान सन्त देखते हैं ताते शुभाशुभ को करता भोक्ता सूक्ष्मही शरीर है।

यथा—भागवते

"अनेन पुरुषो देहानुपादत्ते विमुञ्चति।
हर्षं शोकं भयं दुःखं सुखं चानेन विन्दति॥
यथा तृणजलौकेयं न मयात्यपयाति च।
न त्यजेन्म्रियमाणोऽपि प्राग्देहाभिमतिं जनः॥ ६६॥"

दोहा

रामहिं जाने सन्तवर, सन्तहि राम प्रमान।
सन्तन केवल राम प्रभु, रामहिं सन्त न आन ६७
ताते सन्त दयाल वर, देहि राम धन रीति।
तुलसीयह जियजानिकै, करियविहठिअतिप्रीति ६८
तुलसी सन्त सुअम्बतरु, फूलि फरहिं परहेत।
इतते वे पाहन हनैं, उतते वे फल देत ६९

शुभाशुभ कर्मको फल दुःख सुख देखि श्रेष्ठ सन्तजन सब त्यागि श्रीरामही को जानैं ताते श्रीरामहू सन्तनहीं को प्रमाण नाम सांचे आपने करि मानै ताते सन्तन के केवल एक श्रीरामही

स्वामी हैं दूसरा नहीं है याहीते श्रीरामहू के सन्तही प्यारे हैं दूसरा नहीं है।

यथा—भागवते

"अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विजः।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः॥"

मदकल दोहा है॥६७॥

श्रीराम दयासिंधु हैं तेई हैं धन जिनके ताते सन्त दयालु हैं याहीते श्रेष्ठ हैं सो जापर दया करत ताको रामधन कहे श्रीरामभक्ति रूप धन देत यह उनकी रीति है व रामधर्म होने की रीति गोसाईंजी कहत कि ऐसा जानिकै सन्तनते अत्यन्त प्रीति विशेष हाडि करिकै करिये भाव जो सन्त अनादर करैं तबहूं उनसों प्रीतिही करिये कबहूं कृपा करिबैकरैंगे॥ बल दोहा है॥ ६८॥

गोसाईंजी कहत कि सन्त जन आंबके वृक्षसम हैं जे परारे हित के हेत फूलिकै फलत भाव आनन्दसहित पराहित करत कौन भाति कि इतते नीचे ते वे लोग पाहन पत्थर मारत उतते वृक्ष फल डारत भाव नीचजन सन्तन को कुवचनरूप पत्थर मारत सन्तजन सब फलदायक भक्ति देत॥ पयोधर दोहा है॥ ६९॥

दोहा

दुख सुख दोनों एक सम, सन्तन के मन माहिं।
मेरु उदधिगत मुकुर जिमि, भार भीजिबो नाहिं ७०
तुलसी राम सुजान को, राम जनावै सोइ।
रामहिं जानै रामजन, आन कबहुँ नहिं होइ७१
सो गुरु राम सुजान सम, नहीं विषमता लेश।
ताकी कृपा कटाक्ष ते, रहे न कठिन कलेश ७२

सन्तनके मनमें दुःख सुख दोऊ एक सम हैं भाव न दुःख में दुखी न सुख में सुखी काहेते उनको मन श्रीराम प्रेम में मग्न दुःख सुख कौन को व्यापै कौन भांति।

यथा—मुकुर कहे दर्पण तामें गत कहे प्राप्त है बिम्बरूप मेरु कहे पर्वत ताको कुछ भार नहीं।

पुनः उदधि जो समुद्र सोऊ मुकुर में देखात परन्तु वह जल करिकै भीजत नहीं ताही भांति सन्तन को दुःख सुख और के देखनमात्र है उनको कुछ नहीं॥ वल दोहा है॥ ७०॥

गोसाईंजी कहत कि श्रीराम सुजान हैं याते इनको कोऊ जानि नहीं सकत न श्रीरामको जानिबे में सुजान को है जाको श्री-रघुनाथजी जनावैं अरु जो श्रीराम को जानै सोई रामजन कहे श्रीरामदास होइ आन कहे और को जन न होइ व जे श्रीरामको जानत तिनको सेवाय और श्रीरामदास नहीं है सकत॥ चौंतिस वर्ण मराल दोहा है॥ ७१॥

सो गुरु भी श्रीराम सुजान की सम हैं यामें विषमतालेश नहीं भाव तनको भेद नहीं है काहेते ताकी तिन गुरु की कृपाकटाक्ष ते कठिन क्लेश जो जन्म मरणादि भवरोग सो नहीं रहे ताते सुखी भये॥ मदकल दोहा है॥ ७२॥

दोहा

गुरु कहतव समुझै सुनै, निज करतवकर भोग।
कहतव गुरु करतव करै, मिटै सकल भवरोग ७३
शरणागत तेहि राम के, जिन्ह दिय धी सियरूप।
जापती घर उदय भय, नाशै भ्रम तम कूप ७४

गुरु कह तव गुरुको उपदेश मन लगायकै सुनै ताको समुझै

विचार करि ग्रहण करै अरु निज कहे आपने करतव शुभाशुभ कर्मन को फल ताको जो भोग है दुःख सुख ताको उपाय कहत कि गुरुको कह तब जो गुरु को उपदेश ताको करतब जो भगवत् आराधन सो करै तौ सकल प्रकारको भवशोग जो दुःख सो सब मिटिजाय आनन्दरूप है जाय ॥ शार्दूल दोहा है ॥ ७३ ॥

गुरु के उपदेश ते काकरी तेहि श्रीरघुनाथजी की शरणागत होउ जाने धी जो है बुद्धि ताको सियरूप करिदिये भाव बुद्धिको भक्तिरूप करि दिये कैसी है भक्ति जो श्रीरघुनाथजी की प्रिया पत्नी है जिन भक्ति महारानी के उदय भये ते हृदयरूप घर में भ्रम को तम अन्धकारकूप अर्थात् महामोह ताको नाश होत विवेकस्वरूप प्रकाश होत तब हरिरूप देखात ॥ बल दोहा है ॥ ७४ ॥

दोहा

जा पद पाये पाइये, आनँद पद उपदेश।
संशय मनन नशाय सब, पावै पुनि न कलेश ७५
मेधा सीता सम समुझ, गुरु बिबेक सम राम।
तुलसी सियसम सो सदा, भयो बिगत मगबाम ७६
आदि मध्य अवसानगति, तुलसी एक समान।
तेई सन्त स्वरूप शुभ, जे अनीत गत आन ७७

जिन हरि के पदकमल पाये ते आनन्द पद मुक्तिधाम प्राप्त होवे को उपदेश होत व गुरु के उपदेश ते श्रीरामपद प्राप्त होत जाके पाये ते आनन्दपद पाइये भाव भगवत् धाम की प्राप्ति होत ताले शमन जो यमराज तिनकी सासति आदि सब भांति का संशय सो नशाय जात।

पुनः फिरि काहू भांति को क्लेश नहीं पावत भाव जाके नाम स्मरणमात्र ते सब क्लेश नाश होत।

यथा—ब्रह्मवैवर्ते

आधयो व्याधयो यस्य स्मरणान्नामकीर्तनात्।
शीघ्रं वै नाशमायान्ति तं वन्दे जानकी पतिम् ॥ ७५ ॥

मेधा बुद्धिही को नाम है तामें यह भेद है कि निश्चयात्मक बुद्धि है धारणात्मक मेधा है सो मेधा कहे भक्तिकी धारणा भाव अचल भक्तिमय जो बुद्धि है सोई सीताराम सप्रभु अरु विवेकमय विवेक देनहार जो गुरु है तिनको राम सम जानु गोसाईंजी कहत कि सो भक्त जन सियसम भाव भक्तिही की समान है कौन जो मग वाम कहे हरि विमुख मार्ग ताते विगत कहे त्यागि दिये भाव जे विषय ते विमुख हरि सनेह में मग्न ऐसे जे भक्त तिनते अरु भक्तिते अन्तर नहीं।

यथा—*"भक्ति भक्त भगवन्त गुरु, चतुर्नाम वपु एक॥"* वल दोहा है ॥ ७६ ॥

कैसे सन्त जे आदि बालअवस्था में क्रीड़ा में आसक्त न भये युवावस्था मद में कामासक्त न भये अवसान वृद्धावस्था में चिन्ता में न परे तीनों अवस्था में एक समान गति है भाव एकरस भगवत् में सनेह वनारहत गोसाईंजी कहत कि तेई सन्तन के स्वरूप शुभ कहे मङ्गल मूर्ति है भाव जिनके दर्शन ते मङ्गल होत कैसे सन्त जे *श्रीराम सनेहवर्द्धक मार्ग छांड़ि आन* कहे और भगवत् विरोधी अनीति ते गन कहे छूटिगये हैं जे ऐसे सन्त मङ्गलमूर्ति हैं ॥ मदकल दोहा है ॥ ७७ ॥

दोहा

येई शुद्ध उपासना, परा भक्ति की रीति।

तुलसी यहि मग पगुधरे, रहै रामपद प्रीति ७८
तुलसी बिन गुरुदेव के, किमि जानै कछु कोय।
जहँ ते जो आयो सो है, जाय जहां है सोय ७९

जो पूर्व कह आये हैं येई कहे सोई शुद्ध उपासना और परा-भक्ति की रीति है गोसाईजी कहत कि ये जन्मपर्यन्त अनीति तजि भगवत् सनेह करना यहि मग विषे पगधरे श्रीरामपद कमलन में प्रीति सदा बनी रहत प्रयोजन भगवत् सनेह अनुकूल को ग्रहण प्रतिकूल को त्याग याते गाफिल न रहै ॥ मराल दोहा है ॥ ७८ ॥

जहां ते जो आयो सोई है भाव दूसरा नहीं ह्वैगयो अरु जहां जाय तहाँ सोई है।

यथा—मेघन द्वारा समुद्रते आकाश ते बरस्यो सोई है जब भूमिपै परो जहा जहां गयो तहा सोई जल है जो भूमिमें सोखि पाताल गयो तहाँ सोई है जो नदी आदिकन है तहां सोई है तामें भूम्यादिसगदोष ते मलिनता तुच्छ तड़ागनमें थँभि अल्पता देखात परन्तु है नहीं क्योंकि जब समूह जल वर्षा ताको सत्संग पाय सरितादिकन में परि।

पुन॰ सिन्धु में गयो फिरि वही है ताही भांति पूरण परमानन्द रूप प्रकृति आदि कुसंग पाय अल्पज्ञ देखात जब सत्सग में परो ज्ञानभक्ति आदि सरितन में परि।

पुनः परमानन्दरूप को प्राप्त भयो इत्यादि गोसाईजी कहत कि विना श्रीगुरुदेव की कृपा कोऊ कैसे जानि पावै ॥ नर दोहा है॥ ७९ ॥

दोहा

अपगत खे सोई अवनि, सो पुनि प्रकट पताल।
कहा जन्म अपिमरणअपि, समुझहिसुमतिरसाल८०

संग दोष ते भेद अस, मधु मदिरा मकरन्द।
गुरु गमते देखहिं प्रकट, पूरण परमानन्द ८१

रसाल जो है जल सो ले कहे आकाशते अपगत कहे अव्याप्त अर्थात् वर्षत में आकाश ते छूटो सोई जल है।

पुनः अवनि भूमि पै आयो तवहूं सोई है।

पुनः भूमि में गुप्तभये जव उपाय करि वा स्वाभाविक पाताल ते प्रकट भयो तहौं सोई जल है अर्थात् नदिन में स्वाभाविक वहि गयो वा पहार भूम्यादि सों तनते प्रकट है नदिन में है समुद्र में गयो सो भी पाताल ही ते सम्बन्ध है अरु जो भूमि में सोखि गयो सो जब कूपादि खोदौ तहां भी सोई जल प्रकट होत हैं ताही भांति पूरण परमानन्द पद आकाश ते प्रकृति भूमि पै आयो तवहूं सोई है प्रकृतिसंग दोपते मलिनता अल्पज्ञता देखनमात्र है औ है नहीं काहेते पञ्चतत्त्वमय देहरूप भूमि में गुप्त सूक्ष्मभूत पाताल में जलरूप अन्तरात्मा व्याप्त है सत्संग गुरु कृपा करि ज्ञान भक्ति आदि कूप खने ते अन्तरात्मा रूप निर्मल जल।

पुनः प्राप्त होत ताको सुन्दरि है मति जिन के ऐसे जे सुमति ते विचारिकै देखो अपि कहे निश्चय करिकै कहां जन्म है और निश्चय करिकै कहां मरण है काहेते जब सृष्टि उत्पत्ति भई तब जैसा आवा।

पुनः लोकनमें जो देहमें चैतन्य है तब वैसेही है नाहीं तौ जब महाप्रलय भई तब वाही पदको वैसही प्राप्त भयो तौ बीचकी बात देखनमात्र है यथार्थ नहीं है स्वप्नवत् है॥ मच्छ दोहा है॥८०॥

तामें संगदोष ते ऐसा भेद भयो।

यथा—मकरन्द कहे फूलनको वा ईखादि ओषधिन को रस सो

मक्खिन की संगति पाय मधु भयो ईखादि को रस अग्नि संग ते मिठाई भई सो जल में मिलि कारण पाय मदिरा है गयो सो भी जब समूह जल में परिजाय।

पुनः सोई पावन जल है जाय ताही भांति प्रकृति आदि आठ आवरण में गुप्त आत्मतत्त्व सो गुरुगम कहे गुरु के उपदेशते चैतन्य भये देखवेकी गमि भई तब पूरण परमानन्द रूप आत्मतत्त्व प्रकट देखते हैं।

यथा—वाल्मीक्यादि प्रसिद्ध हैं॥ बल दोहा है॥ ८१॥

दोहा

डाबर सागर कूप गत, भेद देखाई देत।
है एकै दूजो नहीं, द्वैत आन के हेत ८२
गुणगत नानाभांति तेहि, प्रकटत कालहि पाय।
जानजाय गुरुज्ञान ते, बिन जाने भरमाय ८३

डाबर खँदका अल्पताल सागर बड़ाताल कूप कुआं बावली इत्यादि में गत व्याप्त जो जल तामें भेद देखाई देत कहीं समल कहीं अमल इत्यादि द्वैतभेद आनके देखबे के हेतु है परन्तु जल सब एकही है दूसरा नहीं तैसेही प्रकृतिसंगते शुभाशुभ कर्मते भेद देखात अन्तरात्मा एकही है॥ मर्कट दोहा है॥ ८२॥

गुणगत कहे प्राप्त भये अर्थात् सतोगुणी रजोगुणी तमोगुणी इत्यादि अनेक भांति के भेद देखात ताही में काल पायके।

पुनः अमल आत्मा प्रकट होत सो गुरुकृपा उपदेश ज्ञान करिकै जानाजात है अरु बिना जाने भ्रमते भेद देखात है॥ पयोधर दोहा है॥ ८३॥

दोहा

तुलसी तरु फूलत फलत, जाविधि कालहि पाय।
तैसेही गुण दोष ते, प्रकटत समय सुभाय ८४
दोषहु गुणकी रीति यह, जानु अनल गति देखि।
तुलसी जानत सो सदा, जेहि विवेकसुविशेखि८५
गुरुते आवत ज्ञान उर, नाशत सकल विकार।
यथा निलयगति दीपकै, मिटतसकलअँधिआर८६

गोसाईंजी कहत कि जा भाँति समय काल पायकै तरु जे हैं वृक्ष ते फूलत फलत तैसेही शुभसमय पाय दोषहू ते गुण प्रकट होत जा भांति मालादि अशुद्धसंग्रह स्थान धूरादि में कुत्सित दोषते कोऊ समीप नहीं जात सोई खेतन में परे अन्नसमूह होत यह गुण प्रकटत तैसे कामादि दोषनते मूंदी आत्मा सुसंग काल पाय शुद्ध रूप प्रकटत है ॥ पयोधर दोहा है ॥ ८४ ॥

दोषहू विषे गुणकी रीति यहि भांति है कि अनल जो अग्नि ताकी गति देखिकै जानि लेउ कि छुये अङ्ग जरत ग्राम में लागै सर्वस जरिजाय इति दोष तामें गुण।

यथा—अनाज को पकावना दीपादि प्रकाश शीत का रक्षक गोसाईंजी कहत कि जिनके सुन्दर विवेक विशेष करिकै है ते गुण दोष की गति जानते हैं अज्ञानी कैसे जानै॥ वल दोहा है ॥ ८५॥

गुरुकृपा उपदेशते उर अन्तर में ज्ञान कहे सत् असत् को विवेक आवत तब हृदय में प्रकाश होत अरु अविद्या को विकार सकल भांति को महामोहादि अन्धकार सो सब नाश होत यथा निलय जो मन्दिर तामें दीपकी गति दीप धरे पर घरको अँधियार

मिटत सब वस्तु देखात तैसे हृदयरूप घरमें ज्ञानरूप दीपक के प्रकाश ते आत्मतत्त्व देखात है ॥ त्रिकाल दोहा है ॥ ८६ ॥

दोहा

यद्यपि अवनि अनेक सुख, तोय तामरस ताल।
संतत तुलसी मानसर, तदपि न तजहिं मराल॥८७
तुलसी तोरत तीर तरु, मानस हंस बिडार।
बिगत नलिन अलि मलिन जल, सुरसरिहू बढ़िआर॥८८

अब सत्संग स्थान को सुखद देखावत यद्यपि अवनि कहे भूमिपै अनेकन सुख हैं कौन ताल है तिनमें तोय कहे जल भरा तिनमें तामरस कहे कमल फूले हैं भाव हंस के योग्य अनतहू है गोसाईंजी कहत कि तदपि मराल हंस संतत कहे हमेशह मानसर ही में वास करत कबहूं तजत नहीं कि औरहु तालको जायँ यामें विशेषता यह कि एकान्तस्थान मुक्ता भोजन कमलनपर आसन हंस ही सबसंगी तैसे हरिदासन को अयोध्यादि हैं महाप्रसाद भोजन पावनस्थान सन्तन को संग यह विशेषता है ॥ त्रिकल दोहा है ॥ ८७ ॥

भगवत् स्थानन में वास करे पर जो विघ्न होइ तबहूं न तजिये कैसे।

यथा—गोसाईंजी कहत कि मानसर तीर शाखामृगादि तीर के तरु वृक्ष तोरत शब्द करि हंसन को बिडारत कहे उड़ावत परन्तु कहीं जात नहीं घूमिकै।

पुनः मानसर ही में बसत ताही भांति अलि जो भ्रमर तिनको नलिन कमल विना जो गङ्गाजी तिन्हूं को बढ़िआर कहे श्रेष्ठ पावन अमल जल सोऊ मलिन जल सम है भाव भँवरन को

तौ कमलकी चाहसों नहीं तौ अमल भी जल समल देखात भाव वाके लग नहीं जात तैसेही इष्ट सनेह वर्धक सत्संग विना पावन भी थल अपावन लागत।

यथा—पद्मपुराणे

"स्थानं भयस्थानमरामकीर्ति रामेति नामामृतशून्यमास्यम्।
सर्पालयं प्रेतगृहं गृहं तद्यत्रार्च्यते नैव महेन्द्रपूजा॥"

कच्छ दोहा है॥ ८८॥

दोहा

जो जल जीवन जगतको, परशत पावन जौन।
तुलसी सो नीचे ढरत, ताहि नेवारत कौन ८९
जो करता है करम को, सो भोगत नहिं आन।
बवनहार लुनि है सोई, देनी लहै निदान ९०
रावण रावण को हन्यो, दोष रामकह नाहिं।
निजहितअनहितदेखुकिन, तुलसी आपहिमाहिं ९१

जो जल जगको जीवन कहे जियावनहार है।

पुनः जाके परशत कहे छुवतही सब पावन होत ऐसा उत्तम जल है जौन सोई जल नीचेको ढरत कहे बहत सो गोसाईंजी कहत कि ता जलको कौन नेवारत भाव को मनेकरै कि तुम उत्तम हौ नीचे को न बहौ तैसे परमानन्दरूप लोक को जियावनहार है जाके नाम लेत सब पावन होत सोई नीचे ढरत भाव प्रकृति आदि आवरण में परि स्वस्वरूप भूलि जीव कहावत ताको कौन कहै कि तुम आपनो नाम न धरावो॥ पयोधर दोहा है॥ ८९॥

शुभाशुभ कर्मन को जो करता है सोई दुःख सुख भोगत है ताकी बदि कोऊ आन नहीं भोगत कौन भांति।

यथा—खेतादि में अन्नादि बवनहारही लूनैगो ।

पुनः देनी कहे जो जौन देत ताहीको निदान कहे अन्त में लहत नाम पावत यह वेद विदित है ।

उक्तं च भागवते दशमस्कन्धे कंसवाक्यं देवकीवसुदेवौ प्रति ।

"मा शोच तम्महाभागौ स्वात्मजान् स्वकृतं भुजः ।
जन्तवो न सदैकत्र दैवाधीनाः सहासते ॥"

इति मराल दोहा है ॥ ६० ॥

रावण को कर्मही रावण को हन्यो मारयो काहेते जो हठि वैर न करतो तौ प्रभु कैसे मारते जो वैरमें युद्धकरि मारे तामें रघुनाथ जीको कौन दोष है सो गोसाईजी कहत कि निज कहे आपनो हित अनहित आपही माहिं आपने मनही में किन देखु काहेते भलाई करौ जासो सोई हित देखाय बुराई करौ जासो सोई अनहित देखात यह पशुपक्षी भी जानते हैं ॥ बल दोहा है ॥ ६१ ॥

दोहा

सुमिरुराम भजु रामपद, देखु राम सुनु राम ।
तुलसी समुझहु रामकह, अहनिशियहतवकाम ६२
रजअपअनलअनिलनभ, जड़ जानत सबकोइ ।
यह चैतन्य सदा समुझु, कारज रत दुख होइ ६३
निजकृत विलसतसोसदा, विन पाये उपदेश ।
गुरु पगपाय सुमग धरै, तुलसी हरै कलेश ६४

गोसाईजी आपने मनते कहत कि निशिदिन श्रीरामही को समुझौ तुम्हारे करने योग्य एक यही काम है कौन भांति कि सु-मिरु राम मन वचन करि श्रीरामनामको स्मरण करु पुनः भजु

रामपद मन कर्म वरिकै श्रीरामपद कमलनकी सेवा करु पुनः देखु रामनेत्रनकरि श्रीरामरूप की माधुरी अवलोकन करु पुनः सुनु राम कानन करि श्रीरामयश श्रवण करु इनके सिवाय दूसरा काम न करु ॥ कच्छ दोहा है ॥ ६२ ॥

रज भूमि अप जल अनल अग्नि अनिल पवन नभ आकाशादि पाचौ तत्त्व जड है यह सब कोऊ जानत काहेते ये सब तमोगुणते हैं तामें व्याप्त जीवात्मा सो सदा चैतन्य है ऐसा समुझु कि जो समुझाये समुझिजाय सोई चैतन्य है जो आपनो स्वरूप सँभारे रहै तौ कुछ दुःख सुख नहीं जब भूलिकै कारज करत भयो भाव शुभाशुभ कर्म में फँस्यो तबहीं दुःख सुख को भोगी भयो ॥ कच्छ दोहा है ॥ ६३ ॥

जा कर्मन में फँस्यो तब सोई जीवात्मा निज कृत्य कहे आपने शुभाशुभ कर्मन के फलन में सदा विलसत कहे भोग करत काहे ते विना गुरु के उपदेश भूला है सोई जब गुरुको उपदेश पाये तब सुमग कहे हरिशरण पथ पर पावधरै हरिशरण गहै ताको गोसाईंजी कहत कि आपने जन्म मरणादि सब क्लेश हरै कृतार्थ हैजाय ॥ वानर दोहा है ॥ ६४ ॥

दोहा

सलिलशुक्रशोणितसमुझु, पल अरु अस्थिसमेत।
वाल कुमार युवाजरा, है समुझु करु चेत ६५

सलिल जल सोई शुक्र कहे बीजरूप रात्रिसमय स्त्रीके शोणित कहे रक्त में मिल सात धातुमय पिण्डभयो तामें पल कहे मांस व रुधिर व त्वचा व वार ई चारि रुधिर ते भई।

पुनः अस्थि नसें मज्जा ई तीनि बीज ते भई याको समुझु।

यथा—अवधविलासे

चौ० "पञ्चतत्त्वकी है सब देहा। कीट पतङ्ग प्रमादिक जेहा॥
जीव प्रथम आवत जलमाहीं। पुनि जलते अनमाहिं समाहीं॥
जहँ जाको चाहिय अवतारा। सोइ अनाज नर करै अहारा॥
अन्नते रस रस शुक्र उपावा। तब वह जीव गर्भमहिं आवा॥
तीनिधातु वीरज ते होई। मज्जा अस्थि नसा सन सोई॥
तैसे रज भयो चारि प्रकारा। त्वचा मांस लोहू अरु बारा॥
धातु जो तीनि पिता की कहिये। चारि धातु माता की लहिये॥
ऐसे सप्त धातु ये होई। ताकी देह जानु सब कोई॥"

इत्यादि जब गर्भ ते प्रकट भयो कुछ दिन बाल रहो। पुनः कुछ काल कुमार रहो पुनः युवा भयो पुनः जरावस्था प्राप्त भई काल पाय मरो नरक स्वर्गादि भोगि पुनः जन्म भयो इत्यादि को समुझु दुःख सुख विचारि चेतकरु भाव भगवत् की शरणागति ग्रहण करु जामें जन्म मरण दुःख ते छूटौ॥ वानर दोहा है॥ ६५॥

दोहा

ऐसिहि गति अवसान की, तुलसी जानत हेत।
ताते यह गति जानि जिय, अविरलहरि चितचेत ६६
जानै रामस्वरूप जब, तब पावै पद सन्त।
जन्म मरण पदते रहित, सुषमाअमलअनन्त ६७

गर्भादि मरण पर्यन्त जो पूर्व कहि आये हैं अवसान की कहे अन्त समय की ऐसेही गति है भाव मरेपर पुनः जन्म होना इत्यादि हेत कहे कारण अर्थात् जबतक लोकवासना तबतक जन्म मरण ताको तुलसी जानत ताही ते आपनी भी गति याही भांति की जीव में जानिकै हरि श्रीरघुनाथजी तिनको अविरल कहे तैलवत् धार

प्रेमानुराग ते चित करिकै चेत कहे चिन्तवन करत हीं दिनौराति।

यथा—महारामायणे

"अन्ये विहाय सकलं सदसच्च कार्यं श्रीरामपङ्कजपदं सततं स्मरन्ति॥"
इति॥ वानर दोहा है॥ ९६॥

॥ जब निर्वासनिक कर्मकरि पाप नाश होइ ज्ञानकरि आपनो शुद्धस्वरूप जानै तब प्रेमाभक्ति होइ।

यथा—महारामायणे

"ये कल्पकोटि सततं जपहोमयोगैर्ध्यानैः समाधिभिरहोरतब्रह्मज्ञानात्।
ते देवि धन्यमनुजा हृदि वाह्यशुद्धा भक्तिस्तदा भवति तेष्वपि रामपादौ॥"

जब प्रेमाभक्ति होइ तब श्रीरघुनाथजी को स्वरूप जानै मात्र स्वरूप हृदय में प्राप्त होइ तब सन्तपद पावै कैसो सन्तपद जो जन्म मरण ते रहित दिव्य स्वरूप जामें अमल सुखमा कहे शोभा अनन्त है।

यथा—महारामायणे शिववाक्यम्

"अहं विधाता गरुडध्वजश्च रामस्य वाले समुपासकानाम्।
गुणाननन्तान् कथितुं न शक्ताः सर्वेषु भूतेष्वपि पावनास्ते॥"

बल दोहा है॥ ९७॥

दोहा

दुखदायक जाने भले, सुखदायक भजि राम।
अब हमको संसार को, सब विधि पूरणकाम ९८
आपुहि मदको पानकरि, आपुहि होत अचेत।
तुलसी विविध प्रकारको, दुख उतपति यहि हेत ९९
जासों करत विरोध हठि, कहु तुलसी को आन।
सो तैं सम नहिं आन तव, नाहक होत मलान १००

दुःखदायक लोक सुखादि असत् व सत् वासना ताको भली

प्रकार जाने भाव सुत वित्त नारि आदिकन में मन लगाय जानि लिये कि सब दुःखै है ताते हे मन ! सुखदेनहार श्रीरघुनाथजी को भजि अब हमको संसार को यावत् सुख है तेहिते मन वचन कर्मादि सब प्रकार ते पूरणकाम है हमको कछु न चाहिये ॥ पयोधर दोहा है ॥ ९८ ॥

जा भाँति चैतन्यनर आपनी खुशी ते मदको पानकरि तेहि नशाकरि आपही अचेत होत आपनी सुधि भूलि जात सब मर्याद-हीन चेष्टा करत।

यथा—वसन त्यागि मल मूत्र में लोटत हास्य रोदन गाय उन्मादादि अनेक दुःख होत ताही भाँति गोसाईंजी कहत कि चैतन्य आत्मा स्वइच्छित विषयरूप मद्यपान करि महामोहरूप नशा के वश यहि हेतुते विविध प्रकार के जो दुःख।

यथा—सयोग वियोग हिताहित पाप पुण्य जन्म मरण दुःख सुख स्वर्ग नरकादि अनेक उत्पन्न भये ॥ वानर दोहा है ॥ ९९ ॥

हे तुलसी ! जासों हठि करि भाव अकारण में कारण बाँधि वैर विरोध करत ताको कहु आन को आइ सो कहे कछु अरु तैं सम कहे एकही है तैं कुछ आन नहीं है ताते काहू सों नहक को मलान होत भाव विरोध काहू सों न करु सब में सम दृष्टि राखु ॥ पयोधर दोहा है ॥ १०० ॥

दोहा

चाहसि सुख जेहि मारि कै, सो तौ मारि न जाय।
कौन लाभ विषते बदलि, तैं तुलसी विषखाय १०१
कोह द्रोह अघमूल है, जानत को कहु नाहिं।
दया धर्म कारण समुझि, को दुख पावत ताहिं१०२

वनो बनायो है सदा, समुझ रहित नहिं शूल।
अरुण वरण केहि कामको, विना वासको फूल १०२

इति श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासविरचितायां सप्तशतिकाया-
मुपासनपराभक्तिनिर्देशोनाम द्वितीयस्सर्गः॥ २॥

लोभ क्रोध ईर्षा वश ते जेहिको मारिकै आपनो सुख चाहसि सो कैसे होइगो उहु तेरे मारे न मरिजाइगो यह मनोरथ वृथा है काहे ते जीवतौ कबहूं मरतही नहीं एक देह छांड़ि दूसरी में प्रवेश होइगो केवल अपराधही हासिल है ताते विपते वदलि विषखाना है अर्थात् जाको तू मारैगो वही तोको मारैगो यामें तो अधिक लाभ कौन है ताते सब जीवमात्र को दया करनो उचित है॥ मदकल दोहा है॥ १०१॥

काहू सों क्रोध वैर न करना चाहिये काहेते कोह द्रोह दोऊ अघ जो पाप ताकी मूल कहे जर हैं याही ते पापवृद्ध होत ताही ते दुःख होत यह कही को नहीं जानते सब जानत हैं ताही भाँति दया सों धर्मको कारण है भाव दया ते धर्मवृद्ध होत ताते सुख होत ऐसा समुझि जे दया धारण करत तिनमें को दुःख पावत भाव दयावान् कोऊ नहीं दुःख पावत॥ मदकल दोहा है॥१०२॥

वनो कहे जब ज्ञान उदय होय तब शुद्ध आपनो रूप सदा स्वाभाविक वनो है अरु वनायो कहे जब भगवत् में अनुरागमय भक्ति आवै तब श्रीरघुनाथजी को बनायो श्रीरामदास है सदा ध्रुव, प्रह्लाद, अम्बरीष, भुशुण्डि जिनको यश भगवत्यश को शृङ्गार है ताते समुझ करिकै रहित नहीं को शूल कहे दुःख है भाव जिनके आपने शुद्ध स्वरूप की समुझ नहीं हरिभक्ति की समुझ नहीं पशु की भाँति विषय भोग में परे हिंसारत तिनको जन्मादि रोगहानि वियोग दण्डादि मरण पर्यन्त अनेक शूल होत पाछे नरक में अनेक

सांसति होत तावे विना भगवत्सनेह लोक के सब सुख वृथा हैं कौन भाँति यथा अरुण कहे लाल वर्ण को वासरहित विना सुगन्ध को फूल देखने में सुन्दर कौने काम को ।

यथा—"काम से रूप प्रताप दिनेश से सोम से शील गनेश से माने ।
हरिचन्द्र से साँचे बड़े विधि से मघवा से महीप विषै सुखसाने ॥
शुक से मुनि शारद से बकता चिरजीवन लोमश से अधिकाने ।
ऐसे भये तौ कहा तुलसी जो पै राजिवलोचन राम न जाने ॥"

उक्तंच

"पठितसकलवेदः शास्त्रपारंगतो वा
यमनियमपरो वा धर्मशास्त्रार्थकृद्वा ॥
अटितसकलतीर्थव्राजको वा हुताग्नि-
र्नहि हृदि यदि रामः सर्वमेतद्वृथा स्यात् ॥"

कैसे हैं श्रीरघुनाथजी—

यथा—पद

"जय राम सनातन ब्रह्म परे । सत चेतन आनँदरूप हरे ॥
विधि जान न शंकर ध्यान धरे । शुक शारद नारद नाम रटे ॥
निगमागम गावत नेति करे । स्वइ रोवत सूपहि भूप धरे १
नहिं पावत योगि समाधि करे । मुनि ध्यावतही नहिं नेम टरे ॥
गुन गावत व्यास पुराननरे । तिनको जननी हँसि गोद भरे २
वयबालभजैं सनकादिकरे । यश आदिकवी शत कोटिकरे ॥
वरकाग अजातरिजा वलरे । स्वइ लोटत आँगन भूतलरे ३
ऋषिनारि तरी छुइ जा पगरे । परसे बन दण्डक होत हरे ॥
बलजाभय भक्त मही विचरे । धरु वैजसुनाथ हिये विचरे १०३

इति श्रीरसिकलताश्रितकल्पद्रुमसियवल्लभपदशरणवैजनाथ-
विरचितायां सप्तशतिकाभावप्रकाशिकायामुपासनापरा-
भक्तिप्रकाशोनामद्वितीयप्रभा समाप्ता ॥ २ ॥

सीता सीतासी गिरा, मोधासीता दासि।
ता सीता पातांघ्रिही, भवति नास भवफासि १
काशीगीता धरागम, सुखद अन्त पद सेव।
कागगीवताआदि तजु, शुद्धरूप मनदेव २

यहि सर्ग विषे सांकेत वर्णन है जाको कूट कहत अर्थात् छल करि जो बात छपी कौन भाँति।

यथा—सीढ़िन सीढ़िन चढ़े ऊपरको स्थान मिलत तैसे मति-शब्द विचारत कठिनताते अर्थ जानो जात है तहां मुख्य तौ श्री-रामभजन करिवेको प्रयोजन कहे सो सांकेत पदन में क्यों वर्णन करे तहां प्रथम तो काव्यकी एक रीति है दूसरे याही भाँति माया-कूट में गुप्त भगवत् तत्त्व है ताको मिलिवो दुर्घट है ताके पायवे हेतु श्रवणादिक नवभक्तिन को करनों याही भाँति चढ़त चढ़त भगवत् की प्राप्ति होत याके हेतु यह सांकेतिक रीति देखावते हैं अथवा जाभाँति गुप्त अर्थ है ताहीभाँति गुप्त हृदय में भजन करना चाहिये इति भूमिका समाप्ता ॥

दोहा

जनकसुता दशयान सुत, उरगईश अम जोरि।
तुलसिदास दशपदपरखि, भवसागर गये पौरि १

दो० अहनिशि सुमिरो शुद्धमन, भवसागर तरनाय।
श्रीसीता याशंतनम, रामाटौ रामाय ॥

अथ तिलक

जनकसुता श्रीजानकीजी।

पुनः दशयानसुत यान कहे रथ दश मिले भयो दशरथ तिनके सुत श्रीरघुनाथजी।

पुनः उरग कहे सर्प तिनके ईश स्वामी शेष अर्थात् लक्ष्मणजी। पुनः अकार भरतजी हैं काहेते दूसरे सर्ग बयालिस के दोहा में है।

यथा—भरताभरत सो जक्त को तुलसी लसत अकार।

पुनः मकार शत्रुहन है चवालिस दोहा में।

यथा—ममहेश अरिदवन वर इत्यादि सीता, राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुहन इन पाँचोंरूपन के दुगुनजोरे दश पद भये तिनको पराखि कहे चित्त लगाय अवलोकन करि व इनको यश सुनि परखि लिये कि जे निषादादि तारे ऐसा जानि इनहींकी आधार गहि तुलसीदास भवसागर को पौंरि पैरि पार गये जन्म मरणते रहित भये प्रथम श्रीजानकीजी को नाम कहिवे को यह भाव कि विषयबद्ध जीव तिनपै जब महारानीजी कृपा करैं तब विषयते सावकाश पावै तब श्रीरामरूप जानवे को ज्ञान होइ।

यथा—अगस्त्यसंहितायां शंकरवाक्यम्

''यावन्न ते सरसिजद्युतिहारिपादे न स्याद्रतिस्तरुनवांकुरखण्डिताशे। तावत् कथंतरुणिमौलिमणेजनानां ज्ञानं दृढं भवति भामिनि रामरूपे॥''

पुनः शेषजी आचार्य हैं जब कृपा करें तब त्रिगुणात्म विषयवासनारूप हृदयकी ग्रन्थि खण्डनकरे।

यथा—भागवतेपञ्चमे

''य एष एवमनुश्रुतो ध्यायमानो मुमुक्षूणामनादिकालकर्मवासनाग्रथितमविद्यामयं हृदयग्रन्थिं सत्त्वरजस्तमोमयमन्तर्हृदयगत आशु निर्भिनत्ति''

पुनः भरतजी के नाम स्मरणमात्र ते श्रीराम प्रेमाभक्ति हृदय में आवत।

यथा—'तुमतौ भरत मोरमत एहू। धरे देह जनु राम सनेहू॥'

पुनः शत्रुहनके नामस्मरण कीन्हे कामादिशत्रु नाश होत तव श्रकएटक श्रीरामभक्ति होत ॥ १ ॥

दोहा

तुलसी तेरो राग घर, तात मात गुरु देव।
ताते तोहिं न उचित अब, रुचित आनपद सेव २

राग रागिनी अनेकहैं तिनमें एकको नाम सारंग है शार्ङ्गनाम श्रीरघुनाथजी के धनुषको है ताके घर अर्थात् शार्ङ्गधर गोसाईंजी आपने मनते कहत कि हे तुलसी ! जगमें यावत् नाता नेह है सो सब तेरो एक श्रीरघुनाथहीजी हैं कौन नाता तात कहे पिता भाई पुत्रादि के पक्षके यावत् नाता के नेह हैं।

पुनः माता कहे अर्थात् ननेचरे पक्षके यावत् नाते नेह हैं गुरु कहे मन्त्रोपदेशी पुरोहित विद्यादायक श्वशुर हितोपदेशी।

पुनः ब्रह्मा शिवादि यावत् देवमात्र हैं इत्यादि सर्व भावकरि एक श्रीरघुनाथहीजी को भजु।

यथा—चौपाई

"जननी जनक बन्धु सुत दारा। तन धन गेह सुहृद परिवारा॥
सबकी ममता ताग बटोरी। मम पद मनहिं बांधि बरडोरी॥"

प्रमाणं शिवसंहितायां हनुमद्वाक्यम्

"पुत्रवत्पितृवद्रामो मातृवन्मम सर्वदा॥
श्यालवद्रामवद्रामः श्वश्रूवच्छ्वशुरादिवत् १
पुत्रीवत्पौत्रवद्रामो भागिनेयादिवन्मम॥
सखीवत्सखिवद्रामः पत्नीवदनुजादिवत् २
राजवत्स्वामिवद्रामो भ्रातृवद्बन्धुवत्सदा॥
धर्मवदर्थवद्रामः काममोक्षादिवन्मम ३

व्रतवच्चीर्णवद्रामः साख्ययोगादिवत्सदा ॥
दानवज्जपवद्रामो यागवन्मन्त्रवहलम् ४
राज्यवत्सिद्धिवद्रामो यशोवत्कीर्तिवन्मम ॥
घृतादिरसवद्रामो भक्ष्यभोज्यादिवत्स मे ५"

इत्यादि सर्व भावकरि श्रीरघुनाथजी को भजिवो उचित है ताते हे मन ! तोको ऐसा उचित नहीं है कि रुचित कहे रुचि सहित और काहूके पद सेवन करो भाव लोकहू परलोक में पालनहार माता पिता गुरु देवसम श्रीराम हैं तौ दूसरे को नाम सुनिबो उचित नहीं।

यथा—शिवसंहितायाम्

"रामादन्यं परं श्रेष्ठं यो वै पाण्डित्यमात्रतः ॥
संतप्तहृदयस्तस्य जिह्वा छिन्द्यामहं मुने"॥ २ ॥

दोहा

तर्क विशेष निषेधपति, उर मानस सुपुनीत।
बसत मराल रहितकरि, तेहि मंजुपलटिविनीत ३
शुक्लादिहि कलदेहु इक, अन्त सहित सुखधाम।
दे कमलाकल अन्तको, मध्य सकल अभिराम ४

तर्कविशेष यथा— उवितर्के विकहे विशेष तर्क विषे उकार उपसर्ग।

यथा—व्याकरणे निषेध

"अमानो ना प्रतिषेधे" ताते मा अव्यय है निषेध अर्थ में होत ताते तर्कविशेषते अर्थ उकार भयो निषेधते अर्थ माकार भयो दोऊ मिले उमाभयो उमापति शिव तिनको उर सोई सुन्दर पवित्र मानस सर है तामें श्रीरामरूप मराल बसत तेहि मराल शब्द ते अन्त

की लकार रहित कीन्हे ते 'मरा' भयो ताको पलटेते 'राम' भयो तिन श्रीराम को भजौ कौन भांति विनीत अर्थात् मान त्यागि नम्रता सहित यह कार्पण्यता शरणागति है।

यथा—"कायर कूर कपूत खल, लम्पट मन्द लबार।
नीच अघी अति मूढ मैं, कीजै नाथ उवार॥"

तौने श्रीराम को भजु जाको शिव ऐसे महान् तेऊ आपने उर में बसाये हैं ऐसा परात्पर श्रीरामरूप है ताको भजौ॥ ३॥

शुक्लश्वेतपर्यायते सित लेना तामें आदि वर्ण में एककला इकार मिलाये दीर्घ सी भई अन्त तकार में एककला अकार मिलाये दीर्घ ता भई दोऊ मिले सीताभयो सो श्रीजानकीजी सम्पूर्ण सुखकी धाम हैं भाव विना भक्ति मुक्ति नहीं होत।

यथा—सत्योपाख्याने

"विना भक्तिं न मुक्तिश्च भुजमुत्थाय चोच्यते।
यूयं धन्या महाभागा येषां प्रीतिश्च राघवे॥"

सो रामभक्ति विना श्रीजानकीजी की कृपा नहीं है सकत।

यथा—अगस्त्यसंहितायाम्

"यावन्नते सरसिजद्युतिहारिपादे न स्याद्रतिस्तरुणशंकुरखण्डिताशे।
तावत्कथं तरुणिमौलिमणेजनानां ज्ञानं दृढं भवति भामिनि रामरूपे॥"

पुनः कमला लक्ष्मी पर्याय ते 'रमा' ताको अन्त को कला आकार सो मध्य 'रमा' के देने से 'राम' भयो सो श्रीराम अभिराम कहे आनन्ददाता हैं भाव जीव के आनन्द देनहार एक श्रीरामही हैं।

यथा—सनत्कुमारसंहितायाम्

"सत्यसन्धं जितक्रोधं शरणागतवत्सलम्।
सर्वक्लेशापहरणं विभीषणवरप्रदम्"॥ ४॥

दोहा

बीज धनंजय रबिसहित, तुलसी सहित मयङ्क।
प्रकट तहां नहिं तमतमी, समचित रहत अशङ्क ५

धनंजय अग्नि ताको बीज रकार रवि सूर्य को बीज अकार सहित कीन्हे रा भई तथा मयङ्क कहे चन्द्रमा ताको बीज मकार मिलायेते राम भयो ।

यथा—महारामायणे

"रकारो नलबीजं स्याद्ये सर्वे वाडवादयः ।
कृत्वा मनोमलं सर्वं कर्म भस्म शुभाशुभम् ॥
अकारो भानुबीजं स्याद्वेदशास्त्रप्रकाशकम् ।
नाशयत्येव सद्दीप्त्या या विद्या हृदये तमः ॥
मकारश्चन्द्रबीजं च सदन्योपरिपूरणम् ।
त्रितापं हरते नित्यं शीतलत्वं करोति च ॥"

ऐसे प्रतापवान् तीनि बीज जाके नाम में हैं सोई श्रीरघुनाथ जी जाके उरमें प्रकट वास करत तहां मोहादि तम कहे अन्धकार अरु तमी कहे विषय रात्री इत्यादि एकहू नहीं हैं सदा एकरस प्रकाश है याही ते शत्रु मित्र हर्ष शोकरहित सदा समचित्त रहत । पुनः कामादि हृदयके शत्रु भूत व्याघ्र चौरादि परलोक में यम दूतादि ते अशङ्क रहत भाव श्रीरामनाम जपे काहूकी भय नहीं रहत ।

यथा—रामरक्षायाम्

पातालभूतलव्योमचारिणश्छद्मचारिणः ।
न द्रष्टुमपि शक्तास्ते रक्षितं रामनामभिः "॥ ५ ॥

दोहा

रञ्जन कानन कोकनद, बंश बिमल अवतंस।

गञ्जन पुरुहुत अरि सदल, जगहित मानसहंस ६

कोकनद कमल कानन वन भाव कमल को वन ताके रञ्जन कहे आनन्दकर्ता सूर्य तिनको वंश सो सूर्यवंश कैसा है विमल भाव यावत् सूर्यवंशी होत आये सब सत्यवादी धर्मात्मा इन्द्रियजित् उदार वीर जिनको यश विमल यथा भगीरथ गङ्गाजी लाये तेहि सूर्यवंशके अवतंस कहे शिरोमणि श्रीरघुनाथजी हैं भाव जापै कृपा करत ताको लोक परलोक की कछु बात बाकी नहीं राखते जो दूसरी याचना को करै।

पुनः सबलवीर कैसे हैं सो कहत पुरहूत इन्द्र ताके अरि रावण अर्थात् इन्द्रादि यावत् दिक्पाल हैं तिनको जीतनहार तेहि रावण को सहित सेना वंशभरेको नाश करे ऐसे सबलवीर है ते कैसी जगहपर वास करते हैं सो कहत जग जो संसार ताके हितकर्ता हरिभक्त भाव जे वैर विरोध रहित शान्तचित्त समभाव जगहित हेतु देह धरे ऐसे सन्तन के मन अमलमानससर है तामें श्रीरामहंस बसत इहां रविवंशशिरोमणि कहिबे ते महादानी कहे।

यथा—वाल्मीकीये

"सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥"

रावण के नाशकर्ता कहिबे को यह भाव कि जिनके शत्रुको कोऊ रक्षक नहीं।

प्रमाणं हनुमन्नाटके

"ब्रह्मा स्वयंभूश्चतुराननो वा इन्द्रो महेन्द्रो सुरनायको वा।
रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा त्रातुं न शक्ता युधि रामवध्यम्॥"

जिनको जो कोऊ आपने उर में बसावा चाहै तौ हरिभक्तन कैसो मन अमल करै।

यथा—महारामायणे

"ये कल्पकोटिसततं जपहोमयोगैर्ध्यानैः समाधिभिरहोरतब्रह्मज्ञानात्।
ते देवि धन्यमनुजा हृदि बाह्यशुद्धा भक्तिस्तदा भवति तेष्वपि रामपादौ"६

दोहा

जगते रहु छत्तीस है, राम चरण छातीन।
तुलसी देखु बिचारि हिय, है यह मतो प्रवीन ७

सन्तनको ऐसो अमल मन कौनतना होइ सो उपाय कहत कि जगत्‌ते छत्तिस हैरहु भाव छत्तिस के अङ्क में छा में तीनि पीठि दिहे तैसे काम क्रोध लोभ मोह मद अहंकारादि जगत् जाको अङ्क है तेहिते आपु तीनि को अङ्क है पीठि दे कौन तीनि तन करि मनकरि वचनकरि जगसों विमुख होना योग्य है।

पुनः श्रीरामचरणकी दिशि छातीनि तिरसठि के अङ्क सम सम्मुख हो भाव प्रभुकी शरणागति छा प्रकारकी सोई जाको अङ्क है ताकी सम्मुख आपु तीनिहो भाव तन, मन, वचनादि तीनों करि शरण होना योग्य है षट् शरणागति हैं तामें प्रथम प्रतिकूल को त्याग।

यथा—दो० "मदकुसंग परदारधन, द्रोहमान जानि भूल।
धर्म राम प्रतिकूल ये, अमीत्यागि विषतूल॥"

दूसरी अनुकूल को ग्रहण।

यथा—दो० "नामरूप लीला सुरति, धाम बाम सत्सङ्ग।
स्वाति सलिल श्रीराममन, चातक प्रीति अभङ्ग॥"

तीसरी प्रभुकै सुशीलता प्रभु के गुण विचारना यह गोप्तृत्व शरणागति है।

यथा—दो० "केवट कपिकृत सख्यता, शवरी गीध पषान।

सुगति दीन्ह रघुनाथ तजि, कृपासिन्धु को आन ॥"

चौथी आपने गुणदोष सुनावना यह कार्पण्यता है।

यथा—दो० "कायर क्रूर कपूत खल, लम्पट मन्द लबार।
नीच अधी अति मूढ मैं, कीजै नाथ उधार ॥"

पचई रक्षा में विश्वास शरणागति है।

यथा—दो० "अम्बरीष प्रह्लाद ध्रुव, गज द्रौपदि कपिनाथ।
भे रक्षक अब मेरेहू, करिहैं श्रीरघुनाथ ॥"

छठई आत्मनिक्षेप है।

यथा—"दानदया दमतीर्थव्रत, संयम नेम अचार।
मनवचकाया कर्मसह, आत्म रामपदवार ॥"

इत्यादि षट् शरणागति धारण करु गोसाईजी कहत कि जे भक्ति में प्रवीण हैं तिनको यह मत है सो आपने हृदय में विचार धारु ॥ ७ ॥

दोहा

कन्दिकदून नक्षत्रहनि, गनी अनुज तेहि कीन।
जेहि हरिकर मानि मानहनि, तुलसी तेहिपदलीन ८

कं नाम शीश दिग्नाम दश भाव दशशीश ताके दूने बीस नक्षत्रनाम हस्त भाव बीस भुज जो रावण ऐसा बली ताको हनि अर्थात् परिवार सहित नाश करे ऐसे सबल श्रीरघुनाथजी हैं।

पुनः ताको अनुज विभीषण रावणको त्यागि दीन्हों ऐसो दीन शरण आयो ता विभीषण को गनी कहे गनतीवारो महाराज करे ऐसे शरणपाल है प्रभु।

पुनः जेहि श्रीरघुनाथजी ने हरि जो वानर तिनके कर कहे हाथनसों मणिनको मान हनि कहे नाश कीन्हें।

यथा—"मखि मुख मेलि डारि कपि देही ।"

अथवा राजतिलक समय प्रभुके गरे में महारत्नन की माला देखि सब कोऊ इच्छाकीन तिनको नहीं दीन अनिच्छित जाने हनुमान् जीको दीन्हें तिन सब मणी फोरिडारे काहेते जाके भीतर राम नाम नहीं तौ सुन्दररूप वृथ। है ऐसे समर्थ शरणपाल पूरणकाम श्रीरघुनाथजी हैं गोसाईंजी आपने मनते कहत कि ऐसे श्रीरघुनाथजी हैं तिनके चरणन में लीन होउ लोक आश त्यागो ॥ ८ ॥

दोहा

शिला शापमोचक चरण, हरण सकल जञ्जाल ।
भरण करन सुखसिद्धितर, तुलसी परमकृपाल ६

कैसे चरण हैं शिलाशापमोचक भाव पतिशाप ते अहल्या शिला हैगई रही जा चरणरेणु लागे पुनीत है पति को मिली ।

पुनः कैसे हैं चरण लोक में यावत् जञ्जाल हैं ताके हरणहार हैं ।

यथा—केवट पाँव धोय पानकरि परिवार सहित भव पार भयो ।

पुनः सबभाति को सुख व अणिमादिक सिद्धियां तिनके तर कहे अत्यन्त सुख सिद्धिन के भरणहार हैं ।

यथा—विभीषण को लोकहू परलोक को अचल सुख दिये ।

पुनः काकभुशुण्डि को सब सिद्धि बालकेलिही में दैदीन्हें यामें शापमोचक कहिबे को यह भाव कि शरणागतपै कोऊ शाप देइ ताको छोडाइ देत ।

यथा—अम्बरीष पै दुर्वासा जञ्जाल हरिबे को भाव कि कैसहू पापी शरण आवै सब पाप नाशकरि शरण राखत ।

यथा—रामायणे

"मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथञ्चन ।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात्सतामेतदगर्हितम् ॥"

पुनः स्वभक्तनको सुखसिद्धि परिपूर्ण करि देत ।

यथा—"कागभुशुण्डि मागु वर, अतिप्रसन्न मोहिं जानि ।
अणिमादिक सिद्धी अपर, मोक्ष सकल सुखखानि ६"

दोहा

मरनविपतिहरधुर धरन, धरा धरण बलधाम ।
शरणतासुतुलसी चहत, वरण अखिलअभिराम १०

मर कहे मृत्यु न कहे नहीं है जिनके ऐसे अमर जो देवता तिन की विपत्ति रावणादि राक्षस तिनके हरण नाशकर्ता श्रीरघुनाथ जी कैसे हैं धर्म की जो धुरी है सत्य शौच तप वा दया दानादि तामें धुरीन ही हैं ।

पुनः धरा पृथ्वी ताके धरण कहे पालन करिवे में बलधाम हैं ।

यथा—"त्यागवीरो दयावीरो विद्यावीरो विचक्षणः ।
पराक्रममहावीरो धर्मवीरः सदा स्वतः ॥
पञ्चवीराः समाख्याता राम एव स पञ्चधा ।
रघुवीर इति ख्यातः सर्ववीरोपलक्षणः ॥"

पुनः कैसे हैं ब्राह्मणादि अखिल सकलवर्ण भाव जीवमात्र के अभिराम कहे आनन्दके दाता हैं तासु श्रीरघुनाथजी के शरणागत तुलसी चाहत है अथवा मरण समय की विपत्ति के हरणहार भाव मरणसमय भूलिहू कै जाको नाम स्मरणकरै तौ यमदण्ड की भय हरिलेत ऐसे श्रीरघुनाथजी हैं ।

यथा—भगवद्गुणदर्पणे

"अगणितपापानस्मरान्भगवदेन्नशरणानभियमो दण्डयिष्यतीति निवृत्तिभगवदैश्वर्याद्यपरपर्यायशौर्यगुणानुसन्धानं फलम् ॥"

अरु धर्मकी धुरी के धरणहार भरतजी अरु धरा जो भूमि ताके धरणहार शेषरूप लक्ष्मणजी बलधाम शत्रुघ्नजी ।

पुनः अखिल वर्ण की अभिराम आनन्द देनहारी श्रीजानकी जी तासु कहे तिनकी शरण तुलसी चाहत अथवा अखिलसंसार के अभिराम आनन्ददायक श्रीरामनाम के दोऊ वर्ण तासु शरण तुलसी चाहत कैसे हैं वर्ण धर्मधुरीननकी जो धरा है परमार्थ ताके धरणहार बलधाम हैं ॥ १० ॥

दोहा

बिहँग बीच रैयत त्रितय, पति पति तुलसी तोर।
तासुबिमुखसुखअति बिषम, सपनेहुँ होसिनभोर ११

बिहंगपक्षी पर्याय ते शकुन तामें मध्य को वर्ण कु ।

पुनः रैयत कहे प्रजा ताको त्रितय कहे तीसरा वर्ण जा दोऊ जोडे ते कुजा भयो कु भूमि ताकी जा कुजा श्रीजानकीजी तिनके पति हे तुलसी ! तेरेहू पति हैं भाव श्रीजानकीजी सहित श्रीरघुनाथजी को ध्यान जपादि करु कैसे हैं श्रीजानकीनाथ कि कैसहू पातकी होय जिनको नाम स्मरणमात्रही से मुक्ति पावत ।

यथा—ब्रह्मवैवर्त्ते

"आधयो व्याधयो यस्य स्मरणान्नामकीर्तनात् ।
शीघ्रं वैनाशमायान्ति तं वन्दे जानकीपतिम् ॥"

आदिपुराणे श्रीकृष्णवाक्यम्

"श्रद्धया हेलया नाम वदन्ति मनुजा भुवि ।
तेषां नास्ति भयं पार्थ रामनामप्रसादतः ॥"

ऐसे श्रीरघुनाथजी हैं तिनको नाम रूपमें सदा मनको राखु सपनेहू में भोर कहे भूलु ना काहेते जिनके विमुख भये यावत् सुख हैं सो सब विषम कहे उलटे भाव दुःख है जायँगे ।

यथा—भविष्योत्तरे नारायण लक्ष्मीं प्रति

"जीवाः कलियुगे घोरा मत्पादविमुखास्सदा ।

भविष्यन्ति प्रिये सत्यं रामनामविनिन्दकाः ॥
गमिष्यन्ति दुराचारा निरये नात्र संशयः ॥ ११ ॥"

दोहा

द्वितियकोल राजिव प्रथम, वाहन निश्चय माहि।
आदि एक कल दै भजहु, वेद विदितगुणजाहि १२
वसत जहां राघव जलज, तेहि मिति गो जेहिसङ्ग।
भज्ञु तुलसीतेहिअरिसुपद, करिउर प्रेम अभङ्ग १३

कोल कहे वाराह ताको द्वितीय वर्ण रा।

पुनः राजिव कमल पर्यायते मकरन्द ताको प्रथम मकार दोऊ जोड़े 'राम' भयो।

पुनः वाहन कहे जान और निश्चय कहे किल ताके आदि वर्ण में एककला इकार मिलाये दीर्घ की तामें जान मिलाये जानकी भयो सो राम जानकी कैसे हैं परब्रह्मरूप हैं काहेते जिनके सौशील्य वात्सल्यतादि अनेक दिव्यगुण वेद में विदित हैं।

यथा—रामतापिन्याम्

"रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते ॥"

पुनः "सीतारामौ तन्मया च प्रपूज्यौ जाताभ्यां भुवनानि द्विसप्तस्थितानि च प्रहवान्येव तेषु ततो रामो मानवामायणाधात् ॥"

ऐसे श्रीराम जानकी को भजहु ॥ १२ ॥

जलमें उत्पन्न ताको कही जलज जलजन्तु राघव तामें मच्छ जहां वसत ऐसा अगाध समुद्र ताकी मिति कहे मर्यादा गो नाम गई है जाके संग ते भाव दुष्ट रावण के परोस ते नाहक को समुद्र बांधो गयो तेहि रावण के अरि नाशकर्ता श्रीरघुनाथजी तिनके सुन्दर पद-

कमल तिनको तुलसी भजु कौन भांति उर में अभङ्ग प्रेम करिकै ।

यथा—श्रीजानकीजी सहित रामरूप हृदय में धारण सजल नेत्र गद्गद वाणी रसना करि श्रीरामनामस्मरण अहर्निशि सरिता-प्रवाहवत् करना ।

यथा—महारामायणे

"श्रीरामनाम रसनां प्रपठन्ति भक्त्या प्रेम्णा च गद्गदगिरोऽप्यथ हृष्टलोमाः । सीतायुतं रघुपतिं च विशोकमूर्तिं पश्यन्ति नित्यमनघाः परया मुदा तम् ॥ १३ ॥"

दोहा

भजहु तरणिअरि आदिकहँ, तुलसी आत्मजअन्त ।
पञ्चानन लहि पदुममथि, गहे विमलमन सन्त १४

तरणि सूर्य तिनके अरि राहु ताके आदि रा ।

पुनः आत्मज कहे काम ताके अन्त में मकार दोऊ मिले राम भयो सो श्रीरामनाम को भजहु कैसा है रामनाम जाको पदुम कहे सौ करोरि वेदन को साराश श्रीरामचरित वाल्मीकि ने निर्माण कीन्हें ।

यथा—"रामायण द्रुम मोक्षफल, गायत्री गुनबीज ।
राम सुरक्षा अंकुरित, वेदमूल शुभ चीज ॥
वेदवेद्य परपुरुषभो, दशरथ सुत यह धार ।
वालमीकिते वेदभो, रामायण अवतार ॥"

अगस्त्यसंहितायाम्

"वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे ।
वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मनः ॥"

तेहि रामायण को मथि सारांश राम ताको पञ्चानन जो शिवजी तिन लहे पाये मात्र रामनाम ग्रहण करि लिये ।

यथा—मनुस्मृतौ

"सप्तकोटिमहामन्त्राश्चित्तविभ्रमकारकाः ।
एक एव परो मन्त्रो राम इत्यक्षरद्वयम् ॥"

ऐसा श्रीरामनाम ताको हे तुलसी ! भजहु जाको विमलमनवाले सन्त नारदादि गहे हैं अथवा जाके गहे ते विमल मनवालो सन्त होत विकार सब नाश होत ॥ १४ ॥

दोहा

वनिता शैल सुतासकी, तासु जनम को ठाम।
तेहि भजु तुलसीदास हित, प्रणतसकलसुखधाम १५
भजु पतङ्गसुत आदि कहँ, मृत्युञ्जय अरिअन्त।
तुलसी पुष्कर यज्ञकर, चरणपांशु मिच्छन्त १६

शैल हिमाचल ताको सुत मैनाक ताको आसस्थान समुद्र ताकी वनिता नदी श्रीगङ्गाजी तिनके जन्म को ठाम श्रीरामपद भाव लोक पावन करणहारी जिनको शिवजी शीशपर धरे ऐसी श्रीगङ्गाजी जिन पाँयन ते प्रकट भई तिन पदकमलन को हे तुलसीदास ! भजु कैसे हैं पदपङ्कज कि प्रणत जो शरणागत ताके हित हैं कौन हित करते हैं लोक परलोकादि जो सकल प्रकार को सुख ताके धाम हैं भाव सुखद ठौर एक श्रीराम पदै है।

यथा—अध्यात्मे

"को वा दयालुः स्मृतकामधेनुरन्यो जगत्यां रघुनायकादहो।
स्मृतो मया नित्यमनन्यभाजा ज्ञात्वास्मृता मे स्वयमेव यातः॥१५॥"

पतङ्ग सूर्य तिनके सुत करण तिनको नाम राधेय ताको आदि वर्ण रा ।

पुनः मृत्युंजय शिव ताके अरि काम ताको अन्तवर्ण म दोऊ मिले 'राम' भयो ।

पुनः पुष्कर तीर्थ में यज्ञकर्ता ब्रह्मा ते जिनके चरणन की पाशु नाम धूरि ताकी इच्छा करत भाव जिनके चरण-रेणु की इच्छा ब्रह्मादिक करत ।

यथा—वशिष्ठसंहितायाम्

"जय मत्स्याद्यसंख्येयावतारोद्भवकारण ।
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यसंसेव्यचरणाम्बुज ॥"

ऐसे श्रीरघुनाथजी हैं तिन्हें हे तुलसी ! भजु ॥ १६ ॥

दोहा

उलटे तासी तासुपति, सौ हजार मनसत्थ।
एकशूनरथ तनयकह, भजसि न मनसमरत्थ१७
द्वितियतृतियहरकासनहिं, तेहि भज तुलसीदास।
काकासन आसन किये, शासन लहे उपास १८

तासी शब्द उलटेते सीताभयो तासुपति श्रीरघुनाथजी ।
पुनः सौहजारको भयो लक्ष तामें मन मिलाय लक्ष्मण भयो सोहैं जिनके साथ ।

पुनः एक में शून्य दिहे दश भये तामें रथ मिलाये दशरथ भयो तिनके तनय पुत्र भरत शत्रुहन इत्यादि पाचहूं मङ्गलरूप सुखद भजिवे में सुगम तिनको हे मन ! तैं समर्थ है कै भजसि नहीं अर्थात् भजु मनको समर्थ कहिवे को यह भाव कि पाच भूत दशे न्द्रिय देवता जीवसहित सब मन के अधीन है जो मन करै सोई सब करै ॥ १७ ॥

हर जो महादेवजी तिनको आसन काशी पर्याय वाराणसी ताको द्वितीय वर्ण रा ।

पुनः हरको आसन चर्म ताको तृतीयवर्ण मकार दोऊ मिलाये 'राम' भयो हे तुलसीदास ! तेहि श्रीराम को भजहु जो ना भजहु तौ कासन कहे कुश कासन के आसनादि पर रहे का है कुछ नहीं है।

पुनः उपास कहे व्रतादि कीन्हें ते शासन कहे क्लेशमात्र लहे भाव दुःखही हासिल है ।

यथा—

"पठितसकलवेदश्शास्त्रपारंगतो वा
यमनियमपरो वा धर्मशास्त्रार्थकृद्वा ।
अठितसकलतीर्थव्राजको वा हुताग्नि-
र्नहि हृदि यदि रामः सर्वमेतद्वृथा स्यात् ॥ १८ ॥"

दोहा

आदि द्वितिय औतार कहँ, भज तुलसीनृपअन्त ।
कमल प्रथम अरुमध्यसह, वेदविदित मतसन्त १९
जेहि न गन्योकछुमानसहु, सुरपति अरिमौआस ।
जेहि पदसुचिताअवधिभव, तेहिभजतुलसीदास २०

द्वितीय अवतार कच्छप पर्याय कूर्म ताको आदि वर्ण कु ।

पुनः नृप कहे राजा ताको अन्त वर्ण जा दोऊ मिले कुजा भयो कु नाम पृथ्वी ताकी जा पुत्री 'कुजा' श्रीजानकीजी ।

पुनः कमल को नाम राजीव ताको प्रथम वर्ण रा ।

पुनःमध्य कमलको म दोऊ मिले 'राम' भयो तिनको हे तुलसी ! भजु कैसे हैं श्रीराम जानकी जिनको भजन करिबो सन्तनको मत है सो मत कैसा है वेद में विदित है भाव जाको यश वेदपुराण गावत ।

यथा—याज्ञवल्क्यसंहितायाम्

"कृष्णेति वासुदेवेति सन्ति नामान्यनेकशः।
तेभ्यो रामेति यन्नाम प्राहुर्वेदाः परं मुने॥
रामनाम्नः परं किंचित्तत्त्वं वेदे स्मृतिष्वपि।
संहितासु पुराणेषु नैव तन्त्रेषु विद्यते॥ १९॥"

सुरपति इन्द्र ताको अरि रावण ताको मवासस्थान लङ्का ऐसो दुर्घट कोट ताको जेहि रघुनाथजीने मानसहु कहे मनहू में कछु न गने कि लङ्का दुर्घट है यामें युद्धवीरता देखाये अथवा जाको ऐश्वर्य कुछ न गिने लोभ न कीन्हें यामें त्यागवीरता देखाये अथवा विभीषण को देनेमें कुछ न गने तृण सम दैदीन्हे ऐसे सवल अकाम उदार।

पुनः जेहि पावनते भवनाम उत्पन्न भई श्रीगङ्गाजी जो पवित्रता की अवधि कहे मर्यादा हैं ऐसे श्रीरघुनाथजीको हे तुलसीदास! भजु॥ २०॥

दोहा

नैन करण गुण धरन वर, तावर वरण विचार।
चरणसतर तुलसी चहसि, उवरणसरण अधार २१
भजु हरि आदिहि वाटिका, भरिता राजिव अन्त।
करितापद विश्वास भव, सरितातरसि तुरन्त २२

करण कहे कान ताको गुण शब्दको सुनिबो ताको नयनन में धारणहार भाव नेत्रन ते सुनते हैं सर्प तिनमें वर कहे श्रेष्ठ शेष श्रीलक्ष्मणजी तासों वर श्रीराम ये जो दोऊ वर्ण हैं तिनको वेद पुराण में सत्सङ्ग में विचारि जानिले हे तुलसी! सतर कहे शीघ्र

ही भवसागर ते उबरन चाहसि तो श्रीरघुनाथजी के चरणशरण की आधार रहु भाव शीघ्र पारकर्ता दयालुरूप येई हैं।

यथा—वाल्मीकीये

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतम्मम॥ २१॥

वाटिका बाग पर्याय आराम तामें आद आकार हरि कहे निकारिये तब राम भयो।

पुनः राजीव चन्द्रमा पर्याय ससीताके अन्तमें ताकार भरिदेवे ससीता भयो स कहे सहित सीताराम के पादारविन्दन में विश्वास करि भजु तौ भवसरिता तुरतही तरसि भाव तुच्छ नदीसम भवसागर को तुरतही तरिजासि सहित जानकी कहवे को यह भाव कि श्रीजानकी जी परमदयालु है।

वाल्मीकीये

"प्रणिपातप्रसन्ना हि मैथिली जनकात्मजा।
अलमेषा परित्रातुं राक्षस्यो महतो भयात्॥"

ऐसी दयालु जो नमस्कारही मात्र से प्रसन्न होत तिन सहित भजु॥ २२॥

दोहा

जड़ मोहन बर रागकह, सह चञ्चल चित चेत।
भजु तुलसी संसार अहि, नहिंगहि करत अचेत २३
मरणअधिप बारन चरण, दूसर अन्त अगार।
तुलसी इषुसह रागधर, तारण तरण अधार २४

मालकौश गाये पत्थर पघिलत स्वाभाविक रंग सुनि मृग जड पशु मोहत तातें जड मोहन राग ताको आदिवर्ण मा।

पुनः आदि वर्ण चञ्चल मन ताकी आदि मकार दोऊ मिले 'राम' भयो तिनको भजु हे तुलसी! मोह मदिरा सों मातु न चित सों चैतन्य होनाही तौ संसाररूप अहि सर्प गहि कहे पकरि विषय रूप विष सों अचेत करि देइ भाव नरदेह मुक्तिको द्वार है ताको पाय।

पुनः विषय में मन दीन्हें ते शोचिबे योग्य है।

भागवते प्रह्लादवाक्यम्

"नैवोद्विजे परदुरत्ययवैतरण्यास्त्वद्वीर्यगायनमहामृतमग्नचित्तः।
शोचे ततो विमुखचेतसइन्द्रियार्थमायासुखायभरमुद्वहतो विमूढान्॥२३"

नभचर अमर देवता तिनके अधिप राजा इन्द्र ताको वाहन जो हाथी ऐरावत ताको दूसर वर्ण रा।

पुनः अगार कहे धाम ताको अन्त वर्ण मकार दोऊ मिले 'राम' भयो।

पुनः इषु कहे वाण रामशार्ङ्ग धनुष भाव वाणसहित धनुषधारी जो श्रीरघुनाथजी हैं तिनकी जो आधार रहत ताको गोसाईंजी कहत कि भक्त आपु तरण है और को तारणहार।

यथा—ध्रुव प्रह्लादादि को चरित भवतारक है जाको सुनि औरहू भक्त होत हैं॥ २४॥

दोहा

जौ उरबिन चाहसि झटित, तौ करि घटित उपाय।
सुमनस अरिअरि बरचरण, सेवनसरल सुभाय २५
द्वितिय पयोधर परमधन, वाग अन्त युत सोय।
भजु तुलसी संसारहित, याते अधिक न कोय २६

उर्विनाम भूमि तासों ज नाम उत्पत्ति मगर झटित नाम शीघ्र घटित नाम योग्य भाव शीघ्रही मङ्गल अर्थात् कल्याण प्राप्त होने

योग्य उपाय करु कौन उपाय सुमनस जो देवता तिनके अरि रावणादि राक्षस तिनके अरि श्रीरघुनाथजी तिनके वर जो श्रेष्ठ चरण हैं तिनको सरल कहे सहजस्वभाव ते सेवन करु।

भाव—स्वाभाविक मनु लागरहै तौ शीघ्रही कल्याण होय।

यथा—ब्रह्मवैवर्त्ते

"आधयो व्याधयो यस्य स्मरणान्नामकीर्तनात्।
शीघ्रं वै नाशमायान्ति तं वन्दे जानकीपतिम् ॥ २५ ॥"

पयोधर मेघ पर्याय धराधर ताको द्वितीय वर्ण रा।

पुनः वाग को नाम आराम ताको अन्त वर्ण मकारयुत कहे मिलाये 'राम' भयो सो यह श्रीरामनाम परमधन है भाव काहू भांति चुकत नहीं ताको हे तुलसी! भजु काहेते संसार में हित करत या श्रीरामनाम ते अधिकी कोई दूसरा पदार्थ नहीं है।

यथा—केदारखण्डे शिववाक्यम्

"रामनामसमं तत्त्वं नास्ति वेदान्तगोचरम्।
यत्प्रसादात्परां सिद्धिं सम्प्राप्ता मुनयोऽमलाम् ॥"

पुनः—अध्यात्मे

"अहोभवन्नामगृणन्कृतार्थो वसामि काश्यामनिशम्भवान्या।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मन्त्रं तव रामनाम ॥ २६ ॥"

दोहा

पति पयोधि पावनपवन, तुलसी करहु विचार।
आदिद्वितिय अरु अन्तयुत, तामतत्व निरधार २७

हंसकपट रससहित गुण, अन्त आदि प्रथमन्त।
भजु तुलसी तजिबामगति, जेहिपदरतभगवन्त २८

पति को नाम भर्ता।

पुनः पावन पयोधि कहे क्षीरसागर पवन जो मरुत तहां भर्ता को आदिवर्ण भ।

पुनः क्षीरसागर को द्वितीय वर्ण र।

पुनः मरुत को अन्तवर्ण त तीनिहू एक में युत कीन्हें 'भरत' भयो तिनको मत श्रीरघुनाथजी विषे प्रेमाभक्ति ताको हे तुलसी! विचार करहु सोई मत अर्थात् भगवत् सनेह कीन्हें तेरो भवसागर ते निरधार है भाव विना श्रीराम भक्ति मुक्ति नहीं होत।

यथा—सत्योपाख्याने सूतवाक्यम्

"विना भक्तिं न मुक्तिश्च भुजमुत्थाय चोच्यते।
यूयं धन्या महाभागा येषां प्रीतिश्च राघवे॥ २७॥"

हंस कहे मराल ताके अन्त में लकार।

पुनः कपट कहे छल ताकी आदि में छकार।

पुनः रस कहे मकरन्द तामें प्रथम मकार।

पुनः गुण कहे तीन ताके अन्त णकार चारिहू वर्ण मिलाये ते लक्ष्मण भयो सो कैसे हैं शेषरूप भगवन्त हैं सो श्रीलक्ष्मणजी जिनके पादारविन्दन में रत कहे सदा सेवन करत ऐसे श्रीरघुनाथ जी को हे तुलसी! भजु कौन भांति वाम गति तजिके भाव लोक विषय वासनादि छल छांड़ि शुद्ध मन प्रेम सहित गद्गदवाणी ते श्रीरामनाम को उच्चारण सदा कीनकरु प्रभु को रूप उर में धरु॥२८॥

दोहा

कना समुझि कवरन हरहु, अन्त आदि युतसार।
श्रीकर तम हर वर्णवर, तुलसी शरण उदार २९
अङ्क दशा रस आदि युत, पाण्डुसूनु सहअन्त।
जानि सूनु सेवक सतर, करिहे कृपापरन्त ३०

झटितसखाहि विचारिहिय, आदि वर्ण हरिएक।
अन्तप्रथम स्वर दै भजहु, जा उर तत्त्वविवेक ३१

क्रना कहे मकरा ताको समुझि मध्यवर्ण जो ककार ताको हरहु तब मरा अस पद भयो तामें अन्त की जो है राकार ताकी मकार को आदि युत कीन्हें ते 'राम' भयो ताको गोसाईंजी कहत कि कैसे दोऊ श्रेष्ठ वर्ण हैं कि जिज्ञासु जो साधक भक्त हैं तिनको सिद्धिदायक वेदादि के सार हैं तत्त्वरूप।

पुनः अर्थार्थी भक्तन को श्री कहे ऐश्वर्य शोभादिक करनहार है।

पुनः आरत जो शरण आवै तिनको क्लेशते उवारणहार है।

पुनः वासनाहीन जे ज्ञानी हैं तिनके उर में प्रकाशकरि मोहादि तम के हरणहार हैं॥ २६॥

दश के जे दोऊ अङ्क हैं दश।

पुनः रसको आदिवर्ण रकार सो दश में युत कीन्हेंते दशर भयो।

पुनः पाण्डुसुनु कहे पुत्र पारथ ताके अन्त की थकार दशर में सह कहे सहित कीन्हें ते 'दशरथ' भयो ते दशरथ महाराज आपने सूनु पुत्र श्रीरघुनाथजी को सेवक जानिकै परन्त कहे विशेषिकै सतर कहे शीघ्रही कृपा करिहैं काहेते लोकहू की यह रीति है कि पुत्र को सेवकौ पुत्रही सम प्रिय होत है॥ ३०॥

झटित कहे शीघ्र पर्याय आसु।

पुनः सखा कहे मित्र दोऊ मिले आसु मित्र भयो यह हिये ते विचारि आदि को एक वर्ण आकार हरिवे ते सुमित्र भयो तामें आदिस्वर जो आकार सो अन्त देवे ते सुमित्रा भयो तिनको भजो कैसी हैं सुमित्रा जिनके उर में श्रीराम तत्त्व को विवेक है प्रथम दोहा में दशरथजी को कहे यामें सुमित्राजी को कहे भार श्री रघुनाथजी के माता पिता हैं तामें कौसल्याजी को क्यों नहीं कहे

तहां दशरथजी वेद हैं कैकेयीजी कर्मशक्ति हैं कौसल्या ज्ञानशक्ति हैं सुमित्राजी उपासना शक्ति हैं ।

यथा—शिवसंहितायाम्

"तासां क्रिया तु कैकेयी सुमित्रोपासनात्मिका ।
ज्ञानशक्तिश्च कौसल्या वेदो दशरथो नृपः ॥"

सो भक्तन को उपासना आधार है याते सुमित्राजी को भाव वेदयुत उपासना करि प्रभु को भजौं ॥ ३१ ॥

दोहा

आदि चन्द चञ्चल सहित, भजु तुलसी तजुकाम ।
अघभञ्जन रञ्जन सुजन, भवभञ्जन सुखधाम ३२
बिगत देह तनुजा सपति, पदरति सहित सनेम ।
यदिअतिमतिचाहसिसुगति, तदितुलसी करुप्रेम ३३

चन्द को नाम राजीव ताकी आदि रा ।

पुनः चञ्चल मन ताकी आदि म तिहि सहित कीन्हें 'राम' भयो ताको भजु हे तुलसी ! काम कहे यावत् कामना हैं तिनको तजु कैसा है श्रीरामनाम पापन को नाशकर्ता सुजनन को रञ्जन कहे आनन्ददाता है भवफन्दन को तूरनहार लोकहू परलोक के सुखको धाम कहे स्थान है ॥ ३२ ॥

बिगत देह कहे विदेह तिनकी तनुजा श्रीजानकीजी तिनको सपति सहित पति भाव श्रीराम जानकी के पादारविन्दन में रति कहे प्रीति सहित रहु कैसी प्रीति नेम सहित शुभाशुभ सब त्याग यह नेम लिहे शुद्ध हृदय प्रेमभाव ते निरन्तर उसी के आधीन रहिबो प्रीति है ताते यदि कहे जो जन्मपर्यन्त अति अमल मति

कहे बुद्धि चाहसि औ अन्तसमय सुन्दरि गति चाहसि तौ हे तुलसी! श्रीरघुनाथजी के पांवन में प्रेम करु ॥ ३३ ॥

दोहा

करताशुचि सुरसरसुता, शशी साँरगमहिजान।
आदि अन्तसह प्रथमयुत, तुलसी समुझु न आन॥३४
गिरिजापतिकलआदिइक, हरिनक्षत्र युधि जान।
आदिअन्त भजु अन्तपुनि, तुलसीशुचिमनमान ३५

सुर देवता तिनको सर मानसर ताकी सुता सरयू शशि नाम चन्द्रमा ताको कही राकापति ताकी आदि रा।

पुनः सारँग नाम पपीहा ताको नाम विहंगम ताके अन्त में मकार दोऊ मिले 'राम' भये।

पुनः महिजा आन महिजान महिभूमि ताकी जा पुत्री जानकी जी प्रथम जो 'सरयू' तिनयुत अर्थात् सरयू राम जानकी इनको आन कहे दूसरारूप न समुझु हे तुलसी! एकही रूपकरि उर में आनु कैसे हैं शुचिकर्ता हैं भाव कैसहू पतित होय जिनको नाम लेतही पावन होत ॥ ३४ ॥

गिरिजा पार्वती ताके पति शिव ताके आदि वर्ण में एक कला दीन्हें दीर्घ भई सी।

पुनः हरिनाम सूर्य ताको नाम सविता ताके अन्त की ता दोऊ मिले सीता भयो।

पुनः नक्षत्र नाम तारा ताके अन्त रा।

पुनः युधि कहे संग्राम ताके अन्त में दोऊ मिले 'राम' भयो सो सीताराम को भजु तौ मनको शुचि कहे पवित्र मानु नाहीं तो अपावन है ॥ ३५ ॥

दोहा

ऋतुपतिपदपुनि पडिकयुत, प्रथम आदि हरि लेहु।
अन्तहरण पद द्वितियमहँ, मध्यबरण सहनेहु ३६
बाहन शेष सुमधुप रव, भरतनगर युत जान।
हरिभरिसहित विपर्यकरि, आदि मध्यअवसान ३७

ऋतुपति कहे वसन्त ताको आदिवर्ण वकार हरिबे ते सन्त रहे पदमिले सन्तपद भयो।

पुनः पडिक कहे चांदी ताको नाम रजत ताकी अन्त तकार हरिबे ते रज रहो तहां आदिपदकी वकार हरे अन्तपदकी तकार हरे मध्यवर्ण रहे सन्तपदरज तामें नेह कहे प्रीति करौ तौ तुरतही श्रीरामभक्ति की प्राप्ति करि देहँगे।

यथा—भागवते

"रहूगणैतत्तपसा न याति न चेज्यया निर्वपणाद्गृहाद्वा।
न च्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यैर्विनामहत्पादरजोभिषेकम् ॥३६॥"

शेषजी कच्छप के ऊपर हैं याते शेषके वाहन कूर्म।

पुनः मधुप भँवर ताको सुन्दर रव कहे गुञ्जार तहां कूर्म की आदि कू गुञ्जार के मध्य जा दोऊ हरि कहे निकारि सहित कहे दोऊ एक में भरिबे ते 'कुजा' भयो कु पृथ्वी ताकी जा कहे पुत्री श्रीजानकी।

पुनः भरतनगर कहे मथुरा ताको विपर्यय करि अन्त की राकार आदि देवे ते रामथु भयो ताकी अन्त थकार हरिवेते रहो राम सो सीता रामही को आपन हित करिकै जानु काहेते आदि कहे गर्भ-वास में रक्षा कीन्हें।

पुनः मध्य कहे जन्म पर्यन्त रक्षक हैं।

पुनः अवसान कहे अन्तकाल मृत्यु के समय यमदूतन करिकै सीता रामही दयाल रक्षाकरिवे योग्य हैं याते शरणागत रहनो उचित है ॥ ३७ ॥

दोहा

तुलसी उडुगणको वरण, वनजसहित दोउअन्त।
ताकहँ भज्ञु संशयशमन, रहित एककल अन्त ३८
वारिज वारिज वरणवर, वरणत तुलसीदास।
आदिआदि भज्ञु आदिपद, पाये परम प्रकास ३९
भज्ञुतुलसी कुलिशान्तकह, सह अगारतजि काम।
सुखसागर नागर ललित, वली अली परधाम ४०

उडुगण कहे तारा ताको अन्त वर्ण रा।

पुनः वन कहे जल ताते ज नाम उत्पन्न समुद्र ते चन्द्रमा ताको अन्त वर्ण मा दोऊ मिले भयो 'रामा' तामें अन्त को एक कला निकारे ते 'राम' भयो सो रामनाम कैसा है जन्म मरणादिकी जो संशय है ताको नाशकर्ता है ताते हे तुलसी! श्रीरामनाम को भज्ञु तौ अभयपद मिलैगो ३८ वारिज कमल ताको नाम राजिव ताको आदि वर्ण रा।

पुनः वारिज नाम मकरन्दी ताकी आदि मकार दोऊ मिलाये 'राम' भयो सो कैसे दोऊ वर्ण है जिनको तुलसीदास वर कहे श्रेष्ठ करिकै वर्णन करत हैं भाव यावत् मन्त्रादि वीज वर्ण हैं तिनको आदि कारण है सो श्रीराम नामको भज्ञु तौ आदि पद मुक्ति अथवा आदिपद जीव को सहज शुद्धरूप की प्राप्ति होइगी ताके पाये उर में परमप्रकाश होइगो तब श्रीरामरूप प्राप्त होइगो ३९ कुलिश कहे हीरा ताको अन्तवर्ण रा।

पुनः अगार कहे धाम ताके अन्त मकार सह कहे दोऊ मिलाये ते 'राम' भयो तिनको हे तुलसी! भजौ कौन भांति काम सब कामना तजिकै शुद्धरूप ह्वैकै कैसे हैं श्रीरघुनाथजी सुखसागर।

यथा—आनन्दजलपूर्ण उत्सव तरङ्ग क्रीडा जलजन्तु शोभा सौकुमार्य रत्न भक्ति तट सज्जन भक्त अधिकारी।

पुनः नागर कहे बुद्धिमान् विद्यावान् सब भाषा में निपुण हैं यह चातुर्यता गुण है।

भगवद्गुणदर्पणे

"महाशाकुनिको रामः समुद्रागमपारगः।
ग्रामारण्यपशूनां च भाषाभिर्व्यवहारकृत्॥"

पुनः ललित कहे अत्यन्त स्वरूप सुन्दर है।

यथा—वाल्मीकीये

"रामः कमलपत्राक्षः सर्वसत्त्वमनोहरः।
रूपयौवनसम्पन्नः प्रसूतो जनकात्मजे॥"

पुनः बली कहे अत्यन्त सबल वीर हैं।

यथा—"ब्रह्मरुद्रेन्द्रसंज्ञैश्च त्रैलोक्यमपि भिस्त्रिभिः।
रामवध्यो न शक्यः स्याद्रक्षितुं सुरसत्तमैः॥"

पुनः अली कहे सखी फारसी में सखी कहे सखावत करनेवाला अर्थात् उदार दानी है।

पुनः सबते परे साकेत धाम है जिनको॥ ४०॥

दोहा

चञ्चल सहितरु चञ्चला, अन्त अन्त युत जान।
सन्तशास्त्रसम्मत समुझि, तुलसी करु परमान ४१

चञ्चल पारा तामें अन्त रा पुनः चञ्चला स्त्री ताको नाम वाम

ताके अन्त मकार दोऊ वर्णयुत कीन्हेंते 'राम' भयो ते श्रीराम सर्वोपरि सब के सारांश हैं ऐसा जानु कौन भांति शान्त रस के अधिकारी विज्ञानी जे सन्त ।

यथा—चौपाई

"शुक सनकादि शम्भु मुनि नारद । जे मुनिवर विज्ञान विशारद ॥
सबकर मत खगनायक येहू । करिय रामपद पङ्कज नेहू ॥"

तिन सन्तन के कीन्हें जे शास्त्र हैं संहिता आदि तिनको सम्मत सम्पूर्ण मत समुझि तत्र हे तुलसी ! प्रमाण करु भाव परब्रह्म जानि श्रीरामको भजु ।

यथा—सनत्कुमारसंहितायां व्यासनारदसम्मतवाक्यम्

"यत्परं यद्गुणातीतं यज्ज्योतिरमलं शिवम् ।
तदेव परमं तत्त्वं कैवल्यपदकारणम् ॥
श्रीरामेति परं जाप्यं तारकं ब्रह्मसंज्ञकम् ।
ब्रह्महत्यादिपापघ्नमिति वेदविदो विदुः ॥
श्रीरामरामेति जना ये जपन्ति च नित्यदा ।
तेषां भुक्तिश्च मुक्तिश्च भविष्यति न संशयः ॥

शुकसंहितायाम्

आकृष्टः कृतचेतसां सुमहतामुच्चाटनं चांहसा-
माचाण्डालमनुष्यलोकसुलभो वश्यं च मुक्तिश्रियः ।
नो दीक्षां नच दक्षिणां नच पुरश्चर्यामनागीक्षते
मन्त्रोयं रसनास्पृगेव फलति श्रीरामनामात्मकः॥"

केदारखण्डे शिववाक्यम्

"रामनामसमं तत्त्वं नास्ति वेदान्तगोचरम् ।
यत्प्रसादात्परां सिद्धिं संप्राप्ता मुनयोऽमलाम् ॥४१॥"

दोहा

आदि बसन्त इकार दै, आशै तासु विचार।
तुलसी तासु शरणपरे, कासु न भयो उबार ४२
धरा धराधर बरण युग, शरण हरण भव भार।
करण सतर तर परमपद, तुलसी धर्माधार ४३

बसन्त शब्द के आदिवर्ण जो बकार तामें इकार लगाय देने ते बिसन्त भयो ताका आशय विचारेते भयो विशेष सन्त भाव जिनके दूसरा कार्य नहीं सदा भजन में रत यथा नारदादि गोसाईं जी कहत कि तासु कहे तिन सन्तन की शरण परेरहे तिनकी कृपा सत्संग पाय किसका भवसागरते उबार नहीं भयो भाव सत्संग पाय को नहीं हरिभक्त भयो जैसे वाल्मीक्यादि ४२ धरा शब्द के अन्तरा।

पुनः धराधर कहे महीधर ताकी आदि मकार दोऊ मिलाये 'राम' भयो ते दोऊ वर्ण कैसे हैं जिनकी शरण गये जन्म मरणादि जो भवको भार ताके हरणहार हैं।

पुनः सतर कहे शीघ्रतर कहे अतिशीघ्र परमपद जो मुक्ति ताके करणहार हैं।

पुनः धर्म के आधार हैं धर्म के बीज हैं।

यथा—हनुमन्नाटके

"कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां-
पाथेयं यन्मुमुक्षोःसपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचनाज्जीवनानां सुगन्धं
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम ॥ ४१ ॥"

दोहा

वरण धनंजय सूनुपति, चरण शरण रतिनाहिं।
तुलसी जगवञ्चक बिहरि, किये विधाता ताहिं ४४
तुलसी रजनी पूर्णिमा, हार सहित लखि लेहु।
आदि अन्त युत जानिकरु, तासों सरल सनेहु ४५

धनंजय नाम के वर्ण मारुत ता.के सूनुपुत्र हनुमान् जी ताके पति श्रीरघुनाथ जी तिनके चरणारविन्दन के शरणागत नहीं हैं जे।

पुनः रति कहे प्रीति नहीं किये हैं जे ताको गोसाईंजी कहत कि तिनको विधाताने विशेष हठ करिकै जगमें वञ्चक कहे छली पैदाकिये हैं वा जगके छलिबे योग्य बनाये भाव जगने उनहीं को छलि लियो लोकही में आसक्तरहे ४४ पूर्णमासी की राति को नाम राका ताकी आदि रा।

पुनः हारको नाम दाम ताकी अन्त मकार दोऊ वर्णयुत करिबे ते 'राम' भयो सो श्रीराम को आपनो हित जानिकै तिनसों सहजही में सनेह करु भाव सहजही मन लाग रहै और बात मनमें न आवै ॥ ४५ ॥

दोहा

भानुगोत्र तमि तासु पति, कारण अति हित जाहि।
ज्ञानसुगति युत सुखसदन, तुलसी मानत ताहि ४६
भजु तुलसी ओघादि कह, सहित तत्त्व युत अन्त।
भव आयुर्जय जासुबल, मनचल अचल करन्त ४७
देत कहा नृप काजपर, लेत कहा इतराज।

अन्त आदि युत साहित भजु, जो चाहसि शुभकाज ४८
चन्द्रवनि भजुगुणसहित, समुझि अन्त अनुराग।
तुलसी जो यह बनिपरै, तौ तव पूरण भाग ४६

भानु सूर्य गोत्र अग्नि तमी रात्रि ताको पति चन्द्रमा इत्यादि को कारण कहे।

यथा-अकार भानु को कारण रकार अग्नि को कारण मकार चन्द्रमा को कारण है ऐसे तीनि कारण हैं जाहिमें ऐसा श्रीरामनाम ताहि तुलसी अतिहित करिकै मानत है काहेते ज्ञान सुगति रुहिन सुखको धाम है भाव अकार ज्ञान धाम रकार मुक्तिधाम मकार सुखधाम ४६ ओघ कहे समूह ताको नाम राशि ताकी आदि रा।

पुनः तरर कहे आकाश ताको नाम व्योम ताके अन्त मकार दोऊ मिले राम भयो सो श्रीराम नाम कैसा है जाके बलते भव जो महादेव ते आयुर्वल जीते अमर हैं।

पुनः चञ्चल जो मन ताको अचल कीन्हे सदा जपत अथवा मनचल बद्ध जीव तिन को काशीजी में रामनाम सुनाय अचल कहे मुक्त करत ४७ नृप राजा काज परेपर का देत बीरा ताके अन्त रा।

पुनः इतराज कहे नाराजभये पर का लेत मर्याद ताकी आदि मकार दोऊ मिले 'राम' भयो सो जो शुभकार्य कल्याण चाहौ तौ श्रीरामको भजु नाहीं शुभहू अशुभ होइगो ४८ चन्द्रमा की रमणी स्त्री नक्षत्र तामें अनुराधा गुण कहे तीनि तीसरा वर्ण अनुराधा में रा तेहि सहित।

पुनः अनुराग कहे प्रेम ताके अन्त मकार दोऊ मिले 'राम'

भयो तिनको भजु हे तुलसी ! जो यह भजन बनिपरै तौ तेरे पूर्व भाग्य उदयभये सब सुलभ है ॥ ४९ ॥

दोहा

जिनके हरिवाहन नहीं, दधिसुत सुत जेहि नाहिं।
तुलसी ते नर तुच्छ हैं, बिना समीर उड़ाहिं ५०
रवि चञ्चल अरु ब्रह्मद्रव, बीच सवास विचारि।
तुलसिदास आसन करे, जनकसुता उरधारि ५१

हरिवाहन गरुड़ सो गरोइ जिनके नहीं है ।

पुनः दधि समुद्र ताको सुत चन्द्रमा ताको सुत बुद्ध सो बुद्धि जिनके नहीं ते नर तुच्छ ऐसे हलके है जे बिना पवन उड़ात भाव तुच्छ बुद्धि अकारण मारे मारे फिरत गरोईते आदर होत बुद्धिते अनादर नहीं होत ५० चञ्चल को नाम लोल रविको नाम अर्क दोऊ मिले लोलार्क भयो सो काशीजी में लोलार्क घाट है ।

पुनः ब्रह्मद्रव गङ्गाजी तिन दोऊ के बीच में सुन्दर वासस्थान विचारिकै तुलसीदास आसन करे हैं का विचारिकै जहां महामहा-चञ्चल स्थिर होत भाव मुक्त होत ऐसी काशीपुरी ।

पुनः गङ्गा स्वाभाविक हलके जीवनको गुरुतादेत तिनको बीच यह विचारिकै इहां आसन करे ।

पुनः श्रीजानकीजी को उरमें धारे तिनहीं के भरोसे ते हौं भाव कैसहू निर्बुद्धि बालक होत ताहू को माता पालन करत याते निर्बुद्धि हौं मातु जानकी के भरोसे हौं जो भक्तन के अपराध देखनी नहीं नमस्कारमात्रही से प्रसन्न होती हैं ।

रामायणे त्रिजटावाक्यम्

"प्रणिपातप्रसन्ना हि मैथिली जनकात्मजा ।
अलमेषा परित्रातुं राक्षसो महतो भयात् ॥ ५१ ॥"

दोहा

वन बनिता दृगकोपमा, युतकरु सहित बिबेक।
अन्त आदि तुलसी भजहु, परिहरि मनकरटेक ५२
उर्वी अन्तहु आदि युत, कुल शोभा कमलादि।
कै विपर्य ऐसेहि भजहु, तुलसी शमन बिषाद ५३
तौ तोहिकहँ सबको सुखद, करहिं कहा तव पांच।
हरब तृतिय बारिजबरन, तजब तीनि सुनुसांच ५४

वन कहे जल ताको नाम नारा ताके अन्तरा।

पुनः बनिता नारी ताके दृगनकी उपमा मत्स्य ताकी आदि मकार युत कहे मिलाये ते 'राम' भयो सो हे तुलसी! विवेक सहित श्रीरघुनाथजी को भजहु कौन भांति मनकी टेक जो विमुख ताकी हठ छांड़िकै प्रभु में सहज सनेह करु ५२ उर्वी भूमि ताको नाम धरा ताके अन्त रा।

पुनः उर्वी नाम मही ताकी आदि 'म' दोऊ मिले 'राम' भयो।

पुनः कुलकी शोभाशील ताकी आदि सी।

पुनः कमल नाम तामरस ताकी आदि ता दोऊ मिलाये 'सीता' भयो दोऊ नाम एकत्र भये राम सीता भयो विपर्यय कहे उलटेते 'सीताराम' भयो तिनको ऐसे ही साधारण घरही में रहे भजौ तौ गोसाईंजी कहत कि तुम्हारे विषाद जो दुःख सो सब शमन कहे नाश होहिं ५३ बारिज को नाम तामरस ताको तीसरा वर्ण रकार हरिबे ते रहे तीनि वर्ण तामस सो तमोगुण ताते सब इन्द्रिय हैं तिन इन्द्रिनका स्वाद त्यागि दे तौ पाँचों जो हैं शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि पाँचों व काम, क्रोध, लोभ, मोह, मदादि पाँचों ये तेरो का करिसकते हैं।

पुनः ताको सब जग सुखदायक है कोऊ दुःखद नहीं है ॥ ५४॥

दोहा

तजहु सदाशुभ आश अरि, भजु सुमनस अरिकाल।
सजु मतईश अवन्तिका, तुलसी विमलविशाल ५५
एतवंश वर वरन युत, सेत जगत सरिजान।
चेतसहित सुमिरन करत, हरत सकल अघखान ५६
मैत्रीवरन यकार को, सह स्वर आदि विचार।
पंच पवर्गहि युत सहित, तुलसी ताहि सँभार ५७

शुभ जो कल्याण ताकी आश अर्थात् मुक्तिकी आश ताके अरि जो कामादि तिनको तजु सुमनस जो देवता तिनको अरि रावण ताके काल श्रीरघुनाथजी तिनको भजु कौन भाँति अवन्तिका जो उज्जयिनी ताके ईश महादेव ताको मत श्रीरामभक्ति ताको सजु धारणकरु कैसा मत है अमल जामें कुछ मैल नहीं।

पुनः कैसा है विशाल सब मतनते उत्तम है।

यथा—शिवसंहितायाम्

रामादन्यः परो ध्येयो नास्तीति जगतां प्रभुः।
तस्माद्रामस्य ये भक्तास्ते नमस्याः शुभार्थिभिः॥ ५५ ॥"

एत सूर्य ताको वंश सूर्य वंश तामें वर श्रेष्ठ श्रीराम तिनके नाम के युग कहे दोऊ वर्ण कैसे हैं जगत् सरिभव सरिता ताके सेतु हैं ऐसा जानि मोह आलस्य तजि चैतन्य है सनेह सहित भजतसन्ते अघखानि सब पाप नाश होत हैं जीव शुद्ध होत ५६ "य र ल व" में जो यकार ताको मैत्री दूसरा वर्ण रकार तामें आदि स्वर जो अकार तासहित विचारेते रा भई।

पुनः पवर्ग कहे "प फ ब भ म" तामें पाँचवां वर्ण मकार सहित कीन्हेंते 'राम' भयो तेहिको हे तुलसी! हिये में सँभार श्री रामको भरोसा राखेरहु और को भरोसा त्यागु ॥ ५७ ॥

दोहा

हल ञम मध्यसमानयुत, याते अधिक न आन।
तुलसी ताहि बिसारि शठ, भरमत फिरत भुलान ५८
कौनजाति सीता सती, को दुखदा कटुबाम।
को कहिये शशिकर दुखद, सुखदायक को राम ५९

हल कहे 'हयवरल' तामें रकार।

पुनः ञम कहे 'ञमङणनम' तामें मकार दोऊमिले 'रम' भयो ताके मध्यमें समान कहे 'अइउऋलृसमानाः' सो समानते लीन अकार सो रम के मध्य दीन्हेंते 'राम' भयो सो रामनामते अधिक भुक्ति मुक्तिदायक दूसरा पदार्थ नहीं है।

यथा—केदारखण्डे शिववाक्यम्
"रामनामसमं तत्त्वं नास्ति वेदान्तगोचरम्।
यत्प्रसादात्परां सिद्धिं संप्राप्ता मुनयोऽमलाम्॥"

ताते जो लोकहु परलोक को सुख चाहौ तौ श्रीरामनाम प्रीति सहित जपौ तौ सहजही सुखदायक है ऐसा श्रीरामनाम ताहि बिसारि जे और मतन में भुलाने तिनको गोसाईंजी कहत कि वे शठ अनेक योनिन में दुःखित भरमत फिरत हैं ५८ यामें प्रश्नही में उत्तर कहत।

यथा—सीता सती कौन जाति इति प्रश्न सीता सती जाति-भाव पतिव्रत प्रश्न कटु कहे करु बाम कहे स्त्री दुःख देनहारी कौन है उत्तर करु वचन बोलनहारी बाम दुःख देनहारी है प्रश्न

शशिकर कहे चन्द्रकिरण जाको दुःखद ऐसा को है ताको कहिये उत्तर कोक कहिये 'चक्रवाक' ताके हियको दुःखद चन्द्रकिरण है प्रश्न परशुराम बलराम रमणाद्रामादि में जीव को सुखदायक कौन 'राम' है उत्तर जाको शुद्ध रामही ऐसा नाम भाव रघुवंशनायकही दयासिन्धु सहजही सब जीवन के सुख देनहार हैं।

यथा—अध्यात्मे

"को वा दयालुस्मृतकामधेनुरन्यो जगत्यां रघुनायकादहो।
स्मृतो मया नित्यमनन्यभाजा ज्ञात्वास्मृतो मे स्वयमेव जातः॥"
यह चित्रोत्तर है।

यथा—काव्यनिर्णये

दो० "जेई अक्षर प्रश्न के उत्तर ताही माहँ।
चित्रोत्तर तासों कहैं सकल कविन के नाहँ॥ ५६॥"

दोहा

को शंकर गुरु वागवर, शिवहर को अभिमान।
करताको अज जगतको, भरताको अज जान ६०
स्वरश्रेयस राजीव गुन, करतेहि दिठ पहिंचान।
पंचपवर्गहि युतसहित, तुलसी ताहि समान ६१

शं कहे कल्याण कर कहे करता को कल्याण करता है उत्तर गुरुके वाग कहे वचन वर कहे श्रेष्ठ भाव भगवत् सनेह उपदेशक वचन कल्याण करता है।

पुनः शिव कहे कल्याण ताको हरनहार को है अभिमान है।

पुनः जगत् को करता को है अज कहे ब्रह्मा है पुनः जगको भरता पालक को है हरिको जानो ६० राजीव कमल ताको नाम तामरस ताको गुण कहे तीसरा वर्ण रकार तामें श्रेयस कहे

कल्याणकरता स्वर जो अकार तेहि सहित करु तब राकार भई। पुनः पवर्ग 'पफबभम' ताको पंचम वर्ण मकारयुत कीन्हें 'राम' भयो तिनते दिठ पहिचान कहे सांची प्रीति करु काहेते हे तुलसी! ताही श्रीरामको आपनो हितकरता मातु और सब त्यागु ॥ ६१ ॥

दोहा

होत हरषका पाय धन, बिपति तजे का धाम।
दुखदाकुमति कुनारितर, अति सुखदायक राम ६२
बीर कौन सह मदनशर, धीर कवन रतराम।
कवनकूर हरिपद बिमुख, को कामी बशबाम ६३
कारण को कंजीव को, खं गुण कह सब कोय।
जानत को तुलसी कहत, सो पुनि अवर न होय ६४

हरष खुशी का पाये होत उत्तर धन पाये पुनः का तजे विपत्ति होत धाम कहे घर छोड़े।

पुनः तर कहे अत्यन्त दुखदा को है कुमतिवली कुमार्गी नारि अति दुःखदायक है अत्यन्त सुखदायक जीवको को है श्रीराम है दूसरा नहीं है ६२ लोक में वीर कौन है काम के बाण जो सहै चोट न आवै सो वीर है पुनः धैर्यवान् को है जो श्रीराम में रत कहे प्रीति कीन्हे है सो धैर्यवान् है पुनः कूर कहे कुटिल को है जो हरिपदारविन्दन ते विमुख है सो कूर है पुनः कामी को है जो वाम कहे नारि के वश है सोई कामी पुरुष है ॥ ६३ ॥

जीव होनेको कारण को हैं कं कहे काम कौन भांति प्रथम अमल भगवत् समरूप सोई कामनाकरि विषयबद्ध जीव भयो।

यथा—कोऊ आपनी इच्छाते मद्यपान करि आपही मतवार भयो तथा चैतन्य विषय की कामना करि जीव भयो पुनः खं कहे

आकाश ताको गुण अखण्ड व्याप्त तथा जीवात्मा व्याप्त यह साधारण सब कोऊ कहत है ता व्याप्तरूप को जानत को है गोसाईंजी कहत कि जो जानत सो।

पुनः आन न होय यह जीव नहीं है भाव जो जानत सो वही रूप ह्वै जात।

यथा—जानत तुमहिं तुमहिं ह्वै जाई॥ ६४॥

दोहा

तुलसी वरण विकल्पको, औ चप तृतिय समेत।
अनसमुझे जड़सरिस नर, समुझै साधु सचेत ६५
जासु आसु सरदेव को, अरु आसन हरिवाम।
सकलदुखदतुलसी तजहु, मध्य तासु सुखधाम ६६
चंचलातिय भजुप्रथम हरि, जो चाहसि परधाम।
तुलसीकहहिसुजन सुनहु, यही सयानप काम ६७

वाइति विकल्पे विकल्प को वरण कहे वा।

पुनः चप कहे 'चटतकप' ताको तृतीय वरण तकार तेहि सहित कीन्हेते वात भयो ताको गोसाईंजी कहत कि वेदपुराण को सम्मत गुरुमुख की कही वात भाव जगकी आश झूंठी हरिशरण सांची इत्यादि को अनकहे विना समुझे नरदेह चैतन्य तेऊ जड़ कहे पशुकी समान हैं।

पुनः जो समुझै भाव वेद पुराण गुरुवचन में यथार्थबोध होइ जिनको तेई सचेत साधु है॥ ६५॥

देवनको सर मानसर सोई आसु कहे स्थान है जासु कहे जिनका सो कौन है मराल ताके मध्य रा।

पुनः हरि की वाम लक्ष्मी ताको आसन कमल ताके मध्य में

मकार दोऊ मध्य वर्ण मिले 'राम' भयो सोई अकारण हितकार जीव के सुखधाम श्रीराम हैं तिनको भजौ।

पुनः मराल की 'राकार' निकारे रहो मल सो पाप को नाम है सो तमोगुण ते होत।

पुनः कमल की मकार निकारे रहो 'कल' कल सुन्दरे को कही सुन्दरे की चाह रजोगुणते होत सो तमोगुण रजोगुणादि सकल दुःख देनहार हैं तिनको तुलसी तजौ सतोगुण ते श्रीराम को भजहु ॥ ६६ ॥

चञ्चल पारा ताको आदि वर्ण हरिवेते रही रा।

पुनः तिय कहे वाम ताको आदि वर्ण हरेते रही मकार दोऊ मिले 'राम' भयो गोसाईजी कहत हे सुजन ! सुनहु जो सर्वोपरि साकेत धाम की प्राप्ति चाहौ तौ श्रीरामको भजौ जीव कोसयानप काम एक यही है और सब अज्ञानता है ॥ ६७ ॥

दोहा

कुलिशधर्म युग अन्तयुत, भजु तुलसी युतकाम।
अशुभहरण संशयशमन, सकलकलागुणधाम ६८
श्रीकरको रघुनाथ हर, अनयश कह सबकोय।
सुखदाको जानत सुमति, तुलसी समता दोय ६९
वैर मूल हित हर वचन, प्रेम -मूल उपकार।
दोहा सरल स्नेहमय, तुलसी करे विचार ७०

कुलिश वज्र ताको नाम हीरा ताकी अन्त रा।

पुनः धर्म के अन्त मकार युग कहे दोऊ युत कीन्हे 'राम' भयो हे तुलसी ! सबकाम तजि श्रीरामको भजौ कैसे हैं श्रीराम कि हितवस्तु की हानि आदि जो अशुभ ताके हरणहार हैं।

पुनः संशय जो कुतर्क ताके शमन कहे नाशकर्ता हैं पुनः माया कृत उत्पत्ति पालन संहारादि अनेकन कलाके धाम हैं अरु दया शीलादि दिव्यगुणन के धाम कहे स्थान हैं ॥ ६८ ॥

श्री कहे लक्ष्मी ताको करनहार।

पुनः अनयश कहे विपत्ति ताके हरणहारे को हैं एक श्रीरघुनाथै जी है ऐसा प्रसिद्ध सब जानत कहत हैं।

पुनः सुख देनहार को है गोसाईजी कहत कि सबसों सुमति सहज प्रीति राखना समता कहे सबको एकदृष्टि देखना ये दोऊ सुखद हैं तिनको जानहु धारण करहु ॥ ६९ ॥

वैर काहेते होत जो परारे हितके हरणहार वचन कहना सोई वैरकी मूल कहे जर है।

पुनः प्रीति काहेते होत जो काहूको उपकार कहे हित सहाय करना सोई प्रेम होने की जर है ताते प्रीति वैर दो कहे दोऊ हा कहे नाश करिकै भाव न काहूते प्रीति न काहूते वैर यह तुलसी विचारिकै कहत कि सब जगते एकरस सहज स्वभाव ते रहना योग्य है ॥ ७० ॥

दोहा

प्रागकवन गुरु लघुजगत, तुलसी अवर न आन।
श्रेष्ठाको हरिभक्त सम, को लघु लोभ समान ७१
वरन निरय नाशक निरय, तुलसी अन्त रसाल।
भजहु सकल श्रीकरमदन, जनपालकखलसाल ७२
चपश्रेयस स्वरसहित गुनि, यम युत दुखद न आन।
तुलसी हलयुत ते कुशल, अन्तकार सहजान ७३

प्रागकहे बड़ा गुरुते कौन है कोऊ नहीं काहेते श्रेष्ठा कहे श्रेष्ठ पद देनहारी हरिभक्ति सम को है कोऊ नहीं तेहि भक्ति के देनहार गुरु हैं ताते गुरुते और बड़ा आन कुछ नहीं है गोसाईंजी कहत कि जगते लघु कोहै कोऊ नहीं काहेते लोभसम लघुता देनहार को है कोऊ नहीं तेहि लोभको उपजावनहार है जग ताते जगते और लघु कुछ नहीं है ७१ निरय नरकके नाशकर्ता नारायण ताको द्वितीय वरण रा।

पुनः रसाल कहे आम ताके अन्त मकार दोऊ मिले 'राम' भयो तिनको भजहु कैसे हैं 'श्रीराम' सकल मकार की श्री जो ऐश्वर्य ताके सदन कहे घर हैं अरु जन दास प्रह्लादादिके पालनहार अरु खल जो भक्तविरोधी तिनके नाशकर्ता हैं ७२ चप कहे 'चटतकप' तिहि ते लीन ककार।

पुन॰ श्रेयस कल्याणकर्ता स्वर अकार सहित कीन्हेते काम भयो ञम कहे 'ञणनङम' ताकी मकार मिलायबेते 'काम' भयो सो कामते दुःख देनहार आन कुछ नहीं है ताते काम त्यागिवो उचित है।

पुन॰ "रलयोस्सावर्ण्यं वा वक्तव्यम्" रकार लकारकी सावर्ण्यता कीन्हेते हल शब्दको हर भयो ताके अन्त रकारको इकारयुत कीन्हें ते हरि भयो सो हरि सनेहयुत रहेते आपनी कुशल जान यह विचारि हरिभक्ति करना उचित है ॥ ७३ ॥

दोहा

तुलसी जग गनबोधबिन, कहुकिमि मिटै कलेश।
ताते संतगुरु शरण गहु, याते पद उपदेश ७४
भगणजगणकासों करसि, राम अपर नहिं कोय।

तुलसी पतिपहिंचानबिन, कोउतुलकबहुँ न होय ७५

जग औ मन दोऊ शब्दनते आदि वर्ण लै मिलायेते 'जा' भयो अन्त वर्ण मिलाये 'मन' भयो सो गोसाईंजी कहत कि जग की वासना में मन फँसा ताते दुःखित है सो बिना ज्ञान बोध भये कहाँ कलेश कैसे मिटै ताते सद्गुरुकी शरण गहु तब ज्ञान पदको उपदेश देइ तब स्वस्वरूप की पहिंचान होइ तब हरिरूपकी प्राप्ति होइ कलेश मिटै ७४ भगनादि गुरु सो तामस में होत जगन मध्य गुरु सो विरोध है भाव तमोगुण करि विरोध कार्सों करत इसि अथवा भगण सुखद सों प्रीति हैं जगण दुःखद सों विरोध है सो प्रीति विरोध कार्सों करसि अथवा भगण दासगण जगण उदास गण सो दासता उदासता कार्सों करसि सब जग सों एकरस रहिबो उचित है काहेते सर्वभूतात्मा में व्याप्त श्रीरामही हैं कोऊ अपर नहीं है सो गोसाईंजी कहत कि जीव के पति रघुपति की पहिंचान बिना भये कोऊ जीव तुल कहे शुद्ध नहीं होत चञ्चलता नहीं जात युवती पति पहिंचान होतही शुद्ध है जाती तथा जीव हरि प्राप्ति भये पर समता आवत ॥ ७५ ॥

दोहा

तुलसी तगण विहीन नर, सदा नगण के बीच।
तिनहि यगण कैसे लहै, परे सगण के कीच ७६
इन्द्रवनि सुर देवऋषि, रुकुमिणिपतिशुभजान।
भोजनदुहिता काक अलि, आनँदअशुभसमान ७७

तगण को फल शून्य उदासीनता ।

पुनः तगण को फल सुख सो गोसाईंजी कहत कि जे नर तगण कहे लोकते उदासीनता करि विशेषहीन हैं अरु नगण कहे

लोकसुख के बीच परे हैं तिन्हैं यगण कैसे लहै यगण को फल है बुद्धि वृद्धि उनकी बुद्धि दृढ़ता कैसे पावै अबुधदशा में रहेते सगण के कीच में परे सगण को फल है मृत्यु ताको कीच चौरासी में परे ७६ इन्द्रवनि इन्द्राणी तीनिउ गुरु मगण है ऽऽऽ भूमि देवता श्रीको दाता ।

पुनः सुर कहे अमर तीनिउँ लघु ।।। नगण है शेष देव सुखदाता इन द्वौकी मित्रसंज्ञा है देव । ऋषि नारद आदि गुरु ऽ।। भगण है चन्द्रदेव । यशदाता रुक्मिणिपति बिहारी आदि लघु । ऽऽ यगण हैं जलदेव वृद्धि बुद्धि को दाता इन द्वौकी दाससंज्ञा है 'म,न, भ,य' चारिहू गण शुभ हैं कवित्तादि में देवे योग्य हैं ।

पुनः भोजन कहे अहार मध्यगुरु ।ऽ। जगण है रवि देवता रोगदाता उदाससंज्ञा ।

पुनः दुहिता पुत्रिका मध्य लघु ऽ।ऽ रगण अग्निदेव दाहदाता शत्रुसंज्ञा ।

पुनः काकनाम बलिभुक् अन्त गुरु ।।ऽ सगण कालदेव मृत्युदाता शत्रुसंज्ञा अलि कहे शारङ्ग अन्त लघु तगण आकाश देव शून्यदाता उदाससंज्ञा है 'र स त ज' ये चारिगण आनन्दहू में अशुभसम दुःखद हैं कवित्तादि में देवे योग्य नहीं हैं ॥ ७७ ॥

दोहा

कोहित सन्त अहित कुटिल, नाशकको हित लोभ ।
पोषक तोषक दुखद अरि, शोषक तुलसी क्षोभ ७८
सदा नगण पद प्रीति जेहि, जासु नगण समताहि ।
थगण ताहि जययुत रहत, तुलसी संशय नाहि ७९

या दोहा में द्वै अर्थ हैं प्रथम आठौ गणन को फल ।

यथा—मगण कैसाहै हित है भाव मङ्गलकर्ता नगण कैसाहै सन्तहै बुद्धि सुखदाता ये दोऊ कोहैं हित कहे मित्र।

पुनः जगण कैसाहै अहित है भाव रोगकर्ता।

पुनः तगण कैसो है कुटिल है भाव शून्य भ्रमणदाता ये दोऊ को हैं हितनाशक भाव उदाससंज्ञक हैं।

पुनः यगण कैसा है पोषक कहे धनवर्धक।

पुनः भगण कैसा है तोषक अर्थात् यशदायक ये दोऊ को हैं हित के लोभी भाव सेवकसंज्ञा है।

पुनः रगण कैसो है दुःखद अर्थात् दाहक सगण कैसो है प्राणशोषक मृत्युदायक क्षोभ कहे उच्चाटकर्ता ये दोऊ को हैं अरि शत्रुसंज्ञक है।

पुनः चित्रोत्तरार्थ जैसे हित को है सन्त अहित को है कुटिल नर हितको नाशक को है लोभ पोषक पुष्टकर्ता को है तोषक संतोषकर्ता।

पुनः दुःखद को है अरि फिर आपनो शोषक को है गोसाईंजी कहत कि मनको क्षोभ ७८ अब द्विगुण फलको विचार कहत पद कहे कवित्तादि के दोऊ पदन में पूर्व नगण देनो उचित है अथवा आसों प्रीति है अर्थात् 'मगण' सोऊ नगणसम जान भाव नगण मगण येई दोऊ चरणादि में दीजे अथवा प्रथम चरण में मगण नगण होइ तौ दूसरे चरण में यगण देवेते ताहि को फल जययुत रहत वाको जय देनहार है गोसाईंजी कहत यामें संशय नहीं है ॥ ७९ ॥

दोहा

भगणभाक्किर भरमतजि, तगणसगण बिधिहोइ।
सगणसुभाय समुझितजो, भजे न दूषण कोय ८०

शृङ्गज अशन सयुक्तयू, विहरत तीर सुधीर।
यज्ञ पापमय त्राणपद, राजत श्रीरघुवीर ८१

यथा—यगण है ताही भांति भगण भी भक्तिकर कहे दासगण है ताहू को भ्रम तजिकै दीजै 'मनभय' ये चारिहू गणन में भ्रम नहीं दोऊ पदादि चहै तौन परै निस्सन्देह दीजै अब चारि गण वाकी हैं ताको कहत कि तगण सगणही की विधि होत है भाव तगण जगण यद्यपि उदास गण है सगण रगण शत्रुगण है सो उदास भी शत्रुगण की विधि फलदायक है ताते एक सगण को फल समुझिकै भाव मृत्यु को दायक है यह जानि सुभाय कहे सहजही ये चारिहू गण त्यागकरौ अरु मगणादि पूर्व के भजे नाम ग्रहण कीन्हें फिरि कुछ दूषण नहीं है ८० शृङ्गज कहे धनुष ताको अशन भोजन सर तामें यू संयुक्त कीन्हें ते 'सरयू' भयो ताके तीर धैर्यवान् श्रीरघुवीर विहरत हैं कौनभांति यज्ञ कहे मख पाप कहे मल भाव मखमलमय पदत्राण पनहींमात्र पावन में राजत सोऊ कोमल मखमल को यह भाव कि यज्ञकर्ता पापकर्ता पावन की शरण आये दोऊ बरोबरि पद पावत हैं धीरवीर हैं ताते पनहींमात्र पहिरे और कोऊ संग नहीं है ॥ ८१ ॥

दोहा

वाणसयुत यूतट निकट, विहरत राम सुजान।
तुलसी करकमलन ललित, लसत शरासनवान ८२
मृदु मेचक शिररुह रुचिर, शीशतिलक भ्रूबङ्क।
धनुशरगहि जनुतड़ितयुत, तुलसी लसतमयङ्क ८३

हंसकमल बिच वरणयुग, तुलसी अति प्रियजाहि।
तीनि लोक महँ जो भजे, लहे तासु फल ताहि ८४

बाणको नाम सर ताके आगे यू संयुत कीन्हेंते 'सरयू' भयो ताके तट किनारे के निकट श्रीराम सुजान विहार करत हैं सो गोसाईंजी कहत कौनी भांति शरासन जो धनुष अरु बाण ललित कहे सुन्दर करकमलन में लसत कहे सोहत है ॥ ८२ ॥

यथा—मुखशोभा वर्णन

मृदु कहे कोमल मेचक कहे श्याम शिररुह जो बार रुचिर रसीले चमकदार शोभित शीश पै केसर को तिलक भ्रू भौहैं बङ्कनाम टेढ़ी हैं सो कैसी शोभा है गोसाईंजी कहत जनु धनुर्बाण गहे बिजली सहित सुन्दर चन्द्रमा विराजमान है इहं भौंह धनु तिलक बाण अलक झलक बिजली श्यामता मेघमुख चन्द्रमा यामें उत्प्रेक्षालंकार है ८३ हंसनाम मराल ताके बीच में 'रा' कमलके बीचमें 'म' दोऊ मिले 'राम' भयो ये जो दोऊ वर्ण हैं श्रीरामनाम सो जाको अतिप्रिय है ताको गोसाईंजी कहत कि तीनों लोकों में वैदिक तान्त्रिक पुरश्चरणादि यावत् रीतियां हैं तिन करिकै कौनौ मन्त्रादि ते जो कोऊ भजै ताको फल जौन फल लहे प्राप्त भये तासु कहे ताही फलकी प्राप्ति जाकी प्रीति श्रीराम नाममें है ताहि सुमिरणमात्र ही प्राप्त होत है।

यथा—पद्मपुराणे

"ये ये प्रयोगास्तन्त्रेषु तैस्तैर्यत्साध्यते फलम्।
तत्सर्वं सिध्यति क्षिप्रं रामनाम्नैव कीर्तनात् ॥ ८४ ॥"

दोहा

आदि म है अन्तहु म है, मध्य र है सो जान।
अनजाने जड़जीव सब, समुझैं सन्त सुजान ८५

आदि द है मध्ये र है, अन्त द है सो बात।
राम विमुख के होत है, राम भजन ते जात ८६
ललितचरणकटिकरललित, लसतललित बनमाल।
ललितचिबुकद्विजअधरसह,लोचनललितबिशाल८७

आदि मकार मध्य रकार अन्त मकार ताको भयो 'मरम' सो श्रीरामनाम को मरम जान भाव मरमी है सत्संग करु जब 'मरम' जानि जायगो तब मन में समुझिकै सुजान सन्त हैजायगो अरु अनकहे विना मरम जाने सब जीव जड़ है पशुसम ८५ आदि दकार मध्य रकार अन्त दकार सो बात भई दरद सो 'दरद' श्रीराम विमुखनके होत है।

पुनः श्रीरामभजनते 'दरद' जात।

यथा—भविष्योत्तरे

"गमिष्यन्ति दुराचारा निरये नात्र संशयः।
कथं सुखं भवेद्देवि ! रामनामबहिर्मुखाः॥"

पुनः नृसिंहपुराणे प्रह्लादवाक्यम्

"रामनाम जपतां कुतो भयं सर्वतापशमनैकभेषजम्।
पश्य तात मम गात्रसन्निधौ पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना॥ ८६॥"

अरुण कोमल कमलसम ललित चरणन में दिव्यपदत्राण सजत सिंहसम ललित कटिमें पीताम्बर दिव्य तरकस शोभित ललित कर कमलन में सुन्दर धनुर्बाण शोभित ग्रीव हृदय उदर नाभिजानुपर्यन्त ललित वनमाल कहे तुलसी, कुन्द, मन्दार, पारिजात, कमलादि फूलन को माल शोभित चिबुक दाढ़ी ओठपल्लव सहित कुन्दकलीसम दांत सहित लोचन भाव मुखमण्डल ललित विशाल भाल पर तिलक मुकुट शोभित इति नखशिख सुन्दर रूप ध्यान करु॥ ८७॥

दोहा

भरण हरण अव्यय अमल, सहित विकल्पविचार।
कह तुलसी मति अनुहरत, दोहा अर्थ अपार ८८
वरिष्ठादि लंकार महँ, संकेतादि सुरीत।
कहे बहुरि आगे कहव, समुझव सुमति विनीत८९
कोप अलंकृत सन्धि गति, मैत्री वरण विचार।
हरणभरण सुविभक्तिवल, कविहि अर्थ निरधार ९०

भरण कहे ग्रहण।

यथा—वरणमैत्री शब्द शुद्धगण विचार छन्दमबन्ध पदार्थ भूषणामूल रसाङ्ग पराङ्ग ध्वनि वाक्यादि अलंकार गुणचित्रतुकान्त दूषणके भूषण इत्यादि भरण इनते विपरीत को त्याग सो हरण है।

पुनः 'च वा ह एव एवम्' इत्यादि अव्यय।

पुनः अकार मकार कहे निषेध लकार कहे लघु ताको सहित विकल्प भाव लघुको गुरु गुरुको लघु मानना इत्यादि को विचार सहित दोहा को अर्थ अपार है गोसाईंजी कहत कि आपनी मति की अनुहार ते समुझौ ८८ साहित्य विद्या सो वरिष्ठालंकार के भेदमें सांकेतादि कूटरीति आदि सुन्दर कहे।

पुनः आगे कहव ताको विशेष नीतिमान् सुन्दर मतिवाले समुझैंगे ८९ कोष जामें सबके नाम जानेजात।

यथा—स्वर्गको स्वः।

पुनः वाचकधर्मोपमानोपमेयादि सवसों पूर्णोपमालंकृत है।

यथा—अरुण अम्बुजसम चरण तथा संधिगति कहे 'इ अ'

मिले 'य' 'उ अ' मिले 'व' 'अ इ' मिले 'ए' इत्यादि वर्ण दूसरे को चपकि जायँ सो वर्णमैत्री जैसे राम इत्यादि को विचार और हरण कहे वर्णको लोप जैसे ते+अत्र। तेऽत्र।

पुनः भरण कहे वर्णको आगम जैसे गो+इंन्द्रः। गवेन्द्रः।

पुनः शब्द विभक्ति को पाय अर्थ वदलिजात सो सात प्रकार।

यथा—"रामो[1] मेऽभिहितं करोतु सततं रामं भजे सादरं
रामेणापहृतं समस्तदुरितं रामाय दत्तं धनुः।
रामान्मुक्तिरभीप्सिता सरभसं रामस्य दासोस्म्यहम्
रामे राजतु मे मनः करुणया हे राम मामुद्धर॥"

इत्यादि विभक्तिवल ते कविजन अर्थ को निर्द्धार कहे प्रकट करत हैं॥ ९०॥

दोहा

देश काल करता करम, बुधि विद्या गति हीन।
ते सुरतरु तर दारदी, सुरसरितीर मलीन ९१
देश काल गति हीन जे, करता करम न ज्ञान।
तेपि अर्थ मग पग धरहिं, तुलसी श्वानसमान ९२

देश कहे जैसा देश वर्णन तैसा शब्दको अर्थ करिबो उचित।

यथा—"व्रजमें बाजी बांसुरी, मगमें बाजी घोर।
बाजी बाजी बात सुनि, होत चकित चित मोर॥"

काल कहे जैसा समय होय तैसा शब्दको अर्थ।

---

१ रामो राजमणिः सदा विजयते रामं रमेशं भजे रामेणाभिहता निशाचरचमू रामाय तस्मैनमः। रामान्नास्ति परायणं परतरं रामस्य दासोस्म्यहं रामे चित्तलयः सदा भवतु मे हे राम मामुद्धर॥

यथा—"भोर उदय सो सूर्य है, निशा उदय सो चन्द।
सुखमोदय सो पुण्य है, दुखमोदय अघमन्द ॥"

कर्ता, कर्म, क्रिया जैसे देवदत्तः ओदनं पचति, देवदत्तः कर्ता ओदनं (भातु) कर्म पचति (चुरवत) क्रिया है बुधि कहे वचन सुनतही भाव समुभिजाय विद्या व्याकरण साहित्यादि की गति करि जे हीन है ते सुरतरुरूप हरि यश ग्रन्थ ताके तर कहे सदा सुनत वाको अर्थ रूप फल विना पाये भव शोक करि दारदी है।

पुनः वाणीरूप सुरसरिके तीर हैं विना समुभरूप मज्जन कीन्हें अज्ञान करि मलिन हैं ६१ जे देशकाल की गति करिकै हीन हैं।

पुनः कर्ता कर्म को ज्ञान नहीं है ते अपि कहे निश्चय करिकै अर्थ की मगपर पगधरत अर्थ कहत तिनको गोसाईंजी कहत तिनको कहनो श्वानसम भूकनो है जैसे एक को भूकत सुनि सब विना विचारही भूकत हैं ॥ ६२ ॥

दोहा

अधिकारी सब ओसरी, भलो जानिवो मन्द।
सुधासदन वसु वारहौं, चौथे अथवा चन्द ६३
नरवर नभ सरवर सलिल, विनय वनज विज्ञान।
सुमति शुक्तिका शारदा, स्वाती कहहि सुजान ६४

समुभदारी की दृष्टान्त देखावत ओसरी कहे ओसर पाय सब सब वस्तु के अधिकारी होते हैं भाव जे बुरे स्वभाव के हैं तेऊ समय पायकै भलाईके अधिकारी होते हैं।

यथा—शनि सदैव बुराईके कर्ता प्रसिद्ध है भाव जिनको नागरी

मन्द हैं तेऊ तिसरे पँचयें छठयें नवयें गेरहें इन स्थानन में मन्द जो शनैश्चर सोऊ भलो जानिबो।

पुनः चन्द्रमा सदा सुखद है जाको नामही सुधासदन है सोऊ अवसर पाय बुराई करत।

यथा—वसु कहे आठयें वारहें चौथे इन स्थानन में हानि करत।

पुनः अथ कहे जन्मको चन्द्र युद्धमें घातक।

पुनः वा कहे त्रिकस्थे जन्मको चन्द्रमा ब्याहादि में शुभ इत्यादि सब बातें विद्या बुद्धि करि जानी जात तैसे सब प्रकारके अर्थ में विचार समुझौ ९३ अब कवित्तरूप मोती की उत्पत्ति सुजनमन मानसरते यथा श्रेष्ठ नरहरिभक्त कवि तिनके सुंदर चित्त व्योम हैं चिन्तन मेघ हैं शारदा स्वाती नक्षत्र है सुविद्या जल है अमलमन मानसर है विनय कहे नम्रता और विज्ञान कमल प्रफुल्लित है सुन्दर मति सुबुद्धि सीपी है विद्या में सुन्दरविचार सुन्दर जलको वर्षना है कवित्त मुक्ता है ऐसा सुजनजन कहत हैं ॥ ९४ ॥

दोहा

शम दम समता दीनता, दान दयादिक रीति।
दोष दुरित हर दर दरद, उरवर बिमल बिनीत ९५
धरमधुरीण सुधीर धर, धारण वर परपीर।
धराधराधरसम अचल, बचननबिचल सुधीर ९६
चौंतिस के प्रस्तार में, अर्थ भेद परमान।
कहहुसुजन तुलसीकहहि, यहि बिधिते पहिंचान ९७

शम कहे मन आदि वासना त्याग दम कहे इन्द्रिनकी विषय त्याग समता सब भूतमात्र में एकदृष्टि देखना दीनता अमान रहना दानदयादि कहे सत्य शौच दान, दयादिकी रीतिपर रहना इन

करिकै का होत है दोष जो कामादि अवगुण दुरित जो पाप तिनको हर कहे नाश करत।

पुनः दैहिकादि तापनकी 'दरद' ताको दर कहे दलि डारत तव उर विमल होत सुभाव विनीत कहे नम्रता आवत सोई श्रेष्ठजन भक्तिको पात्र है॥ ६५॥

पुनः सुजन काको कही जे धरम की धुरी के भार धारण करिवे में सुन्दर धैर्यको धरे हैं भाव धर्म को कैसहू भार परै तामें धैर्य न छांड़ै।

पुनः पराई पीर को आपने ऊपर धरिलेने में वर कहे श्रेष्ठ भाव परदुःख देखि दुःखी होना यह करुणागुण है।

पुनः धराभूमि धराधर पहार तिन सम अचल कैसे धैर्यवान् जिनको वचन कबहूं विचलत नहीं जो कहत सोई करत तेई भक्ति के पात्र हैं॥ ६६॥

कखगादि सह क्ष अन्त चौंतिस अक्षर को प्रस्तार है तामें वरणगनती अङ्कते भेद समुझौ।

यथा—क १ क्ष ३४ यहि विधि प्रतिअक्षर गनती अङ्क पहिंचान करि सुजन अर्थ कहौ यह बात तुलसी बताये देत हैं॥ ६७॥

दोहा

वेद त्रिपम कवरन्न सतर, सुतर राम की रीति।
तुलसी भरत न भरिहरत, भूलिहरहुजनिभीति ६८
वाते गुन कह जानिये, ताते दिग छिद तीन।
तुलसीयहजियसमुझिकरि, जगजितसन्तप्रवीन६६

कवरण जो ककार ताते वेदनाम चौथा वरण।
यथा—'क,ख ग घ' घकार लेना।

पुनः ककार ते बीसवां बरण नकार लेना दोऊ मिले घन भयो।

पुनः सुतरु कहे कल्पवृक्ष जैसे ये दोऊ निर्हेतु उदार दानी तत्काल फल देत भरिकै।

पुनः इरत नहीं तैसे श्रीरघुनाथजी की रीति है कि सतर नाम शीघ्रही सब फल देत दैकै।

पुनः लेते नहीं भाव शरणागत को।

पुनः काहू की भय नहीं राखत।

यथा—मम प्रण शरणागत भयहारी।

वाल्मीकीये

"सकृदेवप्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥"

ताते गोसाईंजी कहत कि श्रीरघुनाथजी की प्रीति सदा बनाये रहौ भूलिहूकै न हरो काहेते ऐसा स्वभाव और को नहीं है॥६८॥

व ते कहे बकार ते गुणनाम तीसरा बरण।

यथा—ब, भ, म मकार लेना।

पुनः ताते तकारते दिग द्वि दिग दश दुइ बारह भये तकारते बारहौं बरण रकार लेना।

पुनः द तीन दकार ते तीसरो बरण नकार सब मिलि भयो मरण सो गोसाईंजी कहत कि संसार में एक दिन मरण निश्चय है यह आपने जीव में समुझि जे प्रवीण सन्त हैं ते जगको जीति लीन्हें जन्म मरणते रहित भये कि जो एक दिन मरना है तो लोकसुख सब वृथा।

भागवते

"रायः कलत्रं पशवः सुतादयो गृहा महीकुञ्जरकोषभूतयः।
सर्वेर्थकामाः क्षणभङ्गुरायुषः कुर्वन्ति मर्त्यस्य कियत्प्रियंचलाः॥६६॥"

दोहा

चन्द्र अनल नहिं हैं कहूं, झूठो विना विवेक।
तुलसी- ते नर समुझिहैं, जिनहिं ज्ञानरस एक१००
सतसैया तुलसी सतर, तम हर परपद देत।
तुरित अबिद्याजनदुरित, बरतुलसम करि लेत १०१

इति श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासविरचितायांसांकेतवक्रोक्तिराम-
रसवर्णनस्तृतीयस्सर्गः ॥ ३ ॥

अब जगको सुख दुख सब झूंठा देखावत ।

यथा—चन्द्रमा शीतल सुखद है अग्निदाहक दुखद है सो सुखद दुखद कहीं कुछ नहीं हैं सुख दुख सब झूंठा है विना विवेक अर्थात् अज्ञान दशा में सुख दुख माने हैं ताने जगको व्यवहार सब झूंठा है गोसाईंजी कहत कि जिनको ज्ञान एकरस है सदा ते नर यहि बात को समुझिहैं अज्ञानी तौ संसारही को सांचा माने हैं ॥ १०० ॥

गोसाईंजी कहत कि यह सतसैया कैसी है कि जे सज्ञान जीव हैं ते यामें मन लगावैं तौ सतर कहे शीघ्रही मोह तम हरिलेत अरु सर्वोपरि पद साकेतधाम की प्राप्ति करिदेत अरु अविद्या जन जे विषयी हैं ते यामें मन लगावैं तिनको दुरित जो पाप ताकी विषमता नाशकरि तुरतही वर कहे श्रेष्ठजन की तुल्यसम चितकरि लेत भाव यामें मन लगाये विषयी जन साधु ह्वैजात ॥ १०१ ॥

पद—एक भरोस जानकी वरको ।
वसि प्रभु धाम नाम भजिमुख करि लीलादग उर शारङ्गधरको १
श्रवणकथा शिरनाय स्वामि पद कारज राम जहां लगि करको ।
भालतिलक भुज अङ्ग बाण धनु तुलसीदास विभूषण गरको २

करमयोग वेदान्त सांख्यमत तत्त्वविचार निरक्षर क्षरको।
ज्ञान विराग त्याग तप संयम सब फल सार भजन रघुवर को १
नवनिधि आठ सिद्धि नाना सुख त्यागि आश विश्वास अपरको।
बैजनाथ बलिजाउँ सुयश सुनि सुरतरु कर रघुनाथकुँवर को ॥४॥

इति श्रीरतिकलताश्रितकल्पद्रुमसियवल्लभपदशरणबैजनाथ-
विरचिते सप्तशतिकाभावप्रकाशिकायां सांकेतवक्रोक्ति-
प्रकाशो नाम तृतीयप्रभा समाप्तम् ॥

दो०—श्रीरामादि नमान्त भजु, सीतायै रामाय।
उर प्रभु पङ्कज रूप नित, भवसागर तरनाय ॥ १ ॥
विषयन साथ अनाथ फिर, लागत हाथ न पाथ।
जबलग नवत न माथ पद, सीता सीतानाथ ॥ २ ॥

चौपाई

उपमादिक लंकृत पढ़िजाही। कवि गुरुमुख बिन सूझत नाहीं॥
मीनादिक रेखा नहिं पायो। सामुद्रिक पढ़ि गुरु चिन्हायो॥
देखत फिरत नरतनहिं आयो। गुरु कलाँउत आनि सिखायो॥
अतिपटु अश्व कहां गुण पावत। है सवार गुरु तुरत सिखावत॥
दम्पति पशुवत रमि नहिं आवत। गुरुमुख कोक कला सुख पावत॥
पद पढ़ि छन्द भेद नहिं पावत। पिङ्गल पढ़ि गुरु भेद बतावत॥
सिन्धु अपार पार किमि जावत। प्लव आदिक गुरुयुक्ति बतावत॥
धनुषवाण कर धरि नहिं आवत। गुरु मुख सिखि स्वइफूल उड़ावत॥

दो०—कर्म क्रिया कर्ता करण, तद्धित सन्धि समास।
कारक कृच विभक्ति दिय, गुरु व्याकरण विलास॥

चौपाई

लग्न योग भा दिन तिथि करणा। गुरुमुख ज्योतिषपढ़ि फल बरणा॥
कर्म धर्म कोउ जानि न पावै। वेद पदाय गुरु समुझावै॥

राग ताल स्वर भेद न पायो। गुरु सांगीत पढ़ाय सिखायो॥
स्वर्ण रूपरस रचि किमि आवत। गुरु रसायन क्रिया सिखावत॥
आतमचेतन शुद्ध स्वरूपा। निर्विकार आनन्द अनूपा॥
विषय स्वइच्छित मदकारि पाना। है मदान्ध निजरूप भुलाना॥
भरमत फिरत जगत दुखमाहीं। कालस्वभाव कर्मगुण ताहीं॥
प्राची दिशि को जावनहारा। भूलि दिशा पश्चिम पगु धारा॥

दो०—अग भेषज जग ज्ञान गुण, सुगम अगम विन नाम।
समुझि परत गुरु ज्ञानते, त्यों अग नग में राम॥
पास लिहे जिमि वस्तुको, ढूंढत फिरत भुलान।
तिमि निज रूप भुलान जग, समुझि परत गुरु ज्ञान॥

इति भूमिका समाप्ता॥

दोहा

त्रिविधिभांति को शब्दवर, विघटन लटपरमान।
कारन अविरल अलपियत, तुलसी अविधभुलान १

नमस्कार श्रीरामपद, गुरुपद रज धरि शीश।
सिय करुणा वलतारि चहत, आलम बोध नदीश॥

यथा—अब चैतन्यरूप वद्ध जीव होनेको कारण कहत प्रथम वासना ते सतोगुण भयो याते इन्द्रिनके देवता भये तहांतक ज्ञान बुद्धि निर्मल रहत।

पुनः रजोगुण भयो ताते इन्द्रिन की विषय भई तब लोभ लिये व्यवहार करन लगो।

पुनः तमोगुण भयो ताते सब इन्द्रिय भई तब मोह वश ते आलस्य निद्रा विकलता भई तब शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पाँचौं विषयन के वश है जीव बद्ध भयो सो प्रथम शब्द में

भुलाने को कारण कहत सो शब्द तीनि भांतिको प्रथम ध्वन्यात्मक जो सहनाई वीणादि बाजा ते प्रकट होत दूसरा वर्णात्मक जो मुख ते पुष्टाक्षर उच्चारण होत तीसरा श्रवणात्मक जो नित्य व्योम व्याप्त सा शब्द वर कहे श्रेष्ठ अर्थात् प्रतिपादन।

पुनः विघटन कहे खण्डन भाव ग्रहणयोग्य त्यागयोग्य दोऊ कैसे उरझे लटपरमान।

यथा—खण्डित अखण्डित केश जूट में लपटे रहत निर्वार दुर्घट तैसे सत् असत् वचन अविरल कहे सघन अल कहे परिपूर्ण लोक में है तिनको पियत श्रवणपुट पान करत सन्ते गोसाईंजी कहत कि त्रिविध शब्दन में जीव भुलायगयो भाव दोऊ सुनत तामें विधितौ भूले निषेध ग्रहण करि जीव बद्ध भये॥ १॥

दोहा

दिगभ्रम जा बिधि होत है, कौन भुलावत ताहि।
जानिपरत गुरु ज्ञानते, सब जग संशय माहि २
कारण चारि बिचारु बर, वर्णन अपर न आन।
सदा सोऊ गुण दोषमय, लखिनपरत बिन ज्ञान ३

कौनभांति भुलान्यो जाविधि काहूको दिशाभ्रम भयो ताहि कौन भुलावत अर्थात् पूर्वको जावा चाहत भ्रमवश पूर्वमाने पश्चिमको चलाजात ताइति काहू चैतन्य पुरुष ते पूछो ताने बताइ दियो कि पूर्वदिशा यह है सो मानि वैसही चलो जात जात कबहूं पहुँचिजायगो तैसेही जगमें सब जीव पूर्वस्वरूप भूलि विषयरूप पश्चिम दिशिको जात ताइति हरिभक्तादि चैतन्यते पूछो उसने उपदेशरूप यथार्थ दिशा बताय दिये इत्यादि गुरुकृपा ज्ञानभये ते काहू काहूको आपनो

पूर्वोक्तरूप भास होत नाहीं तौ सब जग संशय में परा है २ शब्द में भुलावे के श्रेष्ठ चारि कारण हैं।

यथा—जाति १ यदृच्छा २ गुण ३ क्रिया ४ इत्यादि चारि विचार इनते अपर आन नहीं है ये जो चारि हैं सोऊ सदा गुण दोषमय हैं।

यथा—जातिको गुण कि हम ब्राह्मण हैं धर्म कर्म न करें तौ नीच तुल्य हैं दोष।

यथा—स्वकर्म तौ जानतै नहीं अधर्म में रत अभिमान बोलत।

यथा—हम उत्तम ब्राह्मण हैं हम उत्तम क्षत्री हैं यदृच्छा स्वामी आदि महत्त्वताको गुण कि हमको सब महाराज कहत जो हरिभजन न कीन तौ महाधम हैं दोष।

यथा—झूठा पाखण्ड बनाये अभिमान बोलत कि हम साधु हम गुरु हम महात्मा हैं।

पुनः गुण रूपादि।

यथा—तामें गुण कि हम सुन्दर स्वरूप पावा भजन किया चाहिये नाहीं चौरासी को जायँगे दोष।

यथा—हमारो श्यामरूप हमारो सुन्दर गौररूप।

पुनः क्रिया विद्यादि।

यथा—तामें गुण हम वेद पढा तत्त्ववस्तु न जाना तौ हमते भले पशु हैं दोष।

यथा—विद्याको फल तौ पाये नहीं अभिमान ते कहत हम पण्डित गुणी कविहैं इत्यादि में मूल बिना ज्ञान आपनो रूप लखि नहीं परत कि हम को हैं ॥ ३ ॥

दोहा

यह करतब सब ताहिको, यहिते यह परमान।

तुलसी मरम न पाइहो, बिन सद्गुरु बरदान ४
दिग्भ्रम कारण चारिते, जानहिं सन्त सुजान।
ते कैसे लखिपाइ हैं, जे वहि बिषम भुलान ५

यह जीव जाको अंश है ताही श्रीरघुनाथजी को यह शब्दादि विषय को कारतव है ताही ते यह भी परमान कहे साची देखात याही ते अगम है ताते वर जो सर्वोपरि श्रेष्ठ श्रीरघुनाथजी तिनके विना दया दान दीन्हें बिन सद्गुरु के लखाये हे तुलसी ! विषय को मरम कहे गुप्त हाल न पाइहौ ताते-सद्गुरु ते उपदेश लैकै श्रीरघुनाथजी की शरण गहौ ते जब कृपा करिहैं तब छूटिहौ ४ जाति महत्त्व विद्या रूपादि को मान इति चारि कारण ते जीवको दिग्भ्रम भयो पूर्वरूप भूलि जाति आदि अपनाको मानि लियो ताको सुजान सन्त जानत हैं अरु जे विषयकी विषमता में भूले हैं ते कैसे लखिपाइ हैं वैतौ भूलेन हैं ॥ ५ ॥

दोहा

सुखदुख कारण सो भयो, रसना को सुतबीर।
तुलसी सो तब लखि परै, करै कृपा बरधीर ६
अपने खोदे कूप महँ, गिरै यथा दुख होइ।
तुलसी सुखद समुझहिये, रचत जगत सब कोइ ७
ताबिधि ते अपनो बिभव, दुख सुख दे करतार।
तुलसी कोउ कोउ सन्तबर, कीन्हें बिरति बिचार ८
रसनाहीं के सतउपर, करत करन तर प्रीति।
तेहि पाछे जग सब लगे, समझ न रीति अरीति ९

रसना जिह्वा ताको सुत शब्द कैसा है वीर सब जीवन को जीते है ताके चारि कारण हैं कौन जाति महत्त्व विद्या स्वरूप ताही मान में जीव भुलान है ताते पाप पुण्य करत दुःख सुख भोगत सो गोसाईंजी कहत कि वर श्रेष्ठ धीरवान् जो श्रीरघुनाथजी तेई जब दया करहिं तब विषय विकार के भेद लखि परैं और उपाय नहीं है ताते दयासागर श्रीरघुनाथजी की शरण रहना योग्य है ॥ ६ ॥

यथा—आपने ही खोदे कूप में गिरे दुःख होत है सो कोऊ नहीं समुझत गोसाईंजी कहत कि जलखानि सुखदाता जानि सब जग कूप रचत भन्द स्वाभाविक तौ कूप सुखदावै है वामें गिरेते दुःख है तैसे शब्द भी हरियश आदि सुनना सदैव सुखद है जब आपही शब्द में भूला तबहीं दुःख है ऐसा समुझे रहै कबहूं दुःख नहीं है ७ जाविधि आपने खोदे कूप में गिरे ते दुःख होत ताही भांति अपने विभव कहे ऐश्वर्य में भूलि शुभाशुभ कर्म करत ताही को फल दुःख सुख कर्तार ईश्वर देत यह समुझिकै गोसाईंजी कहत कि कोऊ वर कहे श्रेष्ठ सन्तजन विरति विचार कीन्हे विरति कहे वैराग्य अर्थात् विषय विभवते आपनो मन खैंचि आपने पूर्वरूप को विचार कीन्हे भाव विषय ते विमुख है हरिशरण गहे ८ सब जग कैसा है रसना जो जिह्वा ताको सुतशब्द ताही के ऊपर करन जो कान ते तर कहे अत्यन्त प्रीति करत भाव शब्द सुनवे में कान अति प्रीति करत ताते रीति कहे करिवे योग्य अरीति कहे त्याग योग्य यह समुझ नहीं है कि का ग्रहण करिवे को यही का त्यागिवे योग्य है तेही शब्द के पाछे लाग सब जग भूला फिरत ॥ ९ ॥

दोहा

माया मन जिव ईश भनि, ब्रह्मा विष्णु महेश।

सुर देवी औ ब्रह्मलौं, रसना सुत उपदेश १०
बर्णधार वारिधि अगम, को गम करै अपार।
जन तुलसी सतसंग बल, पाये बिशद बिचार ११

ईश्वर को अंश जीव माया को अंश मन ताके संग दोष ते जीव भूला ऐसा भनि कहे वेदादि में कहा है ता जीव के चैतन्य करिवे हेतु ब्रह्मा, विष्णु, महेश, देवता, देवी इति सगुण।

पुनः ब्रह्म जो अगुण व्याप्त इत्यादि सबको उपदेशरूप शब्द वेदादि में प्रसिद्ध है तामें प्रवृत्ति निवृत्ति दोऊ वचन मिश्रित अपार जलधार है १० तहां वेद संहिता, शास्त्र, रहस्य, नाटक, पुराण, तन्त्रादि वर्णधार वारिधि समुद्र अगम कहे अथाह है तामें को गम करै को थाह पावै अपार है को पार पावै कर्म लोक किनारा है ज्ञान मध्य धार है उपासना हरिकी दिशि को किनारा है गोसाईं-जी कहत कि वर्णधार को विशद कहे सुन्दर विचार सो हरिजन सत्सङ्ग बलते पाय समुझि लिये भाव कर्मधार में परे लोकतट जाना उपासना धार में परे भगवत् के तट जाना ज्ञानधार में परे ब्रह्मानन्द सिन्धु में जाना परन्तु मध्यधारा कहर होत बूड़िवे ते बचिवो मुश्किल है अर्थात् ज्ञान के साधन कठिन हैं तामें चूकना बूड़िजाना है याते उपासना गहिवो उचित है।

यथा—गीतायाम्

"क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मद्भक्तः प्रणश्यति॥ ११॥"

दोहा

गहि सुबेल बिरले समुझि, बहिगे अपर हजार।
कोटिन बूड़े खबरि नहिं, तुलसी कहहि बिचार १२

जीवको उद्धार हरिभक्ति में है ऐसा समुझि विरले कोऊ उपासनारूप सुवेल कहे सुन्दर किनारा गहि भाव सत् असत् सब त्यागि एक किनारे है हरिशरण गहि बचे अपर इजारन कर्मधार में परि बहे ते संसार जन्म मरण में गये अरु जे ज्ञानरूप कड़रधार में परे अरु वैराग्य, विवेक, शम, दम, उपराम, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधानादि षट् संपत्ति मुमुक्षुतादि साधनरूप जहाज पुष्ट नहीं भाव साधन न है सके ते करोरिन विषयरूप जलमें बूड़े ते न मालूम कहां को गये काहेते ज्ञानी है चूकेते विशेष दण्ड के पात्र भये इत्यादि वार्ता भलीविधि ते विचारिकै तुलसी कहत तातें और उपाय में कल्याण नहीं शुद्ध हरिशरण गहौ तब पार पैहौ।

यथा—गीतायाम्

"सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच॥"

पुनः वाल्मीकीये

"सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥
यज्ञदानतपोभिर्वा वेदाध्ययनकर्मभिः।
नैव द्रष्टुमहं शक्यो मद्भक्तिविमुखैः सदा॥"

अध्यात्मे

"मद्भक्तमादरेणस्तु मनः स्पर्शनभाषणैः।
तं हितं मयि पश्यामि वरिष्टमहतामिव॥"

भागवते

"श्रेयः श्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो क्लिश्यन्ति ये केवल बोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशलएव शिष्यते नान्यथया स्थूलतुषावघातिनाम्॥१२॥"

दोहा

श्रवण सुनत देखत नयन, तुलत न बिबिधबिरोध ।
कहहु कही केहि मानिये,केहिबिधिकरियप्रबोध१३
श्रवणात्मक ध्वन्यात्मक, वर्णात्मक बिधि तीन ।
त्रिबिधशब्दअनुभवअगम, तुलसीकहहिंप्रबीन १४

श्रवण तौ सुनत कि चराचर में व्याप्त अन्तरात्मा ब्रह्म एकही है ।

यथा—"अयमात्मा ब्रह्मेत्यथर्वणस्य" महावाक्य है "अहं ब्रह्मास्मीति यजुर्वेदस्य" महावाक्य है ऐसा सुनि परत ।

पुनः नयन देखत कि चराचर एक एकन ते विविध भांतिको विरोध है ।

यथा—अग्नि जल ते पवन माटी ते पारा गन्धक ते इति अचर ।
पुनः गज सिंहादि पशु ।
पुनः देव राक्षसादि नित्य विरोध ।

पुनः खरारि, मुरारि, कामारि, तमारि, पाकारि इत्यादि शब्द प्रसिद्ध हैं ।

पुनः मत मतान्त हित हानि इन्द्रिन के स्वादादि कारण ते जो विरोध तिहते लोक परिपूर्ण है तौ सुनत में एक आत्मा देखिबे में विरोध ताते कहौ केहिकी कही वाणी मानिये केहि विधि चित्तको प्रबोध करिये भाव आपनो मत पुष्टकरि औरं को खण्डन सब करत १३ श्रवणात्मक सदा व्याप्त ध्वन्यात्मक जो बाजाते प्रकटत वर्णात्मक जो जिह्वाते प्रकटत ई तीनि विधि है सोई तीनि भांति को शब्द है तिनका अनुभव कहे यथार्थज्ञान सो अगम है काहूकी

गति नहीं जो यथार्थ जानिसकै ऐसा प्रवीण जो शेषादि ते कहत भाव एक शब्द ते प्रवीण आचार्य अनुभवते आपने मतिके अनुकूल अर्थ कल्पित करत परन्तु थाह कोऊ नहीं पावत ऐसा अपार शब्दसागर है।

यथा—सारस्वतप्रसादे

"यदा वाचस्पत्यादयो वक्तारो दिव्यवर्षसहस्रादिश्च समयस्तथापि प्रतिपदपाठेनापि पारागमनं दुस्तरम् ॥ १४ ॥"

दोहा

कहत सुनत आदिहि वरण, देखत वर्ण विहीन।
दृष्टिमान चर अचरगण, एकहि एक न लीन १५
पञ्चभेद चरगण विपुल, तुलसी कहहि विचार।
नर पशु स्वेदज खग कृमी, बुधजनमति निरधार १६
अति विरोध तिनमहँप्रबल, प्रकट परत पहिचान।
अस्थावर गति अपर नहिं, तुलसी कहहि प्रमान १७

कहत सुनत में तौ आदि वर्ण है भाव वेदन की महावाक्य। यथा—"अहं ब्रह्मास्मि" अर्थात् अन्तरात्मा व्याप्त ब्रह्म एकही है अरु देखत में वर्णविहीन अर्थात् विषमता देखात।

यथा—ब्रह्मा मोहभ्रमवश ब्रजमें बालवत्स हरे ब्रह्मवेत्ता सनकादि क्रोधवश जय विजय को शाप दिये शिव मोहनी पै कामासक्त भये और देवादि विषयासक्तन की को कहै इत्यादि चरगण दृष्टिमान् प्रसिद्ध सब देखत।

यथा—योग्य सबमें ज्ञानरूप नेत्र हैं।

यथा—मुनिजन निकट विहँग मृग जाहीं। बाधक वधिक विलोकि पराहीं॥

पुनः अचरगण ये हैं तेऊ एकहि एक में लीन कहे मिलिकै नहीं रहत।

यथा—तृणादि वृक्ष हैं अन्नको क्षीण करत तावे कहत में एक देखे में भेद १५ तहां चरगण में पञ्च भेद हैं। नर देवादि पशु सिंहादि स्वेदज केशकृमि आदि खग पक्षी कृमि कीटादि तिनमें अनेकन जीव हैं तिनकी कर्त्तव्यता विचारिकै आगे तुलसी कहत ताको बुद्धिमान् जन आपनी मतिते निरधार कहे जानि लेहैं १६ तिन चराचर जीवन महँ अत्यन्त विरोध प्रकट पहिँचानि परत सब को देखि परत।

यथा—नर में विरोध की संख्या नहीं पशुन में सिंह व्याघ्रादि अपर जीवन को मारि खाते हैं तथा औरहू हैं बली अबलको मारत इत्यादि ऐसा प्रबल विरोध है जो काहू के मिटायबे योग्य नहीं।

पुनः स्थावरन में भी और भांति नहीं ऐसेही विरोध है।

यथा—बड़े वृक्ष की छाया में छोटा वृक्ष बाढ़त नहीं इत्यादि प्रमाण कहे सांची बात तुलसी कहत है ॥ १७ ॥

दोहा

रोम रोम ब्रह्माण्ड बहु, देखत तुलसीदास।
बिन देखे कैसे कोऊ, सुनि माने बिश्वास १८
बेद कहत जहँलग जगत, तेहिते अलग न आन।
तेहि अधारव्यवहरतलखु, तुलसी परम प्रमान १९

अब रूपविषय की व्याख्या कहत प्रथम श्रीरामरूप कैसा है जाके एक एक रोम में बहुत से ब्रह्माण्ड हैं भाव सब के आदि कारण हैं।

यथा—पुलहसंहितायाम्

"यथैव वटबीजस्थः प्राकृतश्च महाद्रुमः।
तथैव रामबीजस्थं जगदेतच्चराचरम्॥"

ऐसा आदि कारण रूप तुलसीदास देखत भाव हरिभक्त देखते हैं।

यथा—"देखरावा निज मातहिं, अद्भुतरूप अखण्ड।
रोम रोम प्रति राजहिं, कोटि कोटि ब्रह्मण्ड॥"

सदाशिवसंहितायाम्

"ब्रह्माण्डानामसंख्यानां ब्रह्मविष्णुहरात्मनाम्।
उद्भवे प्रलये हेतू रामएव इति श्रुतिः॥"

अरु जे हरिभक्ति रहित हैं तिनको श्रीरामरूप नहीं देखि परत सो बिना देखे सुनिकै कोऊ कैसे विश्वास करै १८ वेद सर्वदा ऐसा कहत कि स्वर्ग पाताल पर्यन्त जहांलगि सब जग है सो सब भगवत् को विराट्रूप है तेहिते अलग आन कछु नहीं ताही विराट् रूप के आधार सब जग व्यवहरत कहे सब कार्य होत ताको लखु उत्पत्ति पालन संहारादि सब हरिके आधार हैं यह परम प्रमाण बात तुलसी कहत वेद विदित हैं।

यथा—"चन्द्रमामनसोजातश्चक्षोः सूर्योअजायत" इत्यादि॥१९॥

दोहा

सर्षप सूझत जासु कहँ, ताहि सुमेरु असूझ।
कहेउ न समुझत सो अबुध, तुलसी विगतविसूझ २०
कहत अवर समुझत अवर, गहत तजत कछु और।
कहेउ सुनै समुझत नहीं, तुलसीअतिमतिबौर २१

अतिलघु सरसों को जो देखत सो महाभारी सुमेरु पर्वत को

नहीं देखत इहां अन्तरात्मा सरसों सम अति लघु तैलमात्र गुण सोऊ कोल्हू में पेरे प्रकटत तैसे महाक्लेश ते आत्मब्रह्म अनुभव होत ताको सब देखत भाव व्यासरूप को सब बखानत अरु श्री रघुनाथजी सुमेरु सम उन्नत अचल कान्तिमान् जाके निकट गये दारिद्ररूप पाप दोष दूरि होत सौशील्यादि अनेक गुणधाम श्रीराम रूप सो काहूको नहीं सूझत जाकी शरणमात्र जीव अभय पद पावत।

यथा—वाल्मीकीये

"सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥"

ऐसा वेद पुराणादि कहत ताहू पर गोसाईंजी कहत कि सब जग विसूझ विशेषदृष्टि हृदय की विगतनाम विशेष जाति रही है ताते वेदादि के कहेउ ते नहीं समुझत हैं काहेते अवुध कहे अज्ञानी हैं २० कहत कुछ और समुझत कुछ और कहत तौ यह कि संसार सब झूंठा जीवे को ठेकाना नहीं अरु समुझत सब जगको व्यवहार सांचा व कल्पान्त न जीवैंगे अरु काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, स्त्री, पुत्र, धन, धामादि को पोढे गहत अरु विवेक वैराग्य शान्ति सन्तोष दया हरिशरणागती इत्यादि को तजत भूलिहू कै मन में नहीं लावत।

पुनः वेद पुराणादि के वचन सन्तजन कहत ताको सुनतहू सन्ते नहीं समुझत गोसाईं जी कहत कि ऐसे मति के बाउरि हैं॥ २१॥

दोहा

देखो करै अदेख इव, अन देखो विश्वास।
कठिन प्रबलता मोहकी, जलकहँ परमपियास २२

सोइ सेमर सोई सुवा, सेवत पाय वसन्त।
तुलसी महिमा मोहकी, विदित बखानत सन्त २३

अब रूप विषय करि जीव को निजस्वरूप भूलि जाना वर्णन है सो रूप काको कहौ।

यथा—विन भूपण भूषित युत न रूप अनूपम गौर सोई रूपमें जब जब दृष्टिपरत तब तब या भांति नेत्र चपकत।

यथा—अदेख इव जैसे कबहूं याको देखवै नाहीं भये निश्चय यहै विश्वास रहत कि यहिको कबहूं देखा नहीं यही रूप विषय में जीवको आपनो रूप भूलिजानो यही मोह है सो मोहकी प्रबलता जबरई ऐसी कठिन है कि जलही को जल पीने की परमपियास लगी रहत भाव आनन्दसिन्धु आपनो रूप भूलि विषय मृगतृष्णा हेत धावत २२ सोई सेमर सोई सुवा प्रति संवत् संवत् पाय फूलो देखि फल की अभिलाष से सेवत फल देखि पछितात फिरि भूलि जात वसन्त पाय पुनः सेवत यह दृष्टान्त है अब दार्ष्टान्त।

यथा—सेमरस्थाने सुन्दर रूप सुवास्थाने नेत्र वसन्त स्थाने शृङ्गारादि भूपण वसन सजे देखि आसक्त है पीछे परत ताके फल में रस रूप सुखतौ मिला नहीं लोक उपहास रूप भुवा उड़ोदेखि पछिताने फिरि भूलिगये।

पुनः समय पाय वैसेही संग लागत पूर्व अपमान की सुधि नहीं इसी भांति रूप विषय में भूले हैं गोसाईंजी कहत कि ऐसी अपार मोह की महिमा विदित है जाको कोऊ पार नहीं पावत ऐसा सन्तजन बखानत हैं॥ २३॥

दोहा

सुन्यो श्रवण देख्यो नयन, संशय शमन समान।

तुलसी समता असमभो, कहत आनकहँ आन २४
बसहीभवअरिहितअहित, सोपि न समुझतहीन।
तुलसी दीन मलीन मति, मानत परम प्रवीन २५

सुने श्रवण जैसे काहूने कह्यो कि वा ग्राम में एक स्त्री बहुत स्वरूपवती है ऐसी मोहनी वार्ता कान ने सुनी तबहीं देखने की चाह भई जब जाय देखे तब मिलनेकी चाह भई यह कौन भांति मिलै इत्यादि से कहे सोई संशय मन में समानी सो समता रूप निरवासनिक मन तामें विषमता आई भाव वासना उठी जब विषमता आई तब आन वस्तुको आन कहन लगे भाव लोक दुःख को सुख कहत।

यथा—"पान पुराना घी नवा, औ कुलवन्ती नारि।
चौथी पीठि तुरंगकी, स्वर्ग निशानी चारि॥"

इत्यादि झूठे सुख को साचा कहत अरु हरिशरण में सुख तामें दुःख कहन लगे कि भाई भक्ति करना बड़ी कठिन बात है केहिते है सकत इतनीही बात कहि छुट्टी पाये २४ काहेते ही जो हृदय सोतौ भव कहे संसाररूप अरिके वश भयो ताते हितकर्ता हरिभक्त प्रह्लादादि के चरित्रन ते विदित है।

पुनः अहित लोक विषय सुख में भूलना यहौ विदित है सोऊ अपि कहे निश्चय करिकै नहीं समुझत काहे ते गोसांईजी कहत कि मोहवश उरमें तौ अन्धकार है ताते मति के हीन विषय फन्द में बँधे दीन मलीन भये तौ कैसे हित अहित सूझै हृदय की दृष्टि में विषयरूप माड़ा छावा है ताते अज्ञान के वश परे परन्तु अपनाको परमप्रवीण ज्ञानी माने हैं बातन के जमाखर्च ते हृदय में कुछ नहीं॥ २५॥

दोहा

भटकत पद अद्वैतता, अटकत ज्ञान गुमान।
सटकत वितरनते विहठि, फटकत तुष अभिमान २६

अब त्वचा इन्द्रिय करि स्पर्श विषयमें भूलने को कारण कहत।
यथा—"एकं ब्रह्म द्वितीयन्नास्ति॥"

- इत्यादि अद्वैतता पदमें भटके भुलाने मनतौ विषय भोगमें आसक्त विद्या करि एक द्वै उपनिषद् वेदान्त के पढ़िलीन्हें ताही गुमान में अटके सुखते झूठा ज्ञान कथत कि अन्तरात्मा मेरा स्वरूप परब्रह्म है।

यथा—दादूपन्थी निश्चलदास विचारसागर में लिखे॥

"अब्धि अपार स्वरूप मम, लहरी विष्णु महेश। -
विधि रवि चन्दा वरुण यम, शक्ति धनेश गनेश॥"

तहां तुम्हारो स्वरूप सामुद्र तौ विष्णुलहरी तौ अद्वैतता कैसे भई भाव विष्णु अज्ञानी हम ज्ञानवान् यही ज्ञान गुमान को अटकना है।
पुनः वितरन कहे विशेषि भव तारनहारी हरिभक्ति जो पतित जीवनको पार करनहारी है।

यथा—गीतायाम्

"मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परांगतिम्॥".

ऐसी भगवत् शरणागती तेहितें सटकत नाम भागत कौनभांति विहठि विशेषि हठि करिकै भाव जो कोऊ हरिशरणको नाम लेत ताको वेदान्त सांख्य सूत्रन करिकै खण्डनकरि अद्वैतपक्ष पुष्ट करत कि आत्मसार देहधारी सब अवतारादि मायाकृत हैं कहत वौ ऐसा हैं अरु आपु हैं कैसे कि फटकत तुष अभिमान तुष कहे खाल ताको अभिमान हैं व हम स्वरूपवान् व हम उत्तमजाति हैं याके हम

अधिकारी हैं तौ जो देहादि झूठी तौ तुम्हारी उत्तमता कैसे है जो देहको व्यवहार साँचो तौ अद्वैतता कैसे भई ताते विषयाशक्त झूठा ज्ञानको अभिमान करत ।

यथा—शंकरेणोक्तम्

"वाक्योच्चार्यसमुत्साहात्तत्कर्म कर्तुमक्षमाः ।
कलौ वेदान्तिनो भान्ति फाल्गुने बालका इव ॥ २६ ॥"

दोहा

जो चाहत तेहि बिन दुखित, सुखितरहित ते होइ ।
तुलसी सो अतिशय अगम, सुगम रामते सोइ २७
मात पिता निज बालकहिं, करहिं इष्ट उपदेश ।
सुनि माने बिधि आप जेहि, निजशिर सहे कलेश २८

प्रथम प्रशंसा सुनि देखने की चाह जब देखे तब मिलने की चाह भई जो स्त्री आदिकन के स्पर्शको चाहत वह नहीं मिलत ताके मिले विना वियोग दुःख में दुःखी आठ पहर चित्त वायमण्ड रहत तेहि स्पर्श चाहते जब मन रहित होइ तबतौ जीव सुखित होइ गोसाईजी कहत कि सो सुख होना अगम है सुगम रामते होइ जब श्रीरघुनाथजी की शरण गहौ तिनकी कृपाते विषय छूटै तब सहज ही सुख प्राप्त होइ ।

यथा—अध्यात्म्ये परशुरामवाक्यं श्रीरामं प्रति

"यावत्त्वत्पादभक्तानां संगसौख्यं न विन्दति ।
तावत्संसारदुःखौघान्न निवर्तेन्नरः सदा ॥ २७ ॥"

लोक की यह रीति है कि माता पिता आपने बालक को इष्ट उपदेश करत जामें विशेष प्रयोजन सोई व्यापार सिखावत ।

यथा—आप कहे जल में कमल पै जेहि पिता विष्णुको उपदेश

सुनि मानि ब्रह्मा विधि जो ब्रह्मा निज शिर कलेश सहे भाव मल्यान्त हरिनाभि कमल पै ब्रह्माजी सो भगवान् कहे कि सृष्टि करौ सो मानि सृष्टिकी रचना में परे तबते मरणपर्यन्त ब्रह्माजी सृष्टि के भारते न छुट्टी पावैगे स्वतन्त्र है भजन कैसे करें तौ लोकको कौन कहै कि माता पिता को उपदेश मानि भला होइगो ॥ २८ ॥

दोहा

सबसों भलो मनाइबो, भलो होन की आस।
करत गगनको गेंडुवा, सो शठ तुलसीदास २६
बलि मिसु देखत देवता, करनी समता देव।
मुये मार अविचार रत, स्वारथ साधक एव ३०

यावत् देवता हैं तिनकी पूजा स्तुति आदि करि भला मनाइबो भाव जहांतक कर्मकरि आपनो भलो होनो जीवके सुख की आश करत सो कैसे कोऊ देवादि भलो करि सकत प्रभु की माया ऐसी प्रबल है कि सबको पेरे डारत ताते देवता आपही सुखी नहीं तौ और को सुखी कैसे करिसकत तिनते जो आपना भलो होनो चाहत तिनको गोसाईंजी कहत कि सो शठ है काहेते जाको कोऊ अन्त नहीं पावत ऐसा अपार गगन जो आकाश ताको गेंडुवा कीन चाहत भाव हाथ में गहिलीन चाहत सो कैसे होइ सकत २६ ते देवता कैसे हैं कि बलि पूजा के मिष कहे बहाने ते प्रसन्न दृष्टि देखत भाव बलि पूजा पाय प्रसन्न होत ताकी करनी के समान फल देत अधकी नहीं देत अरु जीवकी करनी कैसी है कि एव कहे निश्चय करिकै सब स्वारथही के साधक हैं कौनप्रकार अविचार बिनविचार व मरणादि पर प्रयोजन में रत कहे प्रीति किहे हैं ताते मुये जीव खसी भेंड़ादि आपनेअधीन तिनको मारत तौ कैसे भला

होइ हिंसा सब पापमें श्रेष्ठ है जो स्वारथ रत न होइ ईश्वर सर्वव्यापक मानि निर्वासिक सब देवनकी पूजा उत्तम रीति ते करै फलकी चाह मनमें न राखै तौ भगवत् उनको भी भला करै जो स्वारथ में रतभये याही ते भला नहीं होत।

गीतायाम्

"अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते॥ ३०॥"

दोहा

बिनहिं बीज तरु एक भव, शाखा दल फल फूल।
को बरणै अतिशय अमित, सबबिधि अकल अतूल २१
शुकपिकमुनिगणबुधबिबुध, फलआश्रितअतिदीन।
तुलसी ते सब बिधिरहित, सो तरुतासुअधीन २२

अब रस औ गन्ध दोनों विषय करि भूलिवे को कारण कहत।

यथा—बिन बीज को भवरूपी एक तरु कहे वृक्ष है जैसे कलमी तैसे ईश्वर माया दोऊको अंशमिलि संसाररूप वृक्ष भयो मनयुत पाँचों तत्त्व षट् स्कन्ध हैं पचीसौ प्रकृति शाखा हैं नित नवीन ममता हरित दल है चारि त्वचा।

यथा—तमोगुण श्याम ऊपर को त्वचा है रजोगुण अरुण भीतर को त्वचा है सतोगुण ताके भीतर को श्वेत त्वचा अंहकार लकड़ी से मिला महीन त्वचा लकड़ी जीव है ब्रह्मरस है शुभाशुभ कर्म द्वै बौर वासना फूल दुःख सुख द्वै भांति फल दुःख मायाके अंशते करु सुख ईश्वर के अंश ते मीठा सो संसार वृक्ष अतूल कहे जाकी तुल्य दूसरा नहीं है अकल कहे कला जो कारीगरी तिस करिकै जानों नहीं जात काहेते याकी मूल ऊंचे है फुनगी नीचे है क्योंकि

फुनगीही में फल लागत जो कोऊ फलकी आश करत सो नीचे को जात जो मूलकी आश करत सो ज्ञानबल करि ऊंचे जात।

पुनः फलकी कांक्षा होतही नीचे गिरत याते अतिशय अमित है ताको कोऊ कैसे वर्णन करि सकत है. ३१ वृक्ष पै पक्षी फल के आसरे आवत इहां मुनिन के गण समूह बुध ज्ञानवान् विबुध देवतादि तेई शुक कहे सुवा पुनः पिक कोयल इत्यादि पक्षी संसार रूप वृक्षके फलके आश्रित आशा करि सदैव अति दुःखित रहत भाव सुख फल मीठेकी चाह करत दुःख फल करू आपही मिलत याहीते दुःखित रहत हैं गोसाईंजी कहत कि ते सब मुनि सुरादि ता वृक्ष भेद जानवे के विद कहे ज्ञानकरि रहित हैं ताहीते आसरा में बँधे दुःखित हैं जो विचार करि देखो तो सो लोक वृक्ष तासु कहे तिनहीं मुनि सुरादि के अधीन हैं भाव दुःख को सुख मानि आपही बँधे हैं जो आप त्यागकरैं तौ लोक काहू को नहीं बाँधे है।

यथा—खाजु के खजुवाने को सुख पीछे दुःख तैसे लोक में कामादि सुख हैं।

यथा—भागवते प्रह्लादवाक्यम्

"यन्मैथुनादि गृहमेधि सुखं हि तुच्छं
कण्डूयनेन करयोरिव दुःख दुःखम्।
तृप्यन्ति नेह कृपणा बहुदुःखभाजः
कण्डूतिवन्मनसिजं विषहेत धीरः॥"

कहीं ऐसी पाठ है कि तुलसी ते सब विरद हित तहां ऐसा अर्थ है कि ते जो सुरादि हैं तिनके हित करिवे विरद जो बाना है जिनको ऐसे श्रीरघुनाथजी तिनके अधीन सो वृक्ष है तावे प्रभुकी शरण गहौ तौ कुछ विघ्न न होइगो।

यथा—नारदीयपुराणे
श्रीरामस्मरणाच्छीघ्रं समस्तक्लेशसंक्षयः।
मुक्तिं प्रयाति विप्रेन्द्र तस्य विघ्नो न बाधते॥ ३२॥

दोहा

को नहिं सेवत आय भव, को न सेय पछिताय।
तुलसी बादिहि पचत है, आपहि आपनशाय ३३

सुर मुनि नर नागादि लोक सुख के अर्थ को नहीं आय भव-रूपी वृक्ष को सेवत है ताको सेय दुःख पाय।
पुनः को नहीं पछितात है तिनको गोसाईंजी कहत कि वे बादि ही पचत हैं भाव जो आपनेही हाथते दुःख होइ तौ काहे को वह बात करै जो पाछे पछिताय।
यथा—रोगी कुपथ करि मांदगी बढ़ाय दुःख पाय पछितात।
पुनः कुपथ करत जो समुझै तौ कुपथ काहेको करै॥ ३३॥

दोहा

कहत बिविध फल बिमलतेहि, बहत न एक प्रमान।
भरम प्रतिष्ठा मानि मन, तुलसीकथतभुलान ३४
मृगजलघटभरि बिबिधबिधि, सींचत नभतरुमूल।
तुलसी मन हरषित रहत, बिनहिंलहेफलफूल ३५

पूजा कथाश्रवण स्तोत्रपाठ मन्त्रजापादि के माहात्म्य करि विविध भांति के फल विमल मुक्तिदायक कहत तौ अनेक हैं तेहि विषे एकहू सांची प्रमाण मानि बहत कहे ताकी राहपर नहीं चलत भाव कहत तौ अनेकन करत एकहू नहीं यह विश्वास नहीं कि पूजादि ते फल मिली इत्यादि भरम प्रतिष्ठा कहे सांचा भरम मन में माने ताही में भुलाने परे तिनको गोसाईंजी कहत कि झूठही

सब माहात्म्य मुखते कहत हैं ३४ मृगजल जो घामे की लहरी दुपहरी में देखो भाव भूठा जल तैसे चाटक नाटक भूत पिशाच तुच्छ देवन की सिद्धाई अविचारादि भूठा जलसम घट कहे हृदय में भरे भाव मन तौ इनमें लाग विविध भांति के भूठे वचन रूप जल ते नभतरु निर्गुणमत ताकी मूल व्यापक ब्रह्म ताको सींचत भाव भूठ ही ज्ञान कथि अद्वैतपक्ष पुष्ट करत ता वृक्ष के फूल विवेक, वैराग्य, शम, दम, उपराम, श्रद्धा, समाधान, मुमुक्षुतादि साधन हैं।

पुनः ज्ञानफल है इत्यादि फल फूल विनहिं लहे भाव ज्ञान वैराग्यादि विना प्राप्त भयेही गोसाईंजी कहत कि भूठही ज्ञानकथि मनमें हर्षित रहत कि हम बड़े ज्ञानी हैं मन मलिन क्रियामें है॥ ३५॥

दोहा

सोपि कहहिं हमकह लह्यो, नभतरु को फल फूल।
ते तुलसी तिनते बिमल, सुनि मानहिं मुदमूल ३६
तेपि तिन्हें याचहिं बिनय, करि करि बार हजार।
तुलसी गाड़र की ढरन, जाने जगत बिचार ३७

मन तौ लोकफल के रसकी वासना में फँसा मुख ते भूठा ज्ञान कथत सो अपि कहें निश्चय करिकै कहत कि नभतरु जो अगुण मत ताको फलफूल हमको लह्यो अर्थात् ज्ञान वैराग्यादि हमको प्राप्त भयो तापै गोसाईंजी कहत कि वे कहनेवाले तौ मनके मैले हैं नये हैं जे उनकी वाणी सुनिकै मुद कहे मनकी आनन्द की मूल सत्संग माने हैं ते उनते विमल हैं अर्थात् उनते मैले हैं यह व्यङ्ग्य है न विशेष मैले हैं जिनको भूठी वाणीमें विश्वास आवत उनकी करनी नहीं देखत कि का बात करत का कहत यह कैसे

समुझै जो अमल हृदय होय तौ तौ समुझै मनके मैले कैसे समुझैं ३६ ते सुननेवाले अपि कहे निश्चय करिकै तिन्हैं कहने-वालेन ते हजारनवार विनय करि करि याचत हैं कि वही वार्ता हमसों फिरि कहो इत्यादि सब वारवार कहत ताको गोसाईजी कहत कि जग को विचार कैसा है।

यथा—गाड़र कहे भेड़ी की ढरनि अर्थात् संसार भेड़िया-धसान है जहां एक भेड़ी गिरै तहां सब गिरिपरैं कौनिउ विचार नहीं करत कि सब कहां जाती हैं वामें दुःख सुख नहीं विचारत एक एकको देखि सब फांदत तैसेही संसार में मनई एकको शिष्य होत देखि दश भये,दश को देखि सैकरन चेला ह्वै गये विचारत कोऊ नहीं यह संसार की शोभा विपरीत है ॥ ३७॥

दोहा

शशिकर स्रग रचना किये, कत शोभा सरसात।
स्वर्ग सुमतअवतंस खलु, चाहत अचरज बात ३८
तुलसी बोलन बूझई, देखत देख न जोय।
तिन शठको उपदेश का, करब सयाने कोय ३६

मन चञ्चल झूठे शून्यवादी ते खलु कहे निश्चय करिकै अचरज बात कीन चाहत का कीन चाहत अवतंस कहे झूठे भूषण सों भूषित करि शोभा बढ़ावा चाहत कौन भूषण स्वर्ग के सुमनन को शशि की कर नाम किरणन में स्रग् नाम माला की रचना कीन चाहत भाव चन्द्रकिरणरूप धागा में आकाश के फूलन को माला गुहि अवतंश कहे भूषित करि शोभा बढ़ावा चाहत तेहि करिकै कैसे शोभा सरसात कहे बढ़त इहां चन्द्रमा मन ताकी किरणैं चञ्च-लता तेहिके साथ आकाश के फूल शून्यवाद को पक्ष रूप माल

करि जीव को भूषित करि शोभा बढ़ावत सो कैसे बढ़ि सकत भाव जीव शुद्धगति को कैसे पाय सकत एक तो चञ्चल मन ताको शून्य में लगावत सो कैसे थिर है सकत जो जीव शुभ गति पावै ताते जो भगवत् सनेह में मन लगावै तो नाम स्मरण के प्रभाव व लीला स्वरूप की माधुरी छटा देखि गुण सुनि व धामवास प्रभाव करि प्रेम आवै तौ मन थिर होइ स्वाभाविक जीव शुद्ध होइ ३८ हरिशरणागति आदि हित उपदेश को बोलाये नहीं समुझि समुझि बूझते हैं अरु भगवत् की भक्तवत्सलता ध्रुव, प्रह्लाद, अम्बरीषादि के चरित विदित प्रकट देखवहू नहीं देखत भाव वापै दृष्टि नहीं करत ते महामोहान्धकार ते हृदयके चेतन ते अन्धे विचार-रहित ऐसे जे हैं तिनको गोसाईंजी कहत कि तिन शठनको उपदेश कोऊ सयाने जन का करब भाव उन अभागिन को उत्तम उपदेश नहीं लागि सकत यथा ऊषर को बीज ॥ ३९ ॥

दोहा

जो न सुनै तेहिका कहिय, कहा सुनाइय ताहि।
तुलसी तेहि उपदेशही, तासुसरिसमतिजाहि ४०
कहत सकल घटराममय, तौ खोजत केहि काज।
तुलसीकहयह कुमति सुनि, उरआवतअतिलाज ४१

जो आपनो कहा न सुनै तेहिको का कहिये कुछ न कहिये।

पुनः ताहि कथा आदि का सुनाइये कथादि को अनादर करि मल संचय में डारिये ताते कुछ न सुनाइये।

पुनः उनको मन्त्र उपदेश भी न करै काहे ते गोसाईंजी कहत कि तेहि मतिमन्दन को सोई उपदेश करै तासु कहे तिनहीं की सरिस जाहिकी मति होइ भाव उनहीं की समान मतिमन्द होइ

सो उनको उपदेश दे आपनो इष्ट मन्त्रको धूर में बहावै अभिप्राय यह कि अश्रद्धावाले को श्रीरामनाम उपदेश करना महाऽपराध है पद्मपुराण में लिखा है ४० मुखते तौ ऐसा कहते हैं कि चराचर व्याप्त अन्तरात्मा राम सब घटमय हैं मय नाम परिपूर्ण है तौ केहि काज ढूंढते हैं भाव अन्तरात्मा ब्रह्म तो हर्ष विषाद मानापमान रहित सदा एकरस आनन्दस्वरूप है ताकी तौ कौटौ नहीं शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि में इन्द्रिय आसक्त कामादि ते पीड़ित कालकर्म के स्वभाव के वश परे दुःखित देह सुखके आशकरि अनेक उपायके हेतु ध्यावत यह कर्तव्यता वह कहतूति भाव गुलामीकरि राजा बनत ऐसी कुमति सुनि तुलसी के उरमें लाज आवत कि आपही आपनो अपमान करावते हैं ॥ ४१ ॥

दोहा

अलखकहहिं देखनचहहिं, ऐसे परम प्रवीन।
तुलसी जग उपदेशहीं, बनिबुध अबुधमलीन ४२
हहरत हारत रहित बिद, रहत धरे अभिमान।
ते तुलसी गुरुआ बनहिं, कहि इतिहास पुरान ४३

कहते तौ हैं कि अलख हैं निरञ्जन हैं निराकार हैं पुनः ताही को देखा चाहत अर्थात् सबके देखवेको ध्यान लगावत ऐसे देखने को परमप्रवीण हैं कि ध्यानी ज्ञानी बने भीतर मन काम लोभादि अनेक वासना में परा गोता खात ऐसे मनके मैले बुद्धिरहित अज्ञानी तेई बाहरते बुध कहे ज्ञानवान् बने जगको उपदेश देत फिरत भाव आपु अज्ञानी औरन को ज्ञान सिखावत ४२ विषय में लागेते मन मलिन ताते बुद्धिमन्द भई मनकी मलिनता बुद्धिकी हीनता बिदनाम ज्ञानरहित हैं ताते विद्या भी प्रकाश नहीं करत याते पद पदार्थ

विचारत जब समुझ में नहीं आवत तब हहरत हायकरि मन हरि जात तहाँ भक्ति ज्ञानादि तत्त्व जानवे की कौन वात जो सुगम पुराण इतिहासादि सोभी नहीं काहि आवत ताहू पर मनमें अभिमान धरे रहत कि हम महात्मा हैं ज्ञानवान् हैं गोसाईंजी कहत कि ऐसे तो लोकमें गुरु हैं पुजावबे हेतु गुरु बने शिष्यकरत घूमत तिनते यह नहीं कहत कि दुइ माला गुरुमन्त्र जपाकरो अपनाको उत्तम भोजन देइ पूजा देइ याहीते काम शिष्य चहै गाई माराकरै ताहूको न मनेकरैं तौ गुरुके पीछे शिष्यनको कल्याण कहां शिष्यनके पाप ते गुरुभी खराब होयँगे ॥ ४३ ॥

दोहा

निज नैनन दीखत नहीं, गही आँधरे बांह।
कहत मोहवश तेहि अधम, परम हमारे नाह ४४
गगन वाटिका सींचहीं, भरिभरि सिन्धु तरङ्ग।
तुलसी मानहिं मोद मन, ऐसे अधम अभङ्ग ४५

यथा—सांझ समय निशांध रतौंधीवाला कोऊ आइ कह्यो कि शुभग्राम में अभयपद के मन्दिर में जो कोऊ हमैं पठै आवै ताको एक मुद्रा देईंगे ताके लोभवश अभ्यास वलते एक आंधरे ने बांह गही कि हम पठै आवहिंगे तब उसने कहा कि तुम हमारे परमहितू हौ ऐसा कहि वाके पीछे चला राह में किसी ने कूप खोदा रहै उसी में गिरे दोऊ बूड़िमरे तैसे विषरात्रि में जग जीव पथिक मोह राज्यन्धवश परलोक शुभग्राम अभय हरि ताको मुक्ति धाम प्राप्त होनेहेतु सेवकाई रूप मुद्रा देने को कहा तेहि लोभवश संगति कथादि सुने अभ्यास वलते विराग ज्ञान रूप नेत्र रहित आंधरे गुरुने उपदेशरूप बाँह गही ते अधम दुर्बुद्धी मोह रतौंधी वश देखते

तो हैं नहीं गुरुकी वार्त्तारूप मुक्तिधाम की राह चलते जानि तिन गुरु का कहत कि हमारे परमनाह मुक्ति देनहार स्वामी हैं ऐसा जानि उनके पीछे चले गुरुन के विवेक रूप नेत्र तौ हैं नहीं जो राह देखि चलें आगे भवरूप कूप में गिरे मरे चौरासी को गये ४४ संसार सिन्धु है शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि जल आशा तृष्णादि तरङ्ग इन्द्रियरूप पात्रन में भरिभरि मनरूप माली वचन रूप धारा सो मगनवाटिका शून्यवाद ताको सींचत अद्वैतमत पुष्ट देखावत ताको सुनि अधम आनन्द मानत ऐसे दुर्बुद्धि हैं जिनकी अधमता अभङ्ग है काहेते हरिशरण वार्त्ता उनको काहे को सोहाइ जो मन शुद्ध होइ झूंठाही शून्यवाद में परे रहि हैं मन विषय में आसक्त बनारही ।

पुनः संसार ही में रहैंगे ॥ ४५ ॥

दोहा

दृषद करत रचना विहरि, रङ्गरूप सम तूल ।
विहँग बदन बिष्ठा करे, ताते भयो न तूल ४६

मुक्त विमुख विषयी आदि सब जीवमात्र को उद्धार करनहारी हरिभक्ति है काहेते प्रभु सब पै दयादृष्टि एकरस किये हैं जो जैसा भाव करत ताको तैसाही देखात ।

यथा—दृषद जो पाषाण ताको विहरि कहे फोरिकै हरिके रूप रङ्गसम रचना करत भाव भक्तन के पूजन हेतु हरिप्रतिमा बनावत सो तामें बहुत रूप स्वयंव्यक्त हैं ।

यथा—रङ्गनाथ कावेरीतट काशीजी में विन्दुमाधव नरनारायण जगन्नाथजी नरहरि सिंहाद्री में व्यङ्कटनाथ व्यङ्कटाद्रि में श्रीवाराह पुष्करजी में ।

पुनः वाराहक्षेत्र में वेणीमाधव प्रयाग में श्रीगोविन्ददेव व्रज में आदिकूर्म वरदराज कांची में आदि केशव पापहरणि गङ्गातट श्रीमुख तोताद्री में इति स्वयंव्यक्त और हरिभक्तन के स्थापित कीन्हे बहुत हैं ग्रामादिकन में अनेक हैं तिनके प्रसिद्ध होने की द्वै विधी हैं एक तौ सांचे प्रेम करि प्रकट होत।

यथा—जानराय ठाकुर बिना प्रतिष्ठा कीन्हें ही भक्त को प्रेम देखि न जायसके दूसरे अग्निपुराणादिकन की रीति ते निर्माण करि वेदविधि प्रतिष्ठा कीन्हें प्रसिद्ध होत तब भगवत्रूप ही की तुल्य भक्तन को मनोरथ पूरण करत तहां शून्य समय पाय पक्षी चले जाते हैं ते मूर्ति के शीशपर बैठि विष्ठा करि देते हैं इत्यादि अज्ञ जीवनको अपराध विचारि तूल कहे कोप नहीं करते हैं अरु जे विमुख विरोध भावते शत्रु देखते हैं उनको शत्रु है विमुखता में देहनाशकरि दयादृष्टि ते मुक्ति देते हैं याते भगवत् तौ एकरस दया राखते जीव जैसा भाव करत ताको तैसेही प्राप्त।

यथा—

जेहि विधि रहा जाहि जस भाऊ। तेहिं तस देखे कोशलराऊ॥

गीतायाम्

"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्॥"

पुनः श्रुतिः तद्यथा "यथोपास्ते तथातथातद्भवति॥ ४६॥"

दोहा

चाह तेहारो आपुते, मान न आन न आन।
तुलसी करु पहिंचानपति, याते अधिक न आन ४७

हे जीव! तू आनन्दरूप सिंहसम सबल निश्शङ्क काहू सों हारिबे योग्य नहीं है सो सिंह भी मैथुनादि स्नेहवश आपु सों

पुरुष परस्पर हारिजात तथा जीव आपुहीते हारो है कौन भांति शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, स्त्री, पुत्र, धन, धामादि की मनकी चाहते आपु आपुही ते हारो है ताते न आन।

पुनः न आन मानभाव और सो न मान न मानकी मैं और काहूसों हारो है आपने मनकी चाहते आपुही ते हारो है ताते गोसाईंजी कहत कि जीवको जो पति है चराचर को आदिकारण।

यथा—पुलहसंहितायाम्

"यथैव वटवीजस्थः प्राकृतश्च महाद्रुमः।
तथैव रामवीजस्थं जगदेतच्चराचरम्॥"

ताते जीवनके पति श्रीरघुनाथजी तिनते पहिंचान कहे सदा एकरस प्रीति करु तव तेरो कल्याण होइगो यहि ते अधिक मुक्तिदायक आन दूसरो पदार्थ नहीं है एक श्रीराम भक्ति ही है।

यथा—सत्योपाख्याने सूतवाक्यम्

"विना भक्तिं न मुक्तिश्च भुजमुत्थाय चोच्यते।
यूयं धन्या महाभागा येषां प्रीतिस्तु राघवे॥"

ताते सब लोक की आशा त्यागि श्रीरघुनाथजी में सनेह करु ४७

दोहा

आतम बोध बिचार यह, तुलसी करु उपकार।
कोउ कोउ रामप्रसाद ते, पावत परमत पार ४८
जहां तोष तहँ राम है, राम तोष नहिं भेद।
तुलसी देखी गहत नहिं, सहत बिबिधबिधिखेद ४६

जो आपुहीते भूला आपुही सुविकरि चैतन्य होय यह आत्मबोध विचार है ताको तुलसी उपकार करु जगमें प्रचारकरु जाको सुनि कोऊ कोऊ जीव चैतन्य है परमत जो है भक्ति ताको गहै

तौ श्रीरामप्रसाद कहे प्रसन्नताते भवसागर पार पावै और उपाय नहीं।

यथा--वारि मथे वरु होय घृत, सिकताते वरु तेल।
बिन हरिभक्ति न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल॥

पुनः रुद्रयामले

"ये नराधमलोकेषु रामभक्तिपराङ्मुखाः।
जपं तपं दयां शौचं शास्त्राणामवगाहनम्॥
सर्वं वृथा विना येन शृणुत्वं पार्वतिप्रिये॥ ४८॥"

जब सबको आसरा छांड़ै तब संतोष आवै काहेते जहां संतोष है तहां श्रीरघुनाथजी हैं ताते संतोष ते श्रीरघुनाथजी ते भेद नहीं है अरु श्रीरघुनाथजी की विना प्राप्ति संतोष होतही नहीं सो ध्रुव प्रह्लादादि अनेकभक्तन के चरित्र पुराणन में प्रसिद्ध हैं अरु वर्तमान में भक्त वहुत से भये अरु हैं सब संतोषयुक्त हैं यह प्रसिद्ध देखात है ताको गोसाईंजी कहत कि जो देखी वात है कि जो संतोष करि हरिशरणगहा सोई सुखी भा इत्यादि देखत ताको गहत नहीं हरिविमुख है लोक आश में परे ताते विविध विधिके खेद जो दुःख ताको सहत तथा बाल में माता के बिछुरे महादुःख होत पौगण्ड में विना खेले दुःखी युवा भये स्त्री परपुरुषादिरिष्टि देखतहीं देह में आगिलगी परस्त्री देखि आपु कामाग्नि में जरत पुत्रादि विछुरे व मरे व धन धामादि कुछ हानिभई मानो जीवै निकरि गयो तन में कुछ रोग भयो तौ जीवन वृथा माने जरामें पूर्ण दुःख भयो मरे चौरासीको गये इत्यादि देखतहू पर नहीं सूझत ४९॥

दोहा

गोधन गजधन बाजिधन, और रतन धन खान।

जब आवै सन्तोष धन, सब धन धूरिसमान ५०
कथिरति अटत बिमूढ़लट, घट उदघटत न ज्ञान।
तुलसी रटत हटतनहीं, अतिशयगति अभिमान ५१

गो कहे गऊ वृषभादिसमूह गज कहे हाथीसमूह वाजि कहे घोड़ासमूह और सोना चांदी आदि समूह रत्न हीरा मोती पन्नादि की खानि इत्यादि लोक में धन जहांतक है चहै तेतना पावै मन की चाह नहीं जात ताते मन धनी नहीं होत जब संतोषरूप धन भयो विषय की चाह मिटी तब सब धूरि समान मानि त्यागिदियो तब मन धनी भयो तब मन हरिके सम्मुख भयो गोसाईंजी कहत कि सब धनादिकी आशा त्यागि श्रीरघुनाथजी में मनलगावो तब भवबन्धन ते छूटौ ५० जबतक संतोष नहीं तबतक विषय चाह में परे स्त्री पुत्र धन धामादिकी रति कहे प्रीति में बँधे कथि कहे उनहीं की बातैं बारंबार करत ताही ममताते शोक ताते लटकहे दुर्बल अटत कहे लोक में घूमत अरु घट जो हृदय तामें ज्ञान उदघटत कहे उदय कबहूं नहीं होत तिनको गोसाईंजी कहत कि ते मूढ ज्ञानादि की वार्त्ता सुआ सम मुखसे रटत रहत परन्तु अतिशय अभिमान की गति उरते हटत नहीं भाव ऊपरसे ज्ञानादि कहत कि लोक झूंठा भीतर ते सांचा माने ताके अभिमान ते मन भ्रम के वश है ॥ ५१ ॥

दोहा

भू भुवंग गत दामभव, कामन बिबिध बिधान।
तो तन में बर्तमान यत, तत् तुलसी परमान ५२
ओउरशुक्ति बिभवपडिक, मनगत प्रकट लखात।
मनभो उरअपिशुक्तिते, बिलगबिजानब तात ५३

कौन प्रकार को भ्रम है

यथा—भू कहे भूमि में दाम जो रसरी परी देखि तामें भुजंग नाम सर्प गत नाम प्राप्त देखत भाव अँधेरे में रसरी परी तामें सर्पका भ्रम तैसे भव जो संसार तामें विविध विधान की ले कामना हैं लोक विषय सुखकी चाह सोई तो कहे तेरे तनरू भूमि में वर्तमान यत् कहे जहां जहां चाह है ताको गोसाईंजी कहत कि तत् कहे तहां तहांपर मान कहे सांचो देखात है भाव भूंठा संसार विषय चाहते सांचेकी भ्रम है अचाह में सब भूंठा है ५२ जैसे सीपी में चांदी का भ्रम तैसे उरमें देखावत।

यथा—उर अभ्यन्तर सोई शुक्ति कहे सीपी है अरु विभव कहे सब भांति को ऐश्वर्य सोई पदिकनाम चांदी सम भूंठी झलक ताही में मनगत कहे प्राप्तभयो भव उरके विभव में मन आसक्त भयो ताही ते भूंठा ऐश्वर्य प्रकट सांचा देखात।

पुनः सोई उररूपी शुक्ति ते अपि नाम निश्चय करिकै मन विलगभयो भाव विभवकी वासना मनमें न रही सोई हे तात! विशेष भूंठी सांची को जानव है भाव मन में वैराग्य आवतही जानि गयो कि भूंठ ही सब विभव सीपी की ऐसी चांदी झलकत सांची त्रिकाल में नहीं ऐसा जानि सब वासना त्यागि प्रभु में प्रीति करौ ॥ ५३ ॥

दोहा

रामचरण पहिंचान विनु, मिटी न मनकी दौर।
जन्म गँवाये वादिही, रटत पराये पौर ५४

सुनै वरण मानै वरण, वरण विलग नहिं ज्ञान।
तुलसी गुरुप्रसाद बल, परत वरण पहिंचान ५५

रामचरण श्रीरघुनाथजी के चरणारविन्दन में पहिंचान कहे सांची प्रीति बिना कीन्हें मनकी दौर नहीं मिटत भाव लोग सुख के आसरे लोभवश दौरा २ फिरत ता वश ते परपौर कहे सब के द्वारद्वार अनेक खुशामद के बैन वा जग रिझाय पुजायबे हेतु कथादि रटत कहत आप कुछ भी नहीं समझत याही भांति बादि ही वृथा जन्म बितायदिये कबहूं श्रीरघुनाथजी में मन न लगाये मेरे।

पुनः चौरासी को गये ५४ वरण जो अक्षर तिन बिना कोई वार्त्ता मुखते उच्चारण नहीं होत सो वेद पुराणादिकन के अनेक प्रकार के वचन सुनै।

पुनः वार्त्ता सुनि मानै प्रमाण करै

पुनः चरण ते बिलग कहे अलग ज्ञान भी नहीं अर्थात् गुरुमुख वर्णी सुनि अथवा शास्त्रपढ़ि वा सुज्ञान आवत अथवा एक प्रवृत्त वचन जो लोक बढ़ावत एक निवृत्त वचन जो लोक छुड़ावत इत्यादि वेद में सब मिले हैं तामें सत् असत् वचन बिलग करिवे को ज्ञान नहीं।

यथा—चराचर व्याप्त हरिरूप जानि काहू देवादि को पूजा करै सब भगवत् अर्पण करै वासना न राखै सो मुक्तिदायक है।

पुनः सोई वासना सहित देवता मानि करै सो लोक सुख फलदायक है इत्यादि के समुझबे को ज्ञान नहीं ताको गोसांईजी कहत कि गुरु के प्रसाद कृपा उपदेश बल ते सत् असत् वचनको पहिंचान होत तब सत् ग्रहण करै असत् त्यागकरै॥ ५५॥

दोहा

बिटप बेलि गन बाग के, मालाकार न जान।
तुलसी ताबिधि बिदबिना, कर्तारास भुलान ५६

कर्तबही सो कर्म है, कह तुलसी परमान।
करनहार कर्तार सो, भोगै कर्म निदान ५७

जाभाँति वागके मध्यमें विटप वृक्ष वेली लता इत्यादि को मालाकार जो माली आपुही बोवत बिलग लगावत कलमकरत सदा सेवत परन्तु वाकी गति नहीं जानत भाव भूमिजल पवनादि दोषगुणते वा कारीगरी के गुणदोष ते फलफूलादि छोटे को बड़ा बड़े को छोटा मीठे को खट्टा खट्टे को मीठा होत यह प्रसिद्ध है ताते यथार्थ हाल माली भी नहीं जानत ताहीविधि गोसाईंजी कहत कि कर्ता राम सोऊ विदि कहे ज्ञान विना राम कहे जो सब में रमत है भगवत् को अंश सोई विषयवश अल्पज्ञ है कर्मन को अभिमानी आपु कर्ता मानि जीव भयो शुभाशुभ कर्म करत ताही में भुलाइगयो भाव यह नहीं जानत कि कौन कर्म के वश कहां जाय कौन दुःख सुख भोगैंगे ॥ ५६ ॥ कर्तव

यथा—यज्ञ, दान, तप, तीर्थ, व्रत, जप, पूजा, परोपकारादि शुभ है हिंसा चोरी वेश्या परस्त्रीरत जुआं परहानि आदि अशुभ इत्यादि कर्तव्यता कीन्हें ते शुभाशुभ कर्म भयो इत्यादि प्रमाण साँची तुलसी कहत सोई कर्म को करनहार जीव कर्तार जो ईश्वर तासों अपने कर्मनको फल दुःख सुख सो निदान कहे अन्त में भोगत है जैसा कर्म करत तैसही स्वभाव परिजात ताते भला बुरा जानत है ताहूपर वही कर्म करत याहीते कर्मफन्द में बँधा है ॥५७॥

दोहा

तुलसी लटपदते मटक, अटक अर्पित नहिं ज्ञान।
ताते गुरुउपदेश बिनु, भरमत फिरत भुलान ५८
ज्यों बरदा बनिजार के, फिरत बनेरे देश।

खांड़भरे भुस खात हैं, बिनु गुरु के उपदेश ५६

यथा—धनी अभाग्यवश व्यापारादि ते धन वृद्धि न भई खरचा होत होत धन चुकिगयो कंगाल है दुःखित भयो तथा सुकृत तौ भई न सुखभोग में परेते जो सुकृति रही सो सब चुकिगई सुकृति ते कंगाल भये अशुभकर्म तौ स्वाभाविक होतही है ताकी प्रबलताते जीव अल्पज्ञभयो ताको गोसांईजी कहत कि लटपद कहे अशुभ कर्म की जोरावरीते शोकवश जीव क्षीण भयो ताते मटक कहे स्थिरतारहित भयो अनेक वासना में मन चलायमान ताही में अटकि गयो ताते अपि कहे निश्चय करिकै इत कहे एकवस्तु को ज्ञान न रहा अज्ञानी भयो यथा पूर्वको जानेवाला दिशा भ्रमवश भुलान भरमत फिरत जो काहूते पूछै वह बताय देय तौ राह पावै तैसे विना गुरु के उपदेश अज्ञानता में भूला अनेक योनिन में जीव भरमत फिरत है अर्थात् आपनो आनन्दरूप भूलि दुःखरूप बना भरमत कौन भांति ।

यथा—अज्ञदशा में लैगयो, केहरिसुत जाबाल ।
मेषझुण्ड में सोपरा, क्यों जानै निज हाल ॥ ५८ ॥

ज्यों कहे जाभांति बनिजारन के वरद पीठि पर खांड़ लादे अरु भूसा खाते हैं पीठि पर खांड़को जानत नहीं इसीभांति घनेरे कहे बहुतेरे देशन में घूमत फिरत ताहीभांति विना गुरु के उपदेश अज्ञानवश खांड़ सम परमानन्दमय आपनोरूप ताको नहीं जानत विषयरूप भूसा खात शुभाशुभ कर्म रस्सी में बँधे अनेकन योनिरूप देशन में जीव भरमत फिरत है ॥ ५६ ॥

दोहा

बुद्धया वारत अनयपद, श्वपिन पदारथ लीन ।

तुलसी ते रासभसरिस, निजमन गहहिं प्रवीन ६०
कहत विविध देखे बिना, गहत अनेकन एक।
ते तुलसी सोनहासरिस, बाणी वदहिं अनेक ६१

अनय कहे अनीति पदने बुद्धचा कहे बुद्धि करके वारत नाम दूरि करत जीवको भाव अनीति आये जीव बुद्धिरहित भयो जब निर्बुद्धि भयो ताते शुकहे शुभ पदार्थ जो भगवत् सनेह है तासों अपि कहे निश्चय करिकै लीन नहीं है जे हरिसनेह में लीन नहीं हैं तिनको गोसाईंजी कहत कि वे कैसे हैं रासभ सरिस हैं भाव गदहासम संसारभारवाहक हैं शून्यवाद मुखते करि आपने मन ते आपुको प्रवीन नाम ज्ञानी माने हैं इहां बुद्धिशब्द को बुद्धचा तृतीयैकवचनांत है शुआपि जवंसूत्र लागेतें श्वपि है गया ॥ ६० ॥

भीतर विषय की आशते लोभादिवश मन तौं सौ प्रबन्ध बांधत मुंह ते ब्रह्मजीव मायाविराग विवेक षट्चक्रादि विविध प्रकार की वार्तें बिना देखी कहत भाव उनकी दिशि भूलिहू कै मन नहीं जात।

पुनः अनेक देवमन्त्रादिकन को मन दौरत एक को छांड़त एक गहत विश्वास काहू में नहीं जो एक बात गहै जामें कुछ फल लागै ते कैसे हैं गोसाईंजी कहत कि सोनहा सरिस यथा स्वर्णकार भूषणादि बनावत समय सोना हरिलेने हेतु आपनी बोली में परस्पर अनेक वार्ता करत।

यथा—खारीसिंगोहि देउ भाव दागु मिलाय देउ स्यांक उतावौ भाव चोरावो चिर्राहु बीदत भाव हुशियार है देखत इत्यादि अनेक वार्ताकरि लोगन को बहँकाय सबके सामने सोना हरि लेते हैं ताही भांति हरियश सत्संगादि लोकभूषण बनावत समय छली पुजायवे हेतु ऊपर पाखण्ड बनाये सत्संग कथा हरिनाम सन्व

ब्राह्मण दान दयादि के माहात्म्य अनेक बाणिन में कहत जामें लोगन के मन राजी होयें हमारो सत्कार करें ॥ ६१ ॥

दोहा

बिन पाये परतीति अति, करै यथारथ हेत।
तुलसी अबुध अकाश इव, भरिभरि मूठी लेत ६२
बसन बारि बांधत बिहठि, तुलसी कीन बिचार।
हानि लाभ बिधि बोधबिन, होत नहीं निरधार ६३

जो नेकहू नहदिल भयो तौ इन्द्रिन के सुख हेतु अनेक ठौर मन दौरत ता कारण काम क्रोध लोभादि प्रचण्ड परत ताको फल तीनिहूं तापन में जरत तेहि सुख के हेतु अनेक बातन में मन दौरावत।

यथा—देवी गणेश सूर्य शिवादि देवन को पूजा व स्तोत्र व मन्त्र जप आदि करी तौ सुख होइ औ सांचा विश्वास काहू में नहीं काहे ते मन तौ स्थिर रहते नहीं इत्यादि सब बातन ते यथारथ हेत कहे प्रयोजन बिना पायेही अति परतीति करते हैं होत कुछ भी नहीं तिनको गोसाईंजी कहत कि वे अबुध कहे बुद्धिहीन तिनके सब मनोरथ कैसे झूठे हैं इव कहे जा भांति समग्र आकाश भरि कोऊ मूठी में भरि लेत सो वृथा है तैसे विषयासक्तन को मन्त्र जपादि मनोरथ वृथा हैं ॥ ६२ ॥

जो मन्त्रादि करते भी हैं ताकी विधि तौ जानते नहीं हठवश अविधि करते हैं ताको परिश्रम व्यर्थ होत कौन भांति।

यथा—बिहठि कहे विशेषि हठवशते कोऊ बसन जो कपरा तामें बारि कहे जल बांधत सो गोसाईंजी कहत कि यह कौन विचार की बात है कि कपरा में कहीं जल थँभत तैसे तन्त्रन में जो मन्त्रादि

की विधि हैं ताको बोध कहे यथार्थ विधि सहित बिना कीन्हें हानि लाभ कुछ नहीं होत मन्त्रादिकन की विधि भूतडामरस तंत्रसारादिकन में निरधार नाम लिखी है।

यथा—प्रथम ऋणी धनी दूजे वर्ग राशि सबल निवल तीजे मास पक्ष तिथि नक्षत्र वार चन्द्र योगिनी कार्यानुकूल चौथे स्थान शोधि कूर्म चक्र के शिरपर आसन पांचवें दिनकी दिशा शोधै छठे सिद्ध साध्य ससिद्धि अरि इति मन्त्र की प्रकृति विचारै सातवें उत्कीलन आठवें जागरण नवें संस्कार १० यथा जन्म १ जीवन २ ताड़न ३ बोधन ४ अवशेष ५ विमलीकरण ६ आप्यायन ७ तर्पण ८ दीपन ९ गोपन १० इत्यादि विधिसहित जपै तौ शीघ्र ही मन्त्रादि सिद्धि होइ॥ ६३॥

दोहा

काम क्रोध मद लोभकी, जबलगि मनमें खान।
का पण्डित का मूरखे, दोनों एक समान ६४
इत कुलकी करनी तजे, उत न भजे भगवान।
तुलसी अधवर के भये, ज्यों बघूर को पान ६५

खानि कही जहां वस्तु पैदा होत तहां कामकी खानि युवा स्त्रिन की संगति क्रोध की खानि सबसों ईर्षा मदकी खानि जाति विद्या महत्त्व रूप यौवन ऐश्वर्यादि रङ्ग मनमें आवना लोभ की खानि लाभ में मन देना इत्यादिकन की खानि मनमें बनी है तब लग का पण्डित अरु का मूर्ख दोऊ एक समान हैं भाव कामादि की खानि मनते न त्यागै कारण न बचाये तौ पण्डित है कौन श्रेष्ठ काम कीन्हें तहां पण्डित को यह चाही कि धीरज सों काम को कारण बचावै धर्म सों क्रोध को कारण बचावै लज्जा सों मद

बचावै विचार सों लोभ को हटावै तौ तौ पण्डित श्रेष्ठ नाहीं तौ पण्डित मूर्ख की समान है ॥ ६४ ॥

जे केवल पुजायबे खावे हेत वेष में मिले तिनको कहत कि इत तौ कुल की करणी यथा माता पिता ज्येष्ठ भ्राता अभ्यागत भिक्षा तर्पण पिण्डदान विप्रभोजन कन्यादानादि कुलके सब कर्म त्यागे उत जौने वेष में गये तहां भगवद्भजन करने को चाहिये सोऊ न किये तौ दोऊदिशि के धर्म कर्मनते गये तिनको गोसाईंजी कहत कि वे कैसे भये ज्यों बघूर कहे बौंडर पवन की गांठि में परे पान जो पत्ता ते अधवर के भये भाव न भूमि में रहे न आकाश को गये बीचही में घूमत रहे तैसेही कामना पवन की गांठि जो भ्रमचक्र तामें परे घूमत हैं न लोक बना न परलोक ॥ ६५ ॥

दोहा

कीर सरिस बाणी पढ़त, चाखन चाहत खाँड़।
मन राखत बैराग महँ, घरमहँ राखत राँड़ ६६

भगवद्भक्तिकी द्वै मर्यादें हैं एक तो जा कुल में जन्म भयो ताके अनुकूल देह के व्यवहार उत्तमरीति सब भगवत् को मानि देहसों करना सब सों खैंचि मन भगवत् में लगावना।

यथा—प्रह्लाद अम्बरीषादि लोक व्यवहारही में भक्तशिरोमणि भये दूसरे तन मन सों लोक त्यागि हरिभक्ति करना।

यथा—नारद शुकदेव तीसरे जो दोऊ मर्यादें छाड़ै।

यथा—घरमें परिश्रम न है सका धनहीन भोजन हेतु वेष में मिले व देखी देखा व पुजायबे हेतु वेष बनाये ते कैसे हैं वे कहे निश्चय करिकै राग कहे लोक विषयस्नेह में मन राखत काहे ते घरमें राँड़ स्त्री राखत याते कामवश।

पुनः कीतौ लोभवश रस की जग रिझायवे की वाणी की तौ क्रोधवश रिसकी वाणी पढ़त।

पुनः खाँड़ अर्थात् लड्डू कचौरी मालपुवादि चाखन चाहे अथवा कीर कहे शुककी ऐसी वाणी पढ़त भाव जो कुछ सुनत सोई सिखि गये वहै पढ़त वाको भाव ज्ञान विराग भक्ति आदि हृदय में कुछ नहीं है अरु खाँड़ अर्थात् लड्डू मालपुवादि चाखन कहे खाने की चाह सदा मनमें बनी रहत जब उत्तम पदार्थ खाये तब काम प्रचण्ड परो तब कोऊ व्यभिचारिणी स्त्री घर में राखि लिये ते कैसे हैं *मन तौ वैराग्य में राखत भाव मन में गुमान कीन्हें* कि हम वैराग्यवान् साधु हैं सब के पूज्य है अरु आपु घरमें राँड़ को पूजत उसी को इष्टसम माने रॉड़ कहिबे को यह भाव कि परस्त्री ग्रहण कीन्हें स्वस्त्री कुल त्यागे ये दोऊ दूषण हैं कुलस्त्री में कुछ दूपण नहीं है ॥ ६६ ॥

दोहा

रामचरण परचै नहीं, बिन साधन पद नेह।
मूड़ मुड़ायो वादिही, भांड़ भये तजि गेह ६७

श्रीरघुनाथजीके चरणारविन्दनते परचय जो नवधा प्रमापरादि भक्ति एकहू नहीं अरु विवेक वैराग्य शम दम उपराम तितिक्षा श्रद्धा समाधानादि पट् सम्पत्ति मुमुक्षुतादि साधन पद जो ज्ञान तामें विना नेह भाव न भक्तिमें मन दीन्हें न ज्ञानमें मन दीन्हें अथवा श्रीरघुनाथजी के चरणन में साँची प्रीति नहीं जो साँची प्रीति नहीं तौ जामें हरिपद नेह होइ सो साधन करना चाहिये।

यथा—सन्तन की संगति हरियश श्रवण गान नामस्मरणादि ताको कहत कि हरिपद नेह के जो साधन तिनको विना कीन्हें

तौ वादिही मूड़मुड़ाये काहे ते गेहं जो घर ताको तजि वेष वनाय भॉड़ भये।

यथा—द्रव्य पाइवेहेतु भाँड़ लज्जा छांड़ि अनेक स्वांग वनि लोक रिझावते हैं तैसे जो वेष वनाये ताके साधन में मन एकहू क्षण नहीं देते पुजायवे हेतु धनके लोभवश वेष वनाये अनेक प्रकार की बातें वनाय २ कहिकै लोक रिझायं पुजावत फिरत जो वेष कीन्हें ताकी लज्जा नहीं याही ते भाँड़सम कहे ॥ ६७ ॥

दोहा

काह भयो बन बन फिरे, जो बनि आयो नाहिं।
बनते बनते बनि गयो, तुलसी घरही माहिं ६८
जो गति जानै बरणकी, तनगति सो अनुमान।
बरण बिन्दुकारण यथा, तथा जानु नहिं आन ६९

जो घर छांड़ि वेष में मिले ताहूपर जो वनि न आयो भाव भगवत् सनेहमें मतु न लागौ तौ वेष वनाय वनबन फिरे काह हासिल भयो कुछ नहीं इधरौ ते गये उधरौ ते गये काहे ते जव वेष धारण कीन्हें तव मालिक के पक्के नौकर बने नौकरी में हाजिर न रहे तव गुनागारी में परे अरु विषय में मन दीन्हें तव महाअपराधमें गने गये याही भांति विगरत विगरत विगरत विगरि गई तथा गोसाईंजी कहत कि घरही माहिं रहे गुरु की दया ते सत्संग कीन्हें ते हरियश श्रवण ते विषय ते मन खैंचि हरिसनेह जामें भजन करने लगो हरिसनेह बढ़त २ सांचो भक्त हैगयो यथा भक्तमाल में बहुत लिखे हैं ॥ ६८ ॥

एक देह कौन कारण ते वनिजात कौन कारण ते विगरि जात ताको कारण कहत कि वरण जो अक्षर ताकी जो गति

सोई तुलसी अनुमान कहें विचारिले कौन भांति यथा वर्ण जो अक्षर तामें विंदु कारण है अर्थात् फारसी के अक्षरन में विंदु लगे दूसरावर्ण है जात ताही भांति देहौं की गति जानु आन भांति नहीं है देहरूप वर्ण में वासनारूप विंदु है जैसी वासना आई तैसी ही देह ह्वैगई यथा विषय की वासना ते विषयी ज्ञानवासना ते ज्ञानी भक्तिवासना ते भक्त निश्चय ऐसही सब जानना चाहिये आन भांति नहीं है ॥ ६९ ॥

दोहा

वर्ण योग भव नाम जग, जानु भरम को मूल।
तुलसी करता है तुही, जानमान जनिभूल ७०
नाम जगतसम समुझजग, वस्तुनकरि चितवै न।
विन्दुगये जिमि गैन ते, रहत ऐन को ऐन ७१

यथा—विन्दु योग ते वर्ण को दूसरा नाम भयो ताही भांति जगमें वासनारूप विन्दुयोगते देहको दूसरा नाम होत भाव जस वासना उठी तैसेही कर्तव्यता कीन्हें सोई नाम संसार में प्रसिद्ध भयो यथा ज्ञानी, अज्ञानी, त्यागी, रागी, योगी, भोगी इत्यादि नाम सब भरम की मूल है काहेते गोसाईंजी कहत कि हे मन! सब प्रकारके नामन को कर्त्ता तुही है काहेते जैसी जैसी कर्तव्यता करत गयो तैसेही नाम प्रसिद्ध होतगयो ताते सबको कर्ता आपुही को जानु निश्चय करिकै यही मानु अरु जो कृपाकृत लोक में नाम प्रसिद्ध तिनमें जनि भूल कि मैं पण्डित व ज्ञानी व सा॥ है यह झूठही भरम है ॥ ७० ॥

नाम जगत् सम जसु अर्थात् यथा जगत् तथा ताहीसम जगमें

जो नाम कहे जात सोऊ वृथा है ताते राज्य धन विद्यादि जो जो वस्तुवें जग में हैं तिन करिकै जो नाम प्रकट होत।

यथा—राज्य करि राजा धन करि धनी इत्यादि की ओर न चितवै भाव इनमें सचई न मातु केवल मनकी भरम है कौन भांति।

यथा—फारसी में ऐन अक्षर के शीश पर विन्दु लगायेते ग़ैन है जात।

पुनः विन्दुरहित करो तौ ऐन की ऐन ही रहत तहां मुसलमानी तन्त्रन में ऐन शुभाक्षर सबसों प्रीति बढ़ावत ताही ऐन के शीश पर विन्दु लगेते ग़ैन अक्षर भयो सो अशुभाक्षर है विरोध उच्चाटन करत तहां ऐन मङ्गलीक में अमङ्गलकर एक विन्दुही कारण है विन्दु गये ऐन मङ्गलीक रहगई तैसे तेरो स्वरूप तौ अखण्ड सदा एकरस आनन्दरूप सबको प्रिय है सोई विषय वासनारूप विन्दु तेरे शीशपर लागेते अमङ्गल सबको दुःखद दुःखस्वरूप भये जब वासनारहित हो।

पुनः आनन्दरूप है ॥ ७१ ॥

दोहा

आपु हि ऐन बिचार बिधि, सिद्धिबिमल मतिमान।
आन बासना बिन्दुसम, तुलसी परम प्रमान ७२
धनधन कहे न होतकोउ, समुझि देखु धनवान।
होतधनिक तुलसी कहत, दुखित न रहत जहान७३

अब जीव को शिक्षा देत कि आपुहि आपनो शुद्धरूप ऐन अक्षरकरि विचारु कैसा है विधि जो उत्तम काम ताको जाननहार सिद्धिरूप विमल मतिमान् अथवा सिद्धिहीन की विधि को जाननहार अमल बुद्धिमान् तू शुद्धरूप है।

यथा—ऐन वरन सम तामें आन वासना विन्दुसम मिले सो अविधि को करनेवाला दुःख को पात्र अमङ्गलरूप है गये यह वात परमप्रमान तुलसी कहत हैं सन्तन को अरु वेद को सम्मत है ॥ ७२॥

इन्द्रिय सब विषय में आसक्त काम क्रोध लोभादि में मन बँधा याते जीव कंगाल ह्वैगयो ते मुखते विवेक वैराग्यादि कहिकै सुखी होन चाहत कि धन धन कहेते कोऊ धनवान् नहीं होत काहेते जब सुकृत व्यापार दोऊ करौ ता परिश्रम की अनुकूल धन होत सो गोसाईंजी कहत कि मनते समुझि देखु जो धन धन कहेते धनिक होव तौ जहान में कोऊ दुःखित न रहत सब धनी होजाते तैसे विवेकादि वार्त्ता मुखते कीन्हें जीव में शुद्धता आवती तौ संसार में वद्धजीव रही न जाते ॥ ७३ ॥

दोहा

हिम की मूरति के हिये, लगी नीर की प्यास।
लगतशब्द गुरुतर निकर, सो मै रही न आस ७४
जाके उर वर वासना, भई भास कछु आन।
तुलसी ताहि विडम्बना, केहिविधिकथहिप्रमान७५

प्रथम शुद्धजल चन्द्रकिरण आदि किसी कारण ते जामिकै वरफ है गयो सो ऊपर देखने को शीतल परन्तु वाको अन्तर गरम होत काहेते जो वरफ खाय तौ वाकी गरमी ते शीत नहीं लागत अरु पियास लागत तैसे शुद्धजीव आनन्दरूप सोई विषय आश करि बद्ध है दुःखी भयो ताको कहत कि हिमकी मूरति अर्थात् सुखसिन्धु जीव विषयवश करि दुःखित ताते सुख की चाह करत तहां जा भांति हिमके ऊपर सूर्यन की किरण परे वरफ गलि पानी हो वहि समुद्र को जात तैसे गुरु तरणि जो सूर्य उपदेश

शब्दरूप किरण परे विषयरूप बरफ गलि जलसम शुद्धजीव ह्वैगयो तब सोम चन्द्रमा जो हिमको करनहार तथा विषय करि जीव बद्ध होत सो कहत सोमैं रही न आश भाव विषय की आश न रही ॥७४॥

जा जीव के उरमें केवल एक वासना भगवत्सनेह की रहै सो सहज आनन्दरूप श्रेष्ठ है ताके वर कहे श्रेष्ठ उरमें जब कुछ आन कहे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि काम लोभादिकन की वासना भास कहे प्रकाश भई तब आपनो आनन्दरूप भूलि विषयन हेतु अनेक नीच ऊंच काम करत ताहीते कुनाम होत तिनको गोसाईंजी कहत कि ताहि जीव की जो विडंबना अपमान लोक में जैसा होत तैसा प्रमान कहे सांचा कोऊ कौनी विधिते कथय बखान करै भाव जैसो अपमान होत तैसो कोऊ कहि नहीं सकत ताते विषय की वासना जीव की खरावी है वासनारहित आनन्द है ॥ ७५ ॥

दोहा

रुजतनभव परचै विना, भेषज कर किमि कोय।
जान परै भेषज करै, सहज नाश रुज होय ७६

चित्तभ्रम उन्मादादि कौनौ रुज नाम रोग तनमें भव नाम उत्पन्न भयो अथवा भव जो संसार सोई रोग भयो ताकी परचै कहे चीन्हे विना भेषज जो औषध ताको कोऊ कैसे करै अर्थात् उसी रोग के अधीन मन ह्वैजात ताते वाको जानिही नहीं परत कि मेरे यह रोग है तौ औषध किमि करै जो रोग जानि परै तौ वाकी औषध करै तौ सहजहिं रोग नाश होय । इति दृष्टान्त ।

अब दार्ष्टान्त

यथा—ताही भांति विषय की कुवासनारूप रोग भयो ताको जानते नहीं ताही भ्रम में मन धावत फिरत जब जानिसि कि

विषयवासनारूप यह मेरे रोग है तब सद्गुरुरूप वैद्यको वचनरूप औषध करै विषयसंग कारणादि परहेज करै सहज ही भवरूप रोग जो जन्म मरण है सो नाश होय जीव आनन्दरूप है जाय ॥७६॥

दोहा

मानस व्याधि कुचाह तव, सद्गुरु वैद्य समान।
जासुवचनअलवलअवश, होत सकल रुजहान ७७
रुचि बाढ़े सतसंग महँ, नीति क्षुधा अधिकाय।
होत ज्ञानवल पीन अल, वृजिनविपति मिटिजाय७८

मानसव्याधि मानसी रोग । यथा--

"मोह सकल व्याधिन कर मूला। तेहिते पुनि उपजै बहु शूला ॥
काम वात कफ लोभ अपारा। पित्त क्रोध नित छाती जारा ॥
प्रीति करहिं जो तीनिहुँ भाई। उपजै सन्निपात दुखदाई ॥
विषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब शूल नामको जाना ॥
ममता दद्रु कण्डु इर्षाई। कुष्ठ दुष्ट तामस कुटिलाई ॥
अहंकार जो दुखद डमरुवा। दम्भ कपट मद मान नहरुवा ॥
तृष्णा उदर वृद्धि अति भारी। त्रिविध ईर्षणा तरुण तिजारी ॥
युग विधि ज्वर मत्सर अविवेका। कहँलगि कहौं कुरोग अनेका॥"

इत्यादि जो रोग हैं सो हे मन ! तेरी विषय की कुवासना ते हैं तिन रोगन के मिटवे को उपाय कहत सद्गुरु सोई वैद्यसम है जासु कहे जिनके वचनरूप औषध अल नाम समर्थ है ताके बल ते सकल रुज जो रोग तिनकी हानि होत कैसे हैं रोग जाके वश ते जीव अवश होत स्ववश नहीं रहत सो सब मिटि जात जीव सुखी होत ॥ ७७ ॥

जब जीव स्ववशतारूप निरुज भयो तब नीतिरूप क्षुधा अधि-

कानी ताते सत्संगरूप भोजन में रुचि बढ़ी हरियश श्रवण नाम स्मरणादि सुअन्न खानते ज्ञानरूप बल भयो हरि सनेहरूप देहमें पीननाम पुष्टता अलनाम पूर्ण भई ॥ ७८ ॥

दोहा

शुक्लपक्ष शशि स्वच्छ भो, कृष्णपक्ष द्युतिहीन।
बढ़त घटतबिधिभांतिबिबि, तुलसी कहहि प्रबीन ७६
सतसंगति सितपक्ष सम, असित असन्त प्रसङ्ग।
जान आपकहँ चन्द्र सम, तुलसी बदत अभङ्ग ८०

शशि जो चन्द्रमा शुक्लपक्ष पाय प्रतिदिन एक कला बढ़त गयो पूर्णिमा को स्वच्छ कहे अमल पूर्ण प्रकाशमान भयो अरु सोई चन्द्रमा कृष्णपक्ष पाय प्रतिदिन एक कला घटत गयो त्यों त्यों प्रकाश क्षीण होत होत अमाको सर्वाङ्ग द्युतिहीन भयो इत्यादि घटबे बढ़बे की विधी विवि कहे द्वैभांति की हैं ताको गोसाईंजी कहत कि प्रवीणजन वेदतत्त्व जाननेवाले भगवद्दास हैं तिनको सम्मत है सोई विधि जीवकी जानिये कि विवेकपक्ष में जीव की कला बढ़त भक्ति पूर्णिमा को पूर्ण होत अविवेक पक्षमें जीव की कला घटत मोह अमा में प्रकाशहीन होत ॥ ७६ ॥

ताते हे जीव! आपु कहे चन्द्रसम जानु अरु सज्जन जो भगवद्दास तिनकी संगति सित कहे शुक्लपक्षसम जानु भाव जीवको प्रकाश बढ़त अरु असन्त जो विषयी विमुखन को प्रसंग लगि बैठना सो असित कहे कृष्णपक्ष सम जानु भाव जीव को प्रकाश हीन करत यह बात अभङ्ग कहे कबहूँ झूठी नहीं है जाको तुलसी बदत नाम कहत तहां चन्द्रमा में सोरहकला हैं।

यथा-शारदातिलकतन्त्रे

"अमृतां मानदां तुष्टिम्पुष्टिम्प्रीतिं रतिं तथा ।
लज्जां श्रियं स्वधां रात्रिं ज्योत्स्नां हंसवतीं ततः ॥
छायां च पूरणीं वामाममाचन्द्रकला इमाः ॥"

इत्यादि षोड़शकलायुत पूर्णचन्द्रमा पूर्णमासी को रहत तथा निराशा आदि षोड़शकला करि भक्तिरूप पूर्णमासी को जीव पूर्ण प्रकाशमान रहत सोई कुसंगरूप कृष्णपक्ष पाय विषय आश परेवा को निराशता कला हीन भई असपरधा द्वितीया को सत्वासना कला हीन भई अपकीरति तृतीयाको कीरति कला हीन भई अविद्या चतुर्थीको जिज्ञासा कला हीन भई चिन्ता पञ्चमीको करुणा कला हीन भई भूल षष्ठी को मुदिता कला हीन भई लोलुपता सप्तमीको थिरता कला हीन भई ममता अष्टमीको असंग कला हीन भई ईर्षा नौमी को उदासीनता कला हीन भई अश्रद्धा दशमी को श्रद्धा कला हीन भई आशा एकादशीको लज्जा कला हीन भई निन्दा द्वादशी को साधुता कला हीन भई तृष्णा त्रयोदशीको तृप्ति कला हीन भई हिंसा चतुर्दशीको क्षमा कला हीन भई मिथ्यादृष्टि अमावस को विद्या कला हीन भई केवल एक प्रेम कला रही सोऊ क्षीण है अविवेक सूर्यन के संग परि अस्त है गई ।

पुनः जब सत्संगरूप शुक्रपक्ष मिल्यो अभ्यास जन्म रात्रि को निराशा प्रकटी प्रकाश द्वितीया को सत्वासना कला प्रकटी सुयश तृतीया को कीरति कला प्रकटी निष्कपट चौथि को जिज्ञासा प्रकटी आनन्द पञ्चमी को करुणा कला प्रकटी आर्यव षष्ठी को मुदिता कला प्रकटी त्याग सप्तमी को थिरता कला प्रकटी ज्ञान अष्टमी को असंग कला प्रकटी वैराग्य नौमी को उदासीनता कला प्रकटी धर्म दशमी को श्रद्धा कला प्रकटी शील एकादशी को लज्जा

कला प्रकटी सत्य द्वादशी को साधता कला प्रकटी संतोष त्रयोदशी को तृप्ति कला प्रकटी धैर्य्य चतुर्दशी को क्षमा कला प्रकटी भक्ति पूर्णमासी को विवेक विचार कला प्रकटी तब प्रेमा मिलि षोड़श कला पूर्ण जीव भयो ॥ ८० ॥

दोहा

तीरथ पति सतसंग सक, भक्ति देवसरि जान।
विधि उलटीगति रामकी, तरनिसुता अनुमान ८१

सत्संग कहे जहां कर्म ज्ञान भक्ति हरियश वर्णन ऐसी जो सन्तन की समाज ताको तीरथपति जो प्रयाग ताकी सम जानिये तहां श्रीगङ्गाजी चाहिये सो कहत कि भक्ति ।

यथा–भागवते प्रह्लादवाक्यम्

"श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनामिति नवधा" ॥

पुनः नारदसूत्रे ।

"अथातो भक्तिं व्याख्यास्यामः सा कस्मै परमप्रेमरूपा । इति प्रेमा"॥

पुनः शाण्डिल्यसूत्रे ।

अथातो भक्तिजिज्ञासा सा परानुरक्तिरीश्वरे । इति पराभक्तिः " ॥

इत्यादि जो भक्ति सर्वोपरि श्रेष्ठ सो देवसरि गङ्गाजी को जानौ पुनः विधि जो हरि अनुकूल कर्म ।

यथा—"नामरूप लीला सुरति, धामवास सतसङ्ग ।
स्वाति सलिल श्रीराम मन, चातक प्रीति अभङ्ग ॥"

इति ग्रहण करिबे योग्य पुनः श्रीरामप्रीति की जो उलटी गति हरिप्रतिकूल कर्म ।

यथा—"मद कुसङ्ग परदार धन, द्रोह मान जनि भूल ।
धर्म रामप्रतिकूल ये, अमी त्यागि विष तूल ॥"

इति त्याग करिवेयोग्य कर्म है इत्यादि विधिनिषेधमय जो कर्म तिनको तरनि जो सूर्य ताकी सुता यमुनाजी को अनुमान करौ यथा गङ्गाजी सर्वथा नरकनिकन्दनी तथा भक्ति सदा अधम-उद्धारनी सतोगुणमय भक्ति श्वेत तथा गङ्गाजी श्वेत पुनः जमुनाजी केवल मथुराजी में नरकनिवारणी है तैसे कर्म भी हरि सम्बन्ध पाय जीवन को उद्धार करत।

पुनः यमुनाजी श्याम हैं तथा सवासनिक कर्म भी तमोगुण मिले श्याम हैं ॥ ८१ ॥

दोहा

वर मेधा मानहु गिरा, धीर धर्म निग्रोध।
मिलन त्रिबेणी मलहरणि, तुलसी तजहु विरोध ८२

वर कहे श्रेष्ठ मेधा बुद्धि को भेद है। यथा—निश्चयात्मक जो पदार्थ को निश्चय करै ताको बुद्धि कही व धारणात्मक जो वस्तु को धारण करै ताको मेधा कही श्रेष्ठ याते कहे कि ज्ञान को धारण करनेवाली मेधा।

यथा-गीतायाम्

"प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥
दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥
यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥"

इत्यादि धारनेवाली जो बुद्धि सो गिरा नाम सरस्वती हैं। पुनः धीरज सहित जो अचल धर्म है सो निग्रोध कहे अक्षयवट है

सो भक्ति ज्ञान कर्म तीनिहूं को जो मिलन है अर्थात् जब तक देह को व्यवहार तब तक निर्वासनिक कर्म करि भगवत् को अर्पण करै ज्ञान करि स्वस्वरूप चीन्है भक्ति करि भगवत् में प्रेम बढावै इन तीनिउ मिलि त्रिवेणी सम है सो कैसी अनेकन जन्म के मल जो पाप ताकी हरनेवाली है याते उत्तम जानिकै हे तुलसी ! इनमें विरोध न करो तीनिहूं को ग्रहण करो ॥ ८२ ॥

दोहा

समुझबसम मज्जन बिशद, मल अनीति गइ धोय।
अवशि मिलन संशय नहीं, सहज राम पद होय ८३
क्षमा बिमल बाराणसी, सुरापगा सम भक्ति।
ज्ञानबिश्वेश्वर अतिबिशद,लसत दया सह शक्ति ८४

वहां प्रयाग त्रिवेणी जल में देह करि स्नान होत इहां सत्संग प्रयाग में कर्म ज्ञान भक्ति मिलि त्रिवेणी में जो मन लगाय कै जो समुझब मन में धारण करना सोई मज्जन है तेहिते मन विशद कहे उज्ज्वल अमल होत मन जो अनीति सत्य को असत्य, असत्य को सत्य मानना सो अनीति धोय गई भाव नाश भई जब मन-रूप देह अमल भई तब चारिफल चाहिये सो कहत कि सहजही में श्रीरामपदवी मिलनि अवशि करिकै होय जामें सब फल सु-गम है यामें संशय नहीं है तहां जिज्ञासु भक्त को धर्म फल अर्थी को अर्थ आरत को काम ज्ञानी को मुक्ति ॥ ८३ ॥

क्षमा कहे कैसहू कोऊ आपनो अपराध करै यद्यपि आपु समर्थ है ताहू पर कोप निवारण करि पाप सहिलेना वाको तिरस्कार न करना तहां विमल कहे जा क्षमा में आपने ऊपर दोष न आवै ताते खास आपने अपराध को सहिजाना ऐसी जो विमल क्षमा सोई

वाराणसी कहे काशी है सुरापगा श्रीगङ्गाजी ताकी सम भक्ति है जा काशी गङ्गा तहां विश्वेश्वरनाथ चही सो कहत कि विशद कहे उज्ज्वल सुन्दर ज्ञान सोई विश्वेश्वरनाथ है तहां शक्ति चाहिये सो वेप्रयोजन सब जीवन को दुःख निवारण ऐसी जो दया सोई शक्ति कहे पार्वती तिन सहित लसत कहे विराजमान हैं ॥

यथा—सब गुण खानि काशी मुक्तिदायक तथा दया ज्ञान भक्ति सहित क्षमा स्वाभाविक मुक्तिदायक है ॥ ८४ ॥

दोहा

वसत क्षमागृह जासु मन, वाराणसी न दूरि।
विलसति सुरसरि भक्ति जहँ, तुलसीनयकृतभूरि ८५
सितकाशी मगहर असित, लोभ मोह मद काम।
हानि लाभ तुलसी समुझि, वास करहु वसुयाम ८६

क्षमागृह क्षमा के मध्य में जासु को मन वसत है ताको वाराणसी काशी दूर नहीं है भाव तेरे पास ही है जहां गङ्गाजी की सम भक्ति है गोसाईंजी कहत कि कैसी है भक्ति नय कहे नीतिमय कृत जो कर्म तिनको भूरि नाम बहुतन को प्रकट करनहारी है भक्ति ॥८५॥

। इहाँ दयाशक्ति ज्ञान विश्वनाथ भक्ति गङ्गादि युक्त क्षमारूप काशी सित कहे शुक्लपक्षसम जीवरूप चन्द्रमा को बढ़ावन हारी है ॥

पुनः—लोभ मोह मद कामादि कुवासना सोई मगह है सो असित कहे कृष्णपक्ष सम जीवरूप चन्द्र को घटावनहारी है तावे दोऊ की हानि लाभ विचारिकै भाव कुवासना में हानि विचारि गोसाईंजी कहत भक्ति ज्ञान दया क्षमादि में वसु याम कहे आठौं-पहर इनही में वास करो भाव मन लगाओ कुवासा त्यागौ तौ सुखी होउगे ॥ ८६ ॥

दोहा

गये पलटि आवै नहीं, है सो करु पहिंचान।
आजु जेई सोइ काल्हि है, तुलसी भर्म न मान ८७
वर्त्तमान आधीन दोउ, भावी भूत बिचार।
तुलसी संशय मनन करु, जो है सो निरवार ८८

काहे ते जो दिन वीति गये सो फिर पलटि कै आवेंगे नहीं जो अवस्था गई सो तो गई जो अब बाकी रही तामें तो हरिरूप की पहिंचान करु अथवा जो आपनो रूप भूल रहा ताकी पहिंचान करु हरि सनेह में लागु काहे ते जो कुछ आजु है तैसे ही काल्हिहू है काल्हि कुछ और न होइगो ताते आजु काल्हि न करु क्यों एक दिन और वृथा खोवत ताते गोसाईंजी कहत कि भरम न मान सब भरम छाड़ि श्रीराम शरण गहु कि।

यथा--अहल्या केवट को उद्धारे तैसे दीनबन्धु मोको भी उवारेंगे ऐसा दृढ भरोसा करि प्रभु को भजु ८७ वर्तमान में जो जो कर्म जीव करत ताको बटुरि संचित होय।

यथा--खेतन को अनाज वखारिन में भरे ताहीते जो देह के साथ आयो सो प्रारब्ध है।

यथा--रसोईं को भोजन तामें भावी कहे जो आगे होनहार है अरु भूत कहे जो पूर्व ह्वै चुके ताको विचारि देखु ये दोऊ वर्तमान ही के आधीन हैं भाव वर्तमानै ते प्रकट भये हैं अथवा भावी भूत दोऊ कर्मसंग ते वढ़ि घटि जात।

यथा--अजामिल के पूर्वकृत पातक अन्त यम साँसति ये दोऊ जब वर्तमान हरिनाम के प्रभाव ते नाश भये सो ऐसा विचारि

गोसाईंजी कहत कि पूर्व पर काहू बात की संशय न करु जो संसार कुचाइ में मन उरझा है ताको निरवारु। भाव सबसों मन खैंचि श्रीरघुनाथपदारविन्दन में मन लगाओ तौ भूत भविष्य प्रारब्ध संचितादि सबसों छूटि सुखस्थान पावोगे ॥ ८८ ॥

दोहा

मानस उर वर सम मधुर, राम सुयश शुचि नीर।
हटेउवृजिनवुधिविमलभइ, बुधनहिंअगमसुथीर ८९

जब कुवासनारहित भयो ऐसा अमल उर वर कहे श्रेष्ठ सोई मानसर सम है तामें श्रीरामसुयश।

यथा—"होत जु अस्तुति दान ते, कीरति कहिये सोइ।
होत बाहुबल ते सुयश, धर्मनीति सह होइ॥"

इत्यादि श्रीरघुनाथजी को अमल यश सोई शुचि कहे पवित्र जल करि परिपूर्ण है अर्थात् भक्ति, वत्सलता, करुणा, दया, सुशीलता, उदारता, शरणपालतादि अनेक दिव्य गुणयुत सगुणरूप की माधुरी छटा को वर्णन ऐसा श्रीरामयशरूप जो थीर जल है सो सबको सुगम नहीं है परन्तु जे श्रीरामानुरागी बुध जन हैं तिनको अगम नहीं है काहेते भगवत् में प्रीति सत्संग में रुचि है सो जब श्रीरामयशरूप अमल जल में मज्जन कीन्हे भाव श्रवण कीर्तनादि करि प्रेम में मन मग्न भयो तब वृजिन जो दुःख सो मैल सम हटेउ छूटि गयो तब बुद्धि विमल भई श्रीरामचरित्र वर्णन करिबे की अधिकारी भई ॥ ८९ ॥

दोहा

अलंकार कवि रीतियुत, भूषण दूषण रीति।
वारिजातवरणन विविध, तुलसी विमल विनीति ९०

अलंकार यथा अनुप्रासादि शब्दालंकार उपमादि अर्थालंकार इनमें अनेक भेद हैं ।

पुनः कविरीति कहे लोक की कहनूति ते कुछ न्यूनाधिक कहना तेहि कविरीतियुक्त अलंकार जैसे अत्युक्ति अर्थात् जहां उदारता शूरता त्यागता यश प्रतापादि वर्णन तहां काहू को बढावन काहू को घटावन ।

यथा—चौपाई

"तव रिपुनारि रुदन जल धारा । भरे बहोरि भयो तेहि खारा ॥"
सुनि अत्युक्ति पवनसुत केरी । इति अत्युक्ति को लक्षण ।

यथा—भाषाभूषणे

दो०—"अलंकार अत्युक्ति यह, बर्णत अतिशय रूप ।
याचक तेरे दान ते, भये कल्पतरुभूप ॥"

प्रमाणं चन्द्रावलोके

"अत्युक्तिरद्भुतातथ्यं शौर्यौदार्यादिवर्णनम् ।
अर्थदातरि राजेन्द्र ! याचकाः कल्पशाखिनः ॥"

अथवा वस्तु में कुछ चीज निकारि देना यथा प्रतिषेधालंकार

यथा—पद्माभरणे

"छूटी न गाँठि जु राम ते, तियन कह्यो तिहिठाहिं ।
सियकङ्कण को छोरिबो, धनुष तोरिबो नाहिं ॥"

अथवा प्रतापादि बढावना यथा प्रौढोक्ति ।

यथा—"जिनके यश प्रताप के आगे ।
शशि मलीन रविशीतल लागे ॥"

इत्यादि अनेक है ।

पुनः दूषण भूषण की रीति । जैसे प्रथम दूषण ।

यथा—छप्पय

"श्रुति कटुभाषा हीन अप्रयुक्तो असमर्थहि।
निहितारथ अनुचितार्थ, पुनि निरर्थकैकहि॥
आवाचका श्लीलग्राम्य संदिग्ध न कीजे।
अप्रतीतनैयार्थ क्लिष्ट को नाम न लीजे॥"

अविमृष्ट निधे

यथा—विरुद्धमतिकृत छन्द दुष्टद्व कहूं कहुं शब्द समासहि के मिले वहूं एक द्वै अक्षरहु।

दो०—"कानन को कटु जो लगै, दास सो श्रुति कटु लाहि।
त्रिया अलक चक्षुश्रवा, असत परत है दृष्टि॥"

वार्तिक चक्षुश्रवा औ दृष्टि ये द्वौ शब्द दुष्ट हैं दास सो श्रुतीनि सकार एक ठांते वाक्य दुष्ट त्रिया में रकार दुष्ट ताते तीनिउँ भांति श्रुति कटु है।

पुनः शब्द में वरण घटि बढ़ि सो भाषा हीन यथा कान्ह को कान इत्यादि शब्द दोष है।

पुनः वाक्य दोष

यथा—टवर्ग वीर में चाही सो शृङ्गार में कहै ताको प्रतिकूलाक्षर दोष कही।

पुनः छन्द भङ्ग न्यून अधिक पद संधि रहित कथित पद पतत्प्रकर्षसमाप्तपुनरात्तादि अनेक वाक्य दोष हैं।

पुनः अर्थदोष।

यथा—दुइ शब्द कहे अर्थ बनै तौ चारि शब्द कहै व्यर्थ सो इव शब्दार्थ दोष है।

यथा—"ज्योअति बढे गगन मे, उज्ज्वल चारु मयङ्क।"
इहां गगन में मयङ्क ज्यो ऐसे ही मे अर्थ बनत और व्यर्थ है

तथा कष्टार्थ व्याहत पुनरुक्त दुक्रम ग्राम्य संदिग्धनिरहेतादि अनेक हैं इति दोपसंक्षेप ।

पुनः भूषण कहे दूषणोद्धार

यथा—दो०"कहूं शब्द भूषण कहूं, छन्द कहूं तुकहेत ।
कहुं प्रकरणवश दोषहू, गनै अदोप सचेत ॥"

जैसे तुकांतहेत निरर्थ छन्द हेत अधिक न्यून पद मस्तान ग्राम में ग्रामीन वार्त्तादि में बहुत दूषण भूषण होत इत्यादिकन को जो तुलसी के वदन करिकै विनीत कहे नम्रता सहित वर्णन है सो यहि काव्यरूपी मानसर में वारिजात जो कमल सो विविध रङ्ग के शोभित हैं ॥ ९० ॥

दोहा

बिनय बिचार सुहृदता, सो पराग रस गन्ध ।
कामादिकतेहिसर लसत, तुलसी घाट प्रबन्ध ९१

यहां अलंकार कवि रीति आदि कमल कहे तामें पराग चाहिये अर्थात् पीतरङ्ग की धूरि तेहि करि कमल शोभायमान देखात इहां विनय जो नम्रता वरण ।

यथा—"तुलसी राम कृपालु ते, कहि सुनाव गुण दोष ।
होउ दूबरी दीनता, परम पीन संतोप ॥"

इत्यादि दीनता करि काव्य शोभित होत सोई पराग है जो प्रसिद्ध देखात ।

पुनः कमल के अन्तर व्याप्त रस रहत जाको मकरन्द कहत जेहि करिकै ललित लागन अर्थात् कमल को सारांश है इहां सत् असत् को जो विचार वर्णन ।

यथा—"ज्यों जग वैरी मीन को, आपु सहित परिवार ।
त्यों तुलसी रघुनाथ विन, आपनि दशा विचार ॥"

इत्यादि विचार सो काव्य कमल को सारांश रस है।

पुनः कमल में गन्धरहत जो दूरिही ते सुगन्ध आवत इहां सुहृदता जो सवसों सद्दश मित्रता वर्णन।

यथा—"तुलसी मीठे वचन सों, सुख उपजत चहुँ ओर।
वशीकरण यह मन्त्र है, परिहरु वचन कठोर॥"

इत्यादि सुहृदता काव्य कमल की सुगन्ध है उहां मानसर में घाट अरु सोपान है इहां कामादिक कहे अर्थ, धर्म, काम, मोक्षादि चारिफल तिनकी चारि क्रिया।

यथा—"अर्थचातुरी सों मिलै, धर्म सुश्रद्धा जान।
काम मित्रताते मिलै, मोक्ष भक्ति ते मान॥"

इत्यादि को वर्णन ते इहां चारि घाट है गोसाइंजी कहत कि प्रेम अनन्यतादि जो सात प्रबन्ध अर्थात् सातौ सर्ग तेई सुभग यामें सात सोपान सीढ़ी हैं॥ ६१॥

दोहा

प्रेम उमँग कबितावली, चली सरित शुचिधार।
रामवरावरि मिलनहित, तुलसी हर्ष अपार ६२
तरल तरङ्ग सुछन्दवर, हरत द्वैत तरुमूल।
वैदिकलौकिकविधिविमल, लसत विशदवरकूल ६३

वहां मानसरमें जल उमँगो बाहर बहो सोई सरयूजी लोक में विख्यात भई इहां श्रेष्ठ उररूप मानसरते श्रीराम सुयशरूप जल बाढ़ो तब प्रेम उमँगि कवितावलीरूप सरित सरयू शुचि कहे पवित्रधार वहिचली कैसे प्रेमानन्द ते।

यथा—सुतीक्ष्णादि प्रेमी भक्त श्रीरघुनाथजी के मिलनहित

चलत जैसी हर्ष होत ताही बराबरि श्रीरामचरित्र वर्णन करिवे में तुलसीके अपार हर्ष होत है ॥ ९२ ॥

जब नदी उमँगि बहत तब महातरङ्गें उठत तेहि वेगते किनारे के वृक्ष उचरि परत इहां काव्यरूप सरयू में सुकहे सुन्दरी छन्दै श्रवण रोचक वरनाम श्रेष्ठ जिनमें शुभगन हैं तेई छन्दै इहां तरल कहे चञ्चल तरङ्गें हैं तिनको जो वेग है सो द्वैतरूप तीर के वृक्ष ताकी मूल हरत भाव प्रेमप्रवाह द्वैत वृक्ष को जरते उचारि डारत।

पुनः सरयू में द्वै किनारा हैं इहां वैदिक विधि वेदरीति वर्णाश्रम के धर्म पर चलना अरु लौकिकविधि जो लोकरीति पर चलना इत्यादि दोऊ रीति विमल कहे निर्दोषित तेई दोऊ विशद कहे उज्ज्वल वर नाम श्रेष्ठ कूल नाम किनारा लसत कहे शोभित हैं तहां वैदिक दक्षिण किनारा सो ऊंचा है लौकिक उत्तर किनारा सो नीचा है ॥ ९३ ॥

दोहा

सन्तसभा बिमला नगरि, सिगरि सुमङ्गल खान।
तुलसी उर सुरसरसुता, लसत सुथल अनुमान ९४
मुक्त मुमुक्षू वर बिषय, श्रोता त्रिबिध प्रकार।
ग्राम नगर पुरयुग सुतट, तुलसी कहहि बिचार ९५

वहां श्रीअयोध्याजी को सुन्दरथल विचारि ताके निकट श्रीसरयूजी वहीं तहां विशेष माहात्म्य है इहां सन्तन की सभा सोई विमला नगरी श्रीअयोध्याजी कैसी है सिगरि कहे सब प्रकार की सुन्दर मङ्गल जो उत्सव ताकी खानि है तहां तुलसी को उररूप सुरसर कहे मानससर ताकी सुता काव्यरूप 'सरयू' सो सत्सङ्गरूप श्रीअयोध्याजीको सुन्दर थल अनुमान करि ताके निकट लसत

नाम विराजमान है तहां यथा अवध निकट सरयूजी का विशेष माहात्म्य है तथा सन्तसभा में तुलसी की काव्य को विशेष माहात्म्य है ९४ वहां सरयूजी के किनारे दोऊ दिशि पुर ग्राम नगर बसे हैं चारि घरते ऊपर पुर सोलह घरते ऊपर ग्राम सौ घर के ऊपर नगर इहां काव्यरूप सरयू के युग कहे दोऊ सुन्दर तट पर तीनि विधि के जो श्रोता हैं तेई नगर ग्राम पुर हैं कौन तीनि भांति प्रथम मुक्त जे शुद्धचित्त एक रस मन लगाय कै कथा श्रवण करत तेई इहां नगर सम हैं दूसरे मुमुक्षु जे मुक्ति के साधन में लगे है तिनके कथा श्रवण की श्रद्धा है परन्तु मन एक रस नहीं काहे ते-लयविक्षेप कषाय रसास्वादादि विघ्न लागि बाधा होत ते ग्राम सम हैं ये दोऊ वर कहे श्रेष्ठ हैं।

पुनः विषयी जे विषय में आसक्त हैं किंचित् श्रद्धा कथाश्रवण में भी है ते पुर की समान है इत्यादि गोसाईंजी विचारि कै कहत हैं॥ ९५॥

दोहा

वाराणसी विराग नहिं, शैलसुता मन होय।
तिमिअवधहिसरयु न तजै, कहतसुकविसवकोय ९६
कहव सुनव समुझव पुनः, सुनि समुझायव आन।
श्रमहर घाट प्रबन्ध वर, तुलसी परमप्रमान ९७

शैल हिमाचल ताकी सुता श्रीपार्वतीजी तिनके मन में जाभांति वाराणसी जो श्रीकाशीजी ताते विराग नहीं होत भाव काशीजी को कबहूं नहीं त्यागत तिमि कहे ताही भांति अवधहि श्रीअयोध्याजी को सरयूजी नहीं तजत सदा समीप ही रहत तैसे गोसाईंजी की काव्य सन्तन की समाज के सदा निकट रहत ऐसा

सुकवि सब कोऊ कहत हैं ९६ श्रीरामयश जल परिपूर्ण वर हृदय मानससर में श्रीगोसाईंजी के रचित कीन्हें परम प्रमाण जो सातौ सर्ग हैं अर्थात् प्रेमाभक्ति अनन्यता १ उपासनापराभक्ति २ संकेतवक्रोक्ति ३ आत्मबोध ४ कर्मसिद्धान्त ५ ज्ञानसिद्धान्त ६ राजनीतिप्रस्ताव ७ इति सातप्रबन्ध सातौ सोपान हैं अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारि घाट हैं तिनकी चारि क्रिया चारि मार्गे हैं यथा सेवाक्रिया करि अर्थ प्राप्त होत इहां श्रीरामयश को कहब सब को सुनावब सोई सेवा क्रिया मार्ग है अर्थ घाट की प्राप्ति होत ।

पुनः श्रद्धाक्रिया करि धर्मफल की प्राप्ति होत इहां श्रीरामयश सुनिबे की श्रद्धारूप मार्ग करि धर्म घाट की प्राप्ति होत ।

पुनः तपक्रिया करि काम फल की प्राप्ति होत इहां श्रीरामयश सुनि समुझि चित्त में धारण करि तीर्थ व्रत जप पूजादि कीन्हें ते सुख प्राप्त भये पर सन्तोष ह्वै गयो उसी में रहे सोई तप क्रिया मार्ग है कामघाट की प्राप्ति होत ।

पुनः भक्ति क्रिया करि मुक्ति फल की प्राप्ति होत इहां श्रीरामयशसुनि आपु समुझिकै मन भगवत् शरण में लगाये ज्ञान करि चैतन्य ह्वै ताते आन को भी समुझावते हैं इत्यादि भक्ति क्रिया मार्ग करि मुक्ति घाट की प्राप्ति है तहां विषयन को अर्थ काम को अधिकार मुमुक्षुन को धर्म का अधिकार मुक्तन को मुक्तिका अधिकार इत्यादि श्रीरामयश को श्रवण कीर्तनादि सोई अवगाहन है सो कैसा है जीवन को जो अनेक भांति को जरा जन्म मरण व तीनों तापैं व कामादि करि पीडा इत्यादि श्रम को हरणहार है ॥ ९७ ॥

पद ।

सुगम उपाय पाय नर तनु मन हरिपद किन अनुरागतरे ।
जगवनघोर मोह रजनी तम कामादिक ठग लागतरे ॥ १ ॥

विविध मनोर्थ चूर्ण शक्कर घृत मोद करचित्नहिं आगतरे।
शब्द स्पर्श रूप रस गन्धहु विषय विषम विष पागतरे ॥ २॥
संगति पाय खलाय तोहिं शठ चौरावत अंतागतरे।
सहज अनन्द रूप तेरो धन लूटि तदपि नाहिं त्यागतरे ॥ ३॥
गुरुमुख पन्थ साथ सज्जन के धाम अभय दिशि वागतरे।
मयत काम तरु रामनाममुनि सभयशत्रुगण भागतरे ॥ ४॥
कागभुशुण्डि शम्भुसनकादिक नारदहू जिहि रागतरे।
वैजनाथ रघुनाथ शरण को वेद विदित यश जागतरे ॥ ५। १॥

इति श्रीरसिकलताश्रितकल्पद्रुमसियवल्लभपदशरणागत वैजनाथ-
विरचितायां सप्तशतिकाभावप्रकाशिकायामात्मबोध-
प्रकाशोनामचतुर्थप्रभा समाप्ता ॥ ४ ॥

दो०—नाम सियासिय वर वरण, नरत नरक निरधार।
धारण करिकरि मनमनज, जरत करत सुखसार ॥ १ ॥
वन्दौं सीतानाथ गुरु, दयादृष्टि करधार।
जगत कीच विच वृजिन चय, विचलत लेहु सँभार ॥ २ ॥

या सर्ग विषे कर्म सिद्धान्त वर्णन है सो कर्म सबको आदि कारण है सो कर्म शुभाशुभ द्वै सो जीवरूपपक्षी के पक्ष हैं जिनके आधार जीव की सदा गति है अरु शुभाशुभ कर्म जीवते स्वाभाविक होत ही रहत हैं शुभ।

यथा—प्यासे को पानी, भूखे को दानी, भूले को राह, तपे को छाया वताय देना इत्यादि वेपरिश्रम शुभ होते हैं अरु अशुभ तौ पैग प्रति असंख्य होते हैं।

पुनः यावत् कर्तव्यता है सो सब कर्म हैं।

यथा—शम, दम, उपराम, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधानादि षट्संपत्ति, वैराग्य, मुमुक्षुतादि, ज्ञान के साधन सो सब कर्मही हैं।

पुनः श्रवण, कीर्तन, वन्दन, अर्चनादि भक्ति सोऊ कर्मही है।
पुनः वर्णाश्रमादि के विना कर्म कीन्हें कोऊ उत्तम नहीं होत ताते नरक स्वर्ग, मुक्तिधाम पर्यन्त कर्मवृक्ष की शाखा फैली है तिनकी आधार चहै जहां जाय तहां सवासिक कर्म करि कर्म ही के आश्रित रहना सो जीव को वन्धन है।
पुनः निर्वासिक कर्म करि हरिप्रीत्यर्थ भगवत् को अर्पण करै सो कर्म वन्धन नहीं है भक्ति मुक्तिदायक है दोऊ के कर्त्ता।
यथा—निर्वासिक यज्ञ करि पृथु हरि भक्त भये सवासिक यज्ञ कर्ता दक्ष की दुर्दशा भई निर्वासिक तप करि ध्रुव भक्त भये सवासिक तप करि रावण नाश भया निर्वासिक क्रिया करि अम्बरीष भक्त सवासिक में कर्ण निर्वासिक धर्म में युधिष्ठिर सवासिक में जरासन्ध ताते सवासिक कर्माश्रित करि स्वर्ग प्राप्ति।

पुनः "पुण्ये क्षीणे मृत्युलोके"

ऐसा विचारि हरि भक्ति हेतु शुभकर्म करनो उचित है।

इति भूमिका समाप्ता॥

दो०—सिन्धु कर्म सिद्धान्त यह, सव विधि अगम अपार।
गुरुपद नौका पाइ त्यहि, सुगम पाइये पार॥ १॥

दोहा

यल अनूपम जानु वर, सकल कला गुण धाम।
अविनाशी अवयहअमल, भौ यहं तनुधरि राम १

अथ तिलक

कला चौंसठि चौदहों विद्यार्ओं के अङ्ग हैं।

यथा—शैवतन्त्रोक्ते

प्रथम गीत १ वाद्य २ नृत्य ३ नाट्य नटन को नाच ४ आलेख्य५

विशेषच्छेद्य हीरादिवेधन ६ तण्डुलकुसुमावलिविकारः मांसादि के रंग निकालना ७ पुष्पस्तरण ८ दशनवसनाङ्गराग ९ मणिभूमिका कर्म १० शयनरचना ११ उदक वाद्य जलतरङ्ग बजावना १२ उदकघात जलताड़न १३ चित्रयोग १४ माल्यग्रन्थन १५ शेखरापीड़योजन मुकुट चन्द्रिकादि विधान १६ नेपथ्ययोगः शृङ्गारोपाय १७ कर्णपत्रभङ्ग श्रवण भूषणरचना १८ गन्धयुक्ति अतरादिबनाना १९ भूषण योजना २० इन्द्रजाल २१ कौचुमारयोग बहुरूपी २२ हस्तलाघव पटेबाजी २३ भोज्यविकारसूपकारी २४ पानकरसरागासवयोजन केवड़ा मद्यादि २५ सूचीवाण कर्म सियब बाण चलावना २६ सूत्र क्रीड़ा डोरा में खेल चकई लट्टू आदि २७ वीणाडमरू बजाना २८ पहेलिका २९ प्रतिमाला जीवों कीसी बोली बोले ३० दुर्वश्चक योग छलविद्या ३१ पुस्तक बांचना ३२ नाटिकाख्यायिकादर्शन हाव भावादि देखावना ३३ काव्यसमस्यापूरण ३४ पट्टिकावेत्र वान विकल्प नेवार बेतरज्जुपर्यङ्कादि ३५ तर्क ३६ तक्षण बढ़ई कर्म ३७ वास्तुविद्या थवई ३८ स्वर्णरत्न परीक्षा ३९ धातुवाद सोनारी ४० मणिरागाकारज्ञान जवाहिरी ४१ वृक्षायुर्वेदयोग माली ४२ मेषकुक्कुटादियुद्धकुशल ४३ शुकसारिकाप्रलापक ४४ उत्सादन शत्रुउच्चाटन ४५ केशमार्जनकौशल ४६ अक्षरमुष्टिका कथन मूकप्रश्न ४७ म्लेच्छितविकल्प, ४८ देशानांभाषा ज्ञान ४९ पुष्पशकटिकानिमित्त ज्ञान फूलों से रथादि बनावे ५० यन्त्रमात्रिका कठपुतरी नचावे ५१ धारणमात्रिकासांवाच्य मन स्थिरवचन प्रवीण ५२ मानसीकाव्यक्रिया ५३ अभिधानकोष ५४ पिङ्गलज्ञान ५५ क्रियाविकल्प कार्यसिद्धकरनो ५६ छलितकयोग छल जानिलेना ५७ वस्त्रगोपनानि ऊनरेशमी वस्त्र की रक्षा ५८ द्यूतविशेष पांसादिखेल ५९ आकर्ष क्रीड़ाखेल

अपनी ओर खैंचना ६० वालक्रीड़न कानि ६१ वैनायकीनां सभाचातुरी ६२ वैजयिकीनां जयदेनवाले वश की वशविद्या ६३ वैयासिकीनां च विद्याज्ञानं पुराणादि में प्रवीण ६४ इति कला वा ईश्वररूप में यावत् कला हैं गुण ।

यथा—वाल्मीकीये

"इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नामजनैः श्रुतः ।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान्धृतिमान् वशी १
बुद्धिमान्नीतिमान्वाग्मी श्रीमाञ्छत्रुनिवर्हणः ।
विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः २
महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुररिन्दमः ।
आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रम ३
समः समविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान् ।
पीनवक्षाविशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभलक्षणः ४
धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजानां च हिते रतः ।
यशस्वी ज्ञानसंपन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान् ५
प्रजापतिसमः श्रीमान् धाता रिपुनिषूदनः ।
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता ६
रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता ।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः ७
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञःस्मृतिमान् प्रतिभानवान् ८
सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः ।
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः ९
स च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्द्धनः ।
समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव १०
विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः ।

कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः ११
धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः।
त्वमेव गुणसंपन्नो रामः सत्यपराक्रमः १२"

इत्यादि गुणन के धाम

पुनः माधुर्य लीला में चौंसठि कलन के धाम हैं ऐश्वर्यलीला में भगवत्रूप में यावत् कला हैं ताके पूर्णधाम हैं।

पुनः अविनाशी जाका कबहूं नाश नहीं ऐसो सनातन परब्रह्म रूप है।

पुनः अब अवतार धारण जो यह श्रीदशरथनन्दनरूप है ते भी कामादि दूषणरूप मलरहित ताते अमलरूप ऐसे राम श्रीरघुनाथजी लोकजीवन के उद्धार हेतु दयाकरि यह नर तनु सबको सुलभ भास हेतु प्रगट भये तिन को नाम स्मरण लीला श्रवण कीर्तनरूप अर्चन वन्दन पादसेवन धामवास प्रेमापरादि जो करना सो वर कहे श्रेष्ठ अनुपम यत्न है याके सम दूसरा यत्न नहीं है ऐसा विचार इनमें मन लगावे तो सुगम जीव को उद्धार होइगो॥ १॥

दोहा

सदा प्रकाश स्वरूप बर, अस्त न अपर न आन
अप्रमेय अद्वैत अज, याते दुरत न ज्ञान ।

श्रीरघुनाथजी को कैसा स्वरूप है वर कहे सर्वोपरि श्रेष्ठ सद एकरस प्रकाशमान जो काहूकाल में अस्त नहीं होत अखण्ड आदि सनातन परब्रह्म रूप सोई हैं अपर दूसरा आन कहे और कोऊ नहीं है।

यथा—स्कन्दपुराणे

"ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या यस्यांशे लोकसाधकाः।
तमादिदेवं श्रीरामं विशुद्धम्परमम्भजे॥"

पुनः कैसे हैं अप्रमेय कहे अखण्ड हैं अर्थात् कबहूं काहू अङ्ग करि विभवहीन नहीं होत सदा पूर्ण है अद्वैत कहे जाकी समता को दूसरा नहीं है अज कहे जाको कबहूं जन्म नहीं याही ते जिनको ज्ञान भी एक ही रस रहत सदा कबहूं दुरत नाम लोप नहीं होत। यथा—ज्ञान अखण्ड एक सीतावर ॥ २ ॥

दोहा

जानहिं हंस रसाल कहँ, तुलसी सन्त न आन।
जाकी कृपा कटाक्ष ते, पाये पद निर्बान ३
तजतसलिलअपिपुनिगहत, घटतबढ़तनहिं रीति।
तुलसी यह गति उर निरखि, करिय रामपद प्रीति ४

रसाल कहे जल ताकहँ हंस जो सूर्य।

यथा—जानहिं मात्र गोसाईंजी कहत कि जाकर्म ते सूर्य को अरु जल को सम्बन्ध है सोई सम्बन्ध भगवत् को अरु सन्तन को है आनभांति नहीं है जाभांति रविकिरण ते जल मेघद्वारा प्रकट है भूमिपै आवत।

पुनः रविकिरण करि बहुत जल सोखिलेत कुण्ड ताल, नदी, सिन्धु, पातालादि में रहि भी जात तैसे हरिइच्छारूप किरण करि प्रकृति द्वारा जीव प्रकट होत जग में आवत हरिकृपा कटाक्षरूप किरण करि सन्तजन निर्वाण कहे मुक्तिपद पाये सो तौ सोखि जाना है जो जीव जग में रहि गये तेई तालादिकन केसे जल-जीव शब्द स्पर्शादि कामादि वासना कर्म मैल मिले भ्रमत हैं ३ कौन रीति जलसूर्यन की है कि तजत नाम वर्षत भूमि में आवत।

पुनः अपि कहे निश्चय करिकै सलिल जो जल ताको गहत

किरणनकरि सोखि लेत यह रीति कवहूं घटत वढ़त नहीं तैसे ही श्रीरघुनाथजी की रीति जीवनपै सदा एक रस है इत्यादि गोसाईंजी कहत कि यह रीति उर में निरखि विचार करिके श्रीरघुनाथजी के पदारविन्दन में प्रीति करिये तब जीव को उद्धार सुगम होइगो ॥ ४ ॥

दोहा

चुम्वक आहन रीति जिमि, सन्तन हरि सुखधाम।
जान तिरीछरसमसफरि, तुलसी जानत राम ५

प्रभु प्रीति निर्वाह की कौन रीति है यथा आहन जो लोह ताके सम्मुख होत ही चुम्वक पत्थर आपनी दिशि खैंचि लेत तैसे सन्तन के हेत हरि सुखधाम हैं भाव लोहा को कैसहू महीन चूर्ण धूरिआदि काहू वस्तु में मिला होइ सोऊ चुम्वक देखत ही सब वस्तु त्यागि वाकी दिशि चलत अरु चुम्वक खैंचि आपु में लगाइ लेत तैसे ही सन्तजन कैसेहू कुसंग में होइ परन्तु नामरूप लीला-धामादि की सुरति आवत ही सब त्यागि मन हरि सम्मुख होत अरु प्रभु उनको खैंचि अपना में लगाइ लेत ऐसो परस्पर सम्बन्ध है।

पुनः प्रभु की प्राप्ति कैसी दुर्घट है यथा प्रबल जलधार में काहू की गति नहीं होत परन्तु वाही की प्रेमी है ताते सफरी जो मछरी सो जल के तिरीछरे कहे तरिवे की सम नाम बराबरि गति जानत है कि कैसेहू अगमधारा होइ तामें सम्मुख ही चली जात तैसे ही तुलसी जानत राम भाव प्रभु की प्राप्ति अगम धारा है परन्तु सन्तजन प्रेमी प्रभु की प्राप्ति की गति जानत हैं ताते सुगमही प्रभु को प्राप्त होत।

यथा—कुंडलिया

"भगवत् श्यामा श्याम को, पावक रूप विहार ।
नहिं समर्थ खगराज की, करत चकोर अहार ॥
करत चकोर अहार, किलकिला जलचर लावै ।
स्याह शीष मृगराज, वदन ते आमिषपावै ॥
ऐसे रसिक अनन्य, और सब जानहु खगवत ।
तजहु परारीसेन, भजहु वितमाफिक भगवत ॥ ५ ॥"

दोहा

भरत हरत दरशत सबहि, पुनि अदरश सब काहु ।
तुलसी सुगुरु प्रसाद वर, होत परमपद लाहु ६

यथा—सूर्य जल को भरत अर्थात् मेघद्वारा वर्षि भूमि में परिपूर्ण करि देत ताको सब कोऊ प्रसिद्ध दरशत भाव देखत कि जल बरषत है ।

पुनः हरत कहे सूर्य आपनी किरणन करि सब जल सोखि लेत सो सब काहू को अदरश है भाव काहू को देखात नहीं कि कब जल सोखि गयो ताही भांति जगत् में जीवन को श्रीरघुनाथजी प्रकृतिद्वारा सब चराचर को उत्पन्न करत ताको प्रसिद्ध सब कोऊ देखत कि अब पैदा भये ।

पुनः जब हरत अर्थात् जब लोक में जो जीव मरत तब कोऊ नहीं देखत कि कौन जीव कहां कौने लोक कौनी गति को गया गोसाईंजी कहत कि तिन जीवन में कोऊ कोऊ वर कहे श्रेष्ठ जीवन को सुगुरु कहे श्रीरामानुरागी सज्जन हरि सनेह मार्ग लखावनेवाले सद्गुरु हैं तिनके प्रसाद ते भाव कृपा उपदेशते काहू को परमपद लाभ होत अर्थात् भगवत्पद मुक्तिधाम पावत ॥ ६ ॥

दोहा

यथा प्रतक्ष स्वरूप बहु, जानत हैं सब कोय।
तथाहिलयगतिको लखव, असमञ्जस अतिसोय ७

यथा—प्रत्यक्षस्वरूप बहु कहे ईश्वरमायाजीवादि के बहुत भांति के स्वरूप हैं प्रथम ईश्वररूप।

यथा—परब्रह्मरूप चतुर्व्यूह रूप अन्तर्यामी अर्चाविराट् अवता-रादि अनन्तरूप हैं।

पुनः माया पञ्चप्रकार।

यथा—अविद्या जीव को भुलावत १ विद्या जीव को चैतन्य करत २ सन्धिनी जीव ईश्वर की सन्धि मिलावत ३ सन्दीपिनी जीव के अन्तर ईश्वर की दीप्ति प्रकाशत ४ आह्लादिनी जीवके अन्तर परब्रह्म की आनन्द प्रकाशत ॥ ५ ॥

पुनः अविद्याते तीनि गुण पांचों महाभूत हैं।

पुनः जीव जैसे ब्रह्मा ताके मनु मरीचि आदि तिनते सब सृष्टि ताके पञ्चभेद।

यथा—अर्थपञ्चके

"बद्धो मुमुक्षुः कैवल्यो मुक्तो नित्य इति क्रमात् ॥"

पुनः सतोगुणते रजोगुण रजोगुणते तमोगुण ताते आकाश ताते वायु ताते अग्नि ताते जल ताते भूमि इत्यादि सब मिलि चराचर उत्पन्न होत ते बहुत स्वरूप प्रत्यक्ष हैं तिनको वेद पुराणादिद्वारा सब जानत हैं सो जाभांति प्रथम उत्पन्न होने की जो गति है तथा कहे ताही भांतिहि कहे निश्चय करिकै लय होने की गति लखब नाम देखब भाव जब काल आवत तब जीव निसरिजात भूम्यादि पांचोंतत्त्व पांचों तत्त्वन में लय हैजात यह सदा होतही रहत।

पुनः महाप्रलय में भूमि जल में लय होत जल अग्नि में अग्नि पवन में पवन व्योम में व्योम तमोगुण में तम रज में रज सत में याही क्रम सब ईश्वर में लय ह्वै जात।

पुनः समय पाय वाही क्रम ते सब उत्पन्न होत तब लय होना साँचा कहाँ सिद्ध भयो सोई अति असमञ्जस है कि जौने रूपते जामें लय भयो ताही रूपते।

पुनः प्रकट भये तौ एक कैसे भये ताते जीव ब्रह्म की ऐक्यता नहीं ह्वै सकत जीव सदा ईश्वर के अधीन है ताते हरिशरणागती मुख्य है ॥ ७ ॥

दोहा

यथा सकल अपिजात अप, रविमण्डल के माहिं।
मिलत तथा जिवरामपद, होत तहां लैनाहिं ८
कर्म कोष सँग लेगयो, तुलसी अपनी बानि।
जहाँ जाय बिलसै तहाँ, परै कहाँ पहिंचानि ९

यथा—कहे जौनी प्रकार करिकै भूमि विशेष सरिता तड़ागादि-कन को सब प्रकार को अप जो जल सो अपि कहे निश्चय करिकै रविकिरण करिकै सोखि रविमण्डल के माहिं जाता है परन्तु रविरूप में मिलि नहीं जात तथा कहे ताही भांति जीव श्रीरामपद में मिलत परन्तु श्रीराम रूप में लय कहे मिलि नहीं जात जैसा मिलत तैसे ही।

पुनः प्रकट होत तौ मिलना कहां सिद्ध है ८ काहे तें ईश्वर अकर्म जीव सकर्म है सो गोसाईंजी कहत कि सब जीव आपनी बानि कहे स्वभावते कर्मन को कोप जो खजाना जहां को गये तहां संग ही लैगये तहां चाही तौ अस की कुत्सित कर्म न करै

जे अनजाने होत तिन के नाश हेतु निर्वासनिक सतकर्म करै सो भगवत् को अर्पण करै अरु हरिशरण गहै ताको कर्मबन्धन नहीं है अरु जो सवासनिक कर्म कीन्हें ताकी वासना मन में बनी है सोई कोष संग में लीन्हें है अरु जैसे कर्म करि रहे तैसे ही स्वभाव परि गयो ताते जहा जाय तहां विलसै भार दुःख सुख भोगै।

पुनः स्वभाव ते वैसही कर्म करत ते कहां पहिंचानि परै कि कौन जीव कहांते आयो अथवा कर्मन में भुलाने तिनको आपनो रूप कहां पहिंचानि परै ॥ ६ ॥

दोहा

ज्यों धरणी महँ हेतु सब, रहत यथा धरि देह।
त्यों तुलसी लै राममहँ, मिलत कबहुं नहिं येह १०

ज्यों कहे जौनी भांति जग की जो वस्तुइ हैं तिन सब को हेतु कहे कारण सो सब धरणी जो भूमि ताही में है काहेते जब राजा पृथु भूमि दोहन करे तब अनेक वस्तु प्रकट भईं अरु यावत् जीव हैं ते कुछ भूमि के आधार प्रकट होत बहुत जीव भूमिहीं ते प्रकट होत।

पुनः यावत् मूलवृक्षादि हैं सब भूमिहीं ते प्रकट होत हैं।

पुनः धातु रत्न सोनादि सब भूमिही ते प्रकट होत ताते सब को कारण भूमिहीं है।

पुनः यावत् देहधारी हैं ते सब जाभांति भूमिहीं पर रहत इत्यादि सब को कारण भूमि है परन्तु कुछ वस्तु भूमि में मिली नहीं जात काहे ते जो वस्तु प्रकटत सो शुद्धरूप प्रकटत ताही भांति गोसाईंजी कहत कि येह कहे ये सब जीव श्रीरघुनाथ जी में

लय होत परन्तु मिलत नहीं जारूपते मिलत तैसेही प्रकटत ताते मिलना नहीं है ॥ १० ॥

दोहा

शोषक पोषक समुझि शुचि, राम प्रकाश स्वरूप।
यथा तथा विभु देखिये, जिमिआदरशअनूप ११
कर्म मिटाये मिटत नहिं, तुलसी किये बिचार।
करतबही को फेर है, याविधि सार असार १२

प्रकाशस्वरूप जो सूर्य जाभांति जगमें जलको पोषत नाम जलकरि भूमि परिपूरण करिदेत तब सब कोऊ देखत।

पुनः जब सोखिलेत तब कोऊ नहीं देखत यहै शुचि कहे पावनरीति सदा एकरस है।

यथा---ताही भांति सबजीवन को समान सदा एकरस पावन रीति सोषक पोषक कहे उत्पत्ति पालन नाशकरणहार श्रीरघुनाथजी विभु कहे समर्थ प्रकाशरूप हैं देखिये कौन भांति।

यथा---अनूप उपमा रहित आदर्श कहे शीशा जामें सबकी प्रतिमा एकरस देखात काहूको लघु दीर्घ नहीं करत अरु सबसों न्यारा रहत भाव जल अग्नि आदि सब वाके भीतर ही देखात अरु न भीजै न तप्त होइ तथा श्रीरघुनाथजीमें सब जीव लय होत प्रभु सबसों न्यारे रहत भाव अकर्म है ॥ ११ ॥

काहेते जीव ईश्वर में नहीं मिलत सो कहत कि जीवन के जो शुभाशुभ कर्म हैं ते मिटाये ते मिटत नहीं ताते जीव सकर्म सो मलिन अरु ईश्वर अकर्म ताते अमल सो अमल समल कैसे एक में मिलै यह बात गोसाईंजी विचारिकै कहत कि यामें करतबही को फेर है।

यथा---मेला आदिकन में स्वाभाविक स्त्री के अङ्गस्पर्श होत सो

दोष नहीं अरु जानिकै करै तौ दोष है याही भांति ईश्वर कर्म रहित तातें सार है अरु जीव कर्मसहित तातें असार है यथा जैसी होइ तैसेही कहै तौ सार है अरु कहनेवाला गुनागार नहीं अरु जो वामें कुछ मिलायकै कहै तौ असार कहनेवाला गुनागारहै ॥१२॥

दोहा

एक किये होय दूसरो, बहुरि तीसरो अङ्ग।
तुलसी कैसेहु ना नशै, अतिशै कर्म तरङ्ग १३
इन दोउन्ह ते रहितभो, कोउन राम तजि आन।
तुलसी यहगति जानिहै, कोउकोउ सन्तसुजान १४

क्रियमाण, संचित, प्रारब्ध तीनिभांति के कर्म हैं तिनको कहत कि एक क्रियमाण कर्म जो वर्तमान में होते हैं तिनके कीन्हे ते दूसरो होत अर्थात् संचित कर्म जो अनेक जन्म के कीन्हे जमा हैं ताहीते बहुरि तीसरो अर्थात् प्रारब्ध जो अङ्ग कहे देह के संग ही आवत सो भयो याही भांति प्रति जन्म कर्म करत गयो सोई बाढ़त गयो यथा पवन प्रसंग पाये जल में तरङ्ग बाढ़त तथा वासना प्रसंग ते कर्मन की तरङ्ग बाढ़त ताको गोसाईंजी कहत कि कैसेहू कहे काहू उपाय ते अतिशय जो कर्मन की तरङ्ग है ते नाश नहीं होती हैं ॥ १३ ॥

कर्म तौ तीनि हैं यहां दुइ कहत तहां क्रियमाणही बहुरि वै संचित होते हैं ताते क्रियमाण संचित दोऊ एक ही हैं प्रारब्ध दूसरा है अथवा शुभाशुभ द्वै हैं ते दोउ कर्मन ते रहित एक श्रीरघुनाथजी हैं सेवाय श्रीरघुनाथजी और आन दोऊ कर्मन ते रहित नाहीं है भाव और सब कर्माधीन हैं गोसाईंजी कहत कि यह जो कर्मन के विषे भ्रमने की गति है ताको कोउ कोउ सन्त

जे सुजान हैं तेई जानि हैं कैसे सुजान सन्त जे शुभाशुभ कर्मन को आश भरोसा छांड़ि शुद्ध मनते श्रीरघुनाथजी के चरणार-विन्दन को निरन्तर स्मरण करते हैं अरु बुद्धि अमल ज्ञानवान् परमार्थ वेदतत्त्व को जानैं तेई सुजान सन्त हैं ते कर्मन में नहीं भूलते हैं ॥ १४ ॥

दोहा

सन्तन कोलय अमिसदन, समुझहिं सुगति प्रवीन ।
कर्म विपर्यय कबहुं नहिं, सदा रामरस लीन १५

पूर्व जो कहे ऐसे जे सन्त हैं तिनको लय कहे अन्तकाल प्राप्ति कहां होत अमीसदन अमृतधाम जहां जाय कै पुनः लौटत नहीं अर्थात् साकेत श्रीरामधाम तामें सन्तजन प्राप्त होते हैं यह बात कोई पुरुष समुझत हैं जे सुगति में प्रवीण हैं भाव मुक्तिमार्ग को भली प्रकार ते जानते हैं ताते सब सों पीठि दीन्हें श्रीरघुनाथ जी के सम्मुख हैं ते कर्मन करि विपर्यय कबहूं नहीं हैं अर्थात् प्रभु की दिशिते घूमि मन लोक सुख की दिशि कबहूं नहीं आवत तहां लोकरस तौ ऐसा बलिष्ठ है जाके सुख के हेत सुर नर मुनि सब ध्यावत हैं अरु सन्तन को मन जो याकी दिशि नहीं आवत सो कौन कारण है ताको कहत कि सन्तन को मन श्रीरामरस अनपावनी भक्ति सब सुख की खानि तामें लीन रहत तहां लोक सुख तुच्छ जानत हैं ॥ १५ ॥

दोहा

सदा एकरस सन्तसिय, निश्चय निशिकर जान ।
रामदिवाकर दुख हरन, तुलसी शीलनिधान १६

जे सन्त को आशभरोसा छांड़ि प्रेमावेश सदा एक रस श्रीराम

जानकी में मन लगाये है ऐसे जे सन्त तिनको प्रभु कैसे पालन करत जैसे लोकजीवन को रात्रि को निशाकर दिन को दिवाकर सुखद है इहां अविद्या रात्रि है मोह तम है शब्दस्पर्शादि बुद्धि दृष्टिकी मन्दता है कामादि चोर हैं इत्यादि दुःख है तामें श्रीजानकीजी निरचय करिकै निशाकर कहे चन्द्रमा जाना चाहिये सो सन्तन को सुखद हैं कौन भांति तहां क्षमा गुण शीतलता करि ताप हरत दया गुण प्रकाश करि मोहतम हरि बुद्धि दृष्टि अमल करत ।

पुनः अनुग्रह अमृतकिरण करि पोषण करत ताते भक्ति चांदनी करि विषयरात्रि सुखद है ।

यथा—प्रह्लाद, ध्रुव, बलि, अम्बरीषादि लोक व्यवहार ही में रहे अरु भक्तिशिरोमणि है भगवत् को प्राप्त भये ।

पुनः ज्ञान दिन है तामें विवेक, वैराग्य, शम, दम, उपराम, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधानादि षट्संपत्ति, मुमुक्षुतादि साधन कठिन क्रिया सो घामादि दुःख हैं अरु श्रीरघुनाथजी दिन कर कहे सूर्य हैं वे सूर्य तापकारक है इहां सन्तन के दुःख हरने में गोसा-ईंजी कहत कि श्रीरघुनाथजी सूर्य शीलनिधान हैं शीतल हैं भाव श्रीरघुनाथजी के शरण भये ते विना साधन क्लेश किये आपही ज्ञानादि सब गुण उदय होत जन्म मरणादि दुःख मिटत ॥ १६ ॥

दोहा

सन्तन की गति उर्विजा, जानहु शशि परमान ।
रमितरहत रसमय सदा, तुलसी रति नहिं आन १७

गोसाईंजी कहत कि सन्तन के आन कहे और कोऊ में गति नाम प्रीति नहीं है एक गति कहे आश भरोसा उर्विजा जो

श्रीजानकीजी तिनहीं की है याते सन्तजन सदा श्रीजानकीजी के भक्तिरस में रमित रहत।

भाव—प्रेम सहित मन श्रीजानकीजी के चरणकमलन में भृङ्गवत् लागि रहत ताहीते श्रीजानकीजी को शशि कहे चन्द्रमा करिकै जानहु परमान कहे सांच सांच यामें सन्देह नहीं है तहां चन्द्रमा शीतल है इहां श्रीजानकीजी क्षमा गुण करि ऐसी शीतल हैं जो कैसहू अपराध कोऊ करै ताको क्षमा करत ताते तापनाश करि सन्तन को सदा शीतल राखत।

पुनः चन्द्रमा प्रकाशमान है इहां श्रीजानकीजी दया गुण करि भक्तन के उर में प्रकाश करि मोहादि तम नाश करत चन्द्रमा अमृतकिरण ते जगजीवन को पोषत इहां श्रीजानकीजी अनुग्रह किरण करुणा अमृत करि सन्तन को पालन पोषण करत तहां जा भांति जग में अतिलघुबालक के और आशभरोसा नहीं एक माता ही की गति रहत ताको कौन भांति पालत तैसे जे सन्त श्रीजानकीजीके भरोसे रहत तिनको श्रीजानकीजी सब भांति ते रक्षा करत ताते एकहू बाधा नहीं लागने पावत ॥ १७ ॥

दोहा

जातरूप जिमि अनल मिलि, ललित होत तन ताय।
सन्त शीतकर सीय तिमि, लसहि रामपद पाय १८
आपुहि बाँधत आपु हठि, कौन छुड़ावत ताहि।
सुखदायक देखत सुनत, तदपि सुमानत नाहि १९

जातरूप जो सोना स्वाभाविक मलिन देखात सोऊ अनल जो अग्नि तामें मिलि ताये ते जिमि ललित कहे सुन्दर कान्तिमान् वाको तन होत तैसे ही सोनें सम जिनको मन ऐसे जे सन्त तेऊ

शीतकर जो चन्द्रमा तासम शीतल क्षमावान् स्वभाव है जिनका ऐसी सीय जो श्रीजानकीजी तिन सहित श्रीरघुनाथजी के पद पाय तिन में प्रेम सहित मन लगाये ते सन्तजन लसत कहे शोभा पावत भाव जा भांति दाहकता गुण करि तपाये ते सोने को मैल अग्नि भस्म करत तैसे क्षमा, दया, करुणा, भक्तवत्सलतादि गुणनकरि शरणागत सन्तन को मैल श्रीराम जानकी भस्म करत हैं॥ १८॥

यथा—मधु में माखी आपुही फँसत तैसे अमल स्वतन्त्र आनन्दरूप जीव माया से प्रीति करि मन चित्त बुद्धि अहंकारादि के वश भयो मनादि इन्द्रिन के वश भयो इन्द्रिय शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि विषय के वश भई विषय कामादि के वश काम लोभादि कर्म फन्दन में बांधि चौरासीलक्ष योनिरूप कारागार में बन्द करे ताको कहत कि आपुही को जो आपु हठि करिकै बांधत ताहि कौन छुड़ावत भाव संसारदुःख में आनन्द ते परा है अरु सुखदायक श्रीरामजानकी की शरणागती ताको प्रसिद्ध देखत कि जो कोऊ श्रीरघुनाथजी की शरण है सो सुखी है अरु प्रह्लाद अम्बरीषादि के चरित पुराणनमें विदित हैं तिनको सुनत ताहू पर नहीं मानत कि विषय आश त्यागि श्रीरघुनाथजीकी शरणागत है सो स्वार्थ परमारथ दोऊ बनैं॥ १९॥

दोहा

जौन तारते अधम गति, ऊर्ध्व तौन गति जात।
तुलसी मकरी तन्तु इव, कर्म न कबहुँ नशात॥ २०॥
जहाँ रहत तहँ सह सदा, तुलसी तेरी बानि।
सुधरै विधिवश होइ जब, सतसंगति पहिँचानि॥ २१॥

जौन तारते कहे जौने सनेहते विषय में मन लगावै तौ

अधम गति कहे चौरासी भोग यमसाँसति आदि दुःख भोगत।

पुनः सोई सनेह श्रीरघुनाथजी में लगावै तौ उर्ध्वगति कहे भगवद्धाम की प्राप्ति होइ कौन भांति गोसाईंजी कहत कि।

यथा—मकरी को तन्तु नाम तार जैसे ऊपर को लै जात तैसे नीचे को लै जात तार टूटत नहीं तैसे जीवको स्वभाववश जहां सनेह लागत तैसे ही कर्म करत ताही गति को प्राप्त होत कर्म कबहूं नहीं नाश होत ॥ २० ॥

मन प्रति गोसाईंजी कहत कि तेरी बानि कहे स्वभाव अर्थात् जैसा कर्म करत तैसेही स्वभाव परिजात ताते जहां जात तहां सहकहे साथही रहत सदा ताही स्वभावते।

पुनः वैसेही कर्म करत तैसे फल भोगत सो कैसे सुधरै ताको कहत कि जो विधिवश दैवयोग सत्संगति की पहिचान होइ भाव सन्तन की संगति में रुचि होइ तिनकी कृपा उपदेश ते भगवत् में मन लागै कुसंग त्यागै विषय ते विराग आवै तब सुधरै और उपाय नहीं है ॥ २१ ॥

दोहा

रवि रजनीश धरा तथा, यह अस्थिर अस्थूल।
सूक्ष्म गुणको जीवकर, तुलसी सो तनमूल २२
आवत अप रवितेे यथा, जात तथा रवि माहि।
जहँते प्रकटतहीं दुरत, तुलसी जानत ताहि २३

धरा जो भूमि तामें चराचर जीव तिनको जाभांति रवि कहे सूर्य रजनीश चन्द्रमा पालन पोषण करत तथा भूमि सम स्थिर यह स्थूल शरीर पञ्चतत्त्वमय देह है तामें सूक्ष्म शरीर जो गुणको अर्थात् सत्रह अवयव को।

यथा—"पञ्चप्राणं मनोबुद्धिर्दशेन्द्रियसमन्वितम्।
अपञ्चीकृतमस्थूलं सूक्ष्माङ्गं भोगसाधनम्॥"

ताको गोसाईंजी कहत कि सो जो सूक्ष्म शरीर है सो जीवकर मूल है भाव इसी की वासनाते स्थूल शरीर जीव धारण करत अरु स्वर्ग नरकादि सुख दुःख को भोगता है तहां स्थूल शरीर भूमि सम तामें सूक्ष्म शरीर जीवन सम जानो तिनके पालन पोषण करता सूर्य सम श्रीरघुनाथजी चन्द्रमा सम श्रीजानकीजी हैं ऐसा जानि प्रभु में सनेह करना जीवको उचित है॥ २२॥

अप जो जल सो यथा रवि ते प्रकट है भूमिपै आवत अर्थात् जब सूर्यकिरण मेघन में परत ताहीते जल प्रकट होत सोई भूमिपै वर्षत तथा।

पुनः रविकिरण करि जल शोषि रविमें लीन होत जाइ वैसे ईश्वरकी प्रकाश प्रकृति में परेते जीव प्रकट है देहरूपी भूमि में आवत।

पुनः अन्तकाल ईश्वर को प्राप्त होत ताते जहाते प्रकट भयो ताही में दुरत कहे लय होत अर्थात् प्रलयकाल में सब जीव ईश्वरही में मिलत सोई उत्पत्ति पालन लयकर्त्ता ताहि श्रीरघुनाथजी को तुलसी आपनो स्वामी करि जानत भाव शरणागत है॥ २३॥

दोहा

प्रकट भये देखत सकल, दुरत लखत कोइ कोय।
तुलसीयहअतिशयअधम, विनगुरु सुगम न होय२४
या जग जे नयहीन नर, वरवश दुख मग जाहिं।
प्रकटत दुरत महा दुखी, कहँलग कहियत ताहिं२५

जा समय देह धारणकरि जीव प्रकट भयो।

यथा—वर्षत समय जल ताको सकल संसार देखत कि अमुक जीव प्रकट भया।

पुनः जैसे जलको शोषव कोऊ नहीं जानत तैसे जब जीव मृत्युवश जात ताको कोऊ कोऊ लखत भाव जे परमार्थ हेतु लोकसुख त्यागि श्रीरामशरण हैं तेई परलोकमार्ग देखत और सब नहीं देखत काहेते यह जो जग जीव है सो विषयवश है ताते अतिशय कहे महाअधम अर्थात् बुद्धि विचार रहित अरु तमोगुणी विषयवश तिनको विना गुरु के उपदेश परलोक को मार्ग हरि-शरणागती सुगम नहीं है॥ २४॥

या जगमें जे नर नय कहे नीतिमार्ग हीन हैं अनीतिरत विषय-वश ते सर्व कर्म पापमय करत ताते हठि करिकै नरक चौरासी के मार्ग में जाते हैं तेई अनेक योनिन में प्रकटत दुरत कहे जन्मत मरत अनेक दुःखन में दुःखी हैं ज्यों ज्यों बुरे कर्म करत त्यों त्यों दुःख के पात्र होत जात ताहि कहां तक कहिये अमित है॥२५॥

दोहा

सुख दुख मग अपने गहे, मगकेहु लगत न धाय।
तुलसी रामप्रसाद बिन, सो किमि जानो जाय २६
महिते रवि रवि ते अवनि, सपनेहुँ सुखकहुँ नाहिं।
तुलसीतबलगिदुखितअति,शशिमगलहतनताहि२७

सुखदमग यथा—

"शम दम नियम नीति नहिं डोलहिं। परुष वचन कबहूं नहिं बोलहिं॥"

दो० "निन्दा अस्तुति उभय सम, ममता मम पदकञ्ज।
ते सज्जन मम प्राण प्रिय, गुणमन्दिर सुखपुञ्ज॥"

यथा—दुःखदमग

"काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन॥"

दो० "परद्रोही परदार रत, पर धन पर अपवाद।
ते नर पामर पापमय, देहधरे मनुजाद॥"

इत्यादि सुख दुःख के द्वैमार्ग हैं ते आपने गहेते हैं भाव जाकी इच्छा होइ तापर आरूढ होउ अरु मग काहू को धाइ के नहीं लागत जैसा कर्म करौ तैसा फल पावो कुछ आपुते कर्म नहीं लागत शुभाशुभ कर्म कीन्हें ते लागत ताको गोसाईंजी कहत कि दुःख सुख मार्ग को जो हाल भाव दुःखद त्यागिये।

यथा—"मद कुसंग परदार धन, द्रोह मान जानि भूल।
धर्म राममतिकूल ये, अमी त्यागि विपतूल॥"

सुखद को ग्रहण कीजे।

यथा—"नामरूपलीलासुरति, धामवास सतसङ्ग।
स्वाति सलिल श्रीराम मन, चातक प्रीति अभङ्ग॥"

इत्यादि बिना श्रीरघुनाथजी की प्रसन्नता कैसे जानी जाय।

यथा—"सोइ जानै जेहि देहु जनाई।" इत्यादि॥२६॥

जा भांति जल रविते भूमि पै वर्षत सोखि पुनः रवि में जात पुनः भूमि में वर्षत तैसे जीवन को जन्म मरण बना रहत बिना हरि भक्ति जीव को सुख स्वप्नेहू में कहीं नहीं है कवतक गोसाईंजी कहत कि शक्तिरूप श्रीजानकीजी तिनकी शरणागतीरूप जो मार्ग प्रभु के प्राप्त होने को सुगम ताहि जब लग नहीं लहत नाम प्राप्त होत तबलग जीव अतिशय दुःखी है भाव बिना श्रीजानकीजी की कृपा प्रभु की प्राप्ति दुर्घट है।

यथा—अगस्त्यसंहितायाम्

"यावन्न ते सरसिजद्युतिहारिपादे न स्यादतिस्सनरांकुरम्बिदमागे।

तावत्कथं तरुणिमौलिमणे जनानां ज्ञानं दृढं भवति भामिनि रामरूपे॥”

अरु विना प्रभुकी प्राप्ति जीवको दुःख मिटत नहीं ।

यथा—सत्योपाख्याने सूतवाक्यम्

विना भक्तिं न मुक्तिश्च भुजमुत्थाय चोच्यते ।
यूयं धन्या महाभागा येषां प्रीतिस्तु राघवे ॥ २७ ॥

दोहा

सन्तनकी गति शीतकर, लेश कलेश न होय।
सो सियपद सुखदा सदा, जानु परम पद सोय २८

जगजीव जन्मत मरत ताते सदा दुःखित रहत अरु सन्तकी गति कहे आश भरोसा शीतकर चन्द्रमा अर्थात् शरणागती के भरोसे रहत ताते क्लेशको लेशहू नहीं होय है सो कौनकी शरणागती है सीय श्रीजानकीजी के पदकी है सो कैसी शरणागती है सदा सुखकी देनहारी है भाव क्षमा गुणते अपराध मुवाफ करत करुणा दया गुण ते पालन करत अर्थात् प्रभु की प्राप्ति करि देती हैं सोई परमपद जानु जैसे लघुबालक को पिता नहीं पालि सकत माता पालन करि पिता के पद पर पहुँचाइ देत तैसे सन्त लघुबालक हैं श्रीजानकीजी माता हैं सन्तन को पालन करि पिता श्रीरघुनाथजी तिनके पद को प्राप्त करि देती हैं ॥ २८ ॥

दोहा

तजत अमिय शशि जान जग, तुलसी देखत रूप।
गहतनहीं सब कहँ विदित, अतिशय अमल अनूप २९
शशिकर सुखद सकल जग, कोतेहि जानत नाहि।
कोककमलकहँदुखदकर, यदपि दुखद नहिं ताहि ३०

यथा--अमृतमय चन्द्रमा तथा क्षमा दया करुणादि गुणमय श्रीजानकीजी हैं इन दोऊ को सब जग जानत है जानिकै त्यागत काहेते मलरहित अमल अत्यन्त निर्मल अरु उपमा रहित अनूपदय हैं दोऊ सो चन्द्रमा को सब देखत हैं अरु श्रीजानकी जी वेद पुराणन करिकै विदित हैं सब कहँ सो गोसाईंजी कहत कि तिनकी शरणागती कोऊ गहत नहीं याहीते सब दुःखित हैं सुखी कैसे होई *'इति शेषः'* ॥ २६ ॥

शशि जो चन्द्रमा ताकी कर कहे किरणैं ते सब जगत् को सुखद हैं भाव शीतलता करि ताप हरत प्रकाशते आनन्द करत अमृत करि पोषण करत ताको कौन नहीं जानत सब जग जानत है कि चन्द्रमा स्वाभाविक जग को सुखदाता है परन्तु कोक कमल को सोई दुःखद देखात यद्यपि ताहि चन्द्रकिरण दुःखद नहीं हैं वे आपनी ओरते दुःखद देखत भाव चक्रवाकी को पतिवियोग दुःखते सुखद चन्द्रमा दुःखद लागत कमल को रविकिरण उष्ण की चाह चन्दकिरण शीतल यह विपरीत ताते दुःखद मानत तथा दयादिगुणते चन्द्रवत् शीतल श्रीजानकीजी सब को सुखद हैं तहां विषयीलोग सुख चाहत विना हरिकृपा सुख को वियोग दुःख तें भक्ति दुःखद देखात अरु रविकिरण सम रूक्ष ज्ञान की चाह तिन को भक्ति शीतलता नहीं सुहात है यद्यपि भक्ति दुःखद नहीं ये आप दुःखद माने हैं ॥ ३० ॥

दोहा

बिन देखे समुझे सुने, सोउ भव मिथ्यावाद।
तुलसी गुरुगमकै लखै, सहजहिमिटै विषाद ३१

चन्द्र दुःखद है यह वार्ता बिना देखे औरन सों सुने सोई

समुझि लीन्हे कि चक्रवाक अरु कमल को चन्द्रमा सुखद नहीं है ताते यह मिथ्यावाद है वृथाहीं सब कहत चन्द्रमा काहू को दुःखद नहीं है आपही दुःखद माने हैं तथा श्रीजानकीजी अर्थात् भक्ति सब जीवमात्र को उद्धार करनेवाली है ताको विषयी विमुख मतान्तरवादी विना विचारे वृथा भक्ति को निरादर करते है ताको गोसाईजी कहत कि यह बात जानिवे को गुरुन को गम है जिनकी वेद में आचार्य संज्ञा है जैसे ब्रह्मा शङ्कर शेष सनकादि इत्यादि-कन के उपदेश वेद पुराण में विदित हैं तिनको लखै कहे विचारि कै देखि लेउ सहजै में विषाद जो मन की तर्कणा को मिथ्यावाद सो सहज ही में मिट जाइ।

यथा—ब्रह्माजी को उपदेश भागवते

"श्रेयः श्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये। तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ॥"

शिवजी को उपदेश महारामायणे

"ये रामभक्तिममलांसुविहाय रम्यां ज्ञाने रताः मतिदिनं परिक्लिष्टमार्गे। आरान्महेन्द्रसुरभीं परिहृत्य मूर्खा अर्कं भजन्ति सुभगे सुखदुग्धहेतुम्॥"

सनत्कुमार को उपदेश

सनत्कुमारसंहितायाम्

"मानसं वाचिकं पापं कर्मणा समुपार्जितम्।
श्रीरामस्मरणेनैव तत्क्षणान्नश्यति ध्रुवम् ॥"

शेषजी तो सदा सेवै में रहत यथा लक्ष्मणजी ॥ ३१ ॥

दोहा

बरषि विश्व हर्षित करत, हरत ताप अघ प्यास।
तुलसी दोष न जलद कर, जो जड़ जरत यवास ३२

चन्द्रदेत अमि लेत विष, देखहु मनहिं विचार।
तुलसी तिमि सिय सन्तवर, महिमाविशदअपार ३३

मेघ भूमि पै जल वर्षिकै विश्व जो संसार ताको हर्षित कहे चराचर को आनन्द करत काहे करिकै ताप अघ प्यास को हरत है तहां जल वर्षे की शीतलता करि स्वाभाविक ताप हरिजात अरु भूमि पै जल परिपूर्णता ते सब जीवन को जल पीने को सुगम याते प्यास हरत अघ कहे पाप तहां बिना जल वर्षे सबदेश में अन्नादि नहीं होत ताते अकालपरत तब क्षुधार्त्तजीव अनेक पाप करत सो जल वर्षे ते शान्त होत इत्यादि सब जग को सुखद है ताको गोसाईंजी कहत कि जल वर्षे ते जड़ यवासाद्दक्ष जरि जात सूखि जात तामें जलद जो मेघ ताको कौन दोष है भाव. मेघन की क्रिया सब के सुख हेतु है तैसे भक्ति सब को सुखद आपनी जड़ताते लोग दुःखद माने हैं॥ ३२॥

ज.भांति चन्द्रमा जगजीवन को अमृत दै पालन करत अरु विष कहे तापादि उष्णता हरि लेत ताको विचार करि देखि लेउ लोकविदित सांची बात है तैसो गोसाईंजी कहत कि श्रीजानकीजी क्षमा करि दोष हरि दया करि सन्तन को वर कहे श्रेष्ठ करि देती है जिनकी महिमा विशद कहे उज्ज्वल अपार जाको ब्रह्मादिक पार नहीं पावत।

यथा—महारामायणे शिववाक्यम्

"अहं विधाता गरुडध्वजश्च रामस्य बाले समुपासकानाम्।
गुणाननन्तान् कथितुं न शक्ताः सर्वेषु भूतेष्वपि पावनास्ते॥ ३३॥"

दोहा

रसम विदित रविरूप लखु, शीत शीतकर जान।

लसत योग यशकारभव, तुलसी समुझु समान ३४
लेति अवनि रवि अंशु कहँ, देति अमिय अपसार।
तुलसी सूक्षम को सदा, रविरजनीश अधार ३५

रवि जो सूर्य तिनको रूप प्रसिद्ध लखु कहे देखु जाकी रसम जो किरणैं सो विदित सब जानत कि अत्यन्त तप्त हैं अरु शीतकर जो चन्द्रमा शीत कहे शीतल है ऐसा विचारिकै जानि ले ताही रवि चन्द्र की किरणन को योग कहे एक वस्तु पर दोऊ को मिलान लसत कहे शोभित भये ते यशकार कहे यश को करनेवाला भव नाम होत है कौन भांति यथा जठराग्नि करि भूख बढ़त तब अन्नादि स्वादिष्ठ लागत पुष्टता करत तैसे सब जग रविकिरण करि दिन को तप्त होत सोई रात्रि जो चन्द्रकिरण करि शीतल होत पुष्ट होत ताते दोऊ मिलि सुखद है बिना दोऊ एक सुखद नहीं है ताको गोसाईंजी कहत कि दोऊ को समान समुझु तहां रविरूप श्रीरघुनाथजी ज्ञान तप्त किरण हैं चन्द्रमा श्रीजानकीजी भक्ति शीतल किरण हैं ॥ ३४ ॥

रविअंशु कहे सूर्यन को तेज तेहि करिकै अवनि जो भूमि सो तप्त हैजात ताको रात्रि को चन्द्रमा अपनी किरण न करिकै हरि लेत।

पुनः अप कहे जल ताको सारांश अमिय जो अमृत ताको देकै चराचर जीवन को पोषत यथा भूमि स्थूल में सब जीव सूक्ष्मरूप तिनको सूर्य चन्द्रमा आधार है भाव इनहींकरि पालन होत तथा स्थूलदेह में सूक्ष्मरूप जीव को सूर्यरूप श्रीरघुनाथजी ज्ञानरूप तप्त किरण करि जीव को शुद्धकरत चन्द्रमारूप श्रीजानकीजी भक्ति शीतल किरणकरि ज्ञानकी जो ताप दुःख ताको हरि आनन्द करती है ॥ ३५ ॥

दोहा

भूमि भानु अस्थूल अप, सकल चराचर रूप।
तुलसी बिन गुरु ना लहै, यह मत अमल अनूप ३६

यथा—भूमि स्थूल शरीर है तामें जल सूक्ष्म शरीर जीव है तिन के आधार भानु हैं अर्थात् सूर्यन ते जल बर्षि भूमि परिपूर्ण होत। पुनः क्रम क्रम सब सोखि सूर्यन में लय होत ताहीभांति चराचर जीवन के स्थूल शरीर भूमि में सूक्ष्मरूप जलसम सब जीव परिपूर्ण हैं तिनके आधार भानुरूप श्रीरघुनाथजी हैं अर्थात् सब जीव श्रीरघुनाथैजी से उत्पन्न होत।

पुन: रघुनाथै जी में सब लय होत ताते जीवको उचित है कि सब आश भरोस छांड़ि एक श्रीरघुनाथैजीको आपनो स्वामी जानि प्रेमभावते सदा भजन करै यह जो भक्तिमार्ग है सो कैसा है अमल है काहेते कर्म ज्ञानादि पतित जीवन को अधिकार नहीं यह मैलता है अरु भक्ति सबको उद्धार करत।

यथा—गीतायाम्

"मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेपि यान्ति परां गतिम्॥"

याते अमल है फिर भक्तको नाश कबहूं नहीं होत।

यथा—गीतायाम्

"क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्ति निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मद्भक्तः प्रणश्यति॥"

याते अनूप है ताको गोसाईंजी कहत कि सो भक्तिमार्ग बिना गुरु की कृपा नहीं लहै नहीं प्राप्त होइ भाव श्रेष्ठवस्तु सुगम नहीं मिलत।

यथा--महारामायणे

"ये कल्पकोटिसततं जपहोमयोगैर्ध्यानैः समाधिभिरहोरतब्रह्मज्ञानात्।
ते देवि धन्य मनुजा हृदि वाह्यशुद्धा भक्तिस्तदा भवति तेष्वपि रामपादौ"

सदाशिवसंहितायाम्

"कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च।
पश्चाद्गोपासनेनैव रामे भक्तिः प्रजायते ॥ ३६ ॥"

दोहा

तुलसी जे नयलीन नर, ते निशिकर तमलीन।
अपर सकल रविगतभये, महाकष्ट अतिदीन ३७

गोसाईंजी कहत कि जे नर नय कहे नीति में लीन हैं भाव विचार में प्रवीन हैं ते निशिकर जो चन्द्रमा अर्थात् श्रीजानकीजी तिनकी कर जो किरणैं अर्थात् नवधा प्रेमापराादि भक्ति ताके तन में लीन हैं भाव प्रेमानुराग ते नामरूप लीला धामादि में मन लगाये हैं तेई श्रीरामानुरागी सदा सुखी हैं अरु अपर जे विचार रहित हैं ते नर सकल रवि कहे अद्वैतादि रूक्ष मार्ग में गतनाम जातभये तामें महाकष्ट है निराधार शून्यमें मन को राखना।

पुनः लोकसुख को त्यागना सो वैराग्य है वासना त्याग सो शम है इन्द्रियनको रोकना सो दम है विषयते विमुख होना सो उपराम है दुःख सुख सम जानना सो तितिक्षा है गुरु वेद वाक्य में विश्वास सो श्रद्धा है चित्त एकाग्र सो समाधान है भवबन्धनते छूटवे को विश्वास सो मुमुक्षुता है सारासार को विचार सो विवेक है इत्यादि साधन करिवे में महाक्लेश है ताते अतिदीन दुःखी रहत ताहू में अनेक बाधा मायाकरत।

यथा--"छोरतग्रन्थि जान खगराया। विघ्न अनेक करै तहँ माया॥"

अरु—"भक्तिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपत अतिमाया॥"
याते भक्ति निर्विघ्न है।

यथा—नारदीयपुराणे
"श्रीरामस्मरणाच्छीघ्रं समस्तक्लेशसंक्षयः।
मुक्तिं प्रयाति विप्रेन्द्र! तस्य विघ्नो न बाधते॥ ३७॥"

दोहा

**तुलसी कवनेहुँ योगते, सतसंगति जब होय।
राममिलन संशय नहीं, कहहिं सुमति सबकोय ३८**

भक्ति कौन उपाय ते होत जाकरि श्रीरामरूप की प्राप्ति होती है ताको उपाय श्रीगोसाईंजी कहत कि मार्ग चलत मेलादि सरिता घाट तीर्थवास हरिउत्सव थल इत्यादि कौनहुँ योग पाय हरिभक्तन को सत्संग होइ तिनकी रीति रहस्य देखे भगवत्कथा श्रवण ते हरिसनेह को बीज जामत तब सत्संग में प्रीति होत होते होते मन हरिकी दिशि सम्मुख भयो तब गुरुकी शरण भयो तिनकी कृपा उपदेशते श्रवण, कीर्तन, नामस्मरण, मन्त्र जापादि भजन करने लगो हरिकृपा बल पाय भगवदनुरागी है गयो विषय आशा त्याग भई तब श्रीरघुनाथजी के मिलने में संशय नहीं निश्चय मिलन होइगो।

यथा—"बालमीकि नारद घटयोनी।
निज निज मुखन कही निज होनी॥
सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहु वेद न आन उपाऊ॥"

इत्यादि सत्संग को माहात्म्य यावत् सुमतिजन हैं ते सब कोऊ कहत।

यथा—अध्यात्मे परशुरामवाक्यं श्रीरामं प्रति
"यावत्त्वत्पादभक्तानां संगसौख्यं न विन्दति।

तावत्संसारदुःखौघान्न निवर्तेन्नरः सदा ॥
सत्संगलब्धया भक्त्या यदा त्वां समुपासते ।
तदा माया न निर्यान्ति सा नत्र प्रतिपद्यते ॥ ३८ ॥"

दोहा

सेवक पद सुखकर सदा, दुखद सेव्य पद जान।
यथा बिभीषण रावणहि, तुलसी समुझ प्रमान ३६

सेवक पद।

यथा—"सीय राममय सब जग जानी।
करौं प्रणाम सप्रेम सुबानी ॥"

अर्थात् चराचर व्याप्त प्रभु स्वामी हैं मैं सेवक हौं ऐसा जानि काहूसों विरोध न करत प्रेम सहित हरिभक्ति करनी ऐसा सेवक पद सदा अर्थात् लोकहू परलोकके सुखको करनेवाला है तामें जे चैतन्य हैं सो तौ हरिशरण गहत जे विषयी हैं ते डेरात हैं याते यहि सेवक पदको कोऊ विरोधी नहीं है।

पुनः सेव्य कहे स्वामि पद।

यथा—"अब्धि अपार स्वरूप मम, लहरी विष्णु महेश"
पुनः "अहंब्रह्म द्वितीयं नास्ति"

अर्थात् चराचर व्याप्त अन्तरात्मा ब्रह्म सोई मेरा रूप है यह स्वामी पद दुःखद है काहेते जे चैतन्य हैं ते शम दमादि साधन में क्लेशित पुनः मायाका भय सदा बनारहत जो चूकिगये तौ पतित भये ताते सुखी कहां हैं अरु जे विषयासक्त हैं ते विमुख हैं ताते भगवत् की निन्दा करत तिनको घोरगति होत ताको प्रमाण गोसाई कहत सो समुझि लेउ।

यथा—विभीषण सेवकपद ते अकण्टकराज्य पाये याते लोकहू में सुखी अन्त में हरिधामकी प्राप्ति।

पुनः रावण स्वामी पदते अभिमानवश हरिधर्मविरोधी भयो सो वंश सहित नाशभयो जो कर्मन को भोग पावनो तौ कल्पान्तन नरक में रहतो जो मुक्तभयो सो भगवत् दया को प्रभाव है तहां मालिक को अख्त्यार होत चहै दण्ड देइ चहै मुआफ़ करै जो न मुआफ़ करै तौ क्या जवाब है याते डेराना उचित है॥ ३६॥

दोहा

शीत उष्णकर रूप युग, निशि दिनकर करतार।
तुलसी तिनकहँ एकनहिं, निरखहु करि निरधार ३७॥

शीत कहे जाड़ पाला जलादि उष्ण कहे गरमी आतप अग्न्यादि।

पुनः निशि रात्रि अरु दिन इत्यादिकन केर जो करतार युग कहे दुइरूप लोक में विदित हैं तहां शीत अरु निशि के करनहार चन्द्रमा अरु उष्ण अरु दिन के करनहार सूर्य ये विदित है ताको गोसाईंजी कहत कि शीत उष्ण अथवा दिन राति तिन कर करनहार चन्द्र सूर्यादि एकहू नहीं है यहि बात को निरधार कहे विचार करिकै सांची बात जानिकै निरखहु कहे देखि लेउ तहां आकाश, वायु, अग्नि, जल, भूम्यादि सृष्टि में प्रथमही भये तहां जल पवन मिलि शीत है अग्नि पवन मिलि उष्ण है तहां ब्रह्मा ते मरीचि तिनके कश्यप तव सूर्य भये ते उष्ण कृरता कैसे भये भगवत् ने इन रूप अग्निमय बनायो है लोक अन्धकार में जहाँ जहाँ सूर्य जात तहां अग्निमय रूप का प्रकाश होत जात सोई दिन है ताके कर्त्ता सूर्य कैसे भये तथा अत्रिमुनि के पुत्र चन्द्रमा ये

भी पीछे भये तो शीत कर कैसे भये इनको भगवत् शीतमय रूप बनाये है ताही की शीतलता है अन्धकार स्वाभाविक जहां रवि प्रकाश नहीं तहा रात्रि है ताके कर्ता चन्द्रमा कैसे हैं ताते कर्ता दोऊ नहीं एक कर्म बँधा है ताही ते सब कहत है ॥ ४० ॥

दोहा

नहिं नैनन काहू लख्यो, धरत नाम सब कोय ।
ताते सांचो है समुझु, झूठ कबहुँ नहिं होय ४१

दिन अरु उष्णाकर तें सूर्यन को ।

पुनः रात्रि अरु शीतकर ते चन्द्रमा को काहू ने नैननते देख्यो नहीं या समय करते हैं काहेते *ज्येष्ठादिमास में दिनका चन्द्रमा* वर्तमान रहत न रात्रि करिसकै न शीत अरु पौषादिक में प्रभात रवि वर्तमान काश्मीरादि देशन में महाशीत बनीरहन अरु कबहूँ आधी आदि ते ऐसा अन्धकार होत कि सूर्य भी नहीं देखात ।

यथा—उनइससै चालिस संवत् वैशाख में पांच दण्ड दिन चढ़े ऐसा भया है अरु शीतकर निशाकर नाम चन्द्रमा को ।

पुनः उष्णाकर दिन कर नाम सूर्यन को नाम सब कोऊ धरत हैं सोई सुनि सब मानिलेत ताहीते साचो है कबहूं झूठ नहीं होत ऐसा समुझु कैसे ।

यथा—दिग्भ्रम भये पूर्व को पच्छू देखात तैसे सब लोक-रचना को लोग माने हैं अरु सब कर्तव्यता भगवत् स्वहस्त करी है और किसी को कुछ करने की सामर्थ्य नहीं है काहेते सब देवतन की शक्ति प्रवेश भई तब तक विराट्रूप न उठिसका जब भगवत् की शक्ति प्रवेश करी तव विराट् उठो ताते और सब भ्रममात्र है सबके कर्ता एक श्रीरघुनाथजी को मानना चाहिये ।

आनन्दरूप की पहिचान सो गुरु के प्रसाद कहे कृपा ते कोऊ एक पावत है काहेते यें सब आशभरोसा छांड़ि एक भगवत् की शरण गहैं तब सुखी होइ ताको गोसाईंजी कहत कि ता चैतन्यरुपको प्रभाव सहजही सुखद वनारहत ताते वे सज्जन तीनिहूं काल में अल कहे समर्थ बने रहत ताते विषय में नहीं परते हैं ॥ ४५ ॥

दोहा

काकसुता सुत वा सुता, मिलत जननिपितुधाय।
आदिमध्य अवसानगत, चेतन सहज स्वभाय ४६
समता स्वारथ हानि ते, होत सुविशद विवेक।
तुलसी यह तिनहीं फवे, जिनहिं अनेकन एक ४७

काकसुता कोयलको कहत काहेते जहां कौवा अण्डा धरत वाके अण्डा गिराय कैली आपने अण्डा धरिदेति कौवा आपने जानि सेवत जब पंख जामें तब कौवा को त्यागि आपने माता पिता के ढिग चलेगये याहीते काकसुता कहावत ताको कहत कि काकसुता जो कोयल ताको सुत कहे पुत्र व पुत्री जब समान भये पंख जामें पर उड़े तब काकको त्यागि आपनी माता पिता को धाय के मिलत हैं इहां काक विषय बधा जीव विवेक पक्ष जामें पर विषय त्यागि कोयलरूप ईश्वर को धाय मिलत हैं ताते आदि मध्य अवसान कहे अन्त तीनिहूं काल में सहज स्वभाव चैतन्यरूप भगवत् अंश चराचर में गत कहे व्याप्त है जबतक विवेक नहीं तब तक विषय के वश है ॥ ४६ ॥

स्वारथ कहे लोक सुख के जो अङ्ग है।

यथा—सुन्दरी वनिता १ अतरआदि सुगन्ध २ सुन्दर वसन ३ भूषण ४ गानतान ५ ताम्बूल ६ उत्तम भोजन ७ गजादि

वाहन इत्यष्टौ अङ्ग लोकसुख के हैं सोई स्वारथ है तेहिते हीन कहे जब विषय आश ते विरक्त होइ तब समता आवै है अर्थात् शत्रु मित्रभाव त्यागि एकदृष्टि सबको देखत तब विशद कहे उज्ज्वल विवेक कहे सारासार को विचार आवत ताको गोसाईंजी कहत कि यह असार लोक सुखको त्यागि सार हरिशरणागती सो तिनहींको फवै कहे शोभित होइ, जिन्हैं अनेक आशभरोसा नहीं है एक श्रीरघुनाथही जी को आशभरोसा है तिनहीं को विवेक शोभित है ॥ ४७ ॥

दोहा

सब स्वारथ स्वारथ रटत, तुलसी घटत न एक।
ज्ञानरहित अज्ञान रत, कठिन कुमनकर टेक ४८

अरु जे लोकही सुख में रत हैं तिनको कहत कि सब स्वारथ स्वारथ रटत भाव हमको नीकि वनिता मिलै हमारे पुत्र धन धाय भोजन वसन वाहनादि अच्छे होवें इत्यादि स्वारथ को सब जग दिन रात्रि रटत ताको गोसाईंजी कहत कि सब स्वारथ की कौन कहै घटत न एक एकहू मनोरथ नहीं पूरा होत काहेते संसार असार को त्यागि सार हरिरूप को ग्रहण ऐसा जो ज्ञान तेहिते रहित अरु अज्ञान में रत कहे विषयासक्त है ताते कुमन की कठिन टेक है भाव हठकरि कुमार्गही में मन रहत ताते अशुभ कर्म करत ताको फल दुःख है तामें सुखद मनोरथ कैसे होइ।

यथा –भविष्योत्तरे

"गमिष्यन्ति दुराचारा निरये नात्र संशयः।
कथं सुखम्भवेद्देवि रामनामवहिर्मुखे ॥ ४८ ॥"

दोहा

स्वारथ सो जानहु सदा, जासों बिपति नशाय
तुलसी गुरुउपदेश बिन, सो किमि जानोजाय ४९
कारज स्वारथ हित करै, कारण करै न होय।
मनवा ऊख बिशेष ते, तुलसी समुझहु सोय ५०

स्त्री, पुत्र, धन, धाम, भोजन, वसन, वाहनादि ये सब स्वार्थ झूठे हैं सांचे सुखद नहीं हैं काहेते ये सब बनेरहत अरु जीवकी विपत्ति नहीं नशात अरु अन्तकाल एकहू साथ नहीं जात।

यथा--भागवते

"रायःकलत्रं पशवःसुतादयो गृहामहीकुञ्जरकोषभूतयः।
सर्वेर्थकामाः क्षणभंगुरायुषः कुर्वन्ति मर्त्यस्य कियत्प्रियंचलाः॥"

अरु सांचो स्वारथ सो जानौं जासों जीवकी विपत्ति नाश होइ अरु लोक परलोक में सदा बना रहै सो कौन वस्तु है।

यथा--"स्वारथ सकलजीवकरु एहू।
सकल सुकृत फल राम सनेहू॥"

वाल्मीकीये

"सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥"

ताते जीवको स्वारथ श्रीरघुनाथजी की शरणागती है ताको गोसाईंजी कहत कि विना गुरु के उपदेश कौन भांतिते जानी जाय ताते गुरु की शरण हो सत्संगमें मन लगाव तब याकी मार्ग जानौगे॥ ४९॥

स्वादिष्ठ भोजन विचित्र वसनादि स्वारथ है ताके प्राप्तिहेत कारज तौ करै अर्थात् शक्कर घृत मैदादि होइ तौ पकवान बनाइ

भोजन करि अथवा चिकन मलमल तंजेबादि होइ तौ अच्छे वस्त्र बनाय पहिरी इत्यादि कारज करेते एकहू नहीं होत काहेते इन कारज होने के कारण तौ करे नहीं जाते कारज होड सो कौन कारण है ताको गोसाईं जी कहत कि मनवा अरु ऊखते कारण विशेषि है सोई समुझौ तहां भोजन वस्त्र मुख्य स्वारथ है तहां मनवा सब वस्त्रन को कारण है अरु ऊख सब मिठाई को कारण है तथा हरि सनेह युत सुकृति जीव के सुखको कारण है तहां ज्ञानमय हरिसनेह निरस सो मनवा है भक्तिमार्ग सरस सो ऊख है तिन दोऊके बोइवेको प्रथम खेत चाहिये सो सुमति है सत्संग बीज है उपदेश अंकुर है इहांतक दोऊ को एक क्रम है अब मनवा ज्ञान यथा यम नियमादि निरावना है निवृत्ति उपजना है वैराग्य खेत से रुई बीनना है विवेक ओटना है दम धुनकना है शम कातना है ।

पुनः उपराम वैनब है तितिक्षा नरी फेरना है श्रद्धा ताना तनब है ।

पुनः समाधान बीनब है मुमुक्षुता वस्त्र को धोवना है तब ज्ञानरूप वस्त्र को हरिसनेह रूप दरजी सींकै मुक्तिरूप वस्त्र जीवको पहिरावै इत्यादि कारण तौ नहीं करत मुक्ति स्वारथ हेत ज्ञान कार्य चाह की बिना साधन किहे स्वाभाविक ज्ञान होइ मुक्ति पाई सो कैसे होइ ।

पुनः भक्ति ऊख यथा उपदेश अंकुर ताको प्रथम लिखा है दीनता पांसि है श्रवण सीचना है सुधर्म ऊख को उपजना है वैराग्य कोल्हू में पेरे विषय सोई त्यागि हरिसनेहरस ग्रहण विरह अग्नि में औटे सनेह गाढ़ परो सोई राव है स्मरण सोई राव को बांधना है ताते अचल सनेह धोवा है अर्चन बिछौवा में कीर्तन सेवार दीने ते हरि में लगनरूप पछनी भई ।

पुनः दास्यता खासमें करि सेवनरूप बांधेते हरिमें आसक्ति रूप शुद्ध पकनी भई ।

पुनः सख्य हरि विश्वासरूप पाटा में आत्मनिवेदनरूप मलेते हरि अनुरागरूप शक्कर भई ।

पुनः प्रेमरूप जल में घोरि विरहाग्नि औटे ते शुद्ध हरिमें प्रीतिरूप जलाव भयो भगवत् उत्सवरूप अनेक पकवान हैं आनन्दरूप स्वाद है इत्यादि कारण विना कीन्हें इरिप्राप्तिरूप स्वारथ हेत भक्तिकार्य चाहत कि भक्ति होय भगवत् को प्राप्त ह्वैजाय सो कैसे होय ॥५०॥

दोहा

कारण कारज जान तो, सब काहू परमान ।
तुलसी कारण कार जो, सोतैं अपर न आन ५१
बिन करता कारज नहीं, जानत हैं सब कोइ।
गुरुमुख श्रवण सुनत नहीं, प्राप्तिकवनविधिहोइ ५२

मनवा सब वस्त्रनको कारण अरु ऊख सब मिठाई को कारण इत्यादि तौ लोक में प्रसिद्धही प्रमाण है अरु वेद पुराणादि सुनेते सब काहूको परमान है ताते गोसाईंजी कहत कि कारण कहे ज्ञान भक्तिके साधन जैसे मनवा ऊखका बोवन ।

पुनः कारज ज्ञान भक्ति ।

यथा—कपरा मिठाई इत्यादि को करनहार किसान तैं कहे तोही है अपर और आन कहे दूसरा नहीं है काहे ते कारण कारज सब कर्ता के अधीन है ताते जैसे शुभाशुभकर्म करैगो तैसे दुःख सुख भोगैगो ॥ ५१ ॥

मुक्ति स्वारथको कारज जो भक्ति सो विना कर्ता के कीन्हे नहीं होत ।

यथा--ध्रुव बाल्यावस्था ते सब त्यागि भक्ति करे प्रह्लाद अनेक दुःख सहि भक्ति करे इत्यादि अनेकन भये अब हैं आगे होइँगे सो सब कोई जानत यह छिपी बात नहीं है सो जानिकै विषय में रतरहत अरु गुरुमुखते उपदेश वचन श्रवण कहे काननते सुनतही नहीं तौ साधन कौन करै ? जाते ज्ञान भक्ति होय सोतौ है नहीं तौ मुक्ति कौन विधिते प्राप्त होय ॥ ५२ ॥

दोहा

करता कारण कारजहु, तुलसी गुरु परमान।
लोपत करता मोहबश, ऐसो अबुध मलान ५३
अनिलसलिलबिनियोगते, यथा बीचि बहु होय।
करत करावत नहिं कछुक, करता कारण सोय ५४

कर्ता जो करनेवाला अरु कारण कहे साधन को करना कार्य कहे पदार्थ की सिद्धि इत्यादि गुरुके मुखते उपदेश सुनि कारण में परिश्रम करै तौ कारज पूरा होत यह बात लोक वेद दोऊ भांति ते प्रमाण है सब जानत हैं सो गोसाईंजी कहत कि ऐसो अबुध कहे निर्बुद्धि मलान कहे पापकर्मन में रत मोहवश ते सब लोपत भाव गुरुते उपदेश सुनतै नाहीं तौ कारण जो साधन तिनको कौन करै जाते ज्ञान भक्ति आदि कारज सिद्ध होइ जाते मुक्त होइ इत्यादि रहित विषय में रत ताते बन्धन में परे हैं ॥ ५३ ॥ कोऊ संदेह करै कि जो कर्ता के श्रद्धा नहीं तौ सत्संगते क्या होयगा क्या साधु गुरु क्या परबस भक्ति करावेंगे तापै कहत कि नहीं सन्तन की संगति को कारण पाय कर्ता आपही भक्ति करैलागत कौन भांति।

यथा—अनिल जो पवन सलिल जो जल विवि जो दोऊ के योग पाये अर्थात् जल में पवन लागे ते।

यथा—बीची जो लहरी बहुती उठती हैं सो न तौ जल आपु ते लहरी करै अरु न पवन जलसों करावे पवन कारण पाय जलमें आपही लहरी उठती हैं सोई भांति कर्ता के श्रद्धा नहीं है अरु न सन्तजन बरबस करावै सत्संग कारण पाय उनकी रीति रहस्य देखि कर्ता आपही भक्ति की राह पकरत यह सत्संग को प्रभाव है।

यथा—शठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परसि कुधातु सुहाई॥

अध्यात्मे परशुरामवाक्यम् श्रीरामंप्रति

"यावत्त्वत्पादभक्तानां संगसौख्यं न विन्दति।
तावत्संसारदुःखौघान्न निवर्तेन्नरः सदा॥ ५४॥"

दोहा

क्षेम धरण कर्तार कर, तुलसी पति परधाम।
सोवरनर तासम न कोउ, सब विधि पूरण काम ५५

सत्संग काहे को करैं भक्ति किहे का होत तापै गोसाईंजी कहत कि कर्तार कर्ता जीव ताकर क्षेम धरण कहे कुशल धारणता जीव को तबै है जब पति जो श्रीरघुनाथजी तिनको परधाम जो साकेतलोक तहां की प्राप्ति जब होइ तबै जीवकी कुशल जानिये काहे ते जिनको परधाम प्राप्त है ऐसे जे भक्त तिनको भक्ति के प्रभावते सब सिद्धि सिद्धि ज्ञानादि सब गुण मुक्ति आदि सब सुख स्वाभाविक प्राप्त रहत ताते सबविधि ते पूरणकाम रहत काहू बातकी कांक्षा नहीं रहत ताते सो श्रीरामभक्त कैसे हैं बरतर कहे श्रेष्ठन में श्रेष्ठ हैं काहेते नाकी समान दूसरा कोऊ नहीं भाव सबके परनको श्रीरामभक्त श्रेष्ठ हैं।

यथा–शिवसंहितायां

" इन्द्रादिदेवभक्तेभ्यो ब्रह्मभक्तोऽधिको गुणैः।
शिवभक्ताधिकोविष्णुर्भक्तः शास्त्रेषु गीयते ॥
सर्वेभ्यो विष्णुभक्तेभ्यो रामभक्तो विशिष्यते।
रामादन्यः परोध्येयो नास्तीति जगता प्रभुः ॥
तस्माद्रामस्य ये भक्तास्ते नमस्याः शुभार्थिभिः ॥ ५५ ॥"

दोहा

कर्ता कारण सार पद, आवै अमल अभेद।
कर्मघटत अपि बढ़त है, तुलसी जानत बेद ५६
स्वेदज जौन प्रकार ते, आप करै कोउ नाहिं।
भये प्रकट तेहिके सुनो, कौन बिलोकत ताहिं ५७

कर्ता अरु कारण अरु कार्य इत्यादि के बीच में कर्ता अरु कारण येई द्वैपद सारांश है काहेते जब कर्ता के श्रद्धा होइ तब सत्संगादि कारण के लगजाइ ताके प्रभावते मन हरि सम्मुख होइ तब श्रवण कीर्तन अर्चनादि साधन करे ते प्रेम उत्पन्न भयो ताते द्वैतवुद्धि जो मल सो नाश भयो तब मनमें अमल मलरहित अभेद विवेक आवैगो तब शुद्धसनेहते भगवत् की प्राप्ति होइगी तैसेही जब कर्ता विषयिन के संगमें बैठो तिनकी रीति रहस्य देखि पूरब की कुछ शुद्धता रहै सोऊ नाशभई मन विषयमें लागो पाप-कर्म बढे ते नरक चौरासी प्राप्त भई सो गोसाईंजी कहत कि संगति कारण पाइ अपि कहे निश्चय कर्म घटत अरु बढ़त ताते कर्मसार नहीं है कर्ता कारण सार है यह वेद जानत सो कहत। *यथा--"सन्तसंग अपवर्गकर, कामी भवकर पन्था" इत्यादि ॥५६॥*

कारण पाय कर्म आपही प्रकटत कौन प्रकार जौन प्रकारते स्वेदज कहे जुवाँ लीख चिलुवादिकन को माता पितादि कोऊ पैदा नहीं करत वारन में पसीना कारण पाय जुवाँ लीख आपही पैदा होत तथा कपरन में पसीना कारण पाय चिलुवा आपही पैदा होत तथा वर्षा पाय भूमि में जल कारण पाय अनेक जीव आपही पैदा होत तिन जीवनको हाल सुनौ कि ताहि पैदा होते कौन विलोकत कहे देखत है कि या साइति पर ये जुवाँदि जीव पैदा भये। यथा--कारण पाय आपहीते ये सब जीव पैदा होते हैं तैसे कारण पायकर ताते शुभाशुभ कर्म पैदा होते हैं याते हरि अनुकूल को ग्रहण प्रतिकूलको त्यागा चाहिये ॥ ५७ ॥

दोहा

भये विषमता कर्म महँ, समता किये न होय।
तुलसी समता समुझकर, सकलमानमदधोय ५८

जो हरि अनुकूलको त्यागिकरि प्रतिकूल ग्रहण करे तौ विषयी जीवनको कुसंग कारण पाय सुभाव कुमार्गी ह्वैगयो भाव कामवश परस्त्री में रत भये क्रोधवश परद्रोह करने लगे लोभवंश परधन हेत चोरी ठगी पाखण्डी करत मानमदवश निन्दक भये ईर्षावश पर संपत्ति देखि जरत इत्यादि विषमता राग द्वेषता कर्मन में भये ते। पुनः समता कहे शुद्धता कर्म नहीं होत भाव जीव कुमार्गी ह्वैगये सुमार्गी कीन्हेते नहीं होत ताते गोसाईंजी कहत कि दुखद समुझि काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान, मदादि सकल प्रकार की विषमता धोय कहे त्यागि।

पुनः सुखद समुझि जीवमें समता करु भाव राग द्वेष त्यागि एकरस ह्वै हरिभक्ति की मारग परु ॥ ५८ ॥

दोहा

समहितसहितसमस्तजग, सुहृद जानि सब काहु ।
तुलसी यहमत धारुउर, दिनप्रतिअतिसुखलाहु ५६
यह मनमहँनिश्चयधरहु, है कोउ अपर न आन ।
कासन करत बिरोध हठि, तुलसी समुझप्रमान ६०

अनहित छांड़ि हित सहित शुद्ध स्वभाव सम कहे एक रस दृष्टि ते समस्त जग में चराचर सब काहू को सुहृद कहे मित्र करिकै जानु भाव सब में व्याप्त भगवत्रूप जानि काहू सों वैर न करु सहज सुभावते हितमानि सब सों सुहृदभाव राखु अरु भगवत् में सनेह करु इति वेद को सिद्धान्त यह जो मत है ताको गोसाईंजी कहत कि उर में धारु तौ प्रतिदिन तोको अत्यन्त सुख लाभ होइगो भाव ज्यों ज्यों विषय को त्याग त्यों त्यों हरिसनेह की वृद्धि सोई प्रतिदिन सुख को अधिक लाभ ॥ ५६ ॥

जो पूर्व के दोहा में कहे कि समभावते हितसहित सबको मित्र करि जानु यह बात कौने हेत कहे ताको कहत कि आपने जीव के सुख हेत जौने प्रभुको भजत हौ सोई प्रभु सब घट व्याप्त है जो यह बात मन में निश्चय करि धरहु तौ अपर कहे और कोऊ आन कहे दूसरा नहीं है अरु जो वही प्रभु सब में है तौ हठि करिकै कासों विरोध करत तहां हठि करि यासे कहे कि जो आपु विरोध न करै तौ वाको विरोधी कोऊ नहीं ताते विरोध को करनहार आपही है सो सर्वत्र व्याप्त हरिरूप यह वेदप्रमाण है ताको समुझि गोसाईंजी कहत कि काहू सों विरोध न करु ॥ ६० ॥

दोहा

महिजलअनलसोअनिलनभ, तहां प्रकट तवरूप।
जानिजाय वरबोधते, अति शुभ अमल अनूप ६१
जो पै आकस्मात ते, उपजै बुद्धि विशाल।
नातौ अतिछलहीन ह्वै, गुरुसेवन कछु काल ६२

जो कहे कि दूसरा नहीं है ताको प्रसिद्ध देखावत कि महि जो पृथ्वी जल अनल कहे अग्नि अनिल कहे पवन नभ कहे आकाश इनहीं पांचौं तत्त्वनसों सब ब्रह्माण्ड और शरीरन की रचना है तहां ताही देह में तव कहे तेरा रूप जीवात्मा प्रकट है भाव सब जानत है।

यथा—गीतायाम्

"देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।"

पुनः "ईश्वर अंश जीव अविनाशी। सतचेतन घन आनँद राशी॥
सो मायावश भयो गोसाईं। बँध्यो कीर मर्कट की नाईं॥"

सोई अनूप कहे उपमारहित अमल कहे विकाररूप मलरहित अतिशुभ कहे सदा मङ्गलमूर्ति सोई मायारूप मदपान करि आपनो रूप भूलि गयो सोई जब वर कहे श्रेष्ठबोध अर्थात् सारासार विवेक बुद्धि में आवे तब आपनो रूप जानो जाय तातें पञ्चतत्त्वमय देह सबही की तामें जीवात्मा सब में एक भगवत् को अंश है तामें दूसरा कौन है जासों विरोध करत॥ ६१॥

सो बोधबुद्धि कैसे होइ सो कहत कि कथा श्रवणते न शास्त्र अवलोकनते न सत्संगते न आकस्मात् ते विशाल कहे बड़ी बुद्धि उपजै तौ गुरु सों उपदेश लैके निवृत्ति मार्ग गहु कुछकाल में

बोध होइगो ऐसा न होइ तौ अति छलहीन सब छल छाडि प्रेमसहित कुछ काल प्रथम श्रीगुरुपद सेवन करो तिनकी कृपा ते बोध है जाइगो ॥ ६२ ॥

दोहा

कारज युग जानहु हिये, नित्य अनित्य समान।
गुरुगमते देखत सुजन, कह तुलसी परमान ६३

कौन वस्तु को बोध होइगो ताको कहत कि एक नित्य कार्य एक अनित्य कार्य इत्यादि युग कहे दोऊ समान हैं ताको न्यूनाधिक बिलगान नहीं कौन भांति।

यथा—ज्वरपीड़ित को चिरायता गुर्चादि दवा ताको जानत कि याही के पीने ते आराम होऊँगो परन्तु करू स्वाद है।

पुनः—दूध दही शक्करादि मिठाई पूरी आदि पकवान तिनको जानत कि इनके खाने ते मरि जाऊँगो परन्तु मीठी स्वाद है सो बिना विचारे दोऊ समान हैं अर्थात् रोगनाशहेतु दवा करत स्वादहेतु कुपथ भोजन करत ताही भांति भवरोगपीड़ित जीव को प्रवृत्तमार्ग।

यथा—स्त्री पुत्र धन धाम भोजन वसन वाहनादि देह सुख हेतु विषयकृत यावत् कार्य हैं सोई अनित्य भवरोगी के कुपथ हैं अरु निवृत्तमार्ग।

यथा—सत्संग श्रवण कीर्त्तन अर्चन वन्दन आत्म निवेदनादि परलोक सुख चाह के यावत् व्यापार हैं सो नित्य कार्य हैं सोई भवरोग की औषध है ताको विचार करिकै हिय में जानि लेहु भाव विषय कुपथ में देह जीभ ही को स्वाद है अन्त दुखद है ताते याको त्यागना चाहिये अरु परमार्थ दवा की स्वाद तौ करू

है परन्तु अन्त सुखद है ताते याको ग्रहण कीन चाहिये ऐसा हिये में जानौ सो कौन भांति ते जानो जाय ताको गोसांईजी कहत कि जिन को श्रीगुरुकृपा उपदेश ते विवेकादि नेत्रन सों देखने की गम है ऐसे जे सुजन हैं ते देखत हैं इति वेद पुराण में प्रमाण है ॥ ६३ ॥

दोहा

महिमयंक अहनाथ को, आदि ज्ञान भव भेद।
ता बिधि तेई जीव कहँ, होत समुझ बिनखेद ६४
परोफेर निज कर्म महँ, भ्रमभव को यह हेत।
तुलसी कहत सुजन सुनहु, चेतन समुझ अचेत ६५

मोह अन्धकार में कौन भांति ते देखत ताको कहत कि जा भांति महि कहे पृथ्वी विषे स्वाभाविक अन्धकार है कोऊ कुछ देखि नहीं सकत तहां मयङ्क जो चन्द्रमा अरु अह कहे दिन ताके नाथ सूर्य इन दोउन को प्रकाश पाय आदि कहे प्रथम याही ते सब को ज्ञान भव कहे उत्पन्न होत तावे वन, सरिता, पहार, मार्ग, श्याम, श्वेतादि भेद विना परिश्रम ही जानो जात ताही भांति से मोहान्धकार में इहि जीव कहँ भक्तिज्ञान उदय भयेते विवेक प्रकाश पाय बुद्धि ज्ञान नेत्रन सों सब देखत।

यथा—संसार वन में कामादि व्याघ्रादि हैं भव सरिता है जाति विद्या महत्त्वरूप यौवनादि पहार हैं प्रवृत्ति निवृत्तिमार्ग हैं कुसंग श्याम है सत्संग श्वेत है इत्यादि भेद स्वाभाविक देखात हैं ताते जब तक बुद्धि में समुझ नहीं आवत तबै तक मोहान्धकार में जीव को खेद कहे दुःख है ॥ ६४ ॥

निज कहे आपने कीन्हे कर्मन में फेर परो सो यही भ्रम को अरु भवसागर जाने को हेतु कहे कारण होत है कैसे ।

यथा—राजा नृग सत्कर्म ही करत रहे तामें फेर परो कि एक गऊ द्वै ब्राह्मणन को सकल्पि दियो सोई भ्रम को हेतु भयो कि ब्राह्मण के शाप ते बहुत काल गिरगिट है रहने को परा ।

पुनः सतीजी को फेर परो सो रामायण ते प्रसिद्ध है ।

पुनः भानुप्रताप को फेर परो ताको भवसागर जाने को हेतु भयो भाव राक्षस भये तथा अनेक हैं ताको गोसाईजी कहत कि हे सुजन ! सुनहु कि कर्मन के आश्रित रहने सों फेर परि गये पर चेतनजन अचेत हैजात ताते कर्मन में बाधा समुझि शुभाशुभ कर्म त्यागि शुद्ध शरणागती के आश्रित है निरन्तर प्रेम समेत श्रीरघुनाथजी को स्मरण करौ ।

यथा—"त्य गत कर्म शुभाशुभ दायक ।
भजत मोहिं सुरनर मुनिनायक ॥"

पुनः महारामायणे

"अन्ये विहाय सकल सदसच्च कार्य
श्रीरामपङ्कज पदं सततं स्मरन्ति ।
श्रीरामनामरसना प्रपठन्ति भक्त्या
प्रेम्णा च गद्गदगिरोऽप्यथ हृष्टलोमाः ॥"

सो प्रभु की शरणागती कैसी है जामें काहू भांति की बाधा नहीं व्यापत यथा प्रह्लाद अंबरीषादि अनेक भक्तन को चरित अरु भक्ति को प्रताप प्रसिद्ध है ।

यथा—जिमि हरि शरण न एकहु बाधा (पुनः वाल्मीकीये)

"सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥"

पुनः नारदीयपुराणे

"श्रीरामस्मरणाच्छीघ्रं समस्तक्लेशसंक्षयः।
भक्तिं प्रयाति विप्रेन्द्र तस्य विघ्नो न बाधते॥"

रामरक्षायाम्

पातालभूतलव्योमचारिणश्छद्मचारिणः।
न द्रष्टुमपि शक्तास्ते रक्षितं रामनामभिः॥ ६५॥"

दोहा

नामकार दूषण नहीं, तुलसी किये बिचार।
कर्मन की घटना समुझि, ऐसे बरण उचार ६६

जा भांति कर्मन में फेर परि बाधा होत ताके निवारण का उपाय कहत तहा कर्म तीन भांति ते होत एक मन ते एक तन ते एक वचन ते।

यथा—वेद आज्ञा ते धर्म कर्म दानादि गुप्त करत वाको फल हरि अर्पण करत सो शुद्ध सतोगुणी कर्म मानसिक है यामें बाधा नहीं लागत।

पुनः जिनको फल की कांक्षा है अरु नाम होनो नहीं चाहत ते धर्म, कर्म, दानादि, श्रद्धाशक्ति अनुकूल प्रसिद्ध धर्म, कर्म, दानादि करत वचन काहू को नहीं देत सो रजो सतोगुणमिश्रित कायिक कर्म है यामें श्रद्धामात्र बाधा है ज्यादा नहीं।

पुनः जिनके फल की कांक्षा थोरी अरु नाम होनो बहुत चाहत ते श्रद्धाशक्ति ते बाहर धर्म कर्म दानादि करत काहे ते वचनदान विशेष देत ताहीते बाधा होत काहेते ये आपने नाम की बड़ाई बहुत चाहत ताते नामकार कहे जग में नामकरना सोई

दूषण है काहेते गोसाईंजी कहत कि ये विचार नहीं कीन्हे कि अब जो करते हैं तामें पीछे क्या होयगा ? यह विना विचारे नाम बढावने के मानते वचनदान दै दीन्हे पीछे जब संकट परा तब पछिताने।

यथा—दशरथ महाराज वर दैकै पीछे पछिताने इत्यादि आगे पीछे को विचार करि पहिले ही मन में समुझि कै तब ऐसे वरण कहे अक्षर अर्थात् वचन उच्चारण करै (भाव) वचनदान देवै जामें पीछे कर्मन की घटती न होवै जामें संकट परै ऐसा विचारि करै ताको बाधा न होय ॥ ६६ ॥

दोहा

सुजन कुजन महिगतयथा, तथा भानु शशिमाहिं।
तुलसी जानत ही सुखी, होतसमुझबिननाहिं ६७

विना विचारे काहू को वचनदान कबहूं न देय यह पूर्व कहि आये ताको कारण कहत।

यथा—सुजन कहे साधुजन अरु कुजन कहे दुष्टजन महि कहे भूमि अर्थात् स्थान गत कहे प्राप्त (भाव) सुजन कुजन एकस्थान में प्राप्त भये ते दुष्ट आपनी दुष्टता ते साधुन की साधुता क्षीण करि देते हैं काहेते दुष्टता प्रबल होत ताते यथा कहे जौनी प्रकार ते दुष्टन को संग पाय सुजन क्षीण होत तथा कहे ताही प्रकार भानु जो सूर्य ते चन्द्रमा माहिं गये अर्थात् एक राशि में प्राप्त भये चन्द्रमा क्षीण हैजात तहां अमावस को चन्द्रमा सूर्य एक राशि पर आवत तब चन्द्रमा क्षीण हैजात।

पुनः द्वितीया ते ज्यों ज्यों दूर होत जात तैसे बढ़त जात पूर्णिमा को सतयें स्थान में जात तब विशेष संग छूटत काहेते

जब सूर्य अस्त होत तब चन्द्रमा उदय होत ताते पूर्ण रहत तैसे दुष्टन को संग त्यागे सुजन प्रसन्न रहत यह जानत ही सुजन सुखी होत सो गोसाईंजी कहत कि दुष्टन को संग दुःखद जानि त्यागे रहत तबै सुजन सुखी रहत अरु बिना समुझे जे संग किहे रहत ते सुखी नहीं रहत ताते दुष्टन को संग ही दुःखद है जो उनको वचन दान दीन्हे तौ आपने को घातक बनाये।

यथा—शिवजी भस्मासुर को वरदान दै आपनो काल बनाये ॥ ६७ ॥

दोहा

मातुतात भवरीतिजिमि, तिमि तुलसी गति तोरि।
मात न तात न जान तव, है तेहि समुझ वहोरि ६८

मातु माता तात पिता तिन दोऊकरि भवनाम उत्पन्न पुत्रादि होत अर्थात् दोऊ को योग पाय पिता को अंश बीज माता के उदर में जाय रज में मिलि पिण्ड ह्वै पुत्रादि भयो तहां कहने को तीनि हैं समुझे पर एक ही है काहे ते पुरुष की इच्छा ते स्त्री है सोभी अर्द्धाङ्ग है तौ दूसरी कैसे भई तिनते पुत्र भयो सोऊ वही है ताते न माता न पिता न पुत्र भूलमात्रते तीनि हैं जिमि यह रीति है तिमि जीव सो गोसाईं कहत कि तेरी भी ऐसी ही गति है अर्थात् ईश्वर माया योग ते जीव भयो।

यथा—माया ईश्वर की इच्छा शक्ति भई सो त्रिगुणात्मक है सो माया कारण कार्य द्वैरूप है तहां ईश्वर अंश आत्मबीजवत् कारण रूप रज में मिलि आत्मदृष्टि भूलि जीव भयो देहादि में अपनपौ मान्यो अरु कार्य रूप माया ने देहेन्द्रिय मन प्राण विमोहित करि हरि सुख भुलाइ आपने सुख में लगायो तावश कर्म करत सो पूर्व

कृत जन्य संस्कार ते वासना प्रकृति वसन ये कर्म शुभाशुभ में बद्ध भयो तहां ईश्वर पिता सदैव है मातु कारण पाय तात नाम पुत्र भयो (भाव) मायाते जीव ताको कहत कि मात न तात न जातु माता पुत्र न जातु केवल पिता जातु (भाव) माया जीव न मातु केवल ईश्वर ही मय सब को जातु ऐसा जो जानै तब तेहि जीव को बहोरि समुझ जाना चाहिये (भाव) जीव को जब ज्ञान होत तब पूर्वरूप जानत सोई समुझ है ॥ ६८ ॥

दोहा

सर्व सकल तैंहै सदा, बिश्लेषित सब ठौर।
तुलसी जानहिं सुहृद ये, ते अतिमाति शिरमौर ६९
अलंकार घटना कनक, रूपनाम गुण तीन।
तुलसी रामप्रसाद ते, परखहि परम प्रबीन ७०

जब समुझ अर्थात् ज्ञान होय तब कौनी भांति ते जानै ताको कहत कि सब ठौर सर्ववस्तु में एक रस सदा तैं व्याप्त है।

पुनः सकल वस्तु ते विश्लेपित कहे विभाग अर्थात् सकल ते न्यारा है (भाव) तैं सब में है अरु सब सों न्यारा है।

यथा—जरी वसनादि में चांदी व्याप्त है फूंकि दीन्हे शुद्ध चांदी रहत तथा माया कृत पाञ्चभौतिक देहन में आत्मा व्याप्त ज्ञानाग्नि करि दग्ध भये शुद्ध आत्मा रहत सो आत्मतत्त्व सब में एक ही है ऐसा जानि सब सों विरोध तजि सुहृद् कहे मित्रभाव सहजस्वभाव सब में देखत तिन को गोसांईंजी कहत कि वे कैसे हैं कि जे अति मतिमान् हैं तिन में शिरमौर हैं (भाव) अमल-बुद्धिवालेन में श्रेष्ठ हैं ॥ ६९ ॥

अलंकार कहे भूषण अर्थात् कङ्कण, कुण्डल, कड़ा, माला आदि

अनेक भूषण बनत परन्तु कनक जो सोना तामें कुछ घटि नहीं गयो नाम सोना-सोई है रूप शोभा सोई है गुण मोल सोई है इन तीनि में कुछ कम नहीं भयो तैसे माया कारण पाय देहन की रचना होत परन्तु आत्मतत्त्व में कुछ घटत नहीं सदा एकरस रहत ताको गोसाईंजी कहत कि जे भक्तजन कृपापात्र हैं तेई परखते हैं काहेते श्रीरघुनाथजी के प्रसाद कहे कृपा ते सब तत्त्व जानने में परमप्रवीण है तेई जानत और सब नहीं जानत जैसे रत्नको पारिख जवाहिरी जानत ॥ ७० ॥

दोहा

एक पदारथ विविध गुण, संज्ञा अगम अपार।
तुलसी सुगुरुप्रसाद ते, पाये पद निरधार ७१

पदार्थ एक यथा सोना तामें कारण पाय विविध प्रकार के गुण हैं जैसे दान कीन्हें पुण्य कुमार्ग में लगाये ते पाप वरक खाने सों पुष्ट मृगाङ्कादि रस बनाय खाने सों रुज हरत भूषणादि सों शोभा संचय कीन्हें मर्याद इत्यादि बहुत गुण हैं पुनः संज्ञा कहे नाम।

यथा—अशरफी कङ्कण कुण्डलादि नाम अगणित हैं काहू को गम्य नहीं कि भूषणादिकन को जानि सकै अरु गनि कै कोऊ पार नहीं पाइ सकत ताते अपार हैं तिन में विचार करि जब निरधार करिये सब उपाधिमात्र है मुख्य एक सोनै है तैसे एक पदार्थ आत्मा माया उपाधि ते विविध गुण।

यथा—सतोगुण करि क्षमा, शान्ति, करुणा, इत्यादि रजोगुण करि तेज, प्रताप, वीरता, धीरता, स्वरूपतादि तमोगुण करि क्रोध, ईर्षा, मान, मद, हिंसादि बहुत हैं अरु संज्ञा तो अगम अपार चौरासीलक्ष योनि हैं तिनके नामन में काकी गम्य है जो गनिवे

पार पावे इत्यादि जो मायाकृत व्यापार है ताही में सब भूला परा है जो कोऊ जाना ताको गोसाईंजी कहत कि जिनपै सद्गुरु की कृपा है तेई सद्गुरु के प्रसाद ते निरधार पद पाये (भाव) सो भिन्न करि आत्मा को रूप चीन्हि पाये कि सब माया ते उपाधिमात्र है विचारे ते मुख्य एक आत्मा है सोई पद सुख रूप है ॥ ७१ ॥

दोहा

गन्धन मूल उपाधि बहु, भूषण तन गणजान।
शोभागुण तुलसी कहहिं, समुझहिंसुमतिनिधान७२

सोनारी बोली में गन्धन कहत सोना को ताते गन्धन जो सोना सोई मूल कहे जर है तामें सोनारी उपाधि करि बहुत प्रकार के भूषणन के गण समूह तन में भूषित होत तिनको जानो तहां भूषणसंज्ञा बारह हैं काहे ते बारह स्थान तन में हैं तहां एक एक स्थान पर बहुत भेद के भूषण होत याते बहुत भूषणन के गुण कहे।

यथा—शीश में चूड़ामणि मांगफूल अर्द्ध चन्द्रादि माथ में टीका वेना वन्दी पटियादि श्रवण में ताटंक कर्णफूलादि कण्ठ में कण्ठी पञ्चदामादि इत्यादि नासिका भुज कर मूल आंगुरी कटि पग घुटना अँगुरी आदिक सर्वाङ्ग भूषित भये ते द्युति, लावण्यता, स्वरूपता, सुन्दरता, रमणीकता, माधुरीआदि शोभा अरु मन मोहनादि गुण अनेक प्रकट होत ताही भूठे विभव में सब संसार भूला है तामें विचारेते सब उपाधिमात्र है मुख्य एक सोना है तैसे मूल एक आत्मा है माया उपाधि करि भूषणगण सम अनेक देहधारी विराट् तनमें प्रसिद्ध देखात ताको जानो लोकमङ्गलादि शोभा रज सत तमादि अनेक गुण प्रसिद्ध ताही में सब भूले परे ताको गोसाईंजी कहत कि जे सुन्दरी मति के निधान कहे

सुबुद्धि के स्थान हैं ते समुझत कि सब संसार उपाधिमात्र है सब की मूल आत्मा एक ही है भूषण देह का नाश आत्मा सोना अविनाशी है ॥ ७२ ॥

दोहा

जैसो जहां उपाधि तहँ, घटित पदारथ रूप।
तैसो तहां प्रभासमन, गुणगण सुमतिअनूप ७३
जान बस्तु अस्थिर सदा, मिटत मिटाये नाहि।
रूप नाम प्रकटत दुरत, समुझिबिलोकहुताहि ७४

सोना आदि एक पदार्थ है तामें जहां स्वर्णकारी आदि जैसो उपाधि लगो तहां तैसोईरूप पदार्थ को घटित भयो।

यथा--भूषण पात्रादि अनन्त वस्तु बनत हैं जैसो जहां रूप भयो तैसोई तहां प्रभास कहे शोभा देखात तथा आत्मा माया उपाधि जहां जैसो भयो तहां तैसोई देव नर नाग पशु पक्षी कीटादिरूप घटित भयो तैसे ही तामें शोभा देखात तहां भूषणादि मैल लागे ते मैले परत सो तपाये मैल जरिजात धोये मैल छूटि जात यही आत्मा में विषय मैल है ज्ञान अग्नि है भक्ति जल है तहां कोऊ भूषण नगजटित पाट में गुहे हैं ते फूंके नहीं जात वे मांजि के धोये अमल होत तथा अम्बरीषादि गृहस्थाश्रमही में रहे हरिकैंकर्यता मज्जन भक्ति जल में धोय अमल भये इत्यादि के गुणन को यथार्थ मन में गुणत कहे समुझत उन ही है जिनकी अनूप सुन्दर मति है (भाव) जे हरिकृपापात्र है तेई समुझने है ॥७३॥

क्या समुझनो है ताको कहत कि वस्तु जो है आत्मरूप सोना ताको सदा एक रस स्थिर जानु काहेते वाको रूप काहू के मिटाये कबहूं मिटत नहीं है सदा एक रस रहत अरु वामें उपाधि ते देह

भूषणादि ताके नाम देवता कुण्डलादि होत सो कारण पाय प्रकटत।
पुनः काल पाय दुरत कहे लोप होत (भाव) रूप नाम एक रस नहीं रहत अरु आत्मा सदा एक रस रहत ऐसा समुझि विचार करि देखो सार को ग्रहण करो असार को त्याग करो ॥ ७४ ॥

दोहा

पेखि रूप संज्ञा कहब, गुण सुबिबेक बिचार।
इतनोई उपदेश बर, तुलसी किये बिचार ७५

चवालिस के दोहा ते इहां तक जीव को आपनो रूप पहिंचानिबे को कहे अब ईश्वर को रूप पहिंचानिबे को कहत तहा ईश्वर के मुख्य पांच रूप हैं।

यथा—अन्तर्यामी १ पर २ व्यूह ३ विभव ४ अर्चा ५ तिनको रूप देखिकै प्रभाव अनुकूल संज्ञा अर्थात् नाम कहब अरु तिन में जो गुण है सो विवेक सों विचारिकै कहब।

यथा—सच्चिदानन्द सब में व्याप्त सबके अन्तर की जानत सब को देखै वाको देखत कोऊ नहीं आकार रहित ताते निराकार संज्ञा है ताके द्वै तनु हैं एक चित् दूसरा अचित् तहां ईश्वर जीव गुण ज्ञानादि चित् तनु है अरु अचित् में द्वै भेद प्राकृत दूसरा अप्राकृत तहां मायाकृत ब्रह्माण्ड प्राकृत अचित्रूप है अरु अप्राकृत में द्वै भेद एक दण्डपलादि कालरूप दूजो साकेत धाम नित्य विभूति है इनको वाको नहीं देखत ताते निरञ्जन संज्ञा गुण रहित याते निर्गुण विचारिये (इति अन्तर्यामी) अथ पररूप।

यथा—जो मनु शतरूपा के हेतु प्रकटे सो श्रीसीताराम साकेत विहारी पररूप हैं सबसों परे ताते पररूप संज्ञा है अरु गुण विभव अवतार में प्रसिद्ध सो आगे कहब इति ॥

अथ विभवरूप अवतार यथा मच्छ कच्छ वाराह नृसिंह इनकी रूप संज्ञा प्रसिद्ध है दया पालनादि ऐश्वर्य गुण विशेष माधुर्य सौलभ्यता नहीं।

पुनः परशु चिह्न ते परशुरामसंज्ञा तेजवीर्यादि गुण विशेष सौलभ्यक्षमादि नहीं वामनरूपसंज्ञा प्रसिद्ध शरणपालतादि विशेष स्वरूपता माधुरी सामान्य कृष्णजी में ऐश्वर्य माधुर्य विशेष सत्यसंधता स्थैर्यता सामान्य बौद्ध में प्रणतपालता विशेष सत्यता नहीं कल्की में ऐश्वर्य विशेष माधुर्यता सामान्य श्रीरघुनाथजी सब को आप में रमावत सब में रमत ताते राम संज्ञा अरु सब गुण परिपूर्ण हैं सो आगे के दोहा में कहब इति विभव।

अथ अर्चारूप यथा पञ्चमकार एक स्वयं व्यक्ति यथा श्रीरङ्गपद्मनाभ व्यङ्कटाद्रि विन्दुमाधव द्वितीय देवन के प्रतिष्ठा कीन्हे यथा जगन्नाथ तृतीय सिद्धिन के स्थापित कीन्हे यथा पन्ढरीनाथ चतुर्थ मनुष्यन के स्थापित कीन्हे जो ग्रामन में हरिमन्दिर हैं पञ्चम स्वयंप्रतिष्ठित शालिग्रामशिला।

यथा—अर्थपञ्चके

" परव्यूहौ च विभवो ह्यन्तर्यामी ततः परम्।
अर्चावतार इत्येवं पञ्चधा चेश्वरः स्मृतः॥
तत्र परः परिज्ञेयो नित्यो भवति भूतिमान्।
षड्गुणैश्वर्यसम्पन्नो व्यूहादीनां तु कारणः॥
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च तथा संकर्षणादयः।
वीर्येश्वर्यशक्तितेजोविद्याबलसमन्विताः॥
सृष्टिस्थित्यन्त्ययं चैव कर्त्तारो लोकरक्षकाः।
एवं लोकहितार्थाय चतुर्व्यूहः स उच्यते॥
विभवस्तु चतुर्द्धा स्यान्मुख्यशक्त्यवतारकाः।

आवेशो गौण इत्येवं चतुर्द्धा परिकीर्तितः ।।
अन्तर्यामीति विज्ञेयः सशरीरोऽशरीरकः ।
तत्राशरीरो भगवाञ्ज्ञानानन्दैकरूपकः ।।
श्रीरङ्गव्यङ्कटेशाद्याः स्वयंव्यक्तास्समीरिताः ।
दिव्यं देवप्रतिष्ठानात् सैद्धं सिद्धैस्तु पूजितम् ।।
मानुषैः स्थापितं तत्तु ग्रामगृहभिदा द्विधा ।
अर्चावतारसुलभः पद्माकरजलं यथा ।।"

तहां लोकरक्षाके हेतु अर्चावतार सबते सुलभ है इत्यादि रूपनको सेवन करने में गुण विचारि लेना चाहिये सो गोसाईंजी कहत कि गुण विवेक ते विचारे समुझिपरत ताको समुझना यही एक उपदेश है कि गुणविचारि रूपको सेवनकरो ।। ७५ ।।

दोहा

सदा सगुण सीता रमण, सुखसागर बलधाम।
जनतुलसी परखे परम, पाये पद विश्राम ७६

सब रूपन में अन्तर्यामी निर्गुण हैं और परव्यूह विभव अर्चापर्यन्त सगुण है ते सुलभ है तिनमें एक श्रीरघुनाथजी को सर्वोपरि निरधार कीन्हे यथा सदा सगुण सीतारमण जो श्रीरघुनाथजी सो सर्वोपरि रूप है सो सदा सगुण कहे सम्पूर्ण दिव्य गुणन सहित सदा परिपूर्ण हैं।

पुनः सुखसागर कहे माधुर्यगुणन करि अगाध हैं बलधाम कहे ऐश्वर्य गुणन के स्थान हैं माधुर्य गुण यथा रूप जो बिना भूषणै भूषित है लावण्यता यथा मोती को पानी सौन्दर्यता सर्वाङ्गसुठौर माधुर्य देखनहार तृप्त न होइ सौकुमार्य सुकुमारता नवयौवन सौगन्धित अङ्गसौवेष भाग्यवान् ।। ६ ।।

पुनः स्वच्छता, नैर्मल्यता, शुद्धता, सुषमा, दीप्ति, प्रसन्नता इति षड्ंग । उज्ज्वलत्व उज्ज्वलता ।

पुनः शीलता, वात्सल्यता, सौलभ्यता, गाम्भीर्यता, क्षमा, दया, करुणा, जन दुःखमें दुःखी मार्दव जनदुःख देखि द्रव उठै उदार आर्जव शरणपाल सौहार्द मित्रको अधिक मानै चातुर्यता, प्रीतिपाल, कृतज्ञ, ज्ञान, नीति, लोकप्रसिद्ध, कुलीन, अनुरागी इति माधुर्य ॥ अथ ऐश्वर्य ।

यथा—निवर्हणविजयी, ऐश्वर्य वीर्य, तेजबली, प्रतापी, यशी, आदभ्र अनन्त, नियतात्म प्रेरक, वशीकरण, वाग्मी, सहज पराबाणी जाकी सर्वज्ञ संहनन अजीत थिरता धीरज वदान्य सत्यवचन समता रमण सबमें व्यापक इत्यादि अनन्तगुण हैं ।

यथा—वाल्मीकीये

"इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः ।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान्धृतिमान्वशी ॥ १ ॥
बुद्धिमान्नीतिमान् वाग्मी श्रीमाञ्छत्रुनिवर्हणः ।
विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः ॥ २ ॥
महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुररिन्दमः ।
आजानुबाहुसुशिरः सुललाटः सुविक्रमः ॥ ३ ॥
समः समविभक्ताङ्गः स्निग्धवरणः प्रतापवान् ।
पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभलक्षणः ॥ ४ ॥
धर्मज्ञः सत्यसंधश्च प्रजानां च हिते रतः ।
यशस्वी ज्ञानसंपन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान् ॥ ५ ॥
प्रजापतिसमः श्रीमान्धाता रिपुनिषूदनः ।
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता ॥ ६ ॥
रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता ।

चेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः॥ ७ ॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ स्मृतिमान् प्रतिभानवान्।
सर्वलोकस्य यः साधुरदीनात्मा विचक्षणः॥ ८ ॥
सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः।
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः॥ ९ ॥
स च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्द्धनः।
समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्ये च हिमवानिव॥ १० ॥
विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः।
कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः॥ ११ ॥
धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः।
तमेव गुणसंपन्नं रामं सत्यपराक्रमम्॥ १२ ॥"

गोसाईंजी कहत कि इत्यादि वेद पुराणन में सुनि विचारिकै जे जन परखे (भाव) सबल प्रणतपाल सरल भक्तवत्सलादि गुणनते परिपूर्ण सिवाय श्रीरघुनाथ और दूसरा साहब नहीं ऐसा जानि सब को आश भरोसा त्यागि एक श्रीरघुनाथजीकी शरण गहेते विश्राम पद पाये भाव न काहू की भय रही न काहू वस्तु की कांक्षा रही। यथा—काकभुशुण्डि हनुमान्जी वाल्मीक्यादि अनेकन हैं॥ ७६ ॥

दोहा

सगुणपदारथ एकनित, निर्गुण अमित उपाधि।
तुलसीकहहि बिशेषते, समुझसुगतिसुठिसाधि ७७

रूप शील बलआदि अनन्त जो दिव्यगुण हैं तिन सहित होइ जो ताको कही सगुण अरु सम्पूर्ण सुखद जो वस्तु।
यथा—अर्थ, धर्म, काम, मोक्षादि ताको कही पदार्थ तहां सम्पूर्ण गुण सहित सब सुखदायक ऐसे सगुण पदार्थ जो सीतारमण हैं

तिनके प्राप्त होने हेतु उपाय नित कहे सदा एक ही है अर्थात् सब आश भरोसा त्यागि एक शरणागत है श्रीरघुनाथजी को भजन करना याही में प्रभु प्रसन्न होत।

यथा—"त्यागत कर्म शुभाशुभदायक।
भजतमोहिं सुरनर मुनिनायक॥

गीतायाम्

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच॥"

वाल्मीकीये

"सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥"

महारामायणे

"अन्ये विहाय सकलं सदसच्च कार्यं श्रीरामपङ्कजपदं सततं स्मरन्ति॥"

पुनः जो गुणन करिकै रहित ताको कही. निर्गुण अर्थात् अन्तर्यामी ताको अनुभव जो रूप ज्ञान ताके प्राप्त होने में माया-कृत कामादि अमित उपाधि कहे बाधा हैं काहेते स्वयं वल चाहिये वामें कोऊ रक्षक नहीं जो अन्तर्यामी है सो तो अगुण अकर्ता है।

पुनः विवेकादि जो वाके साधन हैं सो अति कठिन है।

यथा—"साधनचतुष्टयं किम् नित्यानित्यवस्तुविवेकः। इहामुत्रार्थं फलभोगविरागः शमदमादिषट्सम्पत्तिर्मुमुक्षुत्वं॥ चेति तत्र विवेकः कः नित्यवस्त्वेकं। ब्रह्म तद्व्यतिरिक्तं सर्वमनित्यमयमेव नित्याऽनित्य वस्तुविवेकः॥ विरागः कः इह स्वर्गभोगेषु इच्छाराहित्यं षट्सम्पत्तिः शमः कः मनोनिग्रहः दम कः चक्षुरादिबाह्येन्द्रियनिग्रहः तपः किम् स्वधर्मानुष्ठानमेव तितिक्षा का शीतोष्णसुखदुःखादिसहिष्णुत्वम्

"श्रद्धा कीदृशी गुरुवेदान्तवाक्येषु विश्वासः श्रद्धा समाधानं किम् चित्तैकाग्रयम् मुमुक्षुत्वं किम् मोक्षो मे भूयादितीच्छा एतत्समाधान-चतुष्टयन्ततस्तत्त्वविवेकस्याऽधिकारिणो भवन्ति तत्त्वविवेकः आत्मा सत्यस्तदन्यत्सर्वं मिथ्येति आत्मा कः स्थूलसूक्ष्मकारणशरीराद्-व्यतिरिक्तः पञ्चकोषातीतस्सन्नवस्थात्रयसाक्षी सच्चिदानन्दस्व-रूपस्संतिष्ठति स आत्मा" इत्यादि साधन मायाकृत उपाधि अनेक है।

पुनः उत्तम सुकृतिन के योग्य विषयी पतितन को अधिकार नहीं ताते निर्गुणमार्ग दुर्घट है अरु हरिशरणागति सुगम है।

पुनः विषयी पतितादि सबको अधिकारहै ताते सुलभ है ताको गोसाईंजी कहत कि सगुणरूप विशेष है ऐसा समुझि सुठि कहे अतिसुन्दर गति जो हरिशरणागति ताको साधौ शरण गहौ भाव ज्ञानते भक्ति विशेष श्रेष्ठ है।

यथा–भागवते

"श्रेयः श्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ॥ ७७ ॥"

दोहा

यथा एकमहँ बेदगुण, तामहँ को कछु नाहि।
तुलसी वर्तत सकल है, समुभत कोउकोउ ताहि ७८

यथा–सगुण पदार्थ एक श्रीरघुनाथजी सुलभ हैं ताही भांति श्रीरघुनाथजी में वेद कहे चारिभाँति के गुण हैं तिनमें अनन्त भेद हैं अथ चारि में प्रथम एक तौ विश्व उद्भव स्थिति पालनार्थ है तामें

आठभेद यथा ज्ञान शक्ति बल ऐश्वर्य तेज वीर्य इति षट्गुण ती भगवान्मात्र सब रूपन में होत है और हैं एनतों कबहूं त्यागिबे योग्य नहीं यह अष्टगुण दूजे विशेषरहित सबको एकरस देखत यह सत्यनीकत्वगुण हैं ये आठगुण विश्वउत्पत्ति पालनहेतु हैं ।

यथा—भगवद्गुणदर्पणे

"ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः ।

तवानन्तगुणस्यापि षडेव प्रथमे गुणाः ॥

हेयसत्यनीकत्वाशेषत्वाभ्यां सह गुणाष्टकमिदं जगदुत्पत्त्यादि व्यापारेषु प्रधानं कारणम् ॥"

द्वितीयगुणभजनोपयोगी हैं तामें आठभेद सत्य ज्ञान अनन्त एकत्व विभुत्व अमलत्व स्वातन्त्र्य आनन्द ये आठगुण वेदान्त सिद्धान्तमय हैं ज्ञानानन्दमद हैं ।

भगवद्गुणदर्पणे

"सत्यत्वज्ञानत्वानन्तत्वैकत्वविभुत्वामलत्वस्वातन्त्र्यानन्दत्वादयो ह्यनिरूपितस्वरूपनिरूपकाः स्वरूपाकारविशेषाः सर्वाविद्योपसंहार्याः ॥" ये ते विशिष्यभजनोपयोगिनस्तृतीयश्चाश्रितशरणोपयोगी हैं तामें अठारह भेद ।

यथा—"दयाकृपाऽनुकम्पाऽनृशंस्यवात्सल्यसौशील्यसौलभ्यकारुण्यक्षमागाम्भीर्यौदार्यस्थैर्यधैर्यचातुर्यकृतित्वकृतज्ञत्वमार्दवार्जवसौहार्दगुणा भगवतोन्तःकरणधर्मा विशिष्याश्रयणोपयुक्ताः ॥" इति

शरणागतन के रक्षक पोषक प्रेमानन्दवर्द्धन हैं चतुर्थ सुन्दर स्वरूपतादि गुण सब जीवमात्र के उपयोगी हैं तामें नवभेद ।

यथा—"सौन्दर्यमाधुर्यसौगन्ध्यसौकुमार्यौज्ज्वल्यलावण्याभिरूपकान्तितारुण्यप्रभृतयो दिव्यमङ्गलविग्रहगुणा नित्यमुक्तमुमुक्षुचेतनसाधारण्येन भगवदनुभवोपयोगिनो हृदयाकर्षकत्वात् ॥"

इत्यादि चारि भांति के गुणन में जो अनेक भेद हैं तामहँ तिन गुणन के मध्य कहौ चराचर को नहीं है सब ब्रह्माण्ड इनहीं के भीतर है ताते सकल जग इनहीं में वर्तत हैं उत्पत्ति आदि इनहीं में होत ताको गोसांईजी कहत कि श्रीरघुनाथजी के गुणन में सब संसार है परन्तु ताहि कहे तिन गुणन को समुभत कोऊ कोऊ जे प्रभु कृपापात्र हैं ते समुभत और सब नहीं ॥ ७८ ॥

दोहा

तुलसी जानत साधुजन, उदय अस्तगत भेद ।
बिन जाने कैसे मिटै, बिविध जनन मन खेद ७९
संशय शोक समूलरुज, देत अमित दुख ताहि ।
अहिअनुगत सपने बिबिध, जाहिपरायन जाहि ८०

सूर्य उदय स्थल आदि अस्तपर्यन्त यावत् संसार है सो भगवत् लीलामात्र त्रिगुणात्म मायाकृत पांचभौतिक रचना सो सब सर्पवत् भ्रम रज सम भूठही है तामें भगवत् को अंश व्याप्त ताही ते सब सांचु से देखात ताही में सब सुर नर नागादि भूले हैं भाव जगत् भूठा ईश्वर साचा यह जो भेद है ताको गोसांईजी कहत कि जे हरिसनेही साधुजन हैं ते जगको भेद जानते हैं तेई सुखी रहत अरु जगत् के रजोगुणी तमोगुणी विषयी विमुखादि विविध प्रकार के जे जन हैं तिनके हानि, लाभ, राग, द्वेष, जन्म, जरा, मरणादि विविध मनोरथादि मनमें अनेक खेद जो दुःख हैं सो विना जगत् को भेद जाने कैसे दुःख मिटै याही ते सब दुःखी हैं ॥ ७९ ॥

कौन भांति सब दुःखी हैं।

यथा—कुछ कारण रूप मूल पाय रुज को अंकुर कुपथ जल पाय दुःख फल दै लोगन को दुःखित करत ताही भांति जग

झूंठेको सांचा भ्रम सोई मूल सहितशोक जो दुःख सोई रुज कहे रोग है सो कुसंग कुपथ्य पाय सबल है ताहि जग जनन को हानि लाभ जन्म जरा मरण नरकादि अमित दुःख देत है कौने जनन को जिनको जग सपने केसे सांप त्रिविध विषयअनुगत नाम उनके मध्य में प्राप्त तिनको चाहि कहे देखिके पराय कहे भागि नहीं जाते हैं (भाव) विषयते विराग नहीं होते हैं तेई जन दुःखित हैं ॥ ८० ॥

दोहा

तुलसी सांचो सांच है, जवलगि खुलैं न नैन।
सो तवलगि जवलगि नहीं, सुनै सुगुरुवर वैन ८१
पूरण परमारथ दरश, परसत जौं लगि आश।
तौलगि खन उप्पान नर, जवलगिजलनप्रकाश ८२

गोसाईंजी कहत कि स्वप्न में सर्प तवैतक सांच है जवलग नयन नहीं खुलत (भाव) स्वप्न को दुःख जागे विना नहीं जात इहां मोह निद्रा है जीव सोवनहार है जगत् व्यापार स्वप्न है तामें विषयरूप सर्प गांसे ते जीव विकल है सो दुःख तवलग वना है जवलग सुगुरु के वर वैन नहीं सुनत अर्थात् जे सर्वतंत्र के ज्ञाता श्रीरामानुरागी ऐसे सतगुरु के वर कहे श्रेष्ठ उपदेश वचन जवलग नहीं सुनत तवलग भगवत् सनेह नहीं होत तवलग जीव विषया-सक्त है ॥ ८१ ॥

जवलगि जीव विषयकी आश परशत (भाव) शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, काम, लोभादि की चाह में बँधा है तवतक सुमार्गहू गहे तबहूं परमारथ को दर्श नहीं पूरपरत (भाव) मुक्त नहीं होत अर्थात् जब ज्ञान आयो तव हरिकी दिशि मन गयो।

पुनः अज्ञान ते विषयमें मन गयो इसी भांति हिंडोलाकीसी पैंग इधर उधर मन बनारहा तबतक काल आय गयो न मालूम वासना कहांको लेगई ताते जबतक विषय चाह बनी है तबतक परलोक पूर नहीं परत ।

यथा—वर्षाऋतु में कृषीकारी में जबलगि जल को प्रकाश नहीं होत परिपूर्ण वर्षा नहीं तबतक कृषी सूखने की भय करि नर जो मनुष्य ते खन कहे क्षण क्षण प्रति उप्पान कहे सूखत जात भाव पूर्ण वर्षा विना कृषी नाश होत तथा पूर्ण विराग विना परलोक नाश होत ॥ ८२ ॥

दोहा

तबलगि हमते सब बड़ो, जबलगि है कछु चाह ।
चाहरहित कह को अधिक, पाय परमपद थाह ८३
कारण करता है अचल, अपि अनादि अजरूप ।
ताते कारज बिपुलतर, तुलसी अमलअनूप ८४

जबलग विषय की आश थोरिउ कुछ बात की बनी है तबलग हमते सब कोऊ बडो है अर्थात् आशावश सब जग के दास बने द्वार द्वार सबको बड़ा मानते है ।

यथा—"आशापाशस्य ये दासास्ते दासा जगतामपि ।
आशा दासी कृता येन तस्य दासायते जगत् ॥"

अरु जे जगको आसरा छांडि हरिशरण गहे ते परमपद जो मुक्ति ताकी थाह पावे कि भगवत् शरण भये जीव को मुक्त होनेमें संदेह नहीं।

यथा—नारदीयपुराणे

"श्रीरामस्मरणाच्छीघ्रं समस्तक्लेशसंक्षयः ।
मुक्तिं प्रयाति विप्रेन्द्र तस्य विघ्नो न बाध्यते ॥"

ताते हरिशरण है विषय चाह ते रहित भये तिनकहँ जग में को अधिक (भाव) सब को समान मानत ॥ ८३ ॥

निवृत्तिमार्ग में कारण परमार्थ पथ के साधन सत्संग आदि प्रवृत्तिमार्ग में कारण भव के साधन कुसंगादि इत्यादि कारण हैं करता कहे जीव ये दोऊ आपि कहे निश्चय करिकै सदा अचल हैं कबहूं चलायमान नहीं होत।

पुनः अनादि है जिनकी आदि कोऊ नहीं जानत कि कबते है।

पुनः अज कहे जन्मरहित है रूप जिनको सोई रूप सँभारिकै करता शुभ कारण में रत होई तौ ता जीवते विपुल तर कहे अत्यन्त बहुत कारज कहे कर्म होत कैसे ताको गोसाईंजी कहत कि अमल कहे विकारादि मलरहित कारज यथा अम्बरीषादिकन की क्रिया।

पुनः अनूप जाकी उपमाको दूसरा नहीं यथा ध्रुवादिकनकी तपस्या।

पुनः सोई करता आपनो रूप भूलि कुसंगादि कारण में रत भयेते आसुरीकर्म करि भवसागर को जात सो तौ प्रसिद्धै सब संसार है ॥ ८४ ॥

दोहा

करता जानि न परत है, बिन गुरुबर परसाद।
तुलसीनिजसुखविधिरहित, केहिविधिमिटै विषाद ८५

करता को आपनो रूप काहेते नहीं जानिपरत ताको कहत कि वर कहे श्रेष्ठ गुरु के विना परसाद अर्थात् श्रीरामानुरागी तत्त्ववेत्ता ऐसे सतगुरु के कृपा उपदेश विना पाये करता जो जीव ताको अचल अनादि सहज सुख आपनो रूप सो नहीं जानि परत काहेते कुसंग सहायक शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि विषय

में इन्द्रिय आसक्त ताते कामवश परस्त्री में रत क्रोधवश वैर बुराई लोभवश छल कपट चोरी ठगी पाखण्डादि करत इत्यादि अनेक कर्मकरि तामें बद्ध भयो ताको गोसाईंजी कहत कि जीव को निज सुख जो हरिभक्ति ताकी जो विधि सन्तन को संग, गुरुसेवा, श्रवण, कीर्तन, अर्चन, प्रेमादिरहित, ता जीवन को विपाद जो त्रिताप जन्म, जरा, मरण, नरकादि सांसति इत्यादि दुःख केहि विधिमिटै भाव बिना हरिभक्ति और काहू विधिते न मिटी ॥ ८५ ॥

दोहा

मृण्मय घट जानत जगत, बिन कुलाल नहिं होय।
तिमि तुलसी करतारहित, कर्म करै कहु कोय ८६
ताते करता ज्ञानकर, जाते कर्म प्रधान।
तुलसी ना लखि पाइहौ, किये अमितअनुमान ८७

मृण्मय कहे माटीमय घट गगरी आदि यावत् पात्र है तिनको सब जग जानत कि बिना कुलाल नहीं होत अर्थात् माटी के पात्र कुम्हार के बिना नहीं बनि सकत तहां माटी कारण है सो वर्तमान परन्तु कुम्हार कर्ता बिना जिमि घटादि पात्र कर्म नहीं होत तिमि कहे ताही भांति गोसाईंजी कहत कि कर्तारहित कर्म को करै अर्थात् कारण सत्संग आदि वर्तमान है ताको कर्ता जीव कर्तृत्वहीन है (भाव) विषय में भूलापरा सो बिना जीव की चैतन्यता श्रवणकीर्तनादि भक्ति कर्म को करै ताते जीव चैतन्य सत्संगादि कारण में मन लगावना उचित सत् सन्तसंगके प्रभावते श्रवणादिक कर्म आपही होइंगे ॥ ८६ ॥

कर्मको करनेवाला कर्ता जीव है ताहीके कीन्हेते कर्म होत ते प्रधान कहे मुख्य कहावते हैं ते जीव के कीन्हे होत सो जीवसों

कहत कि जो तेरे कीन्हेते कर्मभये तो कर्म नहीं प्रधान है तुही प्रधान है ताते हे कर्तः ! तोको उचितहै कि ज्ञान धारण करु अर्थात् जीव विषय में आसक्त आपनो रूप भूला है ता रूपको सँभारकरु अर्थात् सन्तन को संग गुरुकी सेवा करु तिनकी कृपा ते सत्संग प्रभाव ते विषय ते विराग होई तब आपनो रूप जानै गो तब श्रीरामरूप लखि पाइहौ ताते आदि कारण जानि सत्संग करना उचित है नाहीं तौ गोसाईंजी कहत कि तपस्या जलशयन पञ्चाग्न्यादि तीर्थव्रत वेदपाठादि अमित अनुमान करिहौ श्रीरामरूप को न लखि पाइहौ काहे ते बिना सन्तन की कृपा विषय ते विराग नहीं बिना विराग विवेक नहीं बिना विवेक आपने रूप की पहिँचान नहीं बिना आपनो रूप जाने हरिरूप जानिबो दुर्घट है ॥ ८७ ॥

दोहा

अनूमान साक्षी रहित, होत नहीं परमान।
कह तुलसी परत्यक्ष जो, सो कहु अपर को आन ८८

जो सत्संग न कीन्हे जाति विद्या महत्त्वादि अभिमानवश आपनेही मनते अनुमान करत कि जप पूजादि ऐसो उपायकरी जामें हरिरूप की प्राप्ति होइ सो आपने अनुमान को प्रमाण तब होत जब वाको कोऊ साक्षी होइ अरु जो साक्षीहीन है तो अनुमान बात की प्रमाण नहीं होत तहां जो कोऊ गुरुकृपा सत्संग रहित आपने मनते अनुमान करि कर्म करिकै हरिप्राप्ति चाहत या बात की लोक वेद में कोऊ साक्षी नहीं अरु गुरुकृपा सत्संग करि हरि प्राप्ति को सर्वथा प्रमाण है।

यथा—भागवते

"रहूगणैतत्तपसा न याति न चेज्यया निर्वपणाद्गृहाद्वा।
नच्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यैर्विना महत्पादरजोभिषेकम्॥"

ताते सत्संग के प्रभावते शीघ्रही आपनो रूप देखत सो गोसाईंजी कहत कि जो प्रत्यक्ष आपनो रूप देखत सो कछु अपर कहे और कोऊ आन कहे दूसरा को है जामें प्रमाण हेतु साक्षी ढूंढ़ै यह तौ प्रत्यक्षही प्रमाण है ताते आपनो रूप जानेपर हरिरूप की प्राप्ति सुगम है जो आपनो रूप नहीं जानत ताको हरिरूप दुर्घट है॥ ८८॥

दोहा

तिमि कारण करता सहित, कारज किये अनेक।
जो करता जाने नहीं, तो कहुकवनविवेक ८९
स्वर्णकार करता कनक, कारण प्रकट लखाय।
अलंकार कारज सुखद, गुण शोभा सरसाय ९०

तिमि कहे ताही भांति अर्थात् अनुमान सहित कर्ता जो जीव सो कारण जो साधन मिलि अनेक कारजनाम कर्म कीन्हे अरु कर्ता आपको नहीं जाने विषयवश अनेकन शुभाशुभकर्म करत ताहीमें बँधा रहत ताही वश संसारसागर में परा है तामें कौन विवेक है भाव यही अज्ञानदशा है जो आपनो रूप जानै तौ कर्म बन्धन में न परै भाव कर्मन की वासना न राखै जगत् सुख वृथा जानि त्यागै हरिरूप प्राप्ति को साधन करै सो विवेक है॥ ८९॥

स्वर्णकार सोनार सो तौ कर्ता है अरु कनक जो सोना सो कारण है सो प्रकट देखात भाव खरा है वा खोटा तेहि सोनाके अलंकार कहे किरीट, कुण्डल, माला, केयूरादि अनेक भूषण बनावत सोई सुखद कारज है तहां सोनार चतुर होइ तौ राजाको भयकरि सोना में लालच न करै मनलगाय सुन्दर भूषण बनाय राजा को पहिरावै ताकी शोभा सरसात नाम बढ़त सोई गुण है तब राजा प्रसन्न है सोनार को इनाम देत ताको पाइ सुखी होत अरु जो

सोनार निर्बुद्धि लोभते सोना निकारि दाग मिलाइ भूषण बिगारि दिये ताको राजा दण्ड देत इति दृष्टान्त अथ दार्ष्टान्त ।

यथा—इहां सोनार कर्ता जीव है आपनेरूप की पहिंचान वासना त्याग चतुरता है सत्संगादि सुमारग सोनारूप कारण है नवधा प्रेमा परा आदि कारजरूप भूषणहै श्रीरघुनाथजी राजाहैं तिनको पहिरायेते भक्तवत्सलतादि गुण प्रकटत सोई शोभा है भक्तनको अभय करि बड़ाई देना प्रभु की प्रसन्नता है ।

पुनः जे जीव निर्बुद्धि विषयासक्त वासना सहित कर्मरूप भूषण दागी बनाये ताको संसाररूप दण्ड है ॥ ९० ॥

दोहा

चामीकर भूषण अमित, कर्ता कह तव भेद।
तुलसी ये गुरुगम रहित, ताहि रमित अतिखेद ९१

चामीकर सोना सो कारण एकहीहै ।

यथा—क्रिया एक तामें कङ्कण कुण्डलादि भूषण अमित हैं सो कर्ता सोनारको कहत तव कै भेद हैं भाव हैं सब सोना ताको जौन नाम कहत सोई विदित रहत तथा जीव कर्ता वासनासहित अनेक कर्म करत सो फलभोग की चाह, ते सब कर्म सँचे मानत सोई ताको नाम धरना है तहां जे गुरुके कृपापात्र आपने रूप को जानते हैं ते कर्मन को नाम साँचा नहीं मानत वाकी वासना नहीं राखत हरिशरणको भरोसा राखे, कर्म हरि अर्पण करत ते सदा अनन्द रहत अरु जे गुरुकी दीन्हीं स्वस्वरूप जानवे की गमि तिहि करिकै रहित हैं तिनको गोसाईंजी कहत कि ताहि कहे तिन जीवन को कर्मन में रमित रहे ताको फल भोगत ताते अतिखेद कहे महादुःख होतहै ॥ ९१ ॥

दोहा

तन निमित्त जहँ जो भयो, तहाँ सोई परमान।
जिन जाने माने तहाँ, तुलसी कहहिं सुजान ६२
मृन्मयभाजनविविध विधि, करता मन भवरूप।
तुलसी जानेते सुखद, गुरुगम ज्ञान अनूप ६३

आनन्दमूर्ति सदा एकरस आत्मा सो मायाकारण पाय जीव है आपनो रूप भूलि जग वासना में परि पांचभौतिक अनेक तन धरत तिन तनके निमित्त स्वर्ग मृत्यु पातालादि लोकन में जहां पर देव, नर, नागादि जो कुछ भयो तहां सोई नाम प्रमाण कहे *सब साँचु मानि लीन्हे ताको गोसाईंजी कहत कि सुजान जन* ऐसा कहत कि देहादि लोकव्यवहार सो नट कैसो खेल देखनमात्र है काहेते हरिगुरुकृपाते जे जन आत्मतत्त्व जानते देव नर नागादि नाम सांचे नहीं मानत वे तहां साँचु मानत जहां आत्मा सदा एक रस आनन्दरूप है सो सार है देहादि असार है ॥ ६२ ॥

यथा--कुम्हार कर्ता माटी कारण पाय ताके मृण्मय घटादि विविध भांति के भाजन जो पात्र ताकी रचना करत ताही भांति मनरूप कर्ता सोई भव कहे संसाररूप कारण पाय अनेक भांति की देहैं सोई मृण्मय विविध भांति के भाजन रचत हैं तहां आत्मा भगवत् को अंश सो तौ अकर्ता है तामें कारण माया को अंश मिला सो आत्मदृष्टि खैंचि लीन्हों ताते आपनो रूप भूलि जीव है सवासिक भयो।

यथा--चैतन्यजीव नशा खाय बौरा र तैसे माया मिली सोई मन है सो कर्ता भयो ताते आत्मा जीव नाम पायो अरु मट्टी में सब तत्त्व अन्तर्गत हैं ताते मृण्मय कहे सोई देहन को सांच माने सब

भूले है ताहीते सवासिक कर्मन में बँधे सब दुःखित हैं जैसी मन की वासना तैसी देहधरत ताको गोसाँईजी कहत कि जिनको गुरु की कृपाते अनूप ज्ञान प्राप्त है अर्थात् देह को असार जानत ताको दुःख सुख भूठा मानत आत्मा को सार जानत तामें दुःख कई नहीं सदा आनन्दरूप है ऐसा ज्ञान सुखद पदार्थ पाय ताते सदा सुखी रहत ॥ ९३ ॥

दोहा

सबदेखत मृत भाजनहिं, कोइ कोइ लखत कुलाल।
जाके मनके रूप बहु, भाजन विलघु विशाल ९४

मृत कहे माटी ताके भाजन घटादिकन को तो सब कोऊ देखत अर्थात् कार्यरूप व्यवहार देहादि सब कोऊ साँचोंकै मानत अरु कुलाल कहे कुम्हार कर्ता ताको ज्ञानवान् कोई कोई है सो देखत जाके कहे जा कुम्हार रूप जीवके मन के कहे मनोरथ के वश सुर, नर, नाग, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्गादि देहरूप भाजन बहुत बने हैं तिनमों वि कहे विशेष लघु कहे छोट। विशाल बड़ा तामें एक आत्मा साँचो है सो विपयासक्त है आपनो रूप भूलि जीवभयो ताहीके मनोरथ करि अनेक देहैं है सो सब भूठी है काहेते जो मनोरथ न करै तौ काहेको देह धरै ऐसा विचारि लोकाशा त्यागि हरिशरण गहो ॥९४॥

दोहा

एकै रूप कुलाल को, माटी एक अनूप।
भाजनअमितविशाललघु, सो कर्ता मनुरूप ९५
जहां रहत वर्तत तहां, तुलसी नित्य स्वरूप।
भूत न भावी ताहि कह, अतिशै अमल अनूप ९६

कुलाल कहे कुम्हार अर्थात् कर्ता जो है जीव ताको एकहीरूप है ।
पुनः माटी अर्थात् कारणरूप माया ताहूको एकही रूप है ये दोऊ अनूप हैं न जीवको समान दूसरा है न मायासम दूसरा है इनको एकै एक रूप है अरु भाजन जो देहरूप पात्रहै ते बिशाल नाम बड़ा लघु नाम छोटा इत्यादि अमित कहे संख्याहीन हैं ते सब कर्ता जोहै जीव ताके मन के मनोरथ के रूप हैं ।

यथा-कुम्हार जैसा मनोरथ कीन्हें तैसे छोटे बड़े पात्र बनाये तथा जीवको जैसो मनोरथ भयो तैसी देह धारण कीन्हैं ॥ ६५ ॥

गोसाईंजी कहत कि नित्य स्वरूप अमल आत्मा सो कारण माया के वश है वासना अधीन सुर नर नागादि रूप धारि स्वर्ग मृत्यु पातालादि लोकन में जहां रहत तहां वर्तत कहे कर्माधीन देहसम्बन्ध ते दुःख सुख भोगत सो बिना आपनो रूप जाने ।

यथा-सिंहशिशु भेड़िन में परि आपनोरूप भूलि भेड़िन की संगतिते वैसाही स्वभाव परि गयो उनहीं संग चरत कदाचित् दूसरा सिंह देखानो ताके आचरण देखि जानि लियो कि मैं भी यही स्वरूप हौं यह समुझि वनको चला गयो निःशंक साउजनपै चोट करनेलगो तथा सतगुरु पाय आपनो रूप सँभाख्यो तब लोकवासना त्यागि विवेकरूप वन में कामादि साउजन पर चोट करने लगो कैसा है स्वरूप जाको भूतकाल आदि नहीं कोऊ जानत कि कबते उत्पन्न भयो है अरु भावी कहे अन्त नहीं कोऊ जानत कि कबतक रहैगो पुनः अमल जामें कुछ विकारादि मल नहीं है । पुनः अनूप कहे जाकी सम दूसरा नहीं है ॥ ६६ ॥

दोहा

श्वाससमीर प्रत्यक्षअप, स्वच्छादरश लखात ।
तुलसी रामप्रसाद बिन, अबिगतिजानिनजात ६७

सो आत्मा इसी देहके अन्तर्गत है ताही के प्रताप ते जडदेह भी चैतन्य है सो स्थूलदेह पांचतत्त्व को है ।

यथा-आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी तहां आकाश अग्नि ये दोऊते मित्रता है ताते पवन मुख्य अरु भूमिते मित्रता ताते जल मुख्य ताते जल अरु पवन ये दोऊ देह में प्रधान हैं सो कहत कि श्वाससमीर जो पवन सो प्रत्यक्ष सब देखत कि देह में जब तक श्वासचलत तबैतक देह चैतन्य श्वास बन्दभये पर देह नाश होत अरु अप जो जल सो देह को आदिकारण है काहेते रज वीर्य जलै को रूप है ते दोऊ मिले देह उत्पन्न होत सोऊ सब कोऊ जानत ताही में आत्मा कैसा लखात ।

यथा-स्वच्छ आदर्श अर्थात् उज्ज्वल शीशा जैसे अमल देखात यथा शीशा के सम्मुख भये नैमित्तरूप देखात तथा जीवात्माके सम्मुख भये नित्यरूप देखात ताको गोसाईंजी कहत कि वाको कोऊ जानाचाहै तौ बिना श्रीरघुनाथके प्रसाद कहे प्रसन्नता जानी नहीं जात काहेते अविगति है काहूकी गति नहीं है सब यही सांच माने है कि जलसों देह उत्पन्न होत जबतक श्वास चलत तबैतक रहत अरु यह कोऊ नहीं विचारत कि जल पवनादि तौ जड़हैं इनमें चैतन्यता आत्मा की है यह बिना प्रभु कृपा नहीं जानि परत ताते प्रभु की, शरणागति की मार्ग गहो जब दया करैंगे तब सब सुगम होइगो॥९७॥

दोहा

तुलसी तुल रहि जातहै, युगतनअचलउपाधि ।
यहगतितेहिलखि परत जेहि, भईसुमतिसुठिसाधि ९८

काहेते आत्मस्वरूप जानिवे में अविगति है कि आत्मा में आठ आवरण है ।

यथा—हांड़ी में गिलास तामें दीपशिखा ताको कोऊ नहीं मानत सब यही कहत हांड़ी का प्रकाश है तथा तीनि गुण पांचतन्मात्रा तेहि करिकै तीनि शरीर हैं प्रथम त्रिगुणात्मक कारण शरीर पाय आत्मदृष्टि भूलि जीव भयो ।

पुनः दश इन्द्रिय पञ्च प्राण मन बुद्धि सत्रह अवयव को सूक्ष्म शरीर भयो ।

पुनः पुरुष प्रकृति ते बुद्धि भई बुद्धिते अहंकार तहां सात्त्विक अहंकारते दशेन्द्रिय मन भयो अरु तामस अहंकार ते शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, सूक्ष्मभूत ताते आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी आदि स्थूलभूत क्रमसों भयो इति पचीस तत्त्व को स्थूल शरीर है तहां मायामय जो कारण शरीर जो आदि आत्मत्व भुलाय जीवत्व बनायो सो आत्मा विषे अचल उपाधि है ताको गोसाईंजी कहत कि अनेकन उपाय करि मिटावो परन्तु स्थूल सूक्ष्म ये युग कहे दोऊ तनमें तुल कहे कुछ थोड़ी उपाधि रहि जाती है सूक्ष्म वासना जीवते नहीं जात ताते आत्मतत्त्व जानवे को काहूको गति नहीं है ।

पुनः लखि कौनभांतिते परत ताको कहत कि जे अनेकन जन्म विराग सहित जप होम योग समाधि इत्यादि साधनको साधि जिनके उरमें सुठि कहे अत्यन्त सुमति भई तहां सुमति काको कही जा ग्राम में एक मालिक की आज्ञानुकूल सब जन सुराह पर चलत ताको सुमति कही सो इहां जीव मालिक की आज्ञा मानि मन, चित्त, बुद्धि, अहकार अरु कर्ण, त्वचा, नेत्र, रसना, नासिकादि ज्ञानेन्द्रिय हाथ, पग, गुदा, शिश्न, मुखादि कर्मेन्द्रिय इत्यादि सुराह परमारथ पन्थ पर चलैं कामादि कुमार्ग त्यागि देइ ऐसी सुमति जाके होइ तेहि कहँ आत्मतत्त्व जानवेकी गति लखि

परत सो जीव को स्वाभाविक गति नहीं है जब श्रीरघुनाथजी कृपा करैं तब होइसकत ताते श्रीरघुनाथजी की शरणागति में रहना उचित जानि और आशभरोसा त्यागि एक प्रभुको भरोसा राखौ कबहूँ कृपा करबै करैंगे ॥ ६८ ॥

दोहा

करता कारण कालके, योग करम मत जान।
पुनः काल करता दुरत, कारण रहत प्रमान ६६

करता जैसे सोनार कुम्हार अर्थात् जीव कारण ।

यथा–सोना माटी अर्थात् माया तामें अविद्या जीव को बाँधनेवाली ताको अधिकारी कुसंग है अरु विद्या जीवको छुटावनेवाली ताको अधिकारी सुसंग है सो कारण जो है सो काल जो समय ताके योगते शुभाशुभ कर्म करता करत ऐसा मत जानना चाहिय ।

यथा–जीव करता वही विद्या अविद्या माया कारण वही सो सतयुग सुसमय अर्थात् जामें धर्म चारिहू चरणते परिपूरण ताके योगते जीव सब शुद्ध सुमार्गी भगवत् को ध्यानकरि परलोक सुधारै त्रेता में कुछ अधर्म व्याप्यो ताते जीवमें शुद्धता पूर्ण न रही तब यज्ञादि कर्म करि फल हरि अर्पणकरि परलोक सुधारै जब द्वापर आवा तब अर्ध धर्म रहा तब भगवान्की पूजाकरि परलोक सुधारै जब कलियुग लाग तब धर्म नाममात्र रहिगा अधर्म की वृद्धि भई ता कलिकाल योगते सब अधर्मी होत भये धर्म कर्म एकहू नहीं होत एक श्रीरामनामके आश्रित जीवनको कल्याण होत सो जीव उनहीं माया वहै समय योगते कर्म आनआन भांतिके करत काहे ते धर्म अधर्म जासमय में जाकी वृद्धि होत ताहीसंगमें लोग उसीमार्ग पर बहुत आरूढ है जात ।

पुनः जब काल दुरत अर्थात् अशुभकाल वदलि शुभकाल आयो ।
यथा—कलियुग गयो सतयुग आयो अथवा सतयुगादि जात जात कलियुग आयो इत्यादि ज्यों ज्यों काल दुरत अर्थात् वदलत तथा समय योगवाप कर्ता जो जीव सोऊ दुरत भाव सुभाव वदलत अर्थात् समय अनुकूल जीव भी ह्वैजात ।

यथा—स्वर्णकार जैसा समय देखत तैसे भूषण रचत ताते काल के दुरेते कर्ता भी दुरत अरु कारण एकरस रहत तहां सोना माटी आदि तौ प्रत्यक्षही प्रमाण है कि सदैव एकहीरस रहत अरु माया ।

यथा—अविद्या कुसंग दुष्टता ।

पुनः विद्या सत्संग सज्जनता इत्यादिकन को भी स्वरूप एकहीरस रहत सदा सतयुगमें ध्रुव प्रह्लादादिकनमें सज्जनता ताही भांति हिरण्यकशिप्वादिकनमें असज्जनता त्रेतामें विभीषणमें सज्जनता रावणमें असज्जनता द्वापरमें भीष्मादिकन में सज्जनता कंसादिकन में असज्जनता ताहीविधि कलियुग में रामानुजादि अनेक भक्तन में सज्जनता भक्तमाल में लिखी है अरु अवहूं है आगेहू बनीरहैगी अरु असज्जनता तौ प्रसिद्ध है कुछ कहिवे की आवश्यकता नहीं ।

पुनः सतयुग में प्रचेता के पुत्र वाल्मीकि कुसंग में परे व्याध भये पुन सुसंग में परि महामुनि भये त्रेता में कैकेयी पतिव्रता कुसंग में परि पतिप्राण लीन्हे शवरी नीच मतङ्गऋषि के संग ते भागवत भई इत्यादि कुसंग सुसंगको प्रभाव सदा एकरस है इति वचननते प्रमाण जानिये ॥ ६६ ॥

यथा—पद

रामसिया पदसेउ सदारै । आनभरोस आश तजिसारै ॥
तन शुचि आदि शुद्धमन दीजै । युगल मन्त्र जपि ध्यान करीजै ॥
कनकसदनमणि अवध मँझारै । कल्पवृक्ष वेदि का तहाँरै ?

जगमगरत्न सिंहासन आजै। अष्टकमलदल तामहि राजै॥
तापर लाललली सुखसारैं। देखिरूप सुधि देह बिसारैं २
अर्घ्य पाद्य अचमन मधुपर्कै। पुनि अचमन अभ्यांग सुकर्कै॥
शुद्धोदक स्नान सँभारैं। उपवी तरु शुचि वसन सँवारैं ३
तिलक मुकुटादिक भूषितकीजै। प्रतिअँग पुष्पांजलि पुनि दीजै॥
गन्ध पुष्प तुलसी दल धारैं। धूप दीप प्रभु ऊपरवारैं ४
विधि आसन अचमन करवावैं। मुख सुपोंछि तांबूल खवावैं॥
छत्र चमर व्यंजन उपचारैं। आरति राई लोन उतारैं ५
नीरांजन परिकर्मा दीजै। सेज सुमनमय रचि पुनि लीजै॥
जब प्रभु शैनशाल पग धारैं। ऋतु अनुकूल करैं उपचारैं ६
जागे मुख प्रक्षालिगन्धादी। सरससखवाय मिष्टमेवादी॥
चढ़ि अरवादि वाण धनुधारैं। क्रीड़ा पुर वन वाग विहारैं ७
सन्ध्या रति व्यारु करवावैं। बहुरि सुमनमय सेज डसावैं॥
शैनकराय आपु रहिद्वारैं। बैजनाथ तन मन धन वारैं ८

इति श्रीरसिकलताश्रितकल्पद्रुमसियवल्लभपदशरणागतवैजनाथ
विरचितायां सप्तसतिका भावप्रकाशिकायां कर्मसिद्धान्त
प्रकाशो नामपञ्चमप्रभा समाप्ता॥ ५॥

दो० रमत सवन मे जाहि मे, रमत सकल सो राम।
धाम रूप लीलाललित, सर्वोपरि ज्यहि नाम॥ १॥
शीतलता सीता सहित, नौमि राम रवि सोह।
उदित दिवस निशि नाश निशि, विषय सुजन तममोह॥२॥

या सर्ग मे ज्ञान सिद्धान्त है तहां आदि नित्य आनन्दस्वरूप आत्मा स्वइच्छा ते कारण माया को, नशा सरीखे ग्रहणकरि मतवार है आपनो स्वरूप भूलि विषयवासना वश जीव है देह धारण कीन्हों कार्य मायावश इन्द्रियनके सुखहेतु शुभाशुभ कर्म करि बद्ध

भयो तहां सत्, रज, तम ये तीनि गुण अरु शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ई पांच तन्मात्रा इति आठ आवरण आत्मा में हैगये तिनको भेदी आत्मस्वरूप को जानना ताको ज्ञान कहीं तामें चारि साधन प्रथम वैराग्य लोकनको सुख तुच्छकरि जानै दूसरा विवेक सार आत्माको ग्रहण देहादि असारको त्याग तीसरा षट्संपत्ति।

यथा-वासना त्याग सम है इन्द्रियन का विषय रोकना दमहै विषय में पीठिदेना उपराम है दुःख, सुख, शत्रु, तितिक्षा है गुरु वेदान्त वाक्य में विश्वास श्रद्धा है चित्त एकाग्र समाधान इति षट्संपत्ति है चतुर्थ मेरी मुक्ति निश्चय होगी यह मुमुक्षुतादि साधन करि ज्ञान को अधिकारी होत ता ज्ञानकरि आत्मरूप जानै कैसा है तीनिउ देहन ते भिन्न पञ्चकोश ते अतीत तीनि अवस्था को साक्षी सच्चिदानन्दस्वरूप सो आत्मा इति भूमिका समाप्ता ॥

दोहा

जल थल तन गत है सदा, ते तुलसी तिहुँकाल।
जन्म मरण समुझे बिना, भासत शमन बिशाल १

दो० सर्वयनीशा जा विवश, नरा मरा हामरेश।
सदा ज्ञान यम खण्डित, तं वन्दे भूजेश॥

अथ वार्त्तिक तहांई दोहा विषे समानलोक शिक्षात्मक उपदेश है जैसे राजादिकनको बालक आपनी रीति रहस्य त्यागि नीचन की संगति करि नीचकर्म करनलगो ताको कोऊ चतुर शिक्षा देइ कि तू आपनाको विचारु कि मैं कौन हौं अरु क्या कर्म करता हौं ऐसा विचारिये बुरे कर्म त्यागि आपनी पूर्व परिपाटीपर चलु तौ तौ राजा तोको आपने समान ऐश्वर्य देइगो अरु जो नीचही कर्मन में रत रहैगा तौ वही राजा तोको दण्डदाता होइगो न मालूम कौन

दशा करेगा ताही भांति राजा श्रीरघुनाथजी तिनको अंश पुत्रवत् आत्मा आपनी सहज स्वरूप त्यागि विषय संग में सवासनिक कर्मन में परो ता जीव प्रति गोसाईंजी कहत कि तैं कहे तेरा स्वरूप कैसा है कि अखण्ड सच्चिदानन्द अमल एकरस भूत भविष्यत् तीनिहू काल में सदा जल में अरु थल कहे भूम्यादिक सर्वत्र यावत् तनहैं तिनमें गत कहे प्राप्त है अथवा तनगत कहे देहरहित सब में तैं ही बसा है तेहि अविनाशी रूप को विना समुझे देह व्यवहार में भूला है तामें अनेक दुःख अर्थात् जन्म मरणादि विशाल कहे बड़ाभारी शमन कहे नाश सो तोको भासत कहे देखिपरत ताते विषय सुख वासना त्यागि आपने रूपको सँभारु तौ सदा तू आनन्दरूप है ॥ १ ॥

दोहा

तैं तुलसी कर्ता सदा, कारण शब्द न आन।
कारण संज्ञा सुख दुखद, बिन गुरु तेहि किमि जान २

कारण मायावश आत्मा जीव है देहधारण करि कार्य माया वश इन्द्रियन की विषय सुख हेतु शुभाशुभ कर्म करत सो वर्तमान है।

यथा—किसानी को कार सोई बहुरि संचित भयो।

यथा—घर में अनाज तामें ते जो दुःख सुख भोग हेतु देहके साथ आये सो प्रारब्ध है जैसे रसोई इत्यादि में भूले जीव सो गोसाईंजी कहत कि कर्मन को करनहार कर्ता तैंही है अर्थात् क्रियमाण संचित प्रारब्धादि को करनहार कोऊ दूसरा नहीं है निश्चय तुही है।

पुनः कारण शब्द भी दूसरा नहीं है काहेते कारण संज्ञा भी उसीकी है जो देहके सुखहेतु दुःखद कर्मनको मनोरथ है सोई कारण

है सोऊ जीवहीं के अधीन हैं काहेते जा फलकी चाह नहीं तौ वा टक्षके लगाइवे के उपाय के लग क्यों जाय।

प्रश्न—जो मेरे धाम में स्वाभाविक वृक्ष जामैं तौ क्या मैं उनको लगावता हौं।

उत्तर—जो तू आपने धाम में कहा तौ वृक्ष भी आपना मानि उसको रक्षादि करैगा तौ स्वाभाविक क्यों कहा जो मैं उसकी रक्षादि न करौं तौ तथा जगमें घने वृक्ष लगे तामें तेरा क्या भाव जो तू देहको आपनी मानै तौ वाके कर्म भी तेरे हैं जो तू देह को आपनी न मानै तौ कर्म भी वन्धन नहीं हैं।

यथा—देह में सूक्ष्म रोम के न भये की खुशी न अनभये को शोच ते सुख दु ख कुछ नहीं देत अरु शीश केशन ते शोभाकी चाह ताते जुआ लीख खजुहटादि दुःखद हैं इत्यादि समुझ जब सद्गुरु दया करैं तब पूर्वरूप लखावें तब जानि पावै विना गुरु कैसे कोऊ जानि पावै॥ २॥

दोहा

कारज रत कर्त्ता समुझु, दुख सुख भोगत सोय।
तुलसी श्रीगुरुदेव बिन, दुखप्रद दूरि न होय ३

कर्मन को करनहार सो कर्त्ता अर्थात् जीव सो आपनो पूर्व आत्मरूप भूलि विषयवश कारज जो कर्म तामें रत भयो अर्थात् इन्द्रिन के विषय सुख हेत शुभाशुभ कर्मन में आसक्त भयो ऐसा समुझु सोय कहे ताही ते दुःख सुख भोगत तहा सवासनिक यज्ञ, तीर्थ, व्रत, दानादि करि सुख भोगत सोऊ वन्धन है काहेते सुख भोगत अनेक अशुभ होत अरु पर अपवाद हानि हिंसादि करि दुःख भोगत ताते दोऊ वासनासहित दुःखद है सो वासना रहित जीव तब होय जब सद्गुरु कृपा करि पूर्वरूप लखावैं तब दुःखद

जो जीव की वासना सो दूरिहोइ अरु नाहीं तौ गोसाईंजी कहत कि बिना श्रीगुरुदेव की कृपा दुःखप्रद दुःख देनहार इन्द्रिय सुख की वासना सो दूरि नहीं होत नित्य नवीन बढ़त जात ॥ ३ ॥

दोहा

कारण शब्द स्वरूप में, संज्ञा गुण भव जान।
करता सुरगुरु ते सुखद, तुलसी अपर न आन ४
गन्धविभावरि नीररस, सलिल अनलगत ज्ञान।
वायुवेगकहँ विन लखे, बुधजन कहहिं प्रमान ५

अमल आत्मस्वरूप में जो कारण शब्द है अर्थात् आत्म में प्रकृति की चाह ताही ते रज सत् तमादि गुणन करि भव नाम उत्पत्ति देहादि धारण कीन्हो तब संज्ञा कहे सुर, नर, नागादि नाम भयो सोई सांचु मानि सवासनिक कर्मन में बँधो है सो कारण कार्य को कर्त्ता अर्थात् आत्मस्वरूप सो कैसा है सुरगुरु कहे देवादिकन में श्रेष्ठ है सब को सुखदाता तुही है गोसाईंजी कहत कि अपर कहे और कोऊ आन कहे दूसरा नहीं है ४ तीनि गुण पांच तत्त्व इन आठ आवरण में नवम आत्मा इति नव स्थान भये प्रथमात्मा तापै सतोगुण तापै रजोगुण तापै तमोगुण तापै आकाश तापै वायु तापै अग्नि ये छः आवरण अमल तामें आत्मा देखात।

यथा—हण्डी गिलासादि के मध्य दीप देखात इहांतक जीवको ज्ञान है तापै जल आवरण सो मैल है ताते आत्मप्रकाश को आच्छादन करत काहेते याको विषय है रस ता रसस्वाद में परि जीव विमुख है गयो।

पुनः तापै पृथिवी आवरण महामलिन है तामें परि आत्मप्रकाश लोप है गयो काहेते पृथिवी का विषय है गन्ध तामें परि जीव

विषयी है गयो ताते गन्ध विषय अरु रस विषय इनमें जवलग जीव आसक्त है तबलग पृथिवी और जल इन आवरण में ज्ञान नहीं याते विषयी विमुखन को ज्ञान सहायक नहीं है सो कहत कि गन्ध जो पृथिवी को सूक्ष्मरूप सो नासिका का विषय है सो विषयावरि कहे रात्री है तामें मोह अन्धकार है तहां महाअज्ञान है।

पुनः नीर जो जल ताको सूक्ष्मरूप रस है सो रसना का विषय है तेहि षट् रसस्वाद में परि जीव तनपोषक हरि विमुख भयो सोऊ अज्ञान है आगे ज्ञान है।

यथा—ये सुकृती जीव हैं सत्संगादि करि गन्धविषय रात्रि को त्यागे तब पृथिवी जल में लय भई।

पुनः अनेक सत्कर्म करि जल को सूक्ष्मरूप रस अर्थात् स्वाद को त्यागे तब सलिल जो जल सो अनल में प्राप्त भयो तब तिनके ज्ञान की सात्त्विकी श्रद्धा भई तब संयम, नियम, जप, तप, आचारादि शुद्ध कर्म करि लोक ते निवृत्त है मन स्वाधीन भयो परमारथ में विश्वास भयो तब रूप विषयको जीतै तब अग्नितत्त्व पवन में लय भयो तब ज्ञान भयो अर्थात् ज्ञानकी प्रथम भूमिका भई अब इहि के आगे वायुतत्त्व अरु वेग कहे शब्द अर्थात् आकाशत्वादि तीनों गुणादि अवहीं वाकी हैं तिनको विना लखे विना देखे न ज्ञान है चुका काहे ते प्रथम भूमिका ज्ञान पर टिका तौ क्रम २ सातौं भूमिका नांघि कवहूँ अन्त को प्राप्त होयगो ऐसा बुद्धिमान् कहते हैं ताको प्रमाण माना चाहिये॥ ५॥

दोहा

अनुस्वार अक्षर रहित, जानत है सब कोय।
कहतुलसी जहँलगि वरण, तासु रहित नहिं होय ६

आदिहु अन्तहु है सोई, तुलसी और न आन।
बिन देखे समुझे बिना, किमि कोइ करै प्रमान ७

श्रीराम ये जो द्वै वर्ण है तामें षट्अङ्ग हैं यथा रकार में रेफ रकार की अकार दीर्घ आकार मकार में अनुस्वार हलमकार अकार इनको विस्तार दूसरे सर्ग के चौबिस दोहाते उनतिस तकमें है याते इहां नहीं लिखा तहां मकार में जो बिन्दु है सो ब्रह्मरूप है रेफ परब्रह्म है सो अनुस्वार जो बिन्दु है सो अक्षरन ते रहितहै अर्थात् अक्षरन में नहीं गनेजात यह वर्णज्ञाता सबकोऊ जानत ताको गोसाईंजी कहत कि जहांलगि वर्ण ककारादि अक्षर हैं ते सब तासु कहे तेहि अनुस्वार रहित एकहू नहीं होत अर्थात् अक्षर शब्द उच्चार करत में अक्षरन के शीशपर स्वाभाविक अनुस्वार आयजात यथा तंकिंय अथवा अनुस्वार लागे वर्ण मन्त्रबीज होत तथा सब जानत कि आत्मा आकार रहित है परन्तु आत्मरहित कोऊ देह नहीं होत ६ जो आत्मा आदि में कारण मायावश आपनो रूप भूलि जीव है देह धारण कीन्हीं।

पुनः कार्य मायावश शुभाशुभ कर्मन में बद्ध भयो।

पुनः जब ज्ञान भक्ति आदि करि स्वरूप सँभारयो देहसुख विषयवासना त्यागि दीन्हे तब सोई आत्मा अन्तहूमें है सो गोसाईंजी कहत कि सिवाय एक आत्मा के अवर कोऊ आन दूसरा नहीं है ताको विना समुझे सारासार को विवेक विना भये अरु ज्ञानदृष्टि करि बिना देखे विषयी वा विमुख जीव कोऊ कैसे प्रमाणकरै॥ ७॥

दोहा

रहित बिन्दु सब वरणते, रेफसहित सब जान।

तुलसी स्वर संयोगते, होत बरण पद मान ८

विन्दु जो अनुस्वार सो सब वर्ण जो अक्षर तिन ते रहित है याकी गिनती अक्षरन में नहीं है काहेते अनुस्वार विसर्ग सूक्ष्मरूप ते वर्णको प्रकाश करते हैं आपु न्यारे रहत इसी भांति अगुण ब्रह्म अन्तरात्मा सब देहादिकन को प्रकाश करत अरु आप न्यारा है यथा हंडी गिलासादि को प्रकाशित करत दीप न्यारा है अरु रेफ स्वररहित व्यञ्जन रकार का रूप है तेहि सहित सब वर्ण हैं यथातक्राम्रादि सब वर्णन में स्वस्वरूपते युक्त होत जो रेफ ऊर्ध्व भी रहत सौ आगे के वर्णको स्पर्श किहे रहति पूर्ववर्ण पै रहत तथा परब्रह्मरूप श्रीरघुनाथजी क्षमा दयादि दिव्यगुण धारणकरि जगरक्षा हेत अवतीर्ण होत अरु जो विलग है तौ भी भक्तवत्सलता वश रक्षाहेत समीपही रहत यथा प्रह्लाद, अम्बरीष, गजादि को समीपही देखाने सो गोसाईंजी कहत कि ताहीभांति रेफस्वरनके संयोग ते अर्थात् आकारादिकन में मिलेते वर्ण पद होत यथा रेफ अकार में मिले रकार होत अरु पूर्वरूप को आभास नहीं जात यथा वर्त बरत बरात अरु अपर वर्ण में भी मिले वर्तमान देखात यथा प्रातक्रिया शक्र तक्राम्रादि अरु अनुस्वार भी स्वर पाइकै वर्ण पद होत 'स्वरेमः' अनुस्वार स्वरन में मिले मकार होत यथा तंअत्र तमत्र इत्यादि होत तौ है परंतु पूर्वरूप नहीं देखात सूक्ष्मरूप ते मकार के अन्तर्गत रहत अरु और भी वर्ण है जात यथा 'ञमायपेस्य वा' 'यवलपरे यवला वा' इत्यादि में अनुस्वार को सूक्ष्म ही रूप है स्थूल में नहीं देखात तथा देहन में अन्तरात्मा सूक्ष्मरूप ते न्यारा रहत ॥ ८ ॥

दोहा

अनुस्वार सूक्ष्म यथा, तथा बरण अस्थूल ।

जो सूक्षम अस्थूल सो, तुलसी कबहुँन भूल ६

या भांति अनुस्वार सूक्ष्मरूप ते सब वर्ण जो अक्षर ताके अन्तर्गत है ताही भांति सब वर्ण स्थूलरूप है ते सूक्ष्मही अनुस्वार करिकै प्रकाशित है ताही भांति देहादिकन में जो सूक्ष्मरूप अन्तरात्मा व्याप्त है सोई स्थूल शरीर को भी जानो अर्थात् सूक्ष्मही के प्रकाश ते स्थूल प्रकाशमान है ताते सारपद उसीको मान देहादिक व्यवहार में झूठा रचना है सो गोसाईंजी कहत कि लोकसुख में कबहूं न भूल कि यह सांचा है उसीकी सचाई है ॥ ६ ॥

दोहा

अनिलअनलपुनि सलिलरज, तनगततनवतहोय।
बहुरिसोरजगतजलअनल, मरुतसहितरविसोय १०

अब लोक उत्पत्तिको कारण कहत यथा सहज आनन्द सदा प्रकाशरूप अन्तरात्मा स्वइच्छित प्रकृतिवश भो ताते बुद्धि भई ताते अहंकार भयो ताते शब्द भयो अर्थात् आकाश इहांतक सूक्ष्मही है ताको छोंडि स्थूल देह को कारण कहत कि आकाश ते अनिल नाम पवन भयो ताते अनल नाम अग्नि भयो इहांतक ज्ञान रहत। पुनः अग्नि ते जल भयो ताके रस स्वाद में परि जीव विमुख भयो जलते रज नाम पृथिवी भई तब जीव विषयी है गयो अरु इन तत्त्वन के सूक्ष्मरूप जो है यथा पवन को स्पर्श अग्निको रूप जलको रस भूमि को गन्ध इत्यादि सूक्ष्मरूप सो तनमें गत अर्थात् व्याप्त है स्पर्शरूप रस गन्ध अरु स्थूलरूप तनवत् वर्त्तमान है अर्थात् स्वास पवनवत् है रूपता अग्निवत् है रुधिर आदि जलवत् है व अस्थि मासादि भूमिवत् है इत्यादि जा भांति भयो।

पुनः जब आपनो रूप सँभार्‌यो गन्धविषय जीत्यो तब रज जो

पृथिवी सो जल में गत नाम लय भई जब रसविषय जीत्यो तब जल अनल में लय भयो जब रूपविषय जीत्यो तब अग्नि पवन में लय भयो जब स्पर्श जीत्यो तब पवन आकाश में लय भयो इसी भांति जा क्रमते उत्पन्न भयो ताही क्रमते लय भयो तब सब विकार रहित रविसम प्रकाशरूप अमल आत्मा सेई रहिगयो झूठा व्यवहार सब नाश भयो ॥ १० ॥

दोहा

और भेद सिद्धान्त यह, निरखु सुमति करु सोय।
तुलसी सुतभव योगविन, पितु संज्ञा नहिं होय ११

इहां संदेह है कि आदि चैतन्य अन्तरात्मा सो काहेको प्रकृति आदि ग्रहण करि बद्ध है जीव कहाय हरिरूप सों भेद करो याको क्या हेतु है सो कहत कि ईश्वर अरु जीवको जो भेद है ताको और सिद्धान्त है ताको गोसाईंजी कहत कि सुत जो पुत्र ताको भव नाम उत्पन्न योग विना भाव विना पुत्र के प्रकट भये पितु संज्ञा नहीं होत सोई भांति यह जो ईश्वर जीव को भेद है ताके जानिवे हेत आपने उरमें सुमति करु तब या भेद को देखु तहां सुमति काको कही जहां एक मालिक की आज्ञा अनुकूल सब जन सुमारग चलैं ताको सुमति कही इहां जीव मालिक की आज्ञा मानि दशौं इन्द्रिय मन चित्त बुद्धि अहंकारादि सब एकमत है परमारथ पन्थ पर चलैं ऐसी सुमति उरमें करि तब अमलबुद्धि होइ तब ज्ञानदृष्टि ते विचार करि देखु।

यथा—लोकमें विना पुत्र पितापद नहीं होत ता हेत पुरुष स्त्रीन में रत होत सो पुरुष को वीर्य स्त्रीके उदर में जाय रजमें मिलि पुत्र भयो यद्यपि वह है पितैको अंश परन्तु पुत्र भये से पिता को सेवक

भयो ताही भांति परमपुरुष आदि प्रकृति में रत भयो तहां भगवद् को अंश बीजवत् चैतन्य है माया को अंश रजवत् जड है दोऊ मिलि जीवरूप पुत्र है भगवद् को सेवक भयो याही ते जीवको मुख्य धर्म हरिभक्ति है अरु ज्ञान मौढ़ता है ॥ ११ ॥

दोहा

संज्ञा कह तव गुण समुझ, सुनव शव्द परमान।
देखव रूप विशेष है, तुलसी वेप वखान १२

संज्ञा जो नाम हैं।

यथा—पिता पुत्र मातादि अर्थात् ब्रह्मजीव मायादि सो सव कहतव मात्र है अरु तिनमें गुण जो है प्रथम ब्रह्मके।

यथा—सहज सुख एकरस सदा प्रकाशमान हरप विषादरहित।

पुनः परब्रह्म श्रीरघुनाथजी के गुण यथा ऐश्वर्य वीर्य तेज प्रताप ज्ञान क्षमा दया उदार सौहृद भक्तवत्सलतादि अनेक दिव्य गुण हैं ते माया के प्रेरक जीव के स्वामी हैं।

पुनः माया के गुणन में भेद हैं प्रथम अविद्या के।

यथा—जीवको भुलाय भ्रमावत हैं विद्या।

यथा—जीवको बन्धन ते छुटावत संधिनी यथा जीव ब्रह्म की संधि मिलावत संदीपिनी यथा जीव के उरमें ब्रह्म को प्रकाश करत आह्लादिनी।

यथा—जीवके उरमें परब्रह्म को प्रकाश करत।

पुनः जीवके गुण—ज्ञान, अज्ञान, राग, द्वेप, हर्प, विषादादि सव समुझिवेमात्र हैं।

पुनः शब्द जो श्रवणेन्द्रियन की विषय सो सुनिवेमात्र है इत्यादिकन को प्रमाण कहे सव सांचु माने हैं अरु रूप जो नेत्रे-

न्द्रियनका विषय है सो विशेष करिकै देखनमात्र है अरु रूपविषे वेष जो है बनावट सो गोसाईंजी कहत कि बखान करिबेमात्र है इत्यादि सब विचार कीन्हेपर एक भगवत् सांचे हैं तिनकृत यह लीला नट कैसो तमाशा है एक भगवत् की सत्यताते यह सब सांचुसे देखात ताते सब वृथा एक ईश्वर सांचा है ॥ १२ ॥

दोहा

होत पिताते पुत्र जिमि, जानत को कहुनाहि।
जबलग सुत परसो नहीं, पितुपद लहै न ताहि १३

कौनभांति सब झूठा सांचु देखात जिमि पिताते पुत्रादि होत ताको कौन नहीं जानत कि पुत्र पितैको अंश है यामें दूसरा कौन है पितै पुत्र है दूसरा देखात तामें क्या प्रयोजन है ? सो कहत कि जबलग सुत कहे पुत्रपद को परसत कहे ग्रहण नहीं करत तबतक ताहि कहे ताको पितुपद लहै नाम प्राप्त नहीं होत ताते जब पुत्र भयो तब आपु पिता कहाय स्वामी भये अरु उसीको अंश पुत्र कहाय सेवक भयो सो वर्तमान सब पुत्र पिता सेवा करत वाकी आज्ञा करत अरु जे नहीं मानत ते अधर्मी कहावत अरु यमपुर में दण्ड पावत ताहीभांति ईश्वरपद ते जीवपद धारण कीन्हों तब आपु ईश्वर कहाय स्वामी भयो उसीको अंश जीव कहाय सेवक भयो भक्ति करि ईश्वर के समीप होत विमुख है चौरासी भोगत अरु विना जीव ईश्वरता कापै होइ याहीते जीव बनायो।

यथा--सून प्रजा बिन भूप वृथा है यमालय हीन महातमन तारन।
बद्ध बिना किमि मुक्त प्रशंस बिना तम होत प्रकाश पसारन ॥
दास बिना किमि स्वामि सजैरु दरिद्र बिना किमि भागिअगारन।
सोपि न शोभित जीव बिना परमेश्वर सृष्टिरच्यो यहि कारन ॥१३॥

दोहा

तिमि वरणन वरणन करै, संज्ञा वरण संयोग।
तुलसीहोय न वरणकर, जवलगि वरण वियोग १४

जाभांति पुत्र भये पितापद होत ताही भांति वर्ण जो अक्षर तिनको वर्णन करै अर्थात् एकलगा बहुवर्ण उच्चारण करै तिन वर्णन को अर्थात् अक्षरनको संयोग भयो दुइ चारि अक्षर एक में मिले तब संज्ञा कहे नाम भयो।

यथा—रकार अकार मकार तीनों के संयोगते राम भयो ताते गोसाईंजी कहत कि तिनही अक्षरन को जवलग वियोग है एक एक वर्ण विलग है तवलग वरु वर्ण बने रहिहैं कुछ वर्णको संज्ञा नहीं प्रकट होत ताही भांति अक्षरवत् एकही ब्रह्म बना सो संज्ञा रहित है जब प्रकृति को संयोग भयो तब ब्रह्मजीव माया इत्यादि संज्ञा भई यद्यपि शब्दन में विचारौ तौ जो संज्ञा कहावत सो वामें है नहीं परन्तु सब शब्दन को सांचु माने है अक्षरन को नहीं।

यथा—चन्दन, कर्पूर, केसर, सुगन्धादि को नाम लीन्हे सब प्रसन्न रहत अरु पूय, शोणित, मूत्र, विष्टादि को नाम लीन्हे सब के मनमें घृणा होत तहां विचारे पर अक्षरै है ताको कोऊ नहीं मानत उभ शब्दनको सांचु मानि हर्ष विषाद करत सोई जीवकी भूलहै ॥ १४ ॥

दोहा

तुलसी देखहु सकल कहँ, यहि विधि सुत आधीन।
पितुपदपरसि सुदृढ़भयो, कोउ कोउ परमप्रवीन १५

यथ.—सांचे अक्षरन को त्यागि झूंठे शब्दन को सब सांचु माने है यही विधिते सकल जग को देखो सब सुन कहे पुत्र पद

के अधीन है पिता पद कोऊ नहीं मानत (भाव) चराचर में भगवत्रूप व्याप्त है ताको कोऊ नहीं मानत सुर, नर, नाग, दुःख, सुखादि लौकिक व्यवहारही को सांचु मानें कर्मनकी वासना में बँधे सब चौरासी भोगत तेहि संसार समूह में ते कोऊ कोऊ अनेकन में एक कोऊ सद्गुरु की दयाते ये श्रीरामसनेह के पात्र हैं भगवत् तत्त्व जानवे में परमप्रवीण विज्ञानधाम तें पितुपद जो सब में व्याप्त भगवत् रूप ताको परखि (भाव) लोक व्यवहार खोटा है श्रीराम सनेह खरा है ऐसा जानि सुन्दरी प्रकारते भक्ति पथपर दृढ़ ह्वैकै आरूढ़भये (भाव) लोक सुखकी वासना त्यागि श्रीराम सनेह में मन लगाये ।

यथा—"त्यागत कर्म शुभाशुभदायक ।
भजत मोहिं सुर नर मुनि नायक" ॥

पुनः महारामायणे—

"अन्ये विहाय सकलं सदसच्चकार्यं श्रीरामपङ्कजपदं सततं स्मरन्ति"॥

ऐसे पुरुष कोऊ कोऊ हैं ।

यथा—महारामायणे

"मुग्धे शृणुष्व मनुजोऽपि सहस्रमध्ये
धर्मव्रती भवति सर्वसमानशीलः ।
तेष्वेव कोटिषु भवेद्विषये विरक्तः
सद्ज्ञानको भवति कोटि विरक्तमध्ये ॥ १ ॥
ज्ञानिषु कोटिषु नृजीवनकोपि मुक्तः
कश्चित् सहस्रनरजीवनमुक्तमध्ये ।
विज्ञानरूपविमलोप्यथ ब्रह्मलीन-
स्तेष्वेव कोटिषु सकृत्खलु रामभक्तः" ॥ १५ ॥

दोहा

जहँ देखो सुतपद सकल, भयो पितापद लोप ।

तुलसी सो जानै सोई, जासु अमौलिक चोप १६

सुत पद जो सुर, नर, नाग, मुनि, चराचर, स्वर्ग, नरक, दुःख, सुखादि सकल संसार को सांचु करि जहां देख्यो तहां सब को आदि कारण सबको प्रकाशक सबमें व्याप्त भगवत्रूप ऐसा जो पितापद सो लोप होत अर्थात् भगवत् सांचे है यह भूलि सब लोक रचना को सांचु मानि याही में भूले भरमत हैं सो गोसाईंजी कहत कि सो पितापद आदि भगवत्रूप ताको सांचु करि सोई कोऊ एक जानत जाके उरते सब जगकी वासना जातरही एक श्रीरघुनाथजी की चोप रही कैसी चोप अमौलिक जाको कुछ मोल नहीं जाके दीन्हें ते मिलै अर्थात् काहू उपायते चोप नहीं जब श्रीरघुनाथजीकी कृपा होय तब होत।

यथा—"तुम्हरी कृपा तुमहिं रघुनन्दन। जानहिं भक्त भक्ति उर चन्दन" ॥ सो चोप काको कही।

यथा—रजोगुणी नरनको दिव्य खटाई देखि जिह्वा चाहत है तैसेही भगवत्को रूप देखने को नेत्रन में चाह होय ताको चोप कही नहां प्रीति के अङ्गन में जो लाग है ताकी दृष्टि को चोप कहत।

यथा—

"प्रणय प्रेम आसक्ति पुनि, लगन लाग अनुराग।
नेहसहित सब प्रीति के, जानब अङ्ग विभाग १
मम तव तव मम प्रणय यह, सौम्य दृष्टि तेहि होइ।
प्रीति उमँग सोइ प्रेम है, विह्वल दृष्टी सोइ २
चित असक्त आसक्ति सोइ, यकटक दृष्टी ताहि।
बनी रहै सुधि लगन की, उत्कण्ठा दृग माहि ३
जाके रसमें लीनचित, चोपदृष्टि सोइलाग।
जासु प्रीति में दृग रँगे, मत्त दृष्टि अनुराग ४

मिलनि हँसनि बोलनि भली, ललित दृष्टि सों नेह।
प्रीति होय व्यवहार शुभ, दृष्टि अधीन सनेह ५॥"

तहां श्रीरघुनाथजी के रूपको रस जो शोभा तामें चोपसहित जाको चित्त लीन ह्वै रहा है तेई श्रीरघुनाथजी को नीकी भांति जानते हैं॥ १६॥

दोहा

ख्यातभुवन तिहुँलोक महँ, महाप्रबल अति सोइ।
जो कोइ तेहि पाछे करै, सो पर आगे होइ १७

भुवन जो पुत्र अर्थात् जीवन को प्रचार सुर, मुनि, नर, नाग, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्गादि ब्रह्माण्ड रचना को व्यापार सो स्वर्ग मृत्यु पातालादि तीन्हूं लोकन में ख्यात नाम प्रसिद्ध हैं सब जानते हैं। यथा—जन्म, मरण, सम्पत्ति, बिपत्ति, स्त्री, पुत्रादि परिवार, धन, धाम, राज्य, स्वर्ग, नरक, दुःख, सुख, पाप, पुण्यादि कर्मन के व्यापारादि को प्रचार है सोई अत्यन्त करिकै महाप्रबल कहे महाबलवान् है काहेते जो कोऊ कर्मन को पाछे करै सो कहे सोऊ पर है कै आगे होत (भाव) ये पाछे के संचित कर्म सो प्रारब्ध है विधि के लिखे अङ्क शीशपर है आगे वाको फल भोग मिलत जो अब होत ते फिरि आगे फल मिली अथवा लोक ते मुख फेरि पीठि दै पाछे करै अर्थात् घर त्यागि तीर्थादिकन में बैठे तिनको सो जो पूर्व त्यागि आये तिहिते ऊपर अर्थात् वाते अधिकी इहां आगे होइगो।

यथा—अनेक चेला खजाना मन्दिर हाथी घोड़ादि अनेक ऐश्वर्य बटोरे सो आपनी माने ताते काहूभांति छूटत नहीं प्रतिदिन वृद्धि होत॥ १७॥

दोहा

तुलसी होत नहीं कछुक, रहित सुवन व्यवहार।
ताहीते अग्रज भयो, सवविधि त्यहि परचार १८

सुवन कहे पुत्र अर्थात् जीव ताको व्यवहार मनादि की वासना शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि इन्द्रियन के विषय।

पुनः काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, अहंकार, राग, द्वेष, सुख, दुःख, पाप, पुण्यादि यावत् जीवके व्यवहार हैं तेहि करिकै रहित गोसाईजी कहत कि संसार में कुछ नहीं होत भाव लोक-रचना सब जीव के व्यवहार ही में है जैसे भगवत् ताको प्राप्त भये तौ देह धारण करि मिले मनुमहाराज को दर्शन दै।

पुनः पुत्र है श्रीरघुनाथजी प्राप्त भये और ध्रुव प्रह्लादादि परम-भागवत तेऊ देह धारण कीन्हे रहे भगवत् को प्राप्त भये।

पुनः नारद सनकादि आचार्य तेऊ देह धारण कीन्हे जीवन्मुक्त हैं ताही ते जीवको व्यवहार अग्रज कहे श्रेष्ठता पद पाये हैं तातें सब विधि लोक में तेही को प्रचार है सो ताको कोऊ कैसे झूंठ करि मानै याते सांचु देखात ॥ १८ ॥

दोहा

सुवन देखि भूले सकल, भय अति परमअधीन।
तुलसी ज्यहि समझाइये, सो मन करत मलीन १९
मानत सो सांचो हिये, सुनत सुनावत वादि।
तुलसीते समुझत नहीं, जोपद अमलअनादि २०

जो पूर्व कहे है सोई देखि सब जगसुख पुत्रपद अर्थात् जीव को व्यवहार देहादिकन में भूले हैं भाव सब संसारही को सांचु

माने हैं ताहीते अत्यन्त करिकै माया के परमअधीन भये भात्र लोकसुख की वासना में परे शुभाशुभकर्मन के वन्धनते बद्ध भव-सागरमें पीड़ित हैं तिनको गोसाईंजी कहत कि जेहिको समुझाइये कि संसार असार ताकी/वासना त्यागि सारांशपद भगवत्स्वरूप तामें मनलगाइवो सोई सांचो जीव को सुखद स्थान है अरु संसार असार में वृथा मन लगाये हौ यामें कुछ है नहीं ऐसा उपदेश करि जाको समुझाइये सोई आपना मन हमसों मन मलिन करत मन में उदासीनता लावत कि धन, धामादि, स्त्री, पुत्र, भोजन, वासनादि सर्वसुख ताको झूठा वतावत जो प्रसिद्ध सुखदायक अरु परलोक की वातको देखा है १९ तहां धन धामादि जो संसार को सुख है सोई हिये ते सांचो मानत है अरु परमार्थ पथ की जो वार्त्ता सो सद्ग्रन्थादिकन में सुनत अरु आप भी सवको सुनावत कि संसारसुख झूठही है एक भगवत् सनेह सांचा है इत्यादि कहव सुनव सव वादिही कहे झूठही है काहेते गोसाईंजी कहत कि जामें विकारादि कुछ मैल नहीं ऐसा अमल अरु जाकी कोऊ आदि नहीं जानत ऐसा अनादि पद जो परब्रह्म श्रीरघुनाथजी तिनको सव लोग समुझते नहीं तौ कैसे चैतन्यता आवै सव लोकव्यवहार सांचु माने ताही में परे हैं ॥ २० ॥

दोहा

जाहि कहतहैं सकल सो, जेहि कहतव सों ऐन।
तुलसी ताहि समुझि हिये, अजहुँ करहु चितचैन २१

जाहि कहे जिन श्रीरघुनाथको महत्त्व वेदसंहिता पुराणादिकन में देव, मुनि, शेष, शारदादि, निजमति अनुसार सकल कहते हैं थाह कोऊ नहीं पावत वेदादि यश गाइ।

पुनः नेति नेति करत जेहि वेदादि के कहतव सों ऐस कहे सब निश्चय करत कि यह श्रीरघुनाथजी परात्पर परब्रह्मरूप हैं।

यथा—

"जासु अंशते उपजहिं नाना। शम्भु विरञ्चि विष्णु भगवाना॥

(बृहन्नारदे)

"को महामोहभूतादिसृष्टिस्थितिध्वंसहेतुर्महाविष्णुरास्ते।
रामस्तुतद्धीतपदाम्बुजातः परःकारणात्कार्यतोऽसौ परात्मा"॥

(वशिष्ठसंहितायाम्)

"परान्नारायणाच्चैव कृष्णात्परतरादपि।
यो वै परतमः श्रीमान् रामोदाशरथिस्स्वराट्"॥

(वाल्मीकीये)

"परं ब्रह्म परं तत्त्वं परं ज्ञानं परं तपः।
परं बीजं परं क्षेत्रं परं कारणकारणम्"॥

(पुनः श्रुतिः)

"सश्रीरामः सविदारी सर्वेपामीश्वरोयमेवेशो दृश्यते सपुमानस्तु यमेवदस्माद्भूर्भुवःस्व त्रिगुणमयो वभूव इति यं नरहरिः स्तौति यं गन्धमादनः स्तौति यं यज्ञतनुः स्तौति यं महाविष्णुः स्तौति यं विष्णुः स्तौति यं महाशंभुः स्तौति यं द्वैतं मण्डलं तपति यत्पुरुषं दक्षिणस्थं मण्डलो वै मण्डलाच्यः मण्डलस्यामिति सामवेदे तैत्तिरीयशाखायाम्"॥

ऐसा परात्पररूप श्रीरघुनाथजीको है ताहि समुझि हिये में निश्चय शरणागति धारणकरि सब आश भरोसा त्यागिदेव ताको गोसाईंजी कहत कि प्रभुकी कृपाते अजहूँ चित्तसों चैन आनन्द करौ फिरि कोऊ बाधक नहीं है॥ २१॥

दोहा

तुलसी जोहै सो नहीं, कहत आन सब कोय।
यहिबिधि परम बिडम्बना, कहहु न काकहँ होय २२

गोसाईंजी कहत कि सबको आदि कारण सबको प्रेरक अनेकन ब्रह्माएडन को स्वामी जो श्रीरघुनाथजी हैं सो श्रीरघुनाथजी को कोऊ नहीं जानत सब कोऊ आन कहे औरही को सर्वोपरि स्वामी करि कहत ॥

यथा—शैव शिवको परात्पर कहत शाक्त देवी को कहत सौर सूर्यन को कहत गणपति गणेशको कहत इसीभांति अनेकन को कहत यहि विधिते सब बीचही में आदि स्वामी बनाये हैं तौ कहौ बिडम्बना कहे अपमान सो परम अपमान काको न होइ।

यथा—हिरण्यकशिपु, रावण, वाणासुर।

पुनः परशुराम तपस्या को बल राखे वालि इन्द्र के वरदान को बल ये सब की पराजय भई इत्यादि ॥ २२ ॥

दोहा

गुरुकरिबो सिद्धान्त यह, होय यथारथ बोध।
अनुचित उचित लखाय उर, तुलसी मिटै बिरोध २३
सतसङ्गति को फल यही, संशय लहै न लेश।
ह्वै अस्थिर शुचि सरलचित, पावै पुनि न कलेश २४

गुरु करिबो गुरु को उपदेश सुनि ताही मार्ग पर चलिबो ताको यह सिद्धान्त है कि यथार्थ बोध होइ अर्थात् असार जानि त्यागै सार जानि ग्रहण करै।

यथा—कांच अरु मणिन की सूरति एक अरु एक में मिली

तिनको साधारण कोऊ कैसे जानि पावै जब जवहिरी गुरु बतावै तब यथार्थ बोध होइ कि यह कांच की है: एक पैसा की है यह सांची मणि लाखन की है जब यथार्थ बोध भयो तब अनुचित अरु उचित लखाय कहे देखि परत अर्थात् लोक सुखमें मन लगावना अनुचित है काहे ते यामें परे भवसागर को जाना है अरु हरि शरणागति उचित है काहे ते यामें जीव को कल्याण है तब ऐसा समुझै ताको गोसाईंजी कहत कि जब भगवत् सनेह भयो सब में व्याप्त हरिरूप जानि सब में समता आई तब जीवन में विरोध आपही मिटि जायगो ॥ २३ ॥

सत्संग सन्तजन की संगति में रहे को यही फल है कि संशय जो पदार्थ में निश्चय नहीं कि यह सांची है अथवा झूठी इत्यादि संशय को लेशहु न लहै भाव थोरिहु संशय न मन में आवै अर्थात् जो संशय आवत ताको तुरत ही साधुजन मिटाय देते हैं सत्संग के प्रभाव ते हरिरूप में प्रीति भई ताके प्रभाव ते उर की चञ्चलता नाश भई तब अभिमान मन में लय भयो मन में थिरता आई मन स्थिर ह्वै चित्त में लय भयो तब चित्त में सरलता आई चराचर में हरि व्याप्त मानि समता भई चित्त सरल ह्वै बुद्धि में लय भयो विकार नाश भये ते बुद्धि शुचि कहे पावन ह्वै हरिरूप में लगी जन्म मरणादि क्लेश नाश भयो।

पुनः क्लेश नाहीं पावत विषय सुख में नहीं परत तौ क्लेश काहे को होवै ताते सदा आनन्द रहत ॥ २४ ॥

दोहा

जो मरवो पद सवनको, जहँ लगि साधु असाधु।
कवन हेतु उपदेश गुरु सतसंगनि भवबाध २५

अब विषयी जीवनकी कुमति की कहनूबि कहत कि कुमति वशते ऐसा कहत कि जो मरणपद कहे मृत्यु जो साधुजन अरु असाधुजन सबनको एकदिन मरिजाना है तौ साधुन में श्रेष्ठता कौन भई जो लोकसुख त्यागि वनमें संकट सहैं चराचर यावत् जीव साधु असाधु जहा लगि जगमें हैं एकदिन सबै मरिजाइँगे तौ साधु है का बनाइ लीन्हे कुछ नहीं जैसे साधु तैसे असाधु तो गुरुको उपदेश कौन हेतु है का श्रेष्ठता है गुरु कीन्हे और तकलीफ भले उठावत। पुनः कवन हेतु ते सत्संग भाव वाधक है जे सत्संग करत तिनमें कौन वात अधिकी है कुछ नहीं तकलीफै इनहूं को अधिकी दोऊ दुःख सुख पावत एक दिन दोऊ मरिजाइँगे तौ सत्संगकरि का अधिकी भयो ॥ २५ ॥

दोहा

जो भावी कछु है नहीं, झूठो गुरु सतसंग।
ऐसि कुमति ते झूठगुरु, सन्तन को परसंग २६

पुनः जो वाकी भाग्य में होई तौ गुरुमुखौ अरु सत्संगौ किहे होइ ऐसनौ होइजाई अरु जो भावी कहे भाग्य में कुछ है नहीं तौ गुरु करना सत्संग करना सब झूठा है विना भाग्य कुछ न होइ देखो एक गुरु के सैकरन चेला होत जिहिकी भाग्य में होत सो महात्मा होत जाकी भाग्य में नहीं ते विषयिन ते ज्यादा है जात काहेते विषयी वेद आज्ञा में भोगकरत साधुन को भोग वेदवाह्य है ऐसी ऐसी कुमति की घातै करि करि गुरुमुख होना अरु सन्तन को 'परसंग कहे सत्संग ताको दुष्ट झूठ करिदेते हैं यही विमुखता है काहेते ये सब वचन लोक व वेदरीति ते वाह्य हैं जो भाग्यको प्रधान करत सो भाग्य तौ पूर्व कर्मन को फल है जैसा आगे करो है ताही को फल

भाग्य है याते क्रियमाण श्रेष्ठ हैं जो क्रियमाण श्रेष्ठ तौ गुरुमुख होना सत्संग करना उचित है काहे ते चारिउयुग में गुरु सत्संग विना कोई जीव सुधरा नहीं अरु जो दुःख सुख सबको होत तहां विषयिन को दुःख परत तामें पचि मरत सत्संगी दुःख सुख सम जानत ताते सदा आनन्द रहत अरु दुष्ट मरत ते घोरगति को जात सत्संगी आनन्दपद को जात सो वेद पुराण में प्रमाण पुनः लोक में प्रशंसा होत ऐसा समुझि दुष्टन के वचन व्यर्थ हैं ॥ २६ ॥

दोहा

जो लगि लखि नाहीं परत, तुलसी परपद आय।
तौलगि मोह विवश सकल, कहत पुत्र को बाप २७

परपद कहे ऊँचापद

यथा—शिष्यते पर गुरुपद पुत्रते परपद पिता इत्यादि गोसाईंजी कहत कि जबलगे जाको आप कहे अपना को परपद कहे ऊँचापद परब्रह्मरूप लखि कहे देखि नहीं परत जीवको व्यवहार देहादिकन को सांचु माने देवादिकन को ईश माने सवासनिक कर्म करत ताके फल में बँधे चौरासी भोगत संसारही को सांचु माने ते विषयवश ते परपद जो भगवद्रूप ताको नहीं जानत अथवा आप कहे आपनी आत्मरूप अरु परपद कहे परमात्मरूप श्रीरघुनाथजी तिनको यथार्थरूप जबलगि लखि नहीं परत अर्थात् ज्ञान भये आपनो रूप लखात भक्ति भये भगवद्रूप लखात सो जबलगि ज्ञान भक्ति नहीं होत तबलगि सब जग विशेष मोह के वशते पुत्रही को पिता कहते हैं भाव जीव की व्यवहार लोकही सुख को सांचु मानत भगवद्रूप जानतही नहीं कि सब के आदि कारण हैं ताकी लीलामात्र में संसार है ॥ २७॥

दोहा

जहँलागि संज्ञाबरण भव, जासु . कहेते होय ।
तें तुलसी सोहै सबल, आन कहा कहु होय २८
अपने नैनन देखि जे, चलहिं सुमति बरलोग ।
तिनहिं न बिपतिबिषादरुज, तुलसीसुमति सुयोग २९

वर्ण जो हैं अक्षर ककरादि तिनको संयोग भये अर्थात् दुइ तीनि वर्ण एक में मिलाइ वर्णन किहे ते संज्ञा जो नाम व शब्द जहांतक भव कहे होत है ।

यथा—हकार रकार को योगभये हर संज्ञा भई हर शिवजी को नाम है इत्यादि अक्षरन ते नाम जासु के कहेते होइ अर्थात् जाके कहेते वर्णते नाम होत भाव कर्त्ता जीव सो गोसाईंजी कहत जीव सों कि तेरे कीन्हे वर्ण ते संज्ञा होत ताते सबल कर्त्ता सोई तैहै दूसरा कोऊ नहीं है भाव वर्णवत् आत्मशून्य है जीवको मनोरथ संयोगवश ते अनेकन संज्ञा अर्थात् देहैं धारण करत ताते कर्त्ता तुही है दूसरा कोऊ नहीं है अरु जो आन कोऊ होय ताको कहु कहां है जो कहो जीव ईश्वराधीन है तौ ईश्वर की दयादृष्टि एकरस जीवमात्र पर है ताते जैसा जीव करत तैसा भोग्य पावत २८ याही ते जीव कर्त्ता है कि ये बर कहे श्रेष्ठ लोग हैं ते इन्द्रिन की विषय वासना त्यागि सुमति कहे अमल बुद्धि करिकै विचाररूप आपने नैनन ते देखि दुःखद त्यागि सुखद मार्ग में चलहिं तेहि सुमति के सुयोगते तिनहिं तिन जनन को न काहू भांति की विपत्ति होइ न मन में विषाद होइ न रुज कहे रोग होइ ।

यथा—दशरथ महाराज विना विचारे वर दीन्हे तिनकी विपत्ति प्रसिद्ध है ।

पुनः विना विचारे कैकेयी जी हठ कीन्हे तिनको जन्म भरि विषाद रहा तथा विषम वस्तु खानेते रोग होत अरु विषय चाहते भवरोग होत ताते जो विचार सहित काम करत ताको बाधा एकहू नहीं होत ॥ २९ ॥

दोहा

मृगा गगनचर ज्ञान बिन, करत नहीं पहिंचान ।
परवश शठहठ तजतसुख, तुलसी फिरत भुलान ३०

अब अज्ञानता को लौकिक दृष्टांत देखावत कि देखो मृगा जे पशुमात्र यावत् हैं अरु गगनचर पक्षीमात्र यावत् हैं इत्यादि विना ज्ञान अपना को पहिंचान नहीं करि सकत ते सब अज्ञानता ते शठ कहे मूर्ख परवश परे हैं अर्थात् उसीको अपनो स्वामी मानते हैं तिनको गोसाईंजी कहत कि वे हठ करिकै सुख तजत अज्ञान में भुलाने दुःखित फिरत हैं ।

यथा—हाथी, ऊंट, बाजी, रासभ, वृषभादि सब भार वहत में महादुःख सहत कपिऋक्षादि अनेक नाच कला देखावत इत्यादि अनेकन पशु परवश परे दुःख सहत ।

पुनः पक्षी शुकसारिकादि पिंजरन में परे वाणी पढत तीतर, वटेर, बुलबुलादि युद्ध करत बाज शिकार करत चयादि अनेक कर्तव्यता करत इसी भांति मनुष्य अज्ञानवश आपुको नहीं जानत विषय वश अनेक दुःख सहत ॥ ३० ॥

दोहा

काह कहौं तेहि तोहिं को, ज्यहिं उपदेशेउ तात ।
तुलसी कहत सो दुखसहत, समुझरहितहितबात ३१

बिन काटे तरुवर यथा, मिटै कवन बिधि छाहँ।
त्यों तुलसी उपदेश बिन, निस्संशय कोउ नाहँ ३२

अब उपदेशकर्ता अरु उपदेशश्रोता दोऊ को खीझत तहाँ साधु स्वभावते गोसाईंजी कहत कि हे तात! तेहि उपदेशकर्ता को काह कहौं ज्यहिं तोको उपदेशेव।

भाव—तोहिं ऐसे मूर्खको उपदेश दीन्हेउ जिहिको आपनो हित अहित नहीं समुझि परत तिनते हितकी बात कहत सो तू सुनतही नहीं तौ अश्रद्धावाले को उपदेश करना यह भी शास्त्र में अपराध है ताते नहक को उपदेश करत।

पुनः तोको काह कहिये कि विषयवश परा अनेक दुःख सहत ताहूपर ऐसा समुझ रहित है कि जो कोऊ हित की बात कहत ताको सुनतही नहीं याहीते दुःखमों परा है ३१ जो कोऊ कहै कि फिरि उपदेश काहेको करतेहौ तापै कहत कि जे जानत हैं अरु आपने अभिमान ते नहीं सुनत।

यथा—पाखण्डी तिनको न उपदेश करै अरु जे जानतही नहीं तिनको उपदेशकरै काहेते।

यथा—तरुवर कहे भारीवृक्ष जवतक लागहै ताकी छाहँ कोऊ मिटावा चाहै सो विना वृक्ष काटे छाँह कौन विधि ते मिटै अर्थात् नहीं मिटिसकत जब वृक्ष कटै तब छाहँ आपुही मिटिजाइ त्यों कहे ताहीभांति गोसाईंजी कहत कि विना उपदेशके दीन्हे निस्संशय कहे संशय रहित कोऊ नहीं है सकत।

भाव—जब लग अज्ञानरूप भारी वृक्ष लाग है ताहीकी छाहँरूप अनेक संशय हैं सो कैसे मिटै जब उपदेश सुने ताते ज्ञानभयो तब आपनो रूप चीन्हे तब अज्ञान नाशभयो तब संशय आपही मिटि

गई ताते साधारण जीवन को उपदेश देना योग्य है अरु उनको सुनना भी योग्य है ॥ ३२ ॥

दोहा

अपनो करतब आपुलखि, सुनि गुनि आपु विचार।
तौ तोहिं कहँ दुखदा कहा, सुखदा सुमति अधार ३३

यामें समान लोक शिक्षात्मक जीवमात्र पै उपदेश है- ताको कहत कि सन्तन को उपदेश यही है कि अापनो करतब अर्थात् आपने कीन्हें शुभाशुभ कर्म तिनको जब करने को मनोरथ उठै तब पहिले ही आपु आपने मनते विचारि कै लखि कहे देखिलेउ कि शुभ है व अशुभ है तब वेद पुराण प्रमाण वचन सन्तन ते सुनिलेउ कि शुभको फल का है सुख तामें सवासनिक को का है देवलोकादि भोग सुख निर्वासनिक को का है भगवत्पद सुख अशुभ को फल का है लोकहू परलोक में दुःख इत्यादि सुनि।

पुनः गुनिकै आपु आपने मन में विचार करो कि अशुभ तौ सर्वथा त्यागिवे योग्य है शुभ में वासना त्यागि शुभकर्मकरि भगवत् को अर्पण करना यही ग्रहण करिवे योग्य जानि ग्रहण करौ ऐसी सुखदा कहे सुख देनेहारी सुमति के आधार चलौ तौ तोहिंकहँ दुःखदा दुःखदेनहार कोऊ कहां है लोक परलोक में सदा सुखै है दुःख कहूं नहीं है ॥ ३३ ॥

दोहा

ब्राह्मण वर विद्या विनय, सुरति विवेक निधान।
पथरति अनय अतीत मति, सहित दया श्रुतिमान ३४

अब चारिउ वर्णों के कर्म वर्णन करत तहां प्रथम ब्राह्मण कर्म। यथा–विद्याकहे शास्त्र के अर्थ में बोध अर्थात् ज्ञान होइ।

पुनः विनय कहे सरल स्वभाव होइ अर्थात् आर्जव ।

पुनः सुरति विवेकनिधान होइ अर्थात् विज्ञानमय अनुभवी होइ ।

पुनः पथ कहे सुमार्ग रति होइ अर्थात् तपस्यावान् ।

पुनः इन्द्रिन के विषयआदि में रतहोना ताको अनय नाम अनीति कही तेहिते मन खैंचना ताको दम कही सो अनयते अतीत कहे वासना त्याग करै ताको शम कही ।

पुनः मति कहे शुद्ध बुद्धि अर्थात् शौच ।

पुनः दयासहित अर्थात् शान्तस्वभाव रहै ।

पुनः श्रुतिमान् कहे वेदवचन को प्रमाण करै अर्थात् परलोक सत्य जानै याको आस्तिक्य कही इत्यादि सब कर्म स्वाभाविक जा ब्राह्मण में होइँ सो ब्राह्मण वर कहे श्रेष्ठ है ।

यथा—गीतायाम्

"शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्" ॥

इत्यादि ब्राह्मण के कर्म हैं ॥ ३४ ॥

दोहा

बिनयछत्र शिर जासुके प्रतिपद पर उपकार ।
तुलसी सो क्षत्री सही, रहित सकल व्यभिचार ३५

अब क्षत्रियके कर्म यथा विशेषनय ताको कही विनय अर्थात् नीति तामें द्वैभेद स्वाभाविक रक्षा अरु चौरादि आततायिन को दण्ड तहां रक्षाहेतु तेज चाहिये सो प्रागल्भता अर्थात् ढिठाई करि सबको हटकें रहै जामें काहू को कोऊ सतावै न ।

पुनः दण्डहेतु शौर्य चाहिये अर्थात् पराक्रम करि आततायिन को दण्ड देवै इत्यादि नीति को छत्र जाके शीशपर हो अर्थात् सदा नीति धारण राखै अर्थात् धैर्यवान् रहै याको धृति कही ।

पुनः प्रतिपग कहे पगपग पर परार उपकार कहे परस्वार्थ हेतु मनमें हर्ष अर्थात् उदार दानी बनारहे।

पुनः ब्राह्मण जीविका हरण साधुन को सतावन असत्य वचन वैश्या परस्त्रीगमनादि सकल प्रकार के व्यभिचारनते रहित होइ अर्थात् जो नियम धारणकरै ताके निवाहवे की शक्ति ताको ईश्वर भाव कही इत्यादिकर्म स्वाभाविक जा क्षत्रिय में होई ताको गोसाईजी कहत कि वह सही कहे सांचा क्षत्रिय है भाव युद्ध में अचल अरु दक्ष है। इति क्षत्रियकर्म।

यथा—गीतायाम्

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रकर्म स्वभावजम्॥ ३५॥

दोहा

वैश्य विनय मग पग धरै, हरै कटुक बरबैन।
सदय सदा शुचिसरलता, हीय अचल सुखऐन ३६
शूद्र क्षुद्र पथ परिहरै, हृदय विप्र पद मान।
तुलसी मनसम तासुमति, सकलजीवसमजान ३७

वैश्यवर्ण के कर्म

यथा—विनय कहे विशेष नय जो नीति ताही मगमें पग धरै अर्थात् असत्य अपावनता निर्दयता लोलुपतादि अधर्म अरु परद्रोह परदाररत होना परधन, लोभ, पर अपवाद, चोरी इत्यादि अनीति मग त्यागि सुन्दर धर्म नीतिमार्ग में चलै जो वेदकी आज्ञा है।

पुनः कटुक कहे जो सुनत में कटु लागै ऐसे वचन परिहरै कहे त्यागि देवै।

पुनः कैसे वचन बोलै जो सुनि सबको मीठे लगैं ऐसा विचारिकै सांची कहे ऐसे वर श्रेष्ठ बैन बोलै ।

पुनः सदय कहे सहित दया सदा रहै अर्थात् काहू को दुःखित देखै ताको निर्हेतु निवारण करै ऐसा स्वभाव सदा बनारहै ।

पुनः शुचि कहे बाहर भीतरसे पवित्र रहै सरलता कहे ईर्षा, द्वेष त्यागि सहज स्वभाव सबसों प्रीति राखै यहि रीतिते रहै ताको हीय उर अन्तर अचल सुखको ऐन कहे स्थान कहे उर में सदा आनन्दै रहै शोक कबहूं न आवै ॥ ३६ ॥

शूद्रवर्ण के कर्म

यथा—क्षुद्र पथ कहे नीचा स्वभाव अर्थात् थोरी द्रव्यादि पाइ मनमें मद आवत सो शूद्रन के स्वभाव को मसला लोक में विदित है कि "गगरीदाना शूद्र उताना" ।

यथा—"क्षुद्र नदी भरि चलि उतराई ।
जस थोरे धन खल बौराई" ॥

इत्यादि क्षुद्र पथ परिहरै भाव नीचा स्वभावको शूद्र त्याग करै सूधा स्वभाव राखै अरु विप्रनके पदनको पूज्य मानि सेवा करिवे को हृदय में श्रद्धा राखै ।

पुनः विषमता त्यागि मनमें समता कहे सबको एकसम जानै ।

पुनः गोसाईंजी कहत कि कुमति त्यागि सुमति कहे सुन्दरी बुद्धि ते सबसों मिला रहै सकल जीवनको सम जानै काहू सों विरोध न करै इत्यादि कर्म करै सो शूद्र श्रेष्ठ है ॥ ३७ ॥

दोहा

हेतु बरनवर शुचिरहनि रस निराश सुखसार ।
चाहन काम सुरा नरस, तुलसी सुदृढ़ विचार ३८

सब वर्णके श्रेष्ठ ताको हेतु कहत कि शुचि रहनि वर्ण के वर होने को हेतु कहे कारण है भाव पवित्र स्वभावते रहना कौनो वर्ण, होइ सो श्रेष्ठ है।

पुनः सुखका हेतु कहत कि इंद्रिनकी जो स्वाद विषयादि जो रस हैं ताको आशा त्यागि निराश ह्वै रहना यही सुखसार को हेतु है अर्थात् विषयते निराश भये स्वस्वरूपकी पहिचान ज्ञान सोई सुख होत ताको सार पराभक्तिकी प्राप्ति होत सो निराशा कौनभांतिते होइ सो कहत कि चाहना काहू वस्तु की न करै लोभ-रहित होइ।

पुनः काम जो स्त्री आदिकन सों प्रीति व काहूभांति की कामना मन में न आवै।

पुनः सुरा कहे मदिरा अर्थात् तन धन विद्यादि को मद न होने पावै सदा अमान रहै।

पुनः क्रोध निवारणकरि नरम कहे शान्तचित्त रहै गोसाईंजी कहत कि इत्यादि विचार दृढ राखै कबहूँ खण्डित न होइ सोई निराशा भक्ति को हेतु भक्तिभये सब वर्ण श्रेष्ठ हैं॥ ३८॥

दोहा

यथालाभ सन्तोषरत, गृह मग वन सम रीत।
ते तुलसी सुखमें सदा, जिन तनु विभव विनीत॥ ३९॥

अब परमार्थपथगामिन की रीति कहत कि यथा लाभ तथा संतोष जो कुछ साधारण मिलिजाइ ताही में संतोष राखै लोभ न बढावै गृहमें मगमें वनमें सम कहे बराबरिही रीति है।

भाव—गृह कहे गृहस्थाश्रम में रहै जो जीविका वृत्ति करै सो देहहीसों सब कार्यकरै मन भगवत् में राखै जीविका वृत्ति ते जो लाभ होइ ताही में संतोष करै मग कहे ब्रह्मचर्य अथवा वानप्रस्थ में रहै

तहां भिक्षादि में श्रद्धासहित जो कोऊ देइ सो लेइ ताहीमें संतोष करै वनमें अर्थात् त्यागी है वनमें रहै तहां प्रारब्धवश जो कुछ आइ जाइ ताही में संतोषकरै ताते सर्वत्र यथालाभ तथा संतोष में रत रहै ।

पुनः जिन्हके तन में विनय कहे विशेष नीतिही को विभव है । यथा—शान्ति, समता, सुशीलता, क्षमा, दया, कोमल, अमल, बुद्धि, ज्ञान, विज्ञानादि ऐश्वर्य जाके तन मन मे परिपूर्ण है तिनको गोसाईजी कहत कि वे जन सदा सुखै में हैं उनको दुःख कवहूं नहीं ॥ ३९ ॥

दोहा

रहै जहां विचरै तहां, कमी कहूं कुछ नाहिं ।
तुलसी तहँ आनंद सँग, जात यथा सँग छाहिं ४०
करत कर्म ज्यहिको सदा, सो मन दुख दातार ।
तुलसी जो समुझै मनहिं, तौ तेहि तजै विचार ४१

काहेते उनको दुःख कहूं नहीं है कि जहां स्थिर रहै वा पृथ्वी में जहा विचरै तहां सर्वत्र कहीं कुछ कमी नहीं है काहेते जहा जात तहां आनन्द उनके संगही जात कौनभाति यथा छाहीं देह के संगही जात तहां सूर्यन के सम्मुख चलौ छाहीं पीछे लागि चली आवत अरु जब सूर्यन को पीठिदै छाहींकी दिशि मुखकरि चलौ तौ आगे भागी चली जात इहां सूर्य श्रीरघुनाथजी के सम्मुख होतही आनन्द पाछे लागत अरु प्रभुको पीठिदै लोक सुख की दिशि मन करौ तौ आगे भागि चलीजात भाव आशा लागि कि अब सुख मिलै अरु मिलै कबहूं न आशा में जन्म पारहोई याते आशा त्यागि हरि सम्मुख होना सुखकी मूल है ४० जीवको उप-

देश करत कि ज्यहिमन को हित मानि ताके मनोरथ अनुकूल जो सदा शुभाशुभकर्म करतहौ ताहीको फल दुःख सुखै भोगतहौ सोई मन तोको दुःखदातार कहे दुःख देनहार है, ताते याको हितकार करिकै न मानु अनहितकरि मानु तापै गोसाईंजी कहत कि जो तू मनहि अनहित करिकै समुझै कि यही हमको दुःख की राहको लैजातहै तौ विचार करिकै जानिले कि कौन राह है दुःखद कौन सुखद है जो दुःखद राह जानेको कहै तौ तेहि मन को तजै भाव मनको कहा न करै काहेते याकी चाह सदा विषय भोगही में रहत सोई तोको दुःखद है ताते विषयको मनोरथ उठै ताको रोंकि वरवस भगवत् सनेह में लगाव तौ तेरो कल्याण है नाहीं तौ मन तोको दुःखै ढंग बाँधैगो॥ ४१॥

दोहा

कहतसुनतसमुझतलखत, तेहिते विपति न जाय।
तुलसी सबते बिलगहै, जब तैं नहिं ठहराय ४२

लोकसुखकी चाहहेतु जो मनको मनोरथ है तामें लागेते जीव को विपत्ति होत है यह लोक वेदमें विदित है ताको आपहू कहत अरु औरनहूते सुनत है ताको समुझत अरु देखतौ है कि विषय आशमें परे संसार में सब जीवन को महादुःख है परन्तु मनही के कहे विषय में पराहै ताहीते विपत्ति नहीं जाय है अर्थात् विपत्ति ही में पराहै सो जीवसों गोसाईंजी कहत कि यह तेरिही भूल है, काहेते जो आपनो रूप सँभारिकै देखै अर्थात् विवेक करि विचारै तौ देह इन्द्रिय मनआदि सबते तू बिलग है कब, ताको कहत कि, देह इन्द्रिनका जो विषय।

यथा—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि मन आदि के जो विकार

यथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, अहंकारादि इनके संग में जब तैं न ठहराय भाव मन आदि के विकार इन्द्रिय सुख में न परु तब तैं अमल सदा आनन्दरूप सब सों अलग है ॥ ४२ ॥

दोहा

सुनत कोटि कोटिन कहत, कौड़ी हाथ न एक।
देखत सकल पुराणश्रुति, तापररहित विवेक ४३

जबलगि मनआदि के कहे कामादि विकार में अरु इन्द्रिय की विषयन में परा जीव आपनो रूप भूला है तबतक कोटिन वचन सबसों सुनत अरु आपहू कहत कि विषय आश त्यागेते जीवकों महासुख लाभ है अरु विषय आश त्यागत नहीं।

यथा—लोग परस्पर वार्चा करत कि खेती में बड़ी नफा है काहेते एक मन बोये बीस मन होत ताते खेती करी।

पुनः बनिज में बड़ी नफा है एक देशते लै दूसरे में बेंचिये शीघ्रही चौगुना होत नहीं इन दोषन में द्रव्य लागत ताते चाकरी में बड़ी नफा राजालोगन के मुसाहेब बड़ा दर्माहा पावत ताते नौकरी करिये इत्यादि अनेक व्यापार की वार्ता करत तामें कोटिन की नफा सुनत अरु कहत परन्तु व्यापार विना कीन्हें बातन ते एक कौड़ी हाथ नहीं आवत तथा वेद पुराणन में ज्ञान उपासनादि की वार्त्ता लिखी हैं तिनको देखत अर्थात् पढ़त अरु अपरन को सुनावत सुनत परन्तु ताको व्यापार अर्थात् ज्ञान भक्ति के साधन नहीं करत विषय त्याग नहीं करत सारासार को विवेक नहीं करत शम दम आदि नहीं करत वा श्रवण कीर्तनादि में मन नहीं देत ताते वेद पुराण देखतहू विवेकने रहित अर्थात् विषय में मन लगायेते सुख कैसे होय ॥ ४३ ॥

दोहा

समुझतहैं संतोष धन, याते अधिक न आन।
गहत नहीं तुलसी कहत, ताते अबुध मलान ४४
कहा होत देखे कहे, सुनि समुझे सब रीति।
तुलसी जबलगि होतनहिं, सुखद रामपदप्रीति ४५

चाहे जेतो धन होइ जबलग संतोष नहीं आवत तवलग कंगाले बना है काहेते जबलग चाह बनी तबलग धनी नहीं है जब संतोष आवै तबै धनी है यह लोकविदित सब जानत हैं ताते सब समुझत कि संतोषही एक धन है जेहि संतोषते अधिक आन कुछ दूसरा धन नहीं है सो गोसाईंजी कहत कि तेहि संतोष को गहते नहीं सब लोक सुख कुचाह में बँधे परे हैं ताहीते मन मलिन रहत जब मनमें मल भयो तब बुद्धि कहां याही ते अबुध ह्वै गये जो बुद्धि नहीं तौ परलोक कैसे सूझै याहीते सब जीव वासनारूप रस्सी में बँधा जन्म मरणादि दुःख भोगत है ४४ परमार्थ पथकी जो रीति है अर्थात् संसार दुःखरूप ताके सुख की वासना त्यागि सुखद भगवत् सनेह है इत्यादि वेद पुराण में लिखी है ताको देखे पढ़े अथवा औरन ते सुनिकै समुझेते का होत काहे ते सुखदेनहार तौ श्रीरघुनाथजी की शरणागति है सो गोसाईं जी कहत कि जीव को सुखद सुखदेनहार जबलग श्रीरघुनाथजी के पाँयन में प्रीति नहीं तबतक वेद पुराण वाचे सुने समुझेते का प्रयोजन भयो जब समुझै तब पछिताइकै यही कहै कि भाई संसारते छूटना बड़ा कठिन है इतना कहि छुट्टी पाये फिरि विषय में आसक्त भये तौ दुःख कैसे छूटै ॥ ४५ ॥

दोहा

कोटिन साधन के किये, अन्तर मल नहिं जाय ।
तुलसीजौलगिसकलगुण, सहितनकर्म नशाय ४६
चाहबनीजबलगि सकल, तबलगि साधनसार ।
तामहँ अमितकलेशकर, तुलसी देखु बिचार ४७

जप, तप, तीर्थ, व्रतादि कोटिन साधन कीन्हे ते अन्तर मन आदि को मल अर्थात् लोकसुख की चाह नहीं जात कबलगि गोसाईजी कहत कि जबलगि सतोगुण करि किसीते प्रीति करत तमोगुण करि किसीते क्रोध करत रजोगुण करि सुखके हेतु द्रव्य चाहते लोभ करत स्त्री चाहते कामवश होत इत्यादि सकल प्रकार के गुणन सहित सवासनिक कर्म नहीं नाश होत तबतक वासना वश तौ मन अनेक कर्म देहते करावत तौ अन्तर कैसे निर्मल होइ जो वासना छूटै तब मन स्थिर होइ तब बुद्धि अमल होइ आपनो रूप पहिंचानै तब भगवत् सनेह करै तब जीव सुखी होइ सो तौ होत नहीं याही ते सब जीव दुःखी हैं ४६ स्त्री, पुत्र, धन, धाम, भोजन, वसन, वाहनादि सकल प्रकार सुखकी जबलगि चाह बनी है तबलगि तीर्थ व्रतादि जो अनेक साधन करत ताको सार कहे फल का है सो कहत कि तामह अमित कहे अनेक प्रकार के क्लेशही हासिल है अर्थात् सवासनिक शुभकर्म करत अशुभ आपही होत तासे दुःख सुख में परेरहे जीवको स्वतन्त्र सुख तौ न भयो तौ परिश्रम वृथाहै ताको गोसाईजी कहत कि विचार करि देखिले जो समुझ में आवै तौ वासना त्यागि जो साधन करु सो भगवत सनेह हेतु करु सो अचल सुखको हेतु है अरु वासना दुःखको हेतु है सो त्याग ॥ ४७ ॥

दोहा

चाह किये दुखिया सकल, ब्रह्मादिकँ सब कोय।
निश्चलता तुलसी कठिन, रामकृपा वशहोय ४८

कृमि, कीट, पशु, पक्षी, नर, नाग, देव, ब्रह्मा पर्यन्त जीवमात्र सब कोऊ अचाहै भये ते सुख है अरु चाह कीन्हेते सकल जीव मात्र दुखिया कहे दुःखमें पीड़ित होत।

यथा—नारदजी विवाह की चाह में महादुःख सहे ये स्वाभाविक आनन्दमूर्ति हैं औरन की कौन कहै सब तौ चाह में पीड़ितै हैं अरु अचाह जो चित्तकी निश्चलता अर्थात् जाको चित्त काहू बात पर चलायमान न होय एक श्रीरघुनाथ ही जी में मनु लागरहै।

यथा—काकभुशुण्डि हनुमान् जी ताको गोसाईंजी कहत कि निश्चलता कठिन है कोहेते स्वाभाविक जीवको गति नहीं तौ कैसे निश्चलता आवै ताको कहत कि रामकृपावश होय अर्थात् जापर श्रीरघुनाथजी कृपा करैं तामें निश्चलता आवै तौ रघुनाथजी कौन भांति कृपा करते हैं जब निश्छल है रघुनाथजी की शरण जाइ तौ अनेकन जन्मके पाप कर्म नाशकरि शुद्ध करिलेते हैं।

यथा—

"सम्मुख होइ जीव मोहिं जबहीं। कोटि जन्म अघ नाशौं तबहीं" ॥४८॥

दोहा

अपनो कर्मन आपु कहँ, भलो मन्द जेहि काल।
तब जानब तुलसी भई, अतिशय बुद्धिविशाल ४९
तुलसी जब लगि लखिपरत, देह प्राण को भेद।
तब लगि कैसेकै मिटै, करम जनित बहु खेद ५०

जेहिकाल जौने समयमें आपनो कीनो कर्म तामें मेरा भला होइ वा मन्द कहे बुरा होइ यह न आवै अर्थात् अशुभ कर्म तौ करबै न करै जो स्वाभाविक होत तिनके निवारण हेतु शुभकर्म करै तामें फलकी चाह न होइ कि याको फल हमको सुख मिलै स्वाभाविक भगवत्प्रीति अर्थ करै जब ऐसी रीति मनमें आवै ताको गोसाईंजी कहत कि तब जानब कि अतिशय कहे अत्यन्त करिकै विशाल कहे बड़ी बुद्धि अब भई अब आपनो स्वरूप पहिचान परैगो देहादि द्वैत नाश होइगो ४६ गोसाईंजी कहत कि जब लगि देह अरु प्राणको भेद लखि कहे देखि परत तहां देह क्षेत्र है प्राण क्षेत्रज्ञ हैं।

क्षेत्र यथा—

मूलप्रकृति १ बुद्धि २ अहंकार ३ भूमि ४ जल ५ अग्नि ६ वायु ७ आकाश ८ दशइन्द्रिय १८ मन १६ शब्द २० स्पर्श २१ रूप २२ रस २३ गन्ध इति २४ चौविसतत्त्व की देह।

पुनः सुखकी इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, देहाभिमान।

पुनः चेतना अर्थात् ज्ञानात्मक जो अन्तःकरण की वृत्ति बुद्धि औ धैर्य ये आत्मा के धर्म नहीं हैं अन्तःकरणही के धर्म हैं याते शरीर धर्मही इनको कहिये।

यथा—श्रुतिः

"कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एवेति" इति क्षेत्र अर्थात् देह है।

यथा—गीतायाम्

"महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः १

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् २"

पुनः प्राण जो अन्तरात्मा सो हर्षशोक रहित सबको प्रकाशक ज्योतिरूप अन्तर्यामी ज्ञानगम्य अज्ञान तमसों परे है।

यथा—श्रुतिः

"आदित्यवर्णस्तमसः परस्तात्" इति प्राण अर्थात् क्षेत्रज्ञ है।

यथा—गीतायाम्

"ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य धिष्ठितम्" ॥

इत्यादि देह अरु प्राणको भेद यथा मेरे प्राण अरु मेरी देह अर्थात् प्राण तौ सत्यही है देहको भी सत्य मानना।

यथा—हम ब्राह्मण, हम क्षत्रिय, हम वैश्य, हम पण्डित, हम राजा, हम धनी, हम बुद्धिमान् इत्यादि देह को भी सांच माने यही प्राण देह को भेद है सो जबतक देखात तौ सब भूत में समता काहे को आई विषमतावश काहूसों वैर काहूसों प्रीति तौ शान्ति कैसे आई ताते हर्ष, शोक, अज्ञानतावश सत्रातनिक कर्म जो कुछ करी तिनते जनित कहे उत्पन्न जो बहुत भांतिको खेद नाम दुःख सोतौ स्वाभाविकै होयँगे सो जबतक यही रीति है तबतक कर्मन के फलरूप दुःख कैसे मिटै सदा बाढ़त जायँगे ॥ ५० ॥

दोहा

जोई देह सोइ प्राणहै, प्राण देह नहिं दोय।
तुलसी जो लखि पाय है, सो निर्दय नहिं होय ५१

जोई देह सोई प्राण है देह अरु प्राण है नहीं हैं कौन भांति।
यथा—सोने के कङ्कण कुण्डलादि दूसरा नाम कहावत परन्तु

वामें बाहर भीतर विचारकरि देखो तो सो नहीं है कङ्कणादि नाम उपाधिमात्र है।

पुनः यथा जलमें तरङ्ग दूसरी नहीं केवल जलै है।

पुनः आकाश यथा सबके भीतर बाहर है तथा ब्रह्म को कार्यस्वरूप चराचर भूतमात्र में सोई स्वरूप वर्तमान है अर्थात् बाहर भीतर परिपूर्ण है काहे ते कार्य को आदि कारणरूप सोई है परन्तु ऐसा है के भी रूपरहित हेतु सो यह इतने ऐसे कर स्पष्टरूप जानिवे योग्य नहीं है अज्ञानिन को अत्यन्त दूर है काहेते प्रकृति विकारते परे है ताते क्षेत्र में क्षेत्रज्ञरूप भगवद्भक्त पावते हैं।

यथा—गीतायाम्

"बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ?
इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः।
मद्भक्त, एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते" ॥

इत्यादि प्राण देह एकही है ताको गोसाईंजी कहत कि ताको जो कोऊ लखि पाई है वाके जानवे की गति, जाके है सो निर्दय कहे दयारहित नहीं होत काहेते सब में भगवत्रूप व्याप्त देखत ताते काहू जीव को दुःख नहीं देत यह गति हरिभक्तनै में है और में नहीं ॥ ५१ ॥

दोहा

तुलसी तैं झूठो भयो, करि झूठे सँग प्रीति।
है सांचो होय सांचु जब, गहै रामकी रीति ५२

झूठी रचना सांच है, रचत नहीं अलसात।
बरजतहूं झगरत विहठि, नेकु न बूझत बात ५३

यथा—कुण्डलादि भूषणन में सोना सांचाइते भूषण भी सांचे हैं अर्थात् ये सोने के हैं अरु सोना को त्यागि कङ्कणादिक यही सांचु मानौ तौ ये भूठे हैं तथा आत्मा को त्यागि देहही को सांचु मानना अर्थात् ये देव हैं ये नर हैं ये ब्राह्मण हैं ये शूद्र हैं यह कहनूति भूंठी है सो गोसाईंजी कहत कि हे जीव ! सब में व्याप्त भगवत्स्वरूप ताको त्यागि देहव्यवहार भूंठे के संग प्रीति करि तैं भी भूंठो भयो काहेते जब सबकी देहै सांचु मानै तौ आपनी भी देह सांचु मानि काहू सों राग काहू सों द्वेषकरि हर्ष शोक की वासना करि शुभाशुभ कर्म करत ताही को फल दुःख सुख भोगत इत्यादि भूंठे के संग देह के साथ प्रीतिकरि तू भूंठा भयो अरु हँसि सांच सों सांचा तू कब होय जब राम की रीति गहै अर्थात् राग, द्वेष छांड़ि सब में समता मानि श्रीरघुनाथजी की प्राप्ति की रीति जो शुद्ध शरणागती गहै तब तू सांचा होइ अर्थात् आपनो रुप जानै ५२ भूंठी रचना चराचरादि देहन को व्यवहार ताको रचत अर्थात् चौरासी लक्ष रूप धारण करत में अलसात नहीं कि यह रचना अब न करी भाव जीवके यह आलस्य कबहूं नहीं आवत कि चौरासीको अब हम न जाई काहेते यह रचना सांची मानै है भाव देहव्यवहार सांचु मानै है ताही सुखकी वासना में सब जीव बांधे हैं तिनमें जो काहूसों मनेकरौ कि देहादिक भूठी है ताको सांचु मानि तेहि सुखके वासनावश अनेक कर्म करत ताही बन्धन में फिरि परौंगे ताते देहसुखकी वासना त्यागि सब में समता मानि श्रीरघुनाथजीकी शरण गहौ देहसुख वृथा में न परौ इत्यादि बरजत हूं अर्थात् मने करतसन्ते बात कहिवे को प्रयोजन तौ नेकहू कहे थोरहू नहीं समुभत कि बात के भीतर क्या अभिप्राय है यह नहीं विचारत

सब जाति विद्यामहत्त्वादि के मानवश विशेष हठ करिकै झगरत एक बात पर अनेक उत्तर कल्पित करत ॥ ५३ ॥

दोहा

करमखरी करमोह थल, अङ्क चराचर जाल ।
हरत भरत भर हर गनत, जगत ज्योतिषी काल ५४

जा भांति ज्योतिषी पण्डित जन्मपत्री व तिथिपत्रादि रचत में पटरापर गर्द बिछाइ व भूमिमें लोहकी कलमते अङ्क लिखि गणित करत अङ्कन गुणत ।

पुनः भाग देत जो शेषरहत तिनको फिरि गुणत इसीभांति अङ्कलिखिगुणि फिरि बिगारत इत्यादि रचना खेलवार सम झूठीही है ताही भांति पल, दण्ड, दिन, मास, वर्षादि जो काल है सोई ज्योतिषी है सो मोहरूपी थल कहे भूमिपै अर्थात् मोहै में सब जगत् रचा है ताते थल कहे पुनः कर कहे हाथ में करमरूपी खरी कहे कलम लिहे भाव कर्मै करि अनेक देहैं धरत याते कर्म को कलम कहे तेहि कलमते चराचर देहरूप अङ्कनके जाल तिनको रचत अर्थात् सबको उत्पन्न करत ।

पुनः गनत कहे पालन करत हरत कहे नाश करत अर्थात् सुख वासनाते अनेक कर्म करत ताके फल भोग हेत समय पाय उत्पन्न होत मोहमें फँसे अनेक दुःख सुख भोगत ।

पुनः काल पाय नाश होत याही भांति चराचर लोकरचना देखनमात्र याते झूठहीहै ताको सांचुमानेते जीव झूठाभयो ॥ ५४ ॥

दोहा

कहतकालकिलसकलबुध, ताकर यह व्यवहार ।
उतपति थिति लय होतहै, सकलतासु अनुहार ५५

बुध जो ज्ञानीहैं ते सकल कहत कि पल, दण्ड, दिन, मास, वर्ष, युग, कल्पपर्यन्त यह जो कालहै ताहीको यह जग व्यवहार है ताही कालकी अनुहार अर्थात् जब जैसा काल कहे समय आवत तब वा समय के कार्य किल कहे निश्चय करिकै होत।

यथा—समय पाय प्रलय होत जब समय आयो तब फिरि संसार उत्पन्न भयो तब सतयुग में धर्म पूरणरहा जब त्रेता लाग कुछ धर्म खण्डित भयो द्वापर में अर्ध रह्यो कलियुग में एक चरण रह्यो ऐसे ही होतजात।

पुनः कल्पान्त भयो ऐसे ही कल्पान्त वीतत वीतत जब समय आयो तब महाप्रलय है गई कुछ न रहा।

यथा—रात्रिको अन्धकार, दिनको प्रकाश, वर्षा में वृष्टि, शरद् में जाड़, ग्रीष्म में गरमी आदि निश्चय होत याते सब कालको व्यवहार है ॥ ५५ ॥

दोहा

अंकुर किसलयदलविपुल, शाखायुत वरमूल।
फूलिफरत ऋतुअनुहरत, तुलसी सकलसतूल ५६

अब समय अनुकूल वृक्षादिकन को देखावत तहां वनसपती काहुकी वीजते उत्पत्ति।

यथा—आम्रादि काहू की मूलते उत्पत्ति जैसे जमींकन्दादि काहूकी वीज डारादि दोऊ सों उत्पत्ति।

यथा—पाकरि आदि तहां वृक्षन के अंकुर, किसलय, दल, डार, फूल, फल, मूलादि सर्वाङ्ग समय अनुकूल होत जैसे अनेक तृणादि के अंकुर वीज व मूलते वर्षा पाय होत अरु बथुई आदि कार्त्तिक में होत जैसे पीपरादि वृक्षनके दल फागुन में गिरिजात चैतमें अंकुर वैशाख में पल्लव ज्येष्ठ में अनेकन दल हरित होत।

तथा तिन वृक्षादिकन के शाखायुत कहे डारैं सहित अरु वर कहे श्रेष्ठ मूल तेऊ समय पाय सफल होत।

यथा—आम्रादि शिशिर में फूलत वसन्त में फलत बबुर श्रावण में फूलत चैतमें फलत।

पुनः सकरकन्द वर्षा में लगावन शरद् तक मूलैं लघु रहत हेमन्त में बोई मूलैं श्रेष्ठ अर्थात् सकरकन्द मोटी होत इत्यादि मूल, फल, फूल, अन्न, फलादि वृक्षन को यावत् व्यवहार है ताको गोसाईंजी कहत कि सकल प्रकार के मूल, जीव, धातुआदि यावत् ब्रह्माण्ड है सो ऋतु अनुहरत अर्थात् आपनो समय पाय सब होत सतूल कहे सहित तौल जा वस्तुकी जौन मौताज सो उस-नहीं होत अथवा तूल कहे रुई सहित अन्न फल फूल आपने समय पर होत॥ ५६॥

दोहा

कहतब करतब सकलतेहि, ताहिरहित नहिं आन।
जानन मानन आनबिधि, अनूमान अभिमान॥५७

यथा—समय पाय सब वस्तु होत तथा देहादि समय पाय होत तथा जब समय आवत तब देही नाश होत ताते देह को व्यवहार झूंठही है अरु देह सुख करिकै पढ़ना पढ़ावना निन्दा स्तुति वाद विवाद प्रश्नोत्तरादि यावत् वचन व्यवहार हैं।

पुनः यज्ञ, तप, तीर्थ, व्रत, दान, दयादि सुकर्म।

पुनः हिंसा, ईर्षा, परहानि, वैर, विरोध, परधन, परस्त्री, पर अपवादादि अशुभ इत्यादि यावत् कर्म को व्यवहार है सो देह की कर्तव्य नहीं है जो देह में चैतन्य पुरुष है तेही को सकल करतव है ताहि जीवात्मा ते रहित आन कुछ नहीं है ताते देह में आत्मा को सारांश जानना यह तो उचित विधि है ताको त्यागि देह सुखद

कर्म सांचु अनुमान करि जाति, क्रिया, महत्त्वादि देहही को अभिमान करि कि हम उत्तमक्रिया के अधिकारी हैं यह अभिमान वश ते जानन मानन आनविधि को है गयो अर्थात् सर्वव्यापक भगवत्‌रूप ताके जानबे की विधि त्यागि आनही विधि जानत अर्थात् यज्ञ, तपस्या, तीर्थ, व्रत, दानादि देह सुखद कर्मनि को सांचु जानत ताते सुख की वासनाते देव तीर्थादिनै को सांचा करि मानत तेहि शुभाशुभ कर्मन के फल में बद्ध होत द्वैद्वै पद की आवृत्तियां ते छेकानुप्रासालंकार है ॥ ५७ ॥

दोहा

हानि लाभजयविधि विजय, ज्ञान दान सन्मान।
खानपानशुचिरुचिअशुचि, तुलसीविदितविधान ५८
शालक पालक सम विषम, रमभ्रमगमगतिगान।
अटघट लट नटनादि जट, तुलसीरहित न जान ५९

देहाभिमानवश लोक प्रपञ्च में अनेक विधान करत ताको कहत सो शुभकर्म कीन्हेते होत अरु अशुभ आपही होत ताते दुःख सुखको प्रचार कहत तहां लोभवश लाभहेतु उपाय करत हानि आपही होत।

पुनः क्रोधवश जय विशेषि जय के हेतु उपाय करत पराजय आपही होत चैतन्य है ज्ञानके हेतु विवेक विरागादि साधन करत मोहवश अज्ञान आपही होत।

पुनः सुखहेतु दानादिधर्म करत हिंसा असत्यादि अधर्म आप ही होत। तथा रागवश काहू को मित्र मानि सन्मान करत। और द्वेषवश काहू सों शत्रुता मानि निरादर करत।

पुनः स्वाद हेतु खान पान उत्तम चाहत अभाग्यवश कुत्सित

भोजनको मिलना दुर्घट शुचि कहे पावन ताकी रुचि करत अशुचि अपावनता सहजही होत इत्यादि अनेक विधि के विधान हैं ताको गोसाईं जी कहत कि, कहां तक वर्णन करी लोक में विदित है ५८ काहू को हित मानि तासों सम कहे सीधा स्वभाव है पालक होत भाव रक्षा करत काहू को अनहित मानि तासों विषम कहे टेढा स्वभाव है साल कहे दुखदायक होत।

पुनः रसआदि यावत् शब्द हैं ते नकार के आदि लगाय ताको अर्थ समझो।

यथा—रम के अन्त नकार लगाये ते रमनभये अर्थात् काहू समय सुखी है रमन कहे अनेक क्रीड़ाकरन काहू समय दुःखित है जगमें भ्रमना।

पुनः जहांतक गति है तहांतक गमनकरना आना जाना कबहूं सुखित है गावना।

पुनः दुःखित है रोवना तीर्थादिकन में अटन कहे घूमना घटन कहे शोभित अर्थात् काहू समय एक जगह स्थिर है रहना लटन कहे काहूसमय रोगादि दुःख में दुर्बल होना नटन कहे मनोरथवश अनेक नाच नाचना जटन कहे जटित अर्थात् काहू वस्तु में चित्त लगाय आसक्त होना गोसाईंजी कहत कि जौन ढंग पूर्व कहि आये हैं तिनते रहित काहू जीवको न जानना सब इनही में परे हैं शब्दान्त वृत्तानुप्रासालंकार है॥ ५९॥

दोहा

कठिन करम करणी कथन, करता कारक काम।
काय कष्ट कारण करम, होत काल समसाम ६०

यज्ञ, तीर्थ, व्रत, जप, तप, दानादि शुभकर्म हैं हिंसा, परस्त्री-गमन, परहानि, चोरी, ठगी इत्यादि अशुभकर्म तिनकी करणी कहे

शुभाशुभ कर्मन की कर्तव्यता तेहिको कथन कहे विधिपूर्वक कर्मन को व्यवहार कहना सो कठिन है कोऊ कहि नहीं सकत काहेते कर्मनको करता जो है जीव ताको कारक कहे करावनहार है काम सो ऐसा प्रबल है कि शुभकर्म में भी अशुभकर्म प्रकट करायदेत।

यथा--तीर्थस्नान को गये तहां सुभग स्त्री को देखे नेत्र मन उसीमें आसक्त भये ऐसेही सर्वत्र जानिये अथवा काम कहे कामना अर्थात् वासना सहित जीव कर्मकरत ताको फल कहत कि काय जो देह ताके कष्ट के कारण हेतु कर्म होत सो काल जो समय तासों साय कहे मिलाप सहित कालहो की सम कर्म होत अर्थात् शुभसमय में शुभकर्म होत अशुभ समय में अशुभकर्म होत ते दोऊ दुःख के कारण हैं काहेते शुभकर्म तौ पृथक् ही कायक्लेश करि होत तामें कामादि की प्रेरणा ते अशुभ स्वाभाविक होत सो जहां शुभकर्म को फल सुख मिलत तहां स्वाभाविक अशुभको फल दुःख भी साथ ही होत।

यथा—दक्ष यज्ञकरत में क्रोधवश शिवजीसों विरोध कीन्हे को फल दुःख पाये।

तथा नृग दान करतमें भूलि एक गऊ द्वैवार संकल्पि गये ताको फल शापवश गिरगिट भये अरु जब शुभको फल सुख-भोग में ऐश्वर्य वश अर्थात् शुभकर्म तौ होतही नहीं जब सुकृत चुकि गई फिर दुःख के पात्र भये अरु अशुभ तौ सदा दुःखदाता सब जानत ताते कर्मन को जाल बड़ा कठिन है ताको को कहि सकै अरु जो कामको कारक कहे तहां आदि कारण कामही है।

यथा—गीतायाम्

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते १

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति॥
शब्दादिवृत्त्यानुप्रासालंकार॥ ६०॥

दोहा

खबर आतमा बोध बर, खर बिन कबहुँ न होय।
तुलसी खसम विहीन जे, ते खरतर नहिं सोय ६१

आत्माबोध कहे देहव्यवहार लोकसुख असार जानि त्यागि आत्मरूप सारांश जानि ताको पहिचानना अर्थात् हर्ष विषाद रहित मेरो आत्मरूप आनन्दमय सदा एकरस है ऐसा बर कहे श्रेष्ठ बोध उत्तम ज्ञान सो बिसरिगयो है कौन भांति सो प्रमाण के श्लोक ऊपर लिखे हैं अर्थात् बुद्धिद्वारा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि विषयन को ध्यान करत में मन विषयासक्त भयो विषय संग ते प्रतिदिन कामना बढ़ती गई।

पुनः काहूभांति कामना नष्ट भई तौ क्रोध भयो क्रोधते मोह भयो अर्थात् कार्य अकार्य को विचार नहीं रहो सम्पूर्ण मोह होने से शास्त्र आचार्य गुरु आदिकन को उपदेश भूलिजात उपदेश भूलेते बुद्धिकी चैतन्यता गई बुद्धि नाश होने ते मृतक तुल्य जीव जड़ होत है।

पुनः आत्मरूप को श्रेष्ठ बोध चाहै तौ विना जीवके खर भये पूर्व आत्मरूप को खबर कबहूं नहीं होय है तहां जीव खर कैसे होय।

जैसे घृत में छांछ मिले रहे ते स्वाद सुगन्ध स्वरूपता जात रहत जब अग्नि पै चढाय तप्त करि खर करि डारिये ताको मैल भस्म भयो तब घृत अमल भयो।

तथा कामादि विषय वासनाख्य मैल मिले आत्मरूप जात

रहो सो शुभाशुभ कर्म ईंधनकरि बैराग्य योगादि अग्नि में तप्तकरै तव सब विकार भस्म ह्वैजाय तव जीव खर कहे शुद्ध होय तब आत्मरूप की खबर होय ताहू में गोसाईंजी कहत कि जे खसम कहे स्वामी अर्थात् सेवक स्वामी भाव करके हीन हैं यात श्रीरघुनाथजी की शरणागती नहीं गहे हैं केवल आत्मबोधही को भरोसा राखे हैं ते खरतर कहे अत्यन्त खरे अर्थात् विशेषि शुद्ध नहीं होत आत्मबोध है चूकेपर उसी अज्ञानदशा को प्राप्त होते हैं ।

यथा—"जे ज्ञान मान विमत्त तव भयहरणि भक्ति न आदरी ।
ते पाय सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखे हरी" ॥

भागवते

" श्रेयःश्रुतिं भक्तिमुदस्यते विभो क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये ।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते नान्यथया स्थूलतुषावघातिनाम्" ॥६१॥

दोहा

चितरतिचितव्यवहरितविधि, अगमसुगमजैमीच ।
धीर धरम धारण हरण, तुलसीपरत न बीच ६२

अब जीवन के जय पराजय के कारण कहत तहां लोक में प्रसिद्ध शत्रु परलोक में कामादि शत्रु हैं तहां आपनी जय तौ सब चाहत अरु जा बात से जय होत सो नहीं करत करत काहे कि वित्त जो द्रव्य ताही में चित्तकी रति कहे प्रीति है ताते वित्त पायबे की विधि में व्यवहरत अर्थात् लोभवश अनेक अनीति करत तेहि अधर्म का फल यह कीजिये जो शत्रु सो जीति सो तौ अगम है अर्थात् जय तौ होतही नहीं अरु मीच जो मृत्यु अर्थात् पराजय सो सुगमही होत काहेते लोभवश अधर्म कीन्हें को यही फल है अरु जय होने का उपाय का है सो कहत कि धर्म अर्थात् सत्य

शौच, तप, दानादि करै अरु धीरज धारण कियेरहै ताकी जय होय अरु जो धीरज धर्मादिको हरण कहे त्याग करै ताकी पराजय होय इत्यादि दोऊ बातन गोसाईंजी कहत कि बीच नहीं परत विशेषि करिकै अधर्मी अधैर्यवान् की पराजय धर्मवान् धैर्यवान् की जय निश्चय करिकै होत है 'इति लौकिक' अब परलोक में कामादि शत्रुन सों जय पराजय कहत तहां चित्त जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि ताही में चित्तरत रहत ताते देह इन्द्रिन के सुखकी विधि में व्यवहरत अर्थात् विषयसुख के व्यवहारही में सदा आसक्त रहत ताते मोहादि ते जय होना अगम है काहे ते एक तौ विषय ते धीरज नहीं दूसर हरिभक्तिरूप धर्म नहीं तिनको कामादिकनसों मीचु पराजय होना सुगम है अरु जे श्रीरामसनेहरूप धर्म में रत हैं अरु विषयसुख त्यागिवे में धीरज धारण किहे हैं भाव विषयते विरक्त रहत ताकी मोहादिकनसों जय होत अरु जे धीरज धर्म को हरण किहे त्यागे हैं तिनहीं की पराजय होत काहेते बिना भगवत् सनेह सब साधन वृथा है ।

यथा—रुद्रयामले

ये नरा धर्मलोकेषु रामभक्तिपराङ्मुखाः ।
जपस्तपो दया शौचं शास्त्राणामवगाहनम् ॥
सर्वं वृथा विना येन शृणु त्वं पार्वति प्रिये ॥ ६२ ॥

दोहा

शब्दरूप बिवरण बिशद, तासु योग भवनाम ।
करता नृप वहुजाति तेहि, संज्ञा सब गुणधाम ६३

शब्द कहिवेते स्पर्श भी आइगयो काहेते शब्द आकाश को

सूक्ष्मरूप है पवन भी आकाश ते सम्बन्ध राखे है पवन को सूक्ष्म-रूप स्पर्श है।

पुनः रूप कहिवेते रस गन्ध भी आइगयो काहेते जब रूप भयो तब रसगन्धहू होइगो सो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादिते विवरण कहे विलग जबतक है तबतक आत्मरूप विशद कहे उज्ज्वल अमल रहत।

पुनः तासु कहे तिनही शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि के योग कहे लीन भयेते स्थूलरूप अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवीआदि पाई स्थूल देह भव नाम उत्पन्न भई तहां पवन को योग ज्यादाते स्वर्ग में रहे देव नाम भयो पृथिवीयोग ज्यादाते भूमि में रहे मनुष्य नाम भयो जलयोग ज्यादाते पाताल में रहे नागादि नाम भयो तहां कर्ता जीवात्मा नृप कहे इन्द्रियदेवादिकन को प्रेरक स्वतन्त्र एकही है सोई जीवात्मा तेहिके देह धारण कीन्हें ते ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि कर्मानुसार जाति भई तिनकी शर्मा, वर्मा, गुप्त, दासादिसंज्ञा भई अथवा संज्ञा कहे प्रति देह न्यारे नाम भये सत रज तमादि गुण वा सुशील कुलादि गुण वा रूप रङ्गादि।

यथा—काव्यनिर्णये

"रूप रङ्ग रस गन्ध गनि, और जो निश्चल धर्म।
इन सबको गुण कहत हैं, गुनिराखे यह मर्म" ॥

तहां चारि प्रकार ते नामसंज्ञा होत प्रथम जाति ब्राह्मणादि दूसर यदृच्छा "भैया" आदि तीसर गुण यथा श्यामादि चतुर्थ क्रिया यथा पण्डितादि इत्यादि क्रिया गुणन को धाम कहे अनेकन धारण करि अनेकन नाम है गये तिनको सांचु मानिबो यही जीवकी भर्म है ॥ ६३ ॥

दोहा

नाम जाति गुण देखिकै, भयो प्रबल उर भर्म।
तुलसी गुरु उपदेश बिन, जानिसकै को मर्म ६४

जाति, ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्रादि तामें अनेक भेद हैं गुण कहे रूप रङ्ग गन्धादि देह के गुण हैं सौशील, उदारतादि सुभाव के गुण हैं नम्रतादि वचन के गुण हैं विद्या धर्मादि यावत् क्रिया हैं ते बुद्धिके गुण हैं तहाँ जाति अरु गुणन के जो नाम हैं।

यथा—जाति ब्राह्मण सनकादि ये जय विजय को दैत्य करे नारद ये भगवानही को शाप दिये रामायण में प्रसिद्ध वशिष्ठजी कन्या ते पुत्र करिदिये अगस्त्य समुद्र पान करि गये क्षत्री मनु जिन परमात्मा को आत्मज बनाये विश्वामित्र वरवस ब्राह्मणत्व लीन्हे मियव्रत रात्रिको दिन करे सब समुद्र बनाये वैश्य सरवन लोक प्रसिद्ध भये शूद्र पूर्वजन्म में काकभुशुण्डि प्रसिद्ध हैं निषाद, शबरी, श्वपचादि प्रसिद्ध हैं इत्यादि जाति नाम लोकविख्यात हैं।

पुनः गुणन के नाम जैसे कामरूपवान् गौर हिमगिरि मलय-गिरि में गन्ध चन्द्र शीतल हरिश्चन्द्र उदार भूमि में नम्रता सरस्वती में विद्या मोरध्वज में धर्म अम्बरीष में क्रिया इत्यादि जाति गुणादि के नामन में सचाई देखि कै जीवन के उर में प्रबल कहे अतिबली भर्म भयो अर्थात् आत्मा की सचाई दृष्टि त्यागि देहकी सत्यता मानि लियो तहां विचार कीन्हें ते सब आत्मै की प्रकाश है विना आत्मा की प्रकाश देह कुछ नहीं करि सकत ताको गोसाईंजी कहत कि विना गुरु के उपदेश यहि भ्रम को मर्म जो सांचाहाल ताको को जानिसकै जब गुरु कृपाकरि लखावैं कि यह देह को व्यवहार देखनेमात्र है सांचा एक आत्मा

है ताकी सचाईते सुन झूठी देह भी सांची देखात यह मर्म तब जानिपरै जैसे मुनिकी भर्म हनुमानजी को अप्सरा बतायो तब कालनेमि को जाना कि राक्षस है छल करि मुनि बन्यो बिलमायबे को ॥ ६४ ॥

दोहा

अपन कर्म वर मानिकै, आप बधो सब कोय।
कारजरत करता भयो, आपन समुझत सोय ६५

जाति गुणादि के नाम देखिकै जीव के उर में कौन प्रबल भर्म भयो सो कहत कि आपनो कीन्हो जो कर्म ताही को वर कहे श्रेष्ठ मानिकै जग में सब जीव आपही बधो कौन भांति ते सो कहत कि सब जगके आदि कारण भगवत् हैं ताको भूलि कर्ता जो जीव सो मनोरथ वशते कारज जो देह को व्यवहारकृत यावत् कर्म हैं ताही व्यापार में रतभयो काहेते सोई कर्मन को आपन करि समुझत अर्थात् मेरे कीन्हे जो कर्म है ताही में मोको सुख होइगो ऐसा जानि आपनी कर्तव्यता सांची मानि सुखके वासना हेतु अनेक देवन को इष्ट मानि यज्ञ, पूजा, पाठ, जप, तप, तीर्थ, व्रतादि सुफल हेतु शुभकर्म करत तामें अशुभकर्म स्वाभाविक होत तिनके फल भोगहेतु अनेकन योनिन में जन्मत, मरत अनेक दुःख सुख भोगत याही कर्मवासना में सब जीव बँधे चौरासी में भरमत हैं॥६५॥

दोहा

को करता कारण लखै, कारज अगम प्रभाव।
जो जहँ सो तहँ तर हरष, तुलसी सहज सुभाव ६६

काहेते सबजीव भूले परे हैं कि कारज जो देह व्यवहारकृत

अनेकन जो कर्म हैं तिनको प्रभाव अगमें है अर्थात् भक्तिज्ञानादि सबमें कर्म व्याप्त है तामें कारण यह कि जो जग में भगवत्रूप व्याप्त जानि सबमें समभाव राखै अशुभकर्म त्यागे रहै अरु सत्कर्म वासनाहीन करि भगवत् को अर्पण करि भगवत् सनेह शरणागती में मनराखै सो कभी वन्धन में न परै अरु जे वासना सहित कर्म करत तेई बन्धन में परत काहेते जो वासना सहित कर्म करत सो तौ आपन प्रयोजन सिद्ध चाहत ताको अशुभ त्यागिबे की सुधि कहां है ताते अशुभ बहुत होत सोई शुभाऽशुभ को फल सुख दुःख भोग यही बन्धन है ताते वासना यही कारज जो कर्म ताको अगम प्रभाव है ताही में सब भूले हैं सो को ऐसा करता जो जीव है जो देह व्यवहाररूप कारज त्यागि भगवत्रूप कारण को लखै जो वन्धन में न परै ऐसा नहीं है काहेते स्वर्ग, भूमि, पातालादि लोकन में सुर, नर, नागादि जो जहां पर हैं सो तहँ पर कैसा रहत ताको गोसाईंजी कहत कि सहज स्वभावते जहां रहत तहां तर कहे अत्यन्त हरष सहित रहत भाव जौनी योनि में जो है तहँ देह, पुत्र, स्त्री, परिवार, धामादि आपनो मानि अत्यन्त हर्ष सहित रहत परलोक की सुधि काहू को नहीं है ॥ ६६ ॥

दोहा

तुलसी बिनु गुरु को लखै, बर्तमान बिबि रीत।
कहु केहि कारण ते भयो, सूर उष्ण शशिशीत ६७

लोक परलोक दोऊ कर्म करि बनत तहां सवासिक कर्म लोक हेतु निर्वासिक कर्म परलोक हेतु है।

यथा:—निर्वासिक यज्ञ करि पृथु भगवत् को प्राप्त भये सवासिक यज्ञ करि दक्ष की दुर्दशा भई निर्वासिक तपस्या करि ध्रुव

भगवत् को प्राप्त भये सवासिक तपस्या करि रावण पापभाजन भये निर्वासिक क्रिया करि अम्बरीष भगवत् को प्राप्त भयो सवासिक क्रिया दान करि नृग कृकलास भयो इत्यादि सर्वत्र जानिये सो इत्यादि विधि कहे दोऊ प्रकार की रीति वर्तमान लोक में प्रसिद्ध है तदपि गोसाईंजी कहत कि विना गुरु के उपदेश कोऊ जीव कैसे लखि पावै अर्थात् विना गुरु के उपदेश नहीं कोऊ जानि सकत है कौन भांति।

यथा—सूर्य चन्द्रमा लोक में प्रसिद्ध हैं *अर्थात्* सूर्य तापकर कहावत चन्द्रमा शीतकर कहावत तिनको कहौ कौने कारण ते सूर्य उष्ण कहे तप्त भये अरु चन्द्रमा कौन कारण ते शीतल भयो याको कारण विना गुरु के लखाये लोक जीव नहीं जानि सकत तहां लोक में ब्रह्मादिक आचार्य आदि गुरु है तिनके उपदेश वेद संहिता पुराणादि में प्रसिद्ध हैं तहां यह कारण है कि श्रीरघुनाथजी जौने रूप में जो शक्ति स्थापित करि दियो सोई क्रिया वा रूपते प्रकट होत।

यथा—

"विधि हरि हर शशि रवि दिशिपाला।
माया जीव कर्म कलिकाला॥
अहिप महिप जहँलगि प्रभुताई।
योग सिद्ध निगमागम गाई॥
करि विचारि जिय देखहु नीके।
राम रजाय शीश सवही के"॥

स्कन्दपुराणे—

ब्रह्माविष्णुमहेशाद्या यस्यांशे लोकसाधकाः।
तमादिदेवं श्रीरामं विशुद्धं परमं भजे॥

पुनर्वशिष्ठसंहितायाम्
जयमत्स्याद्यसंख्येयावतारोद्भवकारण ।
ब्रह्मविष्णुमहेशादिसंसेव्यचरणाम्बुज ॥ ६७ ॥

दोहा

करता कारण कर्म ते, पर पर आतमज्ञान ।
होत न बिन उपदेश गुरु, जो षट वेद पुरान ६८

करता जीव कारण आदि प्रकृति कारण माया कर्म कहे कार्यरूप माया अर्थात् देहेन्द्रिय आदि यावत् व्यवहार हैं इत्यादिकन ते परात्पर आत्मतत्त्व को ज्ञान है काहेते आत्मतत्त्व अकर्ता आनन्दरूप सदा एकरस है वाही के जब इच्छा भई तब कर्ता भयो सोई इच्छाते आदि प्रकृति कारण मायावश है आत्मरूप भूलि बुद्धि के वशपरि जीवत्व को प्राप्त भयो अर्थात् हर्ष, विषाद, ज्ञान, अज्ञान, अहमिति अभिमानी भयो सो अभिमान सतोगुण मिलि ताते मन अरु दशेन्द्रिय भई अरु तामस अहंकार ते शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध तिनते क्रमते आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी भई तब कार्यरूप माया वश है शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि की चाहते कामना बढ़ी कामना न होने से क्रोध भयो क्रोध ते मोह अर्थात् हानि लाभ की सुधि न रही तब बुद्धिभ्रम भयो तब गुरु शास्त्रादि उपदेश भूले ते जीव जड़ है गयो ।

पुनः जो आत्मतत्त्व को ज्ञान चहै ता हेतु चारिउ वेद छहों शास्त्र अठारहौ पुराणैं सब पढ़े आपुते आत्मज्ञान न होइगो विना सद्गुरु के कृपा उपदेश दीन्हे जब सद्गुरु कृपा करि उपदेश करि मार्ग लखावैं तापर आरूढ़ होइ तब आत्मतत्त्व को ज्ञान होई ॥ ६८ ॥

दोहा

प्रथम ज्ञान समुझै नहीं, विधिनिषेध व्यवहार।
उचितानुचितै हेरि धरि, करतव करै सँभार ६६

कारज जो स्थूलशरीर व्यवहार इन्द्रियसुख विषय कामादिकन में आसक्ति देहाभिमान ताते पर कारण शरीर आदि प्रकृति कारण माया जो आत्मदृष्टि भुलाय जीव बनायो ताते पर करता जीव जो आत्मदृष्टि त्यागि अकर्ता ते करता है प्रकृति में लीन होने की इच्छा करी अर्थात् सूक्ष्मरूप ताते पर आत्मज्ञान है तहां जबलग स्थूल शरीर को अभिमानी जबलग कारण शरीर में आसक्त जबलें सूक्ष्म शरीर में वासना बनी तबलग ज्ञान कहा है ताते कहत कि प्रथमही ज्ञान को न समुझै कि इन्द्रिय तौ विषय में आसक्त मन-कामादिकन में धावत मुखते ज्ञान कथनी करै।

यथा—"अहं ब्रह्म द्वितीयं नास्ति"

यथा—शङ्कराचार्येणोक्तं

"वाक्योच्चार्यसमुत्साहात्कर्म कर्तुमक्षमाः।
कलौ वेदान्तिनो भान्ति फाल्गुने बालका इव"॥

इत्यादि फाल्गुन के बालकन सम वृथा न बकै। ताते प्रथम विधि निषेध व्यवहारमय कर्म करै तहां विधि कहे जो कर्म करिबेको उचित है निषेध कहे जो कर्म करिबे को अनुचित है ते उचित अरु अनुचित हेरि कहे विचार दृष्टि ते देखि लेवै कि ये कर्म करिबे योग्य हैं अरु ये कर्म त्यागिबे योग्य हैं ऐसा विचारि दृढकरि हृदय में धरि लेइ तब मनते सँभारिकै करतव जो कर्म तिनको करै।

यथा—सिद्धान्ततत्त्वदीपिकायाम्

"कर्म सुवेद विहित निष्काम। भगवत् हित करिये वसुयाम ॥
ते गनि तीरथ गमन स्नान। सत्य शौच जप दान विधान ॥
स्वाध्याय रुशमदमत पत्याग। शीलस्वधर्म योग व्रतयाग॥
देहाध्यास त्यागि तिहि करिये। हिय महि निज कर्तृत्व न धरिये"॥

इत्यादि उचित है तिनको सँभारिकै करिये तथा अनुचित कर्म।
यथा—"काम क्रोध मद लोभरुमोहा। वैर विरोध रागपरद्रोहा॥
दम्भ कपट परधन परदारा। हिंसा निरदय पुनि अहंकारा॥
निंदा इरषा झूठकुसंगा। पर अपमानरु पोषन अंगा"॥

इत्यादि अनुचित जानि त्याग करै अरु शुभ कर्म भगवत् प्रीति अर्थ करि भगवत् को अर्पण करै कछु काल याही भांति करते करते इन्द्रिय मन विषयत्यागि भगवत् की सम्मुख होइगी श्रवण कीर्तनादि करि हरि सनेह प्रकट होइगो तब देहाभिमान नाश होइगो ॥६९॥

दोहा

जब मनमहँ ठहराय बिधि, श्रीगुरुबर परसाद।
यहि बिधि परमात्मालखै, तुलसी मिटै बिषाद ७०
बरबस करत बिरोध हठि, होन चहत अकहीन।
गहि गति बकबृकश्वानइव, तुलसी परम प्रबीन ७१

वर कहे श्रेष्ठ श्रीसद्गुरु के परसाद कहे कृपाते जब विधि मन में ठहराय अर्थात् अनुचित कर्म विषय आशा त्यागि शरणागती की विश्वास आवै तब विधि जो है उचित कर्म तिनमें मन लागै तब मन्त्र जाप भगवत् पूजादि करि विकार नाश होइ क्षमा दया शील संतोषादि गुण होइ तब भगवद्भजन करत सन्ते विवेक वैराग्य शम दमादि मुमुक्षुता आवै मन शुद्ध बुद्धि अमल होय तब आपनो

आत्मरूप जानै कैसा है आत्मरूप स्थूल सूक्ष्म कारण तीनिउ देह-नते भिन्न पञ्चकोश ते अतीत तीनिउ अवस्था को साक्षी सचि-दानन्द सदा एकरस है गोसाईंजी कहत कि यहि विधि ते जब आपन आत्मरूप को ज्ञान होइ तब परमात्मा श्रीरघुनाथजी को रूप लखै तब जीव को विषाद जो भवबन्धन सो मिटिजाय सुखी होय ॥ ७० ॥

अरु जे विधि अर्थात् उचित कर्म नहीं करत निषेध कर्मन में रत हैं ते विषयवश हानि लाभ की चाहते जग में बरबस कहे जोरावरी ते हठ करिकै विरोध करत अर्थात् राग द्वेष में लीन हैं ते मुखते ज्ञान कथनी करि अरु जो दुख ताते हीन होन चाहत अर्थात् भवसागर पार होन चाहत सो वृथा मनोरथ है काहेते बक जो बगुला वृक जो भेड़हा श्वान जो कुत्ता इव कहे इनहींकीसी गति जो चाल तेहिको गहे तहां बककी कैसी गति है कि देखाउ में साधु भीतर छली तथा साधुता देखाय विश्वास कराय परद्रोध-नादि छलि कै लेत ।

पुनः वृक की कैसी गति छली बली निर्दयी तथा छलबल करि परवस्तु लेवे में निर्दयी है श्वान लोभी अभिमानी अकारण-वादी विषयी तथा लोभवश लोक में अपमान सहत अकारण बाद करत फिरत विषय में ऐसे रत होत कि अपमान के भाजन होत इत्यादि रीति धारण कीन्हे तिनको गोसाईंजी कहत कि ते ज्ञान में प्रवीन बनत तिनको मनोरथ वृथा है ॥ ७१ ॥

दोहा

आककर्म भेषज बिदित, लखत नहीं मतिहीन।
तुलसीशठअकवशविहठि, दिन दिन दीन मलीन ७२

अकं दु खं विद्यते यस्यासौ 'आकः' अक जो दुःख विद्यमान

होइ जिहिके तेहि का कहीं आक अर्थात् दुःखी सो कहत कि आक जे हैं दुःखी अर्थात् भवरोग पीड़ित तिनको कर्मरूप भेषज जो औषध सो विदित है अर्थात् अशुभकर्म त्यागिकै भगवत् प्रीति अर्थवासना रहित आपनो कर्त्तव्य त्यागि सत्कर्म करै ताको हरि अर्पण करै ऐसेही कुछ दिन करत सन्ते मन शुद्धहोइ तब विषयते वैराग्य होई भगवत् चरणारविन्दन में प्रीति प्रकट होइ तब भजन करि भगवत् कृपाते संसार दुःख नाश है जाई इत्यादि रीति रामायण भागवत् गीतादि में विदित है ।

यथा—

"प्रथमहि विप्रचरण अति प्रीती । निज निज धर्म निरत श्रुति नीती ॥
ताकर फल पुनि विषय विरागा । तब मम चरण उपज अनुरागा" ॥

इत्यादि विदित सब जानत है ताको मतिहीन दुर्बुद्धी लखत नहीं वा रीति पर दृष्टि नहीं करत ताते गोसाईंजी कहत कि तेई शठ मूर्ख विकहे विशेषि हठ करिकै कुमार्ग करत ताते अर्कहे दुःख के वश ते दिन दिन प्रतिदिन नाम दुःखी होत जात दीनता वशते मलीन होत जात ॥ ७२ ॥

दोहा

कर्ताही ते कर्म युग, सो गुण दोष स्वरूप ।
करत भोग करतब यथा, होय रङ्क किन भूप ७३

कर्ता जो जीव ताही के कीन्हेते युग कहे दुइप्रकार के कर्म होत हैं एक शुभ एक अशुभ सो दोऊकर्म गुणदोष स्वरूप हैं अर्थात् शुभकर्म गुणस्वरूप है अशुभकर्म दोषस्वरूप है तिनको जीव जो करतव कहे कर्म शुभ अथवा अशुभ यथा कहे जा भांति करतव करत तैसेही भोगत अर्थात् अशुभकर्म करत तिनको प्रथम तौ कु-नाम अपमान होत ।

पुनः ताको फल दुःख भोगत अरु जे शुभकर्म करत ते प्रथम तौ यश पावत पाछे ताको फल सुख भोगत तामें सवासिक को भोग भूमि सुखते ब्रह्मलोक पर्यन्त भोगकारि मुक्तिजात अरु निर्वासिक करि भगवत् पद प्राप्त पर्यन्त अखण्ड है इत्यादि वर्णन को फल सबको भोगै को परी चहै रङ्क कहे दरिद्री होइ चहै राजा होइ ॥ ७३॥

दोहा

वेद पुराण शास्त्रहु यतत, निजबुधि बल अनुमान।
निजनिज करिकरिहै वहुरि, कह तुलसी परमान ७४
विविध प्रकार कथन करै, जाहि यथा भवमान।
तुलसी सुगुरु प्रसादबल, कोउ कोउ कहत प्रमान ७५

चारिउ वेद अठारहौ पुराण छहौंशास्त्र सब प्रसिद्ध कहि रहे हैं कि आत्मरूप जानिवो भगवत् सनेहसार है अरु देह व्यवहार असार है तातें देह सुखकी वासना त्यागि शुभकर्म करैं हरिसनेह हेतु कर्मन को हरि अर्पण करै इत्यादि वेद पुराण शास्त्रादिकन में प्रसिद्ध है ताको सब आपनी बुद्धि बलके विद्या बुद्धि के अनुमान यततनाम पढ़त कहत सबको सुनावत कि वेद पुराण शास्त्रादि ऐसा कहत हैं यह तौ मुखते कहत।

पुनः करते का हैं कि निज निज कहे आपन आपन करि अर्थात् हमारी देह है धन, धाम, स्त्री, पुत्र, परिवारादि हमारे हैं हम शुभकर्म करते हैं हमको सुखलाभ होइगो इत्यादि सब आपना करि वहुरि देहर्धर्म को व्यवहार सच करि है आत्मतत्त्व हरि सनेह कोऊ नहीं देखत सब देहाभिमानी है यह गोसाईंजी प्रमाण वार्त्ता सांची कहत है प्रसिद्ध लोक में देखिलेउ ॥ ७४ ॥ काहू कहत अरु काकर।

यथा—वेदन की श्रुती शास्त्रन के सूत्र भाष्य पुराणन के

श्लोकन करि विवेक,वैराग्य,षट्सम्पत्ति मुमुक्षुतादि आत्मतत्त्व विविध कहे अनेक प्रकारते कथन करत मुखते अरु मनते वाही वस्तु को मान अर्थात् सांचु करि मानते हैं कौनी प्रकार यथा कहे जौनी प्रकार करिकै भवसागर को जाहिंगे का करते हैं कि देहव्यवहार को सांचु माने ताही सुखे मनोरथ में सब जग लीन है तिनमें जापर गुरुकी दया भई सारासार को विवेक आयो ते सुगुरु के प्रसाद बलते कोऊ २ प्रमाण कहत भाव यह जो वार्त कहत ताही कर्तव्यता में आरूढ है अर्थात् देहव्यवहार असार जानि ताको त्यागि आत्मज्ञान अरु भगवत् स्नेह के ढंग में लगे हैं तिनका कहना भी सांचा है ॥ ७५ ॥

दोहा

उरडरअति लघुहोनकी, भवलघु सुरति भुलानि ।
स्वर्णलाहुलखिपरतनहिं, लखतलोह की हानि ७६

जे जाति विद्या महत्त्वरूप यौवनादि के मानवश आपनी बड़ाई की चाह में परे हैं ताते लघु कहे आपनी निन्दा होने का डर है अत्यन्त डर है भाव यह सिवाय बड़ाई की हमारी कोऊ थोड़ी भ कहै यही मानवश ते भव जो चौरासी में जन्म जरामरण तीनिउ ताप नरकादि सांसति आदि दुःखरूप लघुता में जानेकी सुरति भुलाय गई यह सुधि नहीं कि अन्तकाल कहां को जायँगे क्या दशा होयगी यह सुधि भुलाय सबका देहै की मान बड़ाई की सुधि है कौन भांति ।

यथा—स्वर्ण जो सोना ताका लाभ आगे है सो तो नहीं लखि परत इहां लोहकी हानि लखत नाम देखत कि हमारा लोह न जाता रहै इहां सोनारूप आत्मतत्त्व ताकी प्राप्ति लाभ सो तो जीवको नहीं सूझत देहमान रूप लोहा की हानि देखत कि हमारो

मान बड़ाई न जाइ सोना को ज्यों २ तपावो त्यों २ अमल कान्ति होय याते एकरस है तथा आत्मा आनन्दरूप अविनाशी सदा एक रस है अरु लोहा जो अग्नि में तपावाकरो तौं सब भवाँ दै कै चुकिजाय तथा देह असार नश्यमान है।

पुनः एक तोला सोना में पोल्ता तीनि मन लोहा आइ सकत तथा आत्मतत्त्वज्ञाता हरिस्नेहिन को मान बड़ाई भी अपार मिलत अथवा देह लोहा की हानि देखत सद्गुरु पारस को नहीं देखत जो आत्मा सोना लाभ है॥ ७६॥

दोहा

नैनदोप निज कहत नहिं, विविध बनावत बात।
सहतजानितुलसीविपति, तदपि न नेकुलजात ७७

यथा—काहू के नेत्रन में दृष्टि दोपादिरोग ते मार्ग साफ नहीं देखात ते लाजवश काहूते कहत नहीं जो वैद्यादि औषध करि दृष्टि साफ करिदेइ सो नहीं वतावत अन्दाज ते मार्ग में चलत जब कुछ वाधा लगी तब अरवराय कै गिरे तब जो काहू ने पूछा तौ मर्याद बनावने हेतु विविध प्रकार की बातें बनावत अनेक बहाना करि समुझाय देत अरु गिरिवे की चोटादि अनेक विपत्ति सहत ताहू पर लजात नहीं तैसेही ज्ञानरूप नेत्र तौ साफ है नहीं यदि पढाय कै बहुती बातें जानि लीन्हे ताही अन्दाज ते चलत परन्तु विना ज्ञानदृष्टि परमार्थपथ कैसे सूझै मानवश सद्गुरु आदिकन ते तौ कहत नहीं जो विवेक वैराग्यादि औषध करि ज्ञानदृष्टि साफ करिदेइ आपनी चातुरी ते चलत तेई कामादि वाधाते अरवराय कै गिरत ताके छिपायवे हेतु विविध प्रकार के वचन बनाइकै कहत तिनको गोसाईंजी कहत कि ते जानिके

विपत्ति सहत ठोकर खाइ गिरत तामें नेकहू नहीं लजात अरु चातुरी मान ते सद्गुरु वैद्यसों औषध पूछत लजात हैं ॥ ७७ ॥

दोहा

करत चातुरी मोहबश, लखत न निज हित हान।
शुक मर्कटइव गहत हठ, तुलसी परम सुजान ७८

विषय संग ते कामना बढ़त कामनाहानि ते क्रोध होत क्रोध ते मोह होत जब हित हानि नहीं सूझत सो कहत कि मोहवश ते हित जो परलोक ताकी हानि जीव को नहीं सूझत राग द्वेषादि अज्ञान ताते ज्ञानदृष्टिहीन पढ़ि लिखि मानवश चातुरी करि ज्ञान कथत सुजान बनत अरु कैसे मोह में बँधे हैं गोसाईंजी कहत कि शुक मर्कट इव हठ करिकै आपही विषय को गहत ताही बन्धन में बँधि परे हैं शुकबन्धन।

यथा—चीताभरे की ऊंची द्वै लकरी ठाढ़ी गाड़त तिन में ऊपर खड्डा राखत अरु एक सिरकी में चोंगली पहिनाय उसी खड्डा पर बेंड़ी धरिदेत तरे भूमि में चारा धरिदेत ताको देखि सुवा वाही पर बैठ चारा लेवे हेतु वह चोंगली घूमिगई सुवा वाही में लटकिगा तब बधिक पकरि पींजरा में बन्द कियो इहां शुभाशुभ कर्म द्वै लकरी हैं सूक्ष्म वासना सिरकी स्थूल वासना चोंगली विषय सुख चारा हेतु वासना पर बैठे वासनाने घूमि जीव को उलटा लटकाय दियो तब काल बधिक पकरि चौरासीरूप पिंजरा में बंद कीन्हों।

पुनः मर्कट यथा संकीर्ण मुख को मृत्तिकादि पात्र अर्थात् छोटे मुख की मलिया में अन्न करि भूमि में गाड़ि दिये बांदर आइ वामें हाथडारि अन्न गहे तब मूठी न निकरी तबलग नटादि बांधिलियो तथा धामरूप मलिया का पदार्थ अन्नहेतु जीव पकरे स्त्री पुत्रादि

की ममता मूठी बांधे नहीं छांड़त तब मोहरूप नट बांधि अनेक नाच नचावत है ॥ ७८ ॥

दोहा

दुखिया सकल प्रकार शठ, समुझि परत तेहि नाहिं।
लखतनकण्टकमीनजिमि, अशनभखत भ्रम नाहिं ७६

ताही मोहवश परे शठ भूख, प्यास, रोग, दरिद्रता, प्रिय, वियोग, जन्म, जरा, मरण, चौरासी में दुःख भोग नरकादि इत्यादि सकल प्रकार ते दुखिया है अर्थात् सुख काहूभांति नहीं सो मोह करि ऐसे अन्ध हैं कि सकल भांति को दुःख उनको एकहू नहीं समुझि परत कौन भांति।

यथा—लोग मछली पकरिबे हेतु कांटा में चारा लगाय जल में डारि देत तेहि कांटा को तौ मछली लखत कहे देखत नहीं अशन जो भोजन जौन चारा वामें लाग है ताके भखत कहे खात में कुछ भ्रम नहीं करत बेभ्रम खाय जात तब खेलार खैंचि लियो उसी कांटा में नाथी चली आई तथा विषय सुख भोगरूप चारा को जीव बेभ्रम खायगयो पीछे ममता रूप कांटा में नाथि मोह खेलार खैंचिके अनेक योनिरूप व्यंजन बनाय सो दुःख नहीं सूझत विषय भोग ही में परे हैं ॥ ७६ ॥

दोहा

तुलसी निज मनकामना, चहत शून्य कहँ सेय।
बचन गाय सबके विविध, कहहु पयस केहि देय ८०
बातहिं बातहिं बनिपरै, बातहि बात नशाय।
बातहि आदिहि दीपभव, बातहि अन्त बताय ८१

गोसाईंजी कहत कि आपने मनकी कामना सब शून्य को सेयके आपनो मनोरथ पूर्ण कीन चाहत अर्थात् साधनहीन सिद्ध होन चाहत वैराग्य विवेक शम, दमादि रहित स्वाभाविक वार्त्ता करि ज्ञानी होन चाहत कौनी भाँति।

यथा—वचन कहे वार्त्तामात्र गाय सबके विविध प्रकार कहे अनेक रङ्गकी सब बनाये है अरु है एकहू नहीं तामें कहहु पयस जो दूध केहिके होइ काहू के न होय।

यथा—वचनमात्र गाई तथा वचनमात्र दूध तथा ज्ञानकी वार्त्ता कीन्हे वार्त्तामात्र ज्ञानी है ८० कोऊ संदेह करै कि गुरुको उपदेश सत्संग कथाश्रवण कीर्तनादि सब वार्त्ताही में सिद्ध होत ताते वार्त्ता को काहेते शून्य कहत हौ तापै कहत कि वार्त्ता में फेर है सो कहत कि बातहि बातहि बनिपरै अर्थात् वार्त्ता कीन्हे ते सकल कार्य बनिजात।

यथा—ध्रुव माता ते वार्त्ता करतेहीं बानि गये तथा वार्त्ताही करत में नशाय भी जात।

यथा—सनकादिक ते वार्त्ता करि जय विजय की नशाय गई तामें फेर यह कि ध्रुव तौ आर्त ताते सुक्षेत्र है अरु माता के वचन हरिस्नेहवर्धक उपदेश बीज परिगयो नारद उपदेश जल पाय जामि आयो सेवा करत में कुछ ही काल में सफल भयो अरु जय विजय की वार्त्ता क्रोधवर्धक ताते बिगरिगई ताते अभिप्राय लैकै वार्त्ता सफल शून्य वार्त्ता अफल।

यथा—आगि को लैकै बात जो बयारि सो आदि में दीपभव नाम उत्पन्न भयो अन्त में शून्य बात वाही दीप को बुझाय डारत ॥ ८१ ॥

दोहा

वातहि ते बनि आवई, वातहि ते बनि जात।
वातहि ते बरबर मिलत, वातहि ते बौरात ८२
बात विना अतिशय विकल, वातहि ते हर्षात।
बनत वात वर वात ते, करत वात वर घात ८३

वातै करिकै हित वस्तु बनिकै आवत है।

यथा—अंशुमान् विना परिश्रम कपिलदेव के समीप गये प्रेम-पूर्वक दण्डवत् कीन्हे आपन हाल कहे तिन आशीर्वाद दियो अरु यज्ञ को वाजी दियो इत्यादि वस्तु बनिकै सुखपूर्वक आपने धाम को आये यज्ञ पूर्ण भई इत्यादि बनिकै आई।

पुनः वातहिते अनहित बनिकै हित वस्तु जात रहत।

यथा—साठि हजार पुत्र सगर के कपिलदेव को कुवचन कहे तिनकी मृत्यु बनिगई हित कुशल यज्ञपूर्णता जात रही।

पुनः वातैते बर नाम श्रेष्ठ वरदान मिलत और वातै ते बौरान चित्तभ्रम होत।

यथा—काकभुशुण्डि यही बात मनमें लाये कि कैसा चरित्र करत इतने में बौराने रहे।

पुनः जब शुद्ध है त्राहि त्राहि करे तब श्रीरघुनाथजी अनेक वर-दान महाश्रेष्ठ अथवा वातनै ते बरबर नाम चतुर कहावत अरु वातै दोषने बौरात उन्माद होत ॥ ८२ ॥

पुनः जाकी वात लोक में जातरही है ते पुरुष बात बिना अ-त्यन्त करिकै व्याकुल होत।

यथा—काल ते रक्षा ब्राह्मण के वालक को अर्जुन ने प्रतिज्ञा कीन्हों सो न पूर परो तब प्राण त्यागिवे को इच्छा कीन्हे जब

भगवान् या बालक को आनि दीन्हे तब आपनी बात रही जानि हर्षाने।

पुनः बातै ते वर नाम श्रेष्ठ बात बनत।

यथा—निषाद, शबरी, जटायु आदिकनकी थोड़ी बात रहै सोई बात करते बनिपरी तिनकी महाश्रेष्ठ बात बनिगई अरु जब बात नहीं करते बनत तब वर कहे श्रेष्ठ बातकी घात कहे नाश करत।

यथा—सतीजी की सब भांति उत्तम बात रहै तिनते बात नहीं करत बनी अर्थात् प्रभुकी परीक्षा लेने हेतु जानकीजी को रूप धरयो तिनकी उत्तमता नाश भई॥ ८३॥

दोहा

तुलसी जाने बात बिन, बिगरत हर इक बात।
अनजाने दुख बात के, जानि परत कुशलात॥ ८४

गोसाईंजी कहत कि बात को बिना जाने बिना विचारे जो कोऊ करत तामें हर एक बात बिगरत है।

यथा—बिना विचारे शिवजी भस्मासुर को वरदान दै आपु ही को विपत्ति बिसाहे।

पुनः परशुराम बिना विचारे श्रीरघुनाथजी से वार्त्ता करि पराजय सहे ताते यह निश्चय जानिये कि अनजाने जे बात करत तिनको विशेष दुःख होत अरु जिनको बात जानि परत अर्थात् विचारिकै करत तिनको कुशलात कहे कुशल सहित रहत।

यथा—बालि सुग्रीव रावण विभीषण इत्यादि अनेक हैं॥ ८४॥

दोहा

प्रेम वैर औ पुण्य अघ, यश अपयश जय हान।
बात बीच इन सबन को, तुलसी कहहिं सुजान॥ ८५

प्रेम अरु वैरादि सबके बीच में बात है ।

यथा—बात करते वनै तौ प्रेमप्रीति होइ न करते वनै वैर है जाय।

यथा—बालि को प्रभु शत्रु मानि वध कीन्हे सोई जब शुद्ध-वार्ता कहे तब प्रसन्न है प्राण राखने को कहे ।

पुनः सुग्रीव मित्र हैं तिनते बात करते नहीं बनी विषय भोग में भूलि प्रभुकार्य की खबरि न राखे तिनपै प्रभु क्रोध वचन कहे कि काल्हि मूढ़ सुग्रीव को मारौंगो ।

पुनः पुण्य अरु अघ पाप के बीच में बात है ।

यथा—नृग महापुण्य करते रहे सोई जब न करते बनी कि एक गऊ द्वै ब्राह्मणन को संकल्पि गयो सोई पाप है गयो अर्थात् ब्राह्मण के शाप ते गिरिगिट भये ।

पुनः जटायु, अजामिल, यवनादि पापभाजन रहे तिनते बात करते बनिपरी ते महासुकृती है हरिधाम पाये यश अपयश के बीच में बात है ।

यथा—यश के पात्र दशरथ जीते करते न बना तिनको अपयश प्रसिद्ध है ।

पुनः अपयशपात्र व्रजगोपिका पर पुरुषरति सो करते बनी भगवत् में रतभई तिनको यश भयो जय कहे जीति हानि पराजय ताहू के बीच में बात है ।

यथा—जय के पात्र परशुराम बालि तिनते बात करत न बनी ताते प्रभुते पराजय पाये ।

पुनः हानि के पात्र सुग्रीव तिनते बात करत बनी ते जय लाभ को प्राप्त भये इत्यादि गोसाईंजी कहत कि बात बीच इन सबको है ऐसा सुजानजन भी कहते हैं ॥ ८१ ॥

दोहा

सदा भजन गुरु साधु द्विज, जीव दया सम जान।
सुखद सुनै रत सत्य व्रत, स्वर्ग सप्त सोपान ८६

सदा जे हरिभजन करत गुरु की अरु साधुन की अरु ब्राह्मणन की जे सदा सेवा करत तहां गुरु उपदेश करत साधुजन सुमार्ग की रीति सिखावत ब्राह्मण वेद पुराणादि सुनाय अनेक सुधर्म की बातैं बतावत ।

पुनः जीवन पर दया करना अर्थात् आपनी चलत काहू जीव को दुःख न होने पावै जग में सबको समभाव ते जानै राग द्वेष काहू ते न करै सुखद आपनी चलत सबको सुखै देइ दुःख काहू को न देवै नय कहे नीति तामें सुनीति में जो रत हैं अनीति की बातैं भूलिकै नहीं करत जे सत्य को व्रत धारण कीन्हे अर्थात् सिवाय सत्य के झूठ सपनेहू में नहीं बोलत ताते भजन करना १ गुरु साधु द्विजन की सेवा करना २ जीवन पै दया ३ लोक में समदृष्टि रखना ४ सबको सुख देना ५ सुनीति पर चलना ६ सत्यव्रत धारणा ७ इत्यादि ये सातहू क्रिया स्वर्गलोक जाने की सातहू सोपान नाम सीढ़ी हैं अर्थात् इनहीं में जो लाग है ताको जानिये कि ऊर्ध्वलोकगामी है तामें जे सवासनिक हैं ते ब्रह्मलोक पर्यन्त जायँगे अरु जे निर्वासनिक हैं सो भगवत् को प्राप्त होंगे ॥ ८६ ॥

दोहा

वञ्चकबिधिरत नर अनय, बिधि हिंसा अतिलीन।
तुलसी जगमहँ बिदितबर, नरक निसेनी तीन ८७

जे नर जग गुण दोष युत, तुलसी वदत विचार।
कबहुँ सुखी कबहूँ दुखित, उदय अस्त व्यवहार ८८

अब नरक जाने की रीति देखावत ।

यथा—वञ्चक कहे छल की जो विधि है अर्थात् पाखण्ड करि वा चोरी ठगी करि जे लोभवश अनेक छल बल करि परधन हरते हैं ।

पुनः जे नर अनय कहे अनीति में रत हैं अर्थात् परस्त्री में रत होना पर अपवाद परहित हानि को करना मद्यपान जुवा वेश्यन सों प्रीति कुटिलता ईर्षादि ।

पुनः जे हिंसा की विधि में रत अर्थात् आपने सुख हेतु वा क्रोधवश अनेक जीवन को घात करते हैं दयारहित ताते वञ्चकविधि जो छलक्रिया १ अरु अनीति में रत होना २ हिंसा में लीन होना ३ इत्यादि गोसाईंजी कहत कि ये तीनिहूँ वर नाम श्रेष्ठ नरक जाने की निसेनी नाम सीढ़ी हैं ते लोक विदित सब जानत हैं कि इन बातन को करनेवाला अवश्य नरक को जाइगो यामें सन्देह नहीं है ८७ प्रथम स्वर्ग जाने की सब गुणमय वार्त्ता कहे ।

पुनः नरक जाने की दोषमय वार्त्ता कहे अब दोउन में बिचारिकै गोसाईंजी वदत नाम कहत हैं कि जग में जे नर गुण अरु दोष दोऊ युत हैं अर्थात् स्वर्ग जाने की जो क्रिया है तिनहूँ को करत अरु नरक जाने की जो क्रिया हैं तिनहूँ को करत तिनकी जब सुकृति उदय भई तब सुख पावत जब दुष्कृति उदय भई तब दुःख पावत ताते कबहूँ सुखी होत अर्थात् धन पुत्रादि समूह होत अरु कबहूँ दुःखित होत अनेक आपदा परती है कौन भाँति ।

यथा—उदय अस्त व्यवहार अर्थात् जब सूर्य उदय भयो प्रकाश

पाय सब सुखद बातैं होत जब सूर्य अस्त भयो तब अन्धकार में चौरादि अनेक आपदा होत ताते जो सुकृत करै सो पापकर्म त्याग करै तौ शुद्ध परमार्थ बनै ॥ ८८ ॥

दोहा

कारज जगके युगलतम, काल अचल बलवान।
त्रिविध बिबलते ते हठहि, तुलसी कहहिं प्रमान ८६

जग के कारज जो शुभाशुभ कर्म हैं ते दोऊ जीव को अन्ध करिवे को तम कहे अन्धकाररूप हैं काहे ते अशुभ तौ स्वाभाविकैं पापरूप है अरु लोकसुख की वासना सहित शुभकर्म भी अशुभ के संगी हैं ताते दोऊ मोह तमरूप हैं अरु पल, दण्ड, दिन, वर्षादि जो काल है सो अचलवल बलवान् है काहेते जा समय में जो बात होनहार है सो निश्चय होत अरु कर्मन को फल क्रियमाण कारण पाय घटिव बढ़ि जात।

यथा—नृग को शुभ में अशुभ भयो अरु यवन को अशुभ में शुभ भयो अरु काल में।

यथा—सतयुग में सर्व धर्मात्मा कलि में सर्व अधर्मी ताते शुभाशुभ द्वैभाँति के जग के कार्य अरु काल इन त्रिविध ते, अथवा रजोगुणी सतोगुणी तमोगुणी इत्यादि त्रिविध को जो स्वभाव है ताके बि कहे विशेष बलते अरु काल के बलते ते कहे ताहीते हठहि गाहि जीव शुभाशुभ कर्म करत अर्थात् सतोगुण स्वभाव-वाले शुभकाल पाय स्वर्गादि सुख वासनाते शुभकर्म करत अरु नष्टकाल आये अशुभ वंचकतादि करत।

पुनः जे रजोगुण स्वभाववाले हैं ते शुभ समय पाय शुभकर्म नाम होने हेतु करत नष्टकाल पाये सुखहेतु अनीति करत तमोगुण स्वभाववाले शुभकाल पाय शुभकर्म करत सो अभिमान ते करत

अरु नप्रकाल पाय अशुभकरत सो हिंसादि करत इत्यादि काल स्वभाव वश ते जीव शुभाशुभ कार्य करत ते दोऊ महामोहतम हैं इत्यादि वार्त्ता गोसाईंजी प्रमाण कहे सांची कहत हैं ॥ ८९ ॥

दोहा

अनुभव अमलअनूपगुरु, कछुक शास्त्र गति होय।
बचै कालक्रम दोषते, कहहि सुबुध सब कोय ९०

अब काल कर्मन के दोषते बचवे का उपाय कहत हैं कि श्री-गुरु जब अनूप होय जिनके कृपा उपदेशते स्वभाव की हठ नाश होय सारासार को विचार होय तब विषयवासना त्यागि भजन करै ताके प्रभावते अमल अनुभव होइ तब काल के वेग में न भुलाय अरु कछुक शास्त्र में गति होइ ताके चिन्तन ते शुभाशुभ कर्मन में सत्रासनिक निर्वासनिक को ज्ञान होइ तब अशुभकर्म त्याग करै शुभकर्म वासनाहीन हरिसनेह हेतु करै तब काम अरु कर्मन के दोषनते बचै अरु भगवत् में सनेह उपजै तब जीव बन्धनते छूटै ऐसा सुबुद्धिवाले जन सब कोऊ कहत हैं शास्त्र प्रमाण है ॥ ९० ॥

दोहा

सब विधि पूरणधाम वर, राम अपर नहिं आन।
जाकी कृपा कटाक्ष ते, होत हिये दृढ़ ज्ञान ९१

जप, तप, बलि, पूजादि कुछ नहीं चाहत ताते सबविधि ते पूरणधाम इच्छारहित वर कहे श्रेष्ठ स्वामी एक श्रीरघुनाथजी हैं इनकी सम अपर दूसरा कोऊ आन स्वामी नहीं है और सब पूरा चरण बलि पूजादि, चाहत अरु श्रीरघुनाथजी एक शुद्ध प्रेम में प्रसन्न होत कैसे प्रसन्न होत अत्यन्त करिकै कृपा करत जाकी कृपाकटाक्ष ते जीवन के उर में दृढ़ज्ञान होत है तहाँ कृपा गुणको

यथा लक्षण है कि प्रभु में सदा यह दृढ़ है कि हम सब प्रकार सब लोकन के रक्षक हैं और दूसरा नहीं हैं।

यथा—भगवद्गुणदर्पणे

"रक्षणे सर्वभूतानामहमेव परो विभुः।
इति सामर्थ्य सन्धानं कृपा सा पारमेश्वरी"॥

अथवा आपनी सामर्थ्यता के अधीन जीवमात्र को वन्ध मोक्षादि कार्यसमूह को मनमें जानना सदा।'

यथा—"स्वसामर्थ्यानुसंधानाधीनकालुष्यनाशनः।
हार्दो भावविशेषो यः कृपा सा जागदीश्वरी"॥

कृपूसामर्थ्ये धातु है याते परम समर्थवाचक कृपापद को अर्थ है।

यथा—"कृपूसामर्थ्ये इति सपन्नत्वात् कृपाशब्दस्यायमर्थो निष्पन्नः"।

ताते स्वर्ग नरक अपवर्गादिक सब ताही के अधीन हैं यह मुख्य रूप कृपा गुण को है जो बड़े बड़े साधनादि अतिश्रम कीन्हे ज्ञानादि पदार्थ घुणाक्षरन्याय करिकै लाभ होत है सो समूह दिव्यपदार्थ केवल कोसलेशकुमार की कृपाकटाक्ष कणमात्र ते शीघ्र ही लाभ होत है अनायास संशय रहित।

यथा—भारते

"या वै साधनसम्पत्तिः पुरुषार्थचतुष्टयम्।
तया विना तदाप्नोति नरो नारायणाश्रयः"॥

भागवते

"किं दुरापादनं तेषां पुंसामुद्दामचेतसाम्।
यैराश्रितस्तीर्थपदश्चरणो व्यसनात्ययः"॥

पुनस्तथाचार्यः

"यस्य कृपा भवेत्पुंसो रामस्यामिततेजसः।
तस्यैवाचार्यसंगः स्यात् साध्यसाधनभेदकृत्"॥

श्रीरामायणे

"सतं निपतितं भूमौ शरण्यः शरणागतम् ।
वधार्हमपि काकुत्स्थः कृपया पर्यपालयत्" ॥ ६१ ॥

दोहा

सो स्वामी सो तरसखा, सो वर सुखदातार।
तात मात आपदहरण, सो असमय आधार ६२

सो जो श्रीरघुनाथजी तेई स्वामी अर्थात् निर्हेतु रक्षक हैं अरु सेवा करिवे में सुलभ हैं ।

यथा—अध्यात्म्ये

"को वा दयालु स्मृतकामधेनुरन्यो जगत्यां रघुनायकादहो ।
स्मृतो मया नित्यमनन्यभाजा ज्ञात्वा स्मृतिं मे स्वयमेव यातः" ॥

पुनः तर कहे अत्यन्त सखा सो श्रीरघुनाथैजी हैं यह सौहार्द-गुण श्रीरघुनाथैजी में है याको क्या लक्षण है कि ब्राह्मण क्षत्रिय आदि वर्णाश्रम विना तथा योग ज्ञानादि साधन शुभगुणादि के अपेक्षा विना केवल शरणमात्र सों प्रसन्न होके अपन्यावना यही सौहार्द है ।

यथा—भागवते हनुमद्वाक्यम्

न जन्म नूनं महतो न सौभगं न वाङ्न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः ।
तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकसश्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः" ॥

पुनः सोई श्रीरघुनाथजी जीवमात्र के वर कहे श्रेष्ठ सुख के देनहार हैं सो निर्हेतु जीवन को सुख देना यह दयागुण है जिनको नाम लेत स्वाभाविक सब भयनास होत ।

आदिपुराणे श्रीकृष्णवाक्यम्

"श्रद्धया हेलया नाम वदन्ति मनुजा भुवि ।
तेषां नास्ति भयं पार्थ रामनामप्रसादतः" ॥

पुनः आपद जो विपत्ति ताको हरने हेतु तात मात कहे माता पिता के सम प्रभु हैं।

यथा—अध्यात्मे

"सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम"॥

पुनः सोई श्रीरघुनाथजी असमय परे के आधार हैं।

यथा—भरद्वाजस्तोत्रे

"रामरामेतिरामेति वदन्तं विकलं भवान्।
यमदूतैरनाक्रान्तं वत्स गौरिव धावति"॥ ६२॥

दोहा

सुखद दुखद कारज कठिन, जानत को तेहि नाहिं।
जानेहुपर बिन गुरुकृपा, करतब बनत न काहि ६३

सुखद कहे सुखके देनहार कारज जो शुभकर्म यज्ञ, तप, पूजा, जप, तीर्थ व्रतादि यावत् सत्कर्म हैं।

पुनः दुःखद दुःख देनहार कार्य छल अनीति हिंसादि यावत् अशुभकर्म हैं तिनको जग में को नहीं जानत है अर्थात् भले को भला बुरे को बुरा होत यह सब संसार जानत परन्तु शुभाशुभ कर्म ऐसे कठिन हैं कि जानेहु पर विना श्रीगुरु की कृपा भये वाको करतव काहि कहे कासों करत वनत है अर्थात् काहू सों नहीं वनत ताते गुरु की शरण जाय जब कृपाकरि राह बतावैं तब विचार आवै तब अशुभकर्म त्यागि निर्ष्कामिक शुभकर्म करै तब विषय ते विराग आवै हरिभक्ति में मन लागै तब भजन करते करते सुखरूप भगवत् को प्राप्त होइ जीव को दुःख छूटि जाय॥ ६३॥

दोहा

तुलसी सकल प्रधान है, वेद विदित सुखधाम।

तामहँ समुझव कठिन अति, युगल भेद गुण नाम ९४

सुखधाम कहे विशेष सुख देनहारे यावत् पदार्थ हैं तिनको गोसाईंजी कहत कि यज्ञ तपस्यादि सकल जो शुभकर्म हैं ते प्रधान कहे सब मुख्य है अरु वेद में विदित हैं अर्थात् सब जानत कि सत्कर्म सब सुख के धाम हैं तामहँ कहे तिन सुकर्मन में जो समुझव है अर्थात् कौन कारण ते सुखद होत कौन कारण ते दुःखद होत यह समुझव अत्यन्त करिकै कठिन है काहे ते नाम में जो गुण है तामें युगल कहे दुइभाँति को भेद है अर्थात् जग में यावत् नामधारी हैं तामें सुखद दुःखद दोऊ भाँति के गुण सब में हैं।

यथा—चन्द्रमा सम्मुख शुभयात्रादि को सुखद युद्ध को दुःखद घृत दुग्धादि पुष्टता को सुखद ज्वरादि में दुःखद जैसे मिश्री आदि को शरवत पित्तवाले को सुखद कफवाले को दुःखद ताही भाँति सत्कर्म यावत् हैं सवासनिक दुःखद होत निर्वासनिक सुखद होत याही भाँति सब में द्वै भाँति के गुण हैं॥ ९४॥

दोहा

नाम कहत सुख होत है, नाम कहत दुख जात।
नाम कहत सुख जात दुरि, नाम कहत दुखखात ९५

नाम कहत सुख होत है अर्थात् नाम कहत अद्भुत सुख होत अर्थात् जे वासनाहीन प्रेमसहित श्रीराम नाम कहत तिनको अद्भुत सुख होत जैसे शिवजी तथा नारद अगस्त्य इत्यादि।

पुनः नाम कहत दुःख जात अर्थात् जे आरतजन सब को आश भरोसा त्यागि श्रीराम नाम कहत तिनको दुःख नाश ह्वै जात जैसे गजराज तथा कुत्सितकर्म की वासना राखि जे नाम कहत तिनको स्वाभाविक सुख दुरि कहे जात रहत यथा कैकेयीजी कहे।

"तापसवेस विशेष उदासी।

चौदह वर्ष राम बनवासी" ॥ तिनको विधवापन पुत्रकी विमुखता लोक में अयश आदि दुःख भयो।

पुनः नाम कहत दुःख प्राणन को खाइ जात अर्थात् कुत्सितकर्म वासना वालेन की संगति में जे नाम कहत तिनके प्राणै जात।

यथा—दशरथ महाराज कैकेई की संगति में नाम कहे।

"भामिन राम शपथ है मोहीं" यतरेही नाम कहते ऐसा दुःख भयो जो प्राणै खाइ गयो।

पुनः प्राकृत राजादिकन को यशरूप नाम लिये ते अद्भुत लोक सुखपावत जैसे हरिनाथ केशवदासादि।

पुनः जे काहू करि पीडित है ते राजा की दुहाई रूप नाम लेत तिनको दुःख छूटि जात जैसे विक्रमादित्यादि अनेकन को दुःख छुड़ाये।

पुनः सबल को निन्दारूप नाम लेत ताको सुख जात जैसे परशुराम श्रीरामजी को कुवचन कहे ताको मान-रूप सुख जात रहो तथा शिशुपाल श्रीकृष्ण की निन्दारूप नाम कहे ताको दुःख प्राणै खाय गयो ॥ ६५ ॥

दोहा

नाम कहत बैकुण्ठ सुख, नाम कहत अघखान।
तुलसी ताते उर समुझि करहु नाम पहिंचान ६६

नाम कहत बैकुण्ठवासरूप सुख मिलत जैसे अजामिल यवनादि मरत समय श्रीरामनाम लेने ते बैकुण्ठवास सुख पाये।

पुनः नाम कहत अघ जो पाप ताकी खानि होत अर्थात् श्रीरामनाम ते मारणादि षट् प्रयोग सिद्ध होत हैं परन्तु जो कर्ता है ताको महापाप अर्थात् नरकी होत है यह अगस्त्यसंहिता में लिखा है ऐसा विचारिकै गोसाईंजी कहत कि ताते उरमें समुझि

कै सबभांति ते विचार करिकै श्रीरामनाम ते पहिंचान करौ तहां श्रीरामनाम जपवे में जो दशभांति को अपराध होत ताको श्रीराम नाम नहीं सिद्ध होत सो संतन की निन्दा १ शिव में श्रीराम में भेद २ वेद पुराण की निन्दा ३ श्रीसद्गुरु की अवज्ञा ४ नाममाहात्म्य में तर्क ५ नामबल पाप करना ६ नाम को अन्य साधन सम मानना ७ अश्रद्धा में नामोपदेश ८ नाम माहात्म्य सुनि हर्ष न होना ९ नामजपते कामादि वासना १० इत्यादि त्यागि नाम जपै तब सिद्ध होइ ।

यथा—पद्मपुराणे

"दशापराधयुक्तानां न भवेत्सौख्यमुत्तमम् ।
तस्माद्धेयं विशेषेण सर्वावस्थासु सर्वदा" ॥

इत्यादि विचारि नाम जपै ॥ ९६ ॥

दोहा

चारौ चौदह अष्टदश, रस समुझत भरिपूर।
नामभेद समुझे विना, सकल समुझ महँ धूर ९७

ऋग् यजु साम अथर्वण इति चारौं वेद चौदह विद्या ।

यथा—ब्रह्मज्ञान १ रसायन २ ताल स्वर राग ३ वेद-विद्या ४ ज्योतिष ५ व्याकरण ६ धनुर्विद्या ७ जलतरण ८ छन्दपिंगल ९ कोकसार १० सालिहोत्र अश्वशिक्षा ११ नृत्य १२ सामुद्रिक १३ काव्यादि-चातुरी १४ इति चौदह विद्या ।

पुनः अष्टादशपुराणै यथा मत्स्य १ भविष्य २ शिव ३ वाराह ४ वामन ५ ब्रह्म ६ ब्रह्माण्ड ७ गरुड़ ८ मार्कण्डेय ९ पद्म १० विष्णु ११ नारदीय १२ लिङ्ग १३ ब्रह्मवैवर्त्त १४ अग्नि १५ कूर्म १६ स्कन्द १७ भागवत् १८ इति अठारहौ पुराणै ।

पुनः रस कहे छः शास्त्र मीमांसा १ वैशेषिक २ न्याय ३ सांख्य ४ योग ५ वेदान्त ६ इति षट्शास्त्र इत्यादिकन को पढ़िकै जो समुभव है।

यथा—वेदन में वर्णाश्रमादि के धर्म कर्मादि विधिवत् जानना चौदहविद्या में यावत् चातुर्यता सब है अठारहौ पुराणन में कर्म, ज्ञान, उपासना लोकन की व्यवस्था युगन में धर्माधर्मादि अवतारन के चरित्रादि जानना षट्शास्त्रन में मत मतान्त जानना इत्यादिकन को भरिपूर जो समुभदारी है सो सब समुभै होइ तामें नाम को भेद समुभे बिना अर्थात् कौन भांति नाम लेने से भलाई कौन भांति ते बुराई इत्यादि समुभे बिना सब समुभदारी में धूर कहे वृथा है ॥ ९७ ॥

दोहा

वार दिवस निशि माससित, असित बरष परमान।
उत्तर दक्षिण आश रवि, भेद सकल महँ जान ९८

वार कहे दिन तामें रवि, चन्द्र, गुरु, बुध, शुक्र, शुभकार्य को शुभ हैं अशुभ कार्य को नहीं शुभ हैं भौम, शनि अशुभ कार्य को शुभ हैं अरु शुभ कार्य को नहीं शुभ तामें दिशाशूलादि भेद सब में शुभाशुभ तामें दिवस प्रकाशमय रात्री अन्धकारमय।

पुनः मास तामें अगहन, फाल्गुन, ज्येष्ठ, भाद्र ये शुभ हैं अपर अशुभ हैं ताहू में सितपक्ष प्रकाशमय शुभ असितपक्ष अन्धकारमय अशुभ तथा वरषतामें कौनौ शुभ कौनौ संवत् अशुभ तामें उत्तरायण शुभ दक्षिणायन अशुभ इति उत्तर दक्षिणादि जो द्वै आश कहे दिशा येई रवि के अयन हैं इत्यादि सकल वस्तुन में परमान कहे यथार्थभेद सब में है इत्यादि नामन के भेद बिना जाने काहू नाम ते कुछ कार्य कीन चाहै सो सिद्ध न होइगो।

यथा—मित्रता हेतु कुछ पुरश्चरण करै तामें अगहनादि शुभमास शुक्लपक्ष तामें उत्तम सप्तमी आदि तिथि पुष्यादि शुभनक्षत्र सम्मुख चन्द्र पीछे योगिनी शुभ वलीलग्न में प्रारम्भ करै तो निर्विघ्न कार्य सिद्ध होइ।

पुनः उच्चाटनादि अशुभ कार्य हेत कार्त्तिकादि अशुभमास कृष्णपक्ष अमादि तिथि भरणीआदि नक्षत्र भौमादिवार सम्मुख योगिनी पीछे चन्द्रमा अशुभलग्न में प्रारम्भ करै तौ कार्य सिद्ध होइ इत्यादि सब में भेद है॥ ९८॥

दोहा

कर्म शुभाशुभ मित्रअरि, रोदन हसन बखान।
और भेद अति अमितहै, कहँलगि कहिय प्रमान ९९

कर्मनाम एक तामें शुभाशुभ द्वै भेद हैं सम्बन्ध अर्थात् भाव नाम एक तामें मित्रभाव शत्रुभाव द्वै भेद हैं चेष्टा नाम एक तामें उदासचेष्टा अर्थात् रोदन प्रसन्नचेष्टा अर्थात् हँसन इत्यादि बखान कीन परन्तु इनमें अमित भेद हैं।

यथा—कर्म एक भगवत्कर्म एकै देवादिकन को कर्म तामें सवासनिक निर्वासनिक तामें भगवत्कर्म सवासनिक भी भला है अर्थात् आर्त्त अर्थार्थी ये भी भक्त हैं अरु देवादिक सवासनिककर्म बन्धन हैं काहेते वासना हेत कीन्हे वाही में बहुत अशुभ प्रकट है जात।

यथा—यज्ञ करत में इन्द्र विश्वरूप को वध कीन्हे तिन दोऊ को फल दुःख सुख भोग बन्धन है।

पुनः निर्वासनिक जे हरि अर्पण हैं ते मुक्तिदायक हैं जैसे पृथुकी यज्ञ ध्रुवकी तपस्या विना हरिअर्पण कीन्हे पाप कर्मन में खण्डित है जात।

पुनः मित्रता में भेद है सुजनन की मित्रता मुक्तिदायक कुमार्गिन की मित्रता भवदायक है शत्रुता में भेद है धर्महेत शत्रुता भी यश मुक्तिदायक है जैसे रावण ते शत्रुता करि जटायु यश मुक्ति दोऊ पाये अरु स्वारथ हेत शत्रुता लोकव्यवहार है।

पुनः रोदन में भेद है एक मङ्गलीक एक अमङ्गलीक मङ्गलीक में भगवत् में प्रेम आये को रोदन मुक्तिदायक है पुत्रोत्सवादि में प्रेमाश्रु वा स्त्रीन को संयोग वियोग में स्वाभाविक रोदन सो लोकव्यवहार है।

पुनः अमङ्गलीक रोदन में भेद है।

यथा—अमङ्गलीक प्रभु वनगमन में अवधवासिन को रोदन मुक्तिदायक।

पुनः निज दुःख को रोदन लोकव्यवहार है इत्यादि अनेकन भेद प्रकट हैं तिनको प्रमाण कहां तक कहिये ॥ ९९ ॥

दोहा

जहँलगि जन देखब सुनब, समुझब कहब सुरीत।
भेद बिना कछु है नहीं, तुलसी बदहिं बिनीत १००

रूपमात्र नेत्रनको विषय जहाँतक देखना है।

तथा शब्दमात्र श्रवण को विषय जहांतक सुनना है।

तथा विचारमात्र बुद्धिको विषय जहांतक समुझना है।

तथा वचनमात्र मुख को विषय जहांतक कहनाहै इन आदि है जहांतक सुरीति जग में विदित है तिन सबमें भेद है।

यथा—एक देखना भगवत्रूप लीला सन्तादिक के दर्शन सोऊ में भाव प्रेम सहित देखणो मुक्तिदायक है अभाव ते देखना अपराध होत तथा परस्त्री आदि को देखना ताहूमें भेद पापदृष्टि ते देखना नरकदायक अभाव ते देखना निरपराध है। सुनब भगवत् यशादि को श्रवण ताहूमें भेद भाव सहित मनदै श्रवण

मुक्तिदायक है परस्त्री आदिकन में मन राखि श्रवण अपराध है। जैसे कुमार्गी वार्त्ता मनदै सुनेते नरकदायक अभाव ते सुने निरपराध है समुझबे में भेद है भगवत् तत्त्वादि को समुझब मुक्तिदायक है अनहित को हित समुझिलेना दुःखदायक।

यथा—सरस्वती प्रेरित मन्थरा के वचन सुनि कैकेयी अनहित को हित समुझे ताको फल विदित है।

पुनः कहबे में भेद एक सत्य शुभ है असत्य पाप है तहाँ सत्य में भेद है स्वाभाविक सत्य धर्म को अंग है परन्तु काहू भयातुर को देखे अरु दण्डदायक के पूछे सत्य कहै कि इहां लुका है उसने ढूँढिकै मारिडार्यो यह सत्य अधर्म को अंग है इहां झूठही धर्मांग है स्वाभाविक असत्य अधर्म है इत्यादि अनेक भेद सब में हैं ताते यावत् जग में विदितरीति हैं ते सब भेद रहित कछु नहीं हैं इत्यादि वार्त्ता विशेष नीति गोसाईंजी बदत नाम कहत ताको सुजन समझो ॥ १०० ॥

दोहा

भेद याहिविधि नाम महँ, बिनगुरु जान न कोय।
तुलसी कहहिं बिनीतबर, जोबिरंचिशिवहोय १०१

इति ज्ञानसिद्धान्तयोगोनामषष्ठस्सर्गः ॥ ६ ॥

यथा—पूर्व सर्व वस्तुनमें भेद कहि आयेहैं याही भांति श्रीराम नाम में भी भेद है तामें जपादि की विधि अरु दश नामापराध इत्यादि भेद इसी सर्ग में पश्चात्त्वे के दोहा में कहि आये हैं अरु नाम के अन्तर्गत जो भेद हैं ते दूसरे सर्ग के चौबिस दोहाते अरु पैंतालिस दोहा तक सबभांति नामके भेद कहि आये याते इहां नहीं लिखा सो जो भेद है ताको जो कोऊ जाना चाहै सो सद्गुरु की शरण जाइ जब कृपाकरि बतावैं तब जानि पावै अरु

बिना गुरु के बताये कोऊ नहीं जानि सकत इत्यादि वचन गोसाईंजी विशेष नीतिके वर नाम श्रेष्ठ वचन कहत हैं कि और की कौन गिनती है जो विरश्चि कहे ब्रह्मा अरु शिव नाम को भेद जानाचाहै सोऊ विना गुरु नहीं जानि सकत और की कौन गिनती है ॥ १०१ ॥

पद—सजनी री साजु शृंगार नैहरमा ॥
फिरिना बनाव बनी पिय घरमा ॥ १ ॥
उबटन सुकृतसुप्रेमशुद्ध जल मज्जनमनगत मैलकुकरमा।
कटिपटधर्मशीलचूनरनवश्रवणादिक भूषण अँगवरमा ॥ २ ॥
बन्धनभाव माँग समतादम सेंदुर नेह सनेह बिमरमा।
बुद्धिसुनैन ज्ञान अञ्जनदै सज्जनता चूरी वर करमा ॥ ३ ॥
वेसरि शान्ति दया श्रुतिभूषण हरिगुण मुक्तमालमय गरमा।
नूपुरमीठ वयन गुणजावक घूँघुट ध्यान त्याग चादरमा ॥ ४ ॥
ममता मातु मोह पितु छूटो पराभक्ति पावन ससुरमा।
तुरिया सेज शयन करु सुन्दरि वैजनाथ पतिय भरिगरमा ॥ ५ ॥

इति श्रीरसिकलताश्रितकल्पद्रुमसियवल्लभपदशरणागत
वैजनाथविरचितायां सप्तशतिकाभावप्रकाशिकायां
ज्ञानसिद्धान्तयोगो नाम षष्ठप्रभा समाप्ता ॥६॥

दो० जीवसहजगति अनवरत, नयमारगसतकारि।
श्रीगुरुकृपावारिधर, चरणकमल बलिहार ॥ १ ॥
सीतावल्लभ सुलभ नित, बुधि विद्यादातार।
ता बलही अर्थहि करौं, प्रभुपद रज शिरधार ॥ २ ॥

यासर्ग में नीतिप्रस्ताव वर्णन है तहां राजनीति तौ मुख्य यह है।

यथा—

"मुखिया मुखसों चाहिये, खानपान को एक।
पालै पोषै सकल अँग, तुलसी सहित विवेक ॥"

पुनः धर्मनीति जो सदा जीवमात्र को चाही।
यथा—
" जननी सम जानहिं परनारी। धन परार विपते विष भारी॥
शम दम नेम नीति नहिं डोलहिं। परुषवचनकबहूंनहिंबोलहिं॥
काम क्रोध मद मान न मोहा। लोभ न छोभ नराग नद्रोहा॥"
इत्यादि सबको नीति चाही। इति भूमिका॥

दोहा

तिनहिं पढ़े तिनहीं सुने, तिनहिं सुमति परगाश।
जिन आशा पाछे करे, गहे अलंम निराश १

दो० सीता सीतानायपद, माय नाय पुट्हाथ।
शरणगहत लखि कल्पनय, हैं सागरनय पाथ॥ १॥

अथ वार्तिक तिलक।

यथा—प्रथम जीवमात्र के नीति मूल निराशा है काहेते जो काहूकी आशा न राखे तो अनीति काहेको करे सो कहत कि जे जन निराशा आलम गहे हैं हृदय में दृढ करि निराशा पकरे अरु आशा को पाछे करे अर्थात् इन्द्रिय सुखादि विषयवासना को पीठि दीन्हे भाव विषय ते विरक्त हैं तिनहीं पढ़े हैं अर्थात् विरक्तन को मन शुद्ध रहत ताते वेद पुराणादि जो पढ़त ताको गूढ़ तत्त्व समुझत हैं।
पुनः तिनहीं सुने अर्थात् गुरु को अरु शास्त्र को वचन जो सुनत सो चित्त में भासत तब उर में विचार आवत तिनहीं के उर में सुन्दरि मति को परगाश होत अर्थात् भगवत्तत्त्व निरूपण करने वाली अमल बुद्धि होत तब भक्ति को अधिकारी होत॥ १॥

दोहा

तब लागि योगी जगत गुरु, जब लागि रहै निरास।
जब आशा मन में जगी, जग गुरु योगी दास २

जो लोकआशा त्यागि हरिपद में मनयुक्त करिबे की युक्ति जाननेवाला ऐसा जो है योगी सो तबलगि जगत् को गुरु उपदेशदायक बना है अर्थात् जाको उपदेश देइ ताके लागै कबतक जबतक विषयसुख शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि विषय ते निराश रहै अरु जब इन्द्रिय सुखादि की आशा मन में जगी तबै जग तौ गुरु भयो अर्थात् उपदेशदायक अरु योगी दास है गयो कौन भांति कि जब विषय की चाह इन्द्रिन में आई तब मन में अनेक कामना भई जब काहू भांति कामना पूरण न भई तब क्रोध करने लगे तब सब जगके लोग उपदेश करने लगे कि बाबाजी आप महात्मन को लोभ हेत क्रोध करना न चाहिये ताते सन्तोष अरु शान्ति मन में लावो ।

पुनः क्रोध भयेते मोह आयो अर्थात् हिताहित नहीं सूझत तब बुद्धिविभ्रम भयो बुद्धि नाश भये ते शास्त्र गुरु उपदेश भूलि गयो महाविषयिन की भांति परस्त्रीरतादि अनेक भांति की अनीति करने लगे तब सब जग के लोग पुनः उपदेश करने लगे कि आर्य महात्मा हौ काम मोहवश होना न चाहिये ताते मनमें विवेक लावो ब्रह्मचर्य ले रहौ इत्यादि जग गुरु भयो योगी दास है गयो जगको उपदेश सुनै लगो ॥ २ ॥

दोहा

हितपुनीतस्वारथ सबहि, अहितअशुचि बिनचाह ।
निजसुखमाणिकसमदशन, भूमि परत भौहाड़ ३

जगकी स्वाभाविक यह रीति है कि जा पदार्थ में जबतक कुछ आपनो स्वारथ देखते हैं तबतक वाको हितकार अरु पुनीत कहे पवित्र करि मानते हैं ।

यथा—गऊ भैंसी आदि शिशु प्रसवसमय वाको कोऊ घृणा नहीं करत दुग्ध को स्वारथ जानि उसी के मरेपर कोऊ छूता नहीं।

पुनः रोग मिटावन समय वैद्य युद्ध समय वीर इत्यादि अनेक वस्तु स्वारथ हेतु हितकार पीछे कुछ नहीं तैसे जामें अपावनता भी देखात अरु वामें स्वारथ देखत ताको पवित्रसम ग्रहण करत।

यथा—किसान मैलाको संग्रह करत खेत में डारिवेहेतु इत्यादि चाड़ कहे स्वारथ विना अहितकरि मानत।

यथा—युवा स्त्री को पति नपुंसक है गयो ताको शत्रुसम जानत।

यथा—गज, वाजि, भैंस, गऊ, वृषभादि स्वारथ हीन भये उदरभरि भोजन नहीं पावत अन्नादि पावत है जब भोजन के योग्य न रहो ताको अपावनसम फेंकिदेते हैं।

पुनः देखौ निज कहे आपने मुख में दशन जो दांत जबतक भोजन करिबे योग्य है तबतक माणिकसम अमोल करि मानत सोई दांत भूमि परे अर्थात् मुखते गिरिगये हाड़ सम अपावन है गयो यही भांति जगके यावत् सम्बन्धी है ते सब स्वारथ के साथी हैं याते लोकव्यवहार झूठा जानि त्यागकरि सांचा पद भगवत्स्नेह में मन लगावो ॥ ३ ॥

दोहा

निजगुणघटत न नागनग, हर्षि न पहिरत कोल।
गुंजा प्रभु भूषण करे, ताते बढ़े न मोल ४

सांचीबात में सदा गुण एकरस रहत।

यथा—नागनग गजमुक्ता ताको वनमें कहूं कोलभिल्ल पायगये वाको गुण नहीं जानत ताते हर्ष सहित नहीं पहिरत तिन कोलन

भिझन के अनादर कीन्हे ते गजमुक्ता निज कहे आपनो गुण जो मोलादि सो कुछ घटि नहीं जात जब जवाहिरीके पास जाई तब वाको मोल खुलि जाई तथा जो भगवत् अनुरागी हैं तिनको विषयी जनन के अनादर कीन्हे ते कुछ हरिदासन की महिमा घटि नहीं जाती जहां सन्त सभामें जायँगे तहां उनकी महिमा प्रकट होइगी कैसी महिमा है।

यथा—

"सुनु मुनि साधुन के गुण जेते।
कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते॥"

अथवा भक्तिही को विषयीजन अरु विमुख अनादर करत ताते कुछ भक्ति का माहात्म्य घटि नहीं जात वेद पुराण सर्वोपरि भक्ति का माहात्म्य कहत।

पुनः गुञ्जा जो घुंघुची ताको भूषण माला प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रजी धारण करे ताते वाको कुछ मोल बढ़ि नहीं गयो। तथा—गुञ्जावत् देह व्यवहार है ताहू को प्रभु भूषण करे अर्थात् यावत् अवतार भये सब देह धारण करि लोक व्यवहार करे तेहि करिकै देहव्यवहार को मोल नहीं बढ़ो अर्थात् वेद पुराण देहव्यवहार को झूठही कहत हैं सो प्रसिद्ध है॥ ५॥

दोहा

देइ सुमनकरि बासतिल, परिहरि खरि रसलेत।
स्वारथ हित भूतल भरे, मन मेचक तन सेत ५
अँसुवनपथिक निराशते, तटभुइँ सजलस्वरूप।
तुलसी किन बंचे नहीं, इन मरुथल के कूप ६

जगमें स्वारथ के हेतु बहुत मित्र हैं जब जब प्रयोजन निसरिगे तब वाके खग भूलिहू कै नहीं जात तथा फुलेल लेवे हेतु

तिलन को सुगन्धित फूलन करि बास देते हैं जब तिल फुलेल योग्य ह्वैगये तब स्वारथहित उनको कोल्हू में पेरिडारते हैं पेरिकै ताको रस जो फुलेल ताको लै लेत अरु बाकी खरी परिहरी कहे त्यागिदेत इत्यादि स्वारथ हित के मित्र भूतल कहे भूमि पै भरे कहे बहुत हैं कैसे जिनको मनमेचक कहे काला अर्थात् मनके मैले अरु तन देह श्वेत कहे उज्ज्वल भाव स्वारथहेतु मुखते मीठी बातैं करत अरु कुछ देतहू हैं भीतर मनमें कपट धारण कीन्हे ५ बहुत जग में ऐसे है जो मुँहते सब कुछ आसरा दीन्ह करते समय पर कुछ नहीं देते तिनके फन्द में परिकै बहुतेरे छले जाते कौन भांति ।

यथा—मरुथल मरुदेश पश्चाँह में ता भूमि में जल नहीं है अरु जो दूरि तक कूप खँदे तौ कहूं दश बीस में एक में जल आवत सोऊ अति दूरि तहां है तौ जल नहीं पर कूप देखि पथिक पियासे लोटा डोरि डारे जल न पाये तब प्यास ते अरु परिश्रम ते आरत है रोवत तिन निराश पथिकन के आँसुन के जलकरि कूप के तट कहे किनारे की भूमि सजल सरूप देखात अर्थात् ओदि तिनको गोसाईंजी कहत कि इन मरुदेश के कूप किनको नंचे कहे छले नहीं अर्थात् आँसुन ते तटभूमि ओदी देखि बहुत खराब भये तथा झूठे दानिन के मीठे वचनन के विश्वास में बहुत याचक खराब होत इति स्वारथ।

अथ परमारथपक्ष।

यथा—मरुभूमि संसार कूपरूप देह सो सारांशरूप जल रहित है तहां पथिकरूप ध्रुव प्रह्लाद अम्बरीपादि हैं प्राकृतदेह धरिवे की इच्छा सोई प्यास तें देह धारण कूप समीप आवना हैं तिनको अनेक क्लेश।

यथा—पिता करि प्रह्लाद को माता दूसरी करि ध्रुव को

दुर्वासा करि अम्बरीष को इत्यादि चरित विदित सोई आँसु जल है ता करिकै संसाररूप भूमि ओदि देखात अर्थात् देह में जो कुछ सारांश न होत तौ ऐसे मुक्तजीव क्यों देह धरते अरु प्रह्लादादिकन को रोदन भागवतादिकन में प्रसिद्ध है कि देह असार है इत्यादि जग में को नहीं छला गयो सब याही में परे है ॥ ६ ॥

दोहा

तुलसी मित्र महासुखद, सबहि मित्र की चाड़।
निकटभये बिलसतसुखप, एक छपाकर छाड़ ७

सदा सम समप्रीति हित करता ऐसा जो है मित्र ताको गोसाईंजी कहत कि मित्र महासुखद कहे महासुख देनहार होत ताते मित्रकी चाड़ कहे चाह सबहीको होत काहे ते मित्र के निकट भये पर सुखप कहे उत्तम सुख बिलसत कहे भोग करत भाव मित्रके निकट उत्तम सुख भोग मिलत यह स्वाभाविक लोक की रीति है एक छपाकर छांड़िकै तहां छपाकर नाम चन्द्रमा अरु मित्र नाम सूर्य। पुनः इनते मित्रता भी है तहां अमावस को चन्द्रमा सूर्य एक ही राशि पर आवत तहां चन्द्रमा अत्यन्त क्षीण ह्वैजात तथा लोक में भी जे छपा जो छल ताके करनहार अर्थात् जे मित्र ते छपाय करि कार्य करते हैं तेई दुःख पावते हैं ॥ ७ ॥

दोहा

मित्रकोप बरतर सुखद, अनहित मृदुल कराल।
द्रुमदलशिशिर सुखात सब, सह निदाघ अति लाल ८
खल नर गुण मानै नहीं, मेटहि दाता ओप।
जिमि जल तुलसी देत रबि, जलद करत तेहि लोप ९

मित्रलाभ देखावत कि जो मित्र कोप करै सोऊ वर कहे श्रेष्ठ

तर् कहे अत्यन्त अर्थात् मित्रको कोपै अत्यन्त उत्तम सुख को देन-हार है भाव जो मित्र कोपौ करिहै तौ कुछ भलाई के हेतु करिहै वामें कुछ बुराई न प्रकटी अरु अनहित जो शत्रु है सो मृदुल कहे अत्यन्त नम्रता करै वाहू को करालकरि जानना चाहिये कि काहू घातमें है कौन भांति कि शिशिरऋतु वृक्षन को अनहित है सो यद्यपि शीतलता सहित है परन्तु द्रुम जो वृक्ष तिनके दल जो पत्ता ते सब सूखिजात अरु बसन्तऋतु वृक्षनको हित करता है सो यद्यपि निदाघ कहे कठिन घाम सहत है ताहूपर वृक्षनके पत्ता अति लाल कहे नवीन दल पल्लववत् हैं ॥ ८ ॥

खल नरन के साथ जो सुजन भलाई करत ताको गुण दुष्ट जन नहीं मानते हैं और उलटि कै दाता जनन को ओप लोप करते तहां ओप कहत रूप के प्रकाश को तहां प्रकाश द्वै भांति को होत एक रूप की प्रभा प्रकाश एक यश कीर्ति को प्रकाश तहां दातन को यशरूप ओप ताको खल मेटि देते हैं अर्थात् जहां कोऊ यश के चरित कहै लाग तहां अयश को बखान करि यश मेटि दिये कौन भांति गोसाईंजी कहत कि जिमि जा भांति रवि जो सूर्य ते आपनी किरणन करि मेघन को जल देत अरु जलद जो मेघ ते सूर्यन को लोप करत कौन भांति एक तौ सघन आकाश में छाय जात ताते सम्पूर्ण रूप प्रकाश को लोप करत कि देखावै नहीं दूसरे जल तौ देते हैं सूर्य तिनकी दातव्य को जो यश ताको लोप करि जलद आपु कहावते हैं याको प्रयोजन यह कि दुष्टन को सदा त्याग करो ॥ ९ ॥

दोहा.

वर्षत हर्षत लोग सब, कर्षत लखत न कोय।
तुलसी भूपति भानु इव, प्रजा भागवश होय १०

माली भानु कृशानुसम, नीति निपुण महिपाल।
प्रजा भागवश होहिंगे, कबहिं कबहिं कलिकाल ११

मेघद्वारा जा समय सूर्य जल वर्षै लागत तब सर्वत्र जल धार ही देखात ताको देखि जग पालन हेतु समुझि सब जग हर्षत है अर्थात् दातव्य प्रकट देखात है पुनः कर्षत कहे जब सूर्य आपनी किरणन करि जल शोषै लागत तब कोऊ नहीं देखत कि कब जल शोषि गयो सो गोसाईजी कहत कि भानुइव कहे सूर्यन की समान भूपति जो राजा सो प्रजा की भाग के वश ते होत है अर्थात् जब प्रजा को जीविकादि देने लागत सो तौ सब प्रसिद्ध देखत ताते सब हर्षित होत । पुनः जब कुछ काहू ते लेत तब ऐसी युक्ति ते लेत कि कोऊ नहीं देखत यथा जल तथा दया करि रक्षा करत यथा घाम तथा प्रताप करि दण्ड देत जामें कोऊ कुपथ न चलै ॥ १० ॥

माली बागवान् भानु सूर्य कृशानु अग्नि इसकी सम नीति में निपुण कहे चतुर महिपाल जो राजा सो कलिकाल विषे कबहूँ कबहूँ होयँगे कब जब प्रजा भाग्यवान् होयँगे तिनकी भाग्यवश ते ऐसे राजा होवैंगे सदैव नहीं तहां माली में क्या गुण है कि फुलवारी में समय पर वृक्ष लगावत समय पर सींचत समय पर काटत छांटत इसी भांति राजा भी रक्षादि अर्थात् जहां देश उजारि होय तहां कुछ दैकै आबाद करै । खातिर करै सदा प्रजा वृद्धि की उपाय करै जो बेराह चलै ताको न्यायते दण्ड देइ फिर भानु को गुण पूर्व दोहा में कहि आये हैं कृशानु में क्या गुण है अग्नि स्वाभाविक सबको कार्य करत परन्तु प्रताप ऐसा राखत कि सदा सब डराते रहत सत्यासत्य को न्याय ऐसा करत कि सौगन्दसमय सांचे को शीतल ह्वैजात अरु झूंठे को जराय देत।

यथा—राजा स्वाभाविक सबसों सुलभ है सबको कार्य करै प्रताप ऐसा राखै जामें सब डरत रहैं सांचे को शीतल रहै अरु झूंठे को छली को दण्ड देइ ॥ ११ ॥

दोहा

समय परे सुपुरुष नरन, लघु करि गानय न कोय।
नाजुक पीपर बीज सम, बचै तो तरुवर होय १२

सुपुरुष उत्तम पुरुष तिनको समय परे अर्थात् नष्ट कर्म उदय भये आपदा वश दीन क्षीण भये तिनको कोऊ लघु करि छोटा करि न गनिये।

यथा—प्रचेता के पुत्र अर्थात् सुपुरुष के पुत्र समय परे भाग्यवश व्याधन को संग पाय व्याधन की सी रीति ह्वैगई फिरि जब भाग्य उदयभई सप्तऋषिन को संग पाय पूर्व सुपुरुषता को बीज जामि आयो महामुनि ह्वैगये देखो पीपर को बीज जाकी सम दूसरा नाजुक नहीं है कि बहुत नाजुक होत परन्तु जो चोंटादिकन ते बचै तो जलभूमि को योग पाय जो जामि आवै तो तरु जो वृक्ष वर नाम श्रेष्ठ होइ एक तो भारी वृक्ष तथा लोकपूज्य।

यथा—पूर्व वाल्मीकि को कहिगये तहां प्रचेता को अंश बीज है सप्तऋषिन को सत्संग भूमि है उपदेश वचन जल पाय जामिकै महान् ऋषीश्वररूप वृक्ष भये ॥ १२ ॥

दोहा

बड़े रामरत जगत में, कै परहित चित जाहि।
प्रेमपैज निबही जिन्हैं, बड़ो सो सबही चाहि १३

बड़े रामरत जे सबको आशभरोसा त्यागि अनुराग वश श्रीरघुनाथजी में आसक्त हैं अर्थात् पराभक्ति जिनको प्राप्त है ऐसे श्रीरामानुरागी भक्त जग में बड़े हैं भाव सब के भक्तन ते श्रीराम-भक्त उत्तम हैं।

यथा—शिवसंहितायाम्

"इन्द्रादिदेवभक्तेभ्यो ब्रह्मभक्तोधिको गुणैः ।
शिवभक्ताधिको विष्णुभक्तः शास्त्रेषु गीयते ॥
सर्वेभ्यो विष्णुभक्तेभ्यो रामभक्तो विशिष्यते ।
रामादन्यः परो ध्येयो नास्तीति जगतां प्रभुः ॥
तस्माद्रामस्य ये भक्तास्ते नमस्याः शुभार्थिभिः ॥"

अथवा के परहित चित जाहि कै कहे कीतौ जे निजस्वारथ त्यागि मन वचन कर्मकरि परारेहितै में चित्त राखत तेऊ उत्तम हैं।

यथा—जटायुमति श्रीरघुनाथजी कहे।

"परहित बस जिनके मनमाहीं। तिन कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं"

यथा—शिवि दधीच्यादि अथवा प्रेम की पैज कहे प्रतिज्ञा जिन्हैं निवही अर्थात् भगवत् में प्रेम करि जो प्रतिज्ञा कीन्हें सो पूरी भई।

यथा—ध्रुव प्रतिज्ञा कीन्हें कि हम भगवत् की गोद में बैठेंगे तिनकी पूरी निवही तथा प्रह्लाद प्रतिज्ञा कीन्हें कि खम्भा में भगवान् हैं तिनकी प्रतिज्ञा पूरी निवही ताते प्रभु में दृढ़ प्रेम की प्रतिज्ञा जिनकी निवही है तिनको सर्वोपरि बड़ाकरि जानना चाहिये भाव दृढ़ प्रेम प्रभुको अत्यन्त प्रिय है ॥ १३ ॥

दोहा

तुलसी सन्तन ते सुनै, सन्तत यहै बिचार।
तनधन चञ्चल अचल जग, युगयुग पर उपकार १४

ऊँचहि आपद विभव वर, नीचहि दत्त न होय।
हानिवृद्धि द्विजराज कहँ, नहिं तारागण कोय १५

गोसाईंजी कहत कि हम सन्तन के मुखते संतत कहे सदा यह विचार सुनते हैं अर्थात् सन्तनको यही सम्मत है यथा सम्मत है कि तन कहे देह को यावत् सम्बन्ध है अर्थात् स्त्री, पुत्र, पतोहू, पौत्र, बन्धु, सखादि यावत् हैं।

पुनः धन कहे भोजन, बसन, भूषण, वाहन, राज्यादि यावत् विभव हैं सो सब चञ्चल है कबहूं सब कुछ कबहूं कुछ नहीं ताते स्थिर एकरस काहूके नहीं रहत अरु परउपकार को जो है यश कीर्ति सो युगयुग कहे कल्पान्त लौं जग में अचल है।

यथा—बलि, रघु, हरिश्चन्द्र और मोरध्वजादिको यश पुराणन में प्रसिद्ध है ताको सब जग जानत है।

यथा—"शिवि दधीचि बलि जो कुछ भाखा। तन धन तजे वचन प्रण राखा॥" इत्यादि सब जानत हैं १४ ऊंचहि कहे जे काहू भांतिके ऐश्वर्य के ऊंचे जन हैं। यथा प्रताप में सूर्य प्रकाश में चन्द्र धनमें कुबेर तप में विश्वामित्र राज्यमें बलि इत्यादिकन को जो भारब्धवश कुछ आपद परे ऐश्वर्य क्षीण हैजाय तिनको काहू नीच पुरुषके दत्त नाम दीन्हें ते ऊंचेजननको विभव जो ऐश्वर्य वर नाम श्रेष्ठ नहीं है सकत कौनभांति जैसे द्विजराज जो चन्द्रमा ताकी कृष्ण-पक्ष की जो हानि क्षीणता ताकी वृद्धि जो तारागण नक्षत्र कीन चाहैं सो कोऊ नक्षत्र ऐसा नहीं जो निज प्रकाशते शुक्लपक्ष करिसकै ताते जो संगकरै तौ बराबरिवाले को करै नीचते सनेह कबहूं न करै १५॥

दोहा

बड़े रतहि लघुके गुणहि, तुलसी लघुहि न हेत।
गुञ्जा ते मुक्ता अरुण, गुञ्जा होत न श्वेत १६

काहेते नीचन को संग न करै सो कहत कि जो बड़े जन नीचजनन की संगति करैं तौ बड़ेजन छोटेनके गुण में रत होत हैं अर्थात् नीचन की संगति कीन्हें बड़ेन में नीचन को गुण लागिजात गोसाईंजी कहत कि लघुहि कहे लघुजनन को बड़ेनको गुण नहीं होत छोटेन में बड़ेन को गुण नहीं लागत कौनभांति जैसे मुक्ता कहे मोती अरु गुञ्जा कहे घुंघुची दोऊ एकत्र राखिये तौ गुञ्जा की ललाई की प्रतिविम्ब समाय गयेते मुक्ता अरुण कहे लाल होत अरु मुक्ता की श्वेतता पाय गुञ्जा श्वेत नहीं होत इहां गुञ्जारूप देह है अर्थात् विषय व्यवहार झूंठी ललाई ऊपरही झलकत है ताहू में मुख श्याम अनेक भांति के दुःख अरु मुक्तारूप आत्मा अमल सो उत्तम है सो नीचदेह की संगति पाय देह के गुणन में आत्मा रत भयो अर्थात् पञ्चतत्त्व की देह तिनके सूक्ष्मरूप शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध तिनहीं की वासना में इन्द्रियन के द्वारा इनहीं को धारण करि आत्मा जड़वत् है गयो अरु आत्मा के संग पाय देह में आत्माके गुण नहीं लागे कि विकाररहित अमल हैजाय इत्यादि छोटे में बड़े को गुण नहीं लगत ॥ १६ ॥

दोहा

होहिं बड़े लघुसमय सह, तौ लघुसकहि न काढ़ि ।
चन्द्र दूबरो कूबरो, तऊ नखत ते बाढ़ि १७
उरग तुरग नारी नृपति, नर नीचो हथियार ।
तुलसी परखत रहब नित, इनहिं न पलटतबार १८.

बड़े जे जन हैं ते समय सह कहे समयसहित अर्थात् जा समय में कुभाग्य उदय भई ताके वशते बड़ेजन सोऊ लघु होत हैं ता

लघुता को कोऊ लघुजन काढा चाहै तौ लघु नहीं काढि सकत अर्थात् बड़ेनकी विपत्ति छोटा नहीं मिटाय सकत कौनभांति तथा कृष्णपक्षरूप कुसमय परि चन्द्रमा क्षीण परत कहे अति दुर्बल होत ताते कूबर अर्थात् देह नैजात सो यद्यपि चन्द्रमा कूबरा अरु कूबरा है तऊ नखत ते बादि हैं तथा बड़े जो अत्यन्त लघु होहिं ताहू छोटेनते उनकी प्रतिष्ठा बड़ी बनी रही जहां जाँयगे तहां मर्यादा सहित जीविका पावैंगे ताते बड़ेन को छोटन ते मित्रता करना न चाहिये ॥ १७ ॥

उरग सर्प तुरंग घोड़ा नारी स्त्री नृपति राजा नर नीचो नीची प्रकृतिवाले नर अरु कृपाणादि यावत् हथियार हैं इत्यादि यावत् वस्तु गनाई हैं तिनको गोसाईंजी कहत कि इन सबको सदाही परखत रहिये कि जाते शुद्ध बनी रहैं अरु नाहीं तौ इन वस्तुन को पलटत अर्थात् अनहित हैजात वार कहे विलम्ब नहीं लागत तुरतही अनहित हैजात भाव इन सबको तीक्ष्ण स्वभाव है इति स्वार्थपक्ष ।

अथ परमार्थपक्ष ।

यथा—उरग मोह है ताको लागिजात वार नहीं लागत सोई काटि खाता है विपरूप विप चढ़ि जीवको नाश करत तुरंग है मन सो बिगरिकै न मालूम कौनी योनि में डारि देइ । पुनः नारी है मति जो कुमति हैजात तौ न मालूम कौन कर्म करावत नृपति है ईश्वर तासों शुद्ध मन कीन्हे रहौ तौ खैर नाहीं तौ पलटते वार नहीं देखो नारदादिकनको अनेक नाच नचाये नर नीचो मनोरथ है जो कुमनोरथ आइ जाय न मालूम कौन कर्म करावै हथियार शील सन्तोष विवेक वैराग्यादि पलटि जाय तौ जीव को नाश करिदेइ इत्यादिकन को मुमुक्षु सदा परखत रहैं ॥ १८ ॥

दोहा

दुरजन आप समान करि, को राखै हितलागि ।
तपत तोय सहजाहि पुनि, पलटिबुतावतआगि १६
मन्त्र तन्त्र तन्त्री त्रिया, पुरुष अश्व धन पाठ ।
प्रतिगुण योग बियोगते, तुरित जाहिं ये आठ२०

दुरजन कहे दुष्जन तिनको आपनी समान करि को राखै अर्थात् दुष्टन को आपनी समान ऐश्वर्य दैकै हित मानि समीप न राखै नाहीं तौ वही लौटिकै आपनो काल ह्वै जाइगो कौन भाँति ।

यथा—तोय जो जल सो अग्नि को संग पाइकै तप्त होत है सोई जाहि सह कहे जिहिके साथ ह्वै तप्त भयो पुनः पलटिकै ताही आगिको बुताय डारत यह जानि दुष्टन को आपस में ऐश्वर्य दै हितकर्ता जानि समीप राखै वह शत्रु होई जरूर ताते परमार्थ स्वार्थ दोऊ पक्ष में दुष्टन को संगही त्याज्य है १६ मन्त्र जामें आदि प्रणवादि बीज अन्त में नमः वा दुहाई आदि पुनः तन्त्र जो औषध वा कहूं की मिट्टी पुष्पार्कादि मुहूर्तन में लाय धूप दीपादि पूजन करि कार्य सिद्ध पावत तन्त्री वीणा सितारादि बाजा को बजावना त्रिया स्त्री पुरुष अश्व घोड़ा धन द्रव्य पाठ विद्या व्याकरणादि पढ़ना इत्यादि को योग कहे इनके व्यापार सहित मिले रहौ तौ प्रतिदिन गुण बढ़ै यथा मन्त्र तन्त्रते सिद्धि बढ़त त्रिया बाजा में अभ्यास साफ इल्म बढ़त जात स्त्री पुरुष संयोगते प्रीति बढ़त पुत्रादि लाभ होत घोड़ा फेरे ते राह पर रहत मार्ग चले थकत नाहीं भूख बढ़त धन रोजगारादि ते नफा होत चोरादिते बचत ।

पुनः वियोग भये ये आठहू जात कहे हानि होत मन्त्र तन्त्र की सिद्धाई जात विद्या वाजा भूलिजात स्त्री पुरुष अपर में रत होत घोड़ा विगरिजात धन चौरादि लैलेत याते इनको संयोग राखै॥ २०॥

दोहा

नीच निचाई नहिं तजै, जो पावहि सतसंग।
तुलसी चन्दन विटपवसि, विनविषभयनभुवंग २१
दुरजन दरपण सम सदा, करि देखो हिय दौर।
सम्मुखकी गति और है, विमुख भये कुछ और २२

जे नीच प्रकृतिवाले नीचजन हैं ते जो ऊंचनको भी सत्संग करैं तवहूं आपनो दुष्टस्वभाव नहीं त्यागते हैं कौन भांति।

यथा—गोसाईंजी कहत कि देखो महाशीतल सुगन्धित चन्दन को विटप कहे वृक्ष तामें सदा वसते हैं परन्तु भुवंग जो सर्प ते विन विष न भये भाव चन्दनकी शीतलता ग्रहण नहीं करे आपनो विष नहीं त्यागे तथा दुष्टजन सन्तजनों को संग कीन्हे दुष्टता नहीं त्यागत ताते सज्जन दुष्टन को संग कवहूं न करैं नाहीं उनके दोष ते सन्तौ दुःख पावैंगे यथा—रावण हिगते समुद्र बांधो गयो॥२१॥

दुर्जनन को स्वभाव कौन भांति को है। यथा—दर्पण को स्वभाव तथा दुष्टनको सदा स्वभाव है ताको हिय में दौर कहे विचार करिकै देखिलेउ कैसी गति है कि सम्मुख भये की कुछ और गति है अर्थात् दर्पण के सम्मुख देखो तो देखनहार को स्वरूप आपने उर में धरे है। पुनः विमुख भये कुछ और गति है अर्थात् जब दर्पण ते मुख अलग करौ तौ सून है तैसेही रीति दुष्टन की है कि जवतक

सामने रहत तवतक वातनते बड़े हितकार बनेरहत पीछे कुछ नहीं अर्थात् मुखदेखी प्रीति झूठी राखते हैं उरमें कुछ नहीं याते उनका विश्वास न राखै ॥ २२ ॥

दोहा

मित्रक अवगुण मित्रको, पर यह भाषत नाहिं।
कूपछांह जिमि आपनी, राखत आपहि माहिं २३
तुलसी सो समरथ सुमति, सुकृती साधु सुजान।
जो बिचारि व्यवहरतजग, खरचलाभ अनुमान २४

मित्रक कहे मित्रवर्ग अर्थात् दोऊ दिशिते जे मित्र हैं ते आपने मित्रको अवगुणपर यह कहे परारे पास नहीं कहत अपनेही उरमें राखत कौन भांति।

यथा—कूप आपनी छांह परछाहीं आपही में राखत अर्थात् सुमित्र की स्वाभाविक यह रीति चाही।

यथा—

" कुपथ निवारि सुपन्थ चलावै।
गुण प्रकटै अवगुणहिं दुरावै॥
देत लेत मन शङ्क न धरहीं।
बल अनुमान सदा हित करहीं॥" इत्यादि ॥ २३ ॥

सुमति जो सुन्दरी मतिवाला सुकृती जो शुभकर्म करनेवाला साधु जो भगवत्तत्त्वप्राप्ति की साधना करनेवाला सुजान जो लोक परलोक के व्यवहार जानवे में चतुर इत्यादि में सोई समर्थ है गोसाईंजी कहत कि वही सदा समर्थ बना रहैगो कौन जो लाभ अरु खर्च को अनुमान करि अर्थात् चारि पैसा लाभ है इसकी अनुमान् अर्थात् तीनिहीं पैसा खर्च करिये जो एक बचत रहैगो सो अवसर पर काम देइगो।

यथा—सुकृती यज्ञ, जप, तप, पूजा, तीर्थ, व्रतादि करै अरु कुत्सित कर्म त्याग करै नाहीं तौ कुकर्म सुकर्म को नाशकरि देइँगे ताते इनको त्यागि सुकर्म करै तौ लाभ होइ तामें सुख की वासनारूप खर्च न करै सब भगवत् को अर्पण करै तौ सुकृती समर्थ बनारहै।

पुनः साधु जे श्रवण, कीर्तन, भजनादि करते हैं ते विषय वासनारूप खर्च न करैं तौ साधु समर्थ बने रहैं।

पुनः सुमतिवालेन के कुमतिरूप खर्चा है सुबुद्धिवाले सुजान के कुबुद्धिरूप खर्चा है सो न करै तौ सुमति सुजान समर्थ बने रहैं तथा लोक में लाभ अनुमान खर्च करिके लोकव्यवहार करते हैं तेऊ समर्थ बने रहेते भाव द्रव्यवान् बने रहेते हैं ऐसा जे नहीं करत ते बिगरि जाते है॥ २४॥

दोहा

शिष्य सखा सेवक सचिव, सुतिया सिखवन सांच।
सुनि करिये पुनि परिहरिय, पर मनरञ्जन पांच २५

शिष्य चेला सखा कहे मित्रवर्ग सेवक आज्ञा करनहार सचिव दीवानादि सुतिय सुमतिवाली तिया इत्यादिकन को जो सिखवन है सो सांच कहे सुनवे योग्य है काहेते उनको सिखावन सुनिकै मनते बैठै तौ करिये जो न मनते बैठै तौ परिहरिये नाम त्याग करिये तामें लोक वेद करिकै विरोध नहीं है अथवा जो सांचा सिखावन देइ ताको सुनिकै करिये।

पुनः परिहरिये अर्थात् प्रसिद्ध में त्यागे रहिये जामें डरत रहै जो ढीठे होइँ तौ राह पर न रहै या रीतिते ये शिष्यादि पांचहू पर मनरञ्जन कहे आनन्द देनहार हैं तहां शिष्य गुरु को सखा मन्त्री राजा को सेवक स्वामी को स्त्री पति को॥ २५॥

दोहा

तुष्टहि निजरुचि काजकरि, रुष्टहि काज बिगारि ।
तिया तनय सेवक सखा, मनके कण्टकचारि २६
नारि नगर भोजन सचिव, सेवक सखा अगार ।
सरस परिहरे रङ्गरस, निरस विषाद बिकार २७

स्त्री, पुत्र, सेवक, सखादि ये चारिहू ढिठाय गयेते मन के कण्टक होते हैं भाव क्षणप्रति खलते हैं काहेते निज कहे अपनी रुचिको कार्य करै तौ तुष्टै कहे खुशी रहै अरु अपने मनको कार्य न करै पावै तौ कार्य बिगारिदेइ ।

पुनः जो उनको कुछ कहौ अर्थात् तुम कार्य बिगारि दिहेउ तौ कार्य बिगारवै भै पुनः लौटिकै रुष्टै कहे रिसाइ अर्थात् शत्रुन कैसो व्यापार करै तहां स्त्री यथा—कैकेयी पुत्र यथा—कंस सेवक सखा यथा—सुरथ के इत्यादि समुझि इनको स्वतन्त्र न करिये सदा शिक्षा दण्ड राखिये ॥ २६ ॥

नारी अरु नगर ग्राम अरु भोजन के पदार्थ अरु सचिव दीवानादि अरु सेवक दासादि सखा मित्रवर्ग । पुनः अगार मन्दिर इत्यादि सात वस्तुइ परिहरे कहे बिलग रहे जैसे—ग्रहण कीन्हेते सरस व रङ्ग व रस इत्यादि की वृद्धि होत अरु सदा ग्रहण किहेते निरस व विषाद व विकार होत तहां नारि अरु सचिव सेवक सखा इत्यादिकन ते कुछकाल अन्तर करि मिले ते सरस रहत ।

पुनः जो रोज संग्रह राखै तौ निरस है जाइ या हेतु राजा लोग व्याह बहुत करत सेवक सखादि बहुत राखत ।

पुनः नगर अरु धाम में कुछकाल अन्तर करि आइये तौ नगर-वासी अरु घर के लोगनते प्रीति रङ्ग बढ़त सदा योगरहे ते घर ग्राम जननते विषाद बढ़त जैसे—भोजन कुछ बार अन्तर दै भोजन करौ तौ वाको रस स्वाद मिलै अरु जो बारम्बार पावा करौ तौ अजीर्णादि विकार होत ॥ २७ ॥

दोहा

दीरघ रोगी दारिदी, कटुबच लोलुप लोग।
तुलसी प्राणसमान जो, तुरित त्यागिवे योग२८
घावलगे लोहा ललकि, खैंचिबलेइय नीच।
समरथ पापी सों बयर, तीनि बेसाही मीच २६

दीरघ कहे बड़े रोगवाला अर्थात् असाध्य रोगी पुनः दारिदी कहे तनमें व मनमें जाके अतिदर्द नाम पीड़ा है पुनः कटुवचन कहे जो सदैव कटुवचन बोलै जैसे—लोलुप कहे लम्पट अर्थात् परस्त्री रत इत्यादि प्रकार के जो लोग हैं तिनको गोसाईंजी कहत कि जो प्राणन की समान इसतरह के लोग होइँ तेऊ तुरतही त्यागिवे योग्य हैं काहेते इनके संग रहे स्वाभाविक दुःख बना रहत ताते व्याधि प्रकट होत याते इनते विलग रहै २८ जाके तन में घाव लगा है पुनः लोहाकी ललक अर्थात् युद्ध करिवे की खुशी है जहां युद्ध में आरूढ़ भयो एक तौ घाव वृद्धि ह्वै जाइगो दूसरे परिश्रम परे मूर्च्छित ह्वै गिरिजाई शत्रु मारिडारैगो अथवा घायल जन धनुष की पनच रोदा खैंचै तबौ जोर परे घाव फटि जाइगो अथवा जो समर्थ हैं पुनः पापी अर्थात् हिंसारत निर्दयी तासों वैर कीन्हे वह तुरत ही मारि लेइगो।

यथा—रावणप्रति जटायु इत्यादि तीनिहूं मीचु जो मौत सो आपने हाथ ही बेसाहै ॥ २९ ॥

दोहा

तुलसी स्वारथ सामुहे, परमारथ तन पीठि।
अन्ध कहे दुखपाव केहि, दिठिआरे हियदीठि ३०
अनसमुझे नै शोचबर, अवशि समुझिये आप।
तुलसी आपन समुझबिन, पलपल पर परिताप ३१

गोसाईंजी कहत कि ये स्वार्थ के सामुहे हैं अर्थात् इन्द्रिय विषय सुख के वासना में मन लगाये हैं अरु परमार्थ जो परलोक सुख की मार्ग भगवत्स्नेह ताकी दिशि पीठि अर्थात् विमुख हैं ते बुद्धि विचाररूप उरकी दृष्टि रहित अन्धे हैं तिनके कहे जो लागी सो अवश्य कै दुःख पाई अर्थात् आपहू अन्धे अरु अन्धेही की बताई राह में चली सो भवरूप कूप में गिरिबैकरी काहेते राह चलनहार अरु बतावनहार दोउन में दिठिआरे कौनहैं जाके हिये में बुद्धि विचाररूप दृष्टि है अर्थात् द्वै में एकहू के उरमें नेत्र नहीं अर्थात् उपदेश-कर्ता जो कुराहौ बतावै तौ सुननहार के बुद्धि विचाररूप नेत्र होइँ तौ शास्त्रादिकन ते परमार्थ पन्थ देखि लेइ बतावनहार के नेत्र होइँ तौ शुद्धराह बताइदेइ जो दोऊ आंधर तौ कैसे सुख होइ ॥ ३० ॥

अनसमुझे अर्थात् जो बात आपनी समुझी नहीं है वाको जानना चाहिये तौ नय नीति मार्ग शास्त्रादिकन में शोचि विचारिकै अवशि करिकै आप समुझि लीजिये।

यथा—राजा लोगन के न्याय को मौका पायकै धर्मशास्त्र देखि लेते हैं ऐसेही सबमें जानौ तहां गोसाईंजी कहत कि विना आपनी समुझदारी हरएक बातमें विना समुझे विचारे कुछ काम

करौ तामें पलपल भरेपर परिताप नाम दुःख होत अर्थात् जो बात करे अरु पहिले नफा नाहिंन समुझि लिये तौ वामें पीछे अवश्यकै क्लेश होइगो याते समुझिके काम करना चाहिये ॥ ३१ ॥

दोहा

कूप खनहिं मन्दिर जरत, लावहिं धारि बबूर।
बोये लुन चह समय बिन, कुमतिशिरोमणिकूर ३२
निडरअनयकरिअनकुशल, बीसबाहु सम होय।
गयो गयो कह सुमतिजन, भयो कुमतिकह कोय ३३

मन्दिरजरत अर्थात् आगिलागि बरतौ बरत ताके बुझायवे हेतु कूप खनत यथा—शत्रु शीशपर आयगये तब फौजकी भरती करै कि सेना भरिलेइँ तब युद्ध करी तबतक वह पकरि लेइगो।

पुनः धारि कहे समूह बबूर के वृक्ष जे लगावते हैं एक तौ संकट आठ पहर भय दूसरे बबूर को बोवना शास्त्र में मने पापवर्धक। पुनः भूत को बास है अथवा बबूरधारि स्वशत्रु को पालना। पुनः जा वस्तु को बोये वाके फलवे की समय नहीं आई बीचही में लूना चाहते हैं भाव वाके फल लेन चाहते हैं ते कूर कहे खल कुमति जे निर्बुद्धि तिनमें शिरोमणि कहे महानिर्बुद्धि बुद्धिहीन हैं अर्थात् हानि लाभ प्रथमही विचारि समय विचारि कार्य करा चाहिये ॥ ३२ ॥

निडर डररहित अनय जो अनीति जैसे—कामवश परस्त्री हरि लेना विना अपराध क्रोधवश काहू को दुःखदेना लोभवश दीनन को धन हरिलेना मोहवश हानि लाभ न विचारना इत्यादि अनीति करि अभय कहे ईश्वर को वा सबलको डर न मानना अभिमानवश अस अशङ्क रहना इत्यादि कर्म करि अनकुशल बीसबाहु रावण

सम होय ताहू की कुशल न होइ राजा वंशसहित नाश होइ ऐसा करनेवाला गयो गयो याकी नाश भई ऐसा सुमति बुद्धिमान् सब कहते हैं अरु अनीति करनेवाले को भयो कहे बना रहैगो ऐसा कोऊ कुमति एक जो वाही को साथी सोई कहैगो और नहीं ॥३३॥

दोहा

बहुसुत बहुरुचि बहुबचन, बहु अचार व्यवहार।
इनको भलो मनाइबो, यह अज्ञान अपार ३४
अयशयोग की जानकी, मणिचोरी की कान्ह।
तुलसी लोग रिझाइबो, करसि कातिबो नान्ह ३५

जाके बहुत सुत नाम पुत्र हैं तिनके आपुस में एक दिन विरोध होवै करैगो। पुनः जाके बहुत भांति की रुचि है ताही अनुकूल बहुत भांति के काम करैगो काहू में विकार होवै करैगो। पुनः जो बहुत वचन बोलैगो कोई विकार वचन निकरवै करैगो। पुनः जो बहुत भांति के आचार करैगो ताके सरदी गरमी आदि विकार होवै करैगो।

यथा—सरदी में स्नान ते वायु गरमी में प्यास ते अनेक उपद्रव होते हैं। पुनः बहुभांति के व्यवहार में सबके अनुकूल काम एकते कैसे होइ याते विरोध होवै करैगो याते ऐसेन को भला मनाइवो यह भी एक महाअज्ञान है ताते ये सब बातें समुझिकै करै नहीं तौ दुःखद होइगो ॥ ३४ ॥

गोसाईंजी कहत कि संसार बड़ा कठिन है काहेते झूठ सांच कोऊ नहीं विचारत थोड़ी बात सुनि वाकी मर्याद कोऊ नहीं देखत सब बड़ा दोष लगाय देते हैं कौन भांति कि देखौ अयशयोग की जानकी श्रीजानकीजी अपयश के योग्य रहैं अर्थात् नहीं रहैं

पुनः श्रीकृष्ण मणि की चोरी योग्य रहैं नहीं रहैं तिनको संसार कहे तौ और की कानै गनती है ताते संसार के लोगन को रिझाइवो अर्थात् राजी राखिवो जामें कोऊ दोष न लगावै ऐसा जो चहु तौ नान्ह कातिवो करसि अर्थात् यावत् कार्य करै सो अत्यन्त सफाई के साथ करै जैसे भरतजी हरिकार्य में नान्ह काते कि कैकेयी सों विमुख भाषे जो कोऊ राज्य करने को नाम लियो ताको अनादर किये पैदर चित्रकूट को गये। पादुका लै सिंहासन पर राखे आपु अवध को पीठि दै भूमि खोदि सनेम रहे सब बातें अयश बचायवे हेतु नान्ह काते तेहीते पावन यश भयो। अरु प्रभु तौ अन्तर की जानते रहे तिनके रिझायवे के हेतु ये ढङ्ग नहीं हैं वे तौ सांचे प्रेम मे रीझते है सो तौ भरतजी में स्वाभाविक परिपूर्ण रहै यामें क्या है ॥ ३५ ॥

दोहा

मांगि मधुकरी खात जे, सोवत पांव पसारि।
पाप प्रतिष्ठा बढ़ि परी, तुलसी बाढ़ी रारि ३६

यामें गोसाईंजी अपनी व्यवस्था कहत कि मैं श्रीकाशीजी में कौन रीति ते रहौं ये मै मधुकरी जो साधुन के दये टुकरा ताको मांगिके खाव अरु पॉव पसारिकै सोवत अर्थात् काहू के भलाई बुराई के लग नहीं जात रहौं तहॉ पापरूप प्रतिष्ठा बढ़ि परी अर्थात् श्रीरघुनाथजी की अनन्य उपासना श्रीरामनाम की टेक करि जो कुछ करे सो पूरी परी सो प्रतिष्ठा गोसाईंजी की देखि न सहि सके ताते शिवउपासक पण्डितन ते रारि बढ़ी तब अनेक उपद्रव करन लागे। जब एकहु न बिसानो तब गोसाईंजीते विनती करि कह्यो कि हमको यह मांगन देहु कि तुम काशीजी से चले जाउ तब गोसाईंजी यह कवित्त बनाये।

यथा—"देवसरि सेवौं वामदेव गांव रावरेही, नाम रामही के मांगि उदर भरत हौं । दीवेयोग तुलसी न लेत काहू को कछुक, लिखी न भलाई भाल पोच न करत हौं ॥ येते परहूँ कोऊ जो रावरे है जोर करै, ताको जोरदेव दीन द्वारे गुदरत हौं । पाइकै उरहनो उरहनो न दीजै मोहिं, कालिकला काशीनाथ काहे निवरतहौं" ॥

यह शिवमन्दिर में लगाय चित्रकूट को चले । जब प.ऐहल शिवमन्दिर को गये तब पट बन्द भीतरते वाणी भई कि तुमने भागवतापराध कस्यो है सब मरि जाहुगे तब सब दौरि गोसाईंजी को लाये सो गोसाईंजी कहत कि ऐसी दशा में तौ रारि बढ़वै भई और की का कहैं इहां प्रतिष्ठा देखिन सहि सकै याते लोक की सबलता जनाये अरु प्रतिष्ठा को पापरूप याते कहे कि प्रतिष्ठा भी एक भक्ति को कांटा है ।

यथा नारदपञ्चरात्रे ।

"जातिर्विद्या महत्वं च रूपं यौवनमेव च ।
यत्नेन परिवर्ज्यन्ते पञ्चैते भक्तिकण्टकाः" ॥ इत्यादि ॥३६॥

दोहा

लही आंखि कब आंधरहि, बांझ पूत कब पाय ।
कब कोढ़ी काया लही, जग बहरायच जाय ३७

तहाँ लोक में जे ईर्षा, क्रोध, मानादि के वश खल हैं ते सांची प्रतिष्ठा में दोष लगावत अरु जे कामना लोभ मोह वश गर्जवन्दे हैं ते शूद्रादि विवेक नहीं करत गली की भूमि कबुरैं पूजत ताहे ते कहत कि सबजग अनेक मनोरथ करि बहराइच में सैयद सालार को रौजा पूजन हेतु सैदहालोग जाते हैं तामें समुझिकै देखो कि कब बहराइच में आंधरे ने आंखी पायो अरु कब बांझ ने पुत्र

पायो अरु कोढ़ी ने कब शुद्ध काया पाई यह कोऊ नहीं देखत सब मनोरथ करि जाते हैं इत्यादि जग आँधर है ॥ ३७ ॥

दोहा

या जग की विपरीत गति, काहि कहों समुझाय।
जलजलगौ झषबांधिगो, जनतुलसी मुसकाय ३८
कै जूझिबो कि बूझिबो, दान कि काय कलेश।
चारि चारु परलोक पथ, यथायोग उपदेश ३९

गोसाईंजी कहत हैं भ्रमवशते या जग की विपरीत कहे उलटी गति है पूर्व को जाना चाहिये ते पश्चिम को जाते हैं ताते काहि कहे किहिका किहिका समुझायकै कहिये कि जब अति-वृष्टि होत तब भूमि जल ते परिपूर्ण है जात तब मछरी उलटी चढि आवत जब यहां अगाध जल न पाये तब फिरि वुमी मार्ग में लोग जाल लगाये हैं तहाँ जल तौ बहिकै नदी आदिकन को चला गयो झष जो मछरी ते जाल में बँधि गयो।

यथा—अगाध जल सुख भगवत्स्वरूप ताको त्यागि संसार देह सुख हेतु जीव की वासना जगमें है रही सुखरूप जल तौ भगवत्-रूप को गयो जीव मायाजाल में बँधि गयो इत्यादि तमाशा देखि जन तुलसी मुसकात हैं कि क्या संसार आँधर है ॥ ३८ ॥

अब परलोक की राह देखावत कि जूझिबो अर्थात् संग्राम में सम्मुख मरण की तो असत्य सत्य का बूझिबो सत्यमार्ग पै चलिबो अथवा श्रद्धासमेत यथाशक्ति दान देनो अथवा काय कहे देह को क्लेश करनो अर्थात् जप, तप, तीर्थ, व्रतादि चारि चारुनाम सुन्दरी परलोक जाने की पथ नाम रास्ता है ते चारिहु वर्णन को यथायोग्य उपदेश हैं जहाँ क्षत्रिन को संग्राम में जूझिबो परलोक

वनिये की रास्ता है। पुनः सत्यासत्य बूझिवो सत्यपर चलनो वैश्य को परलोकपथ है। पुनः विधिवत् दान देनो शूद्र को। पुनः तपादिक क्लेश ब्राह्मण को परलोक को पथ है इत्यादि मार्गन पर आरूढ़ होना परलोकगति को आदि साधन है॥ ३९॥

दोहा

बुध किसान सर वेद बन, मते खेत सब सींच।
तुलसी कृषिगति जानिबो, उत्तम मध्यम नीच ४०

अब सुकृतरूप कृषि को रूपक देखावत। यथा—यहाँ बुद्धिमान् जन तेई सब किसान हैं तिनके कर्म ज्ञान उपासनादि यावत् मत हैं तेई खेत हैं, इष्ट मन्त्रादि बीज हैं, सब साधन कृषि को व्यापार है, तहाँ विना सींचे कृषि होत ही नहीं ता हेतु कहत कि तड़ागरूप वेद है वेदन को सिद्धान्त वाक्य सोई वन कहे जल है तेहि करिकै सब मतरूप खेत सींचते हैं तामें जे परिश्रम करत ते सब साङ्गोपाङ्ग सब विधिसहित करत तिनकी उत्तम किसानी है अरु जे आप परिश्रम नहीं करत मजूरन के साथ वने रहत तिनकी मध्यम है जे मजूरनै के साथे आप जानतही नहीं खेत कहाँ तिनकी नीच किसानी है सो गोसाईंजी कहत कि उत्तम, मध्यम, नीच जो कृषी की गती है तिनको जानिवो समुझिवो उचित है तहाँ जे उत्तम सुकृती हैं ते प्रारब्धरूप घन वर्षने को आसरा नहीं करते वेद सिद्धान्तरूप जल श्रवण द्वारे उलचि आपनो मत सींचिकै अनेक सुकृतरूप ज्योति इष्टमन्त्र जापरूप बीज बोय निषेध कर्मरूप खर निराय साफ करि उपजावते हैं जो नेकहू मुरझात देखे पुनः वेदवाक्य जलसों सींचि हरित करिदेते हैं तिनको पूर्ण सुकृत उपजत है।

पुनः जे प्रारब्धरूप घन की आश राखे विवेक वैराग्यादि मजूरन

के साथ रहे ते आप बरबस विषयत्यागरूप परिश्रम नहीं करते जैसा विवेक बढ़ता गया ताही अनुकूल सुकृत भई सो मध्यम है।

पुनः विवेकादि मजूरनै के भरोसे हैं अर्थात् वैराग्यता आवत ही नहीं हम कैसे विषय त्यागैं मन तौ मानतही नहीं हम कैसे सुकृत करैं प्रारब्धरूप घन बरपतै नहीं कृषी कैसे उपजै तिनको बीजौ बेसार गये अर्थात् इष्टमन्त्र भी भूलि गया यह नीच सुकृती है इत्यादि समुझौ ॥ ४० ॥

दोहा

सहि कुबोल सांसति असम, पाय अनट अपमान।
तुलसी धर्म न परिहरहिं, ते वर सन्त सुजान ४१

अब उत्तम सुकृतरूप कृषिकारी को व्यापार की रीति देखावत कि दुष्टन के कहे जो कुबोल हैं तिनको सहि लेइ अर्थात् क्षमा धारण करै पुनः सांसति कहे अनेक भांति के जो क्लेश परैं तिनको न मानै अर्थात् असम कहे विषम संकट परै ताहूपर धैर्यवान बना रहै। अनट कहे अन्याय पाय अर्थात् जो उचित नहीं सो दण्ड मिलै ताहूको सहिलेइ। पुनः कोऊ अपमान करै ताको न मानै अर्थात् निन्दा स्तुति बराबरि समुझै इत्यादि सब विघ्न लागै ताहूपर धर्म न त्यागै सो वर कहे श्रेष्ठ सन्त हैं सुजान ॥ ४१ ॥

दोहा

अनहित ज्यों परहित किये, आपन हिततम जान।
तुलसी चारु बिचार मति, करियकाज सममान ४२
मिथ्या माहुर सुजन कहँ, खलहि गरलसम सांच।
तुलसी परसि परात जिमि, पारद पावक आंच ४३

जगत् जनन की स्वाभाविक यह रीति है कि परारो हित करै तौ ज्यों आपनो अनहित मानते हैं अरु आपन हित जामें होइ ताको हिततम मानते हैं अर्थात् अत्यन्त हितकारि मानते हैं जीव में यही विषमता है। अरु समता से कैसा चाहय सा गोसाईंजी कहत कि चारु कहे सुन्दर विचार सहित मति करिकै सो काज करिये कि जैसा आपन हित तैसाही परारो हित दोऊ सम मानिकै करिये अर्थात् सबमें समभाव राखना सुजन की यही रीति है॥ ४२॥

पुनः सुजनन की कैसी रीति है कि जाके खाने से जीव देह को त्याग करत ऐसा जो है माहुर सो सुजनन को मिथ्या देखात अर्थात् झूठकरि मानत। काहेते माहुर को वेग देहही में रहत कुछ जीव में नहीं व्यापत याते माहुर को मिथ्या जानत अरु खल जो दुष्ट हरिविमुख विषयी तिनहिं सांचा गरल कहे माहुर सम सुजन मानते हैं काहेते दुष्टता वा विषयरूप विष लगाय देते हैं ताको वेग जीवमें अनेकन जन्म बना रहत ताते गोसाईंजी कहत कि खलन को परसि कहे उनके संगते सुजन कैसे परात नाम भागत जिमि पावक जो अग्नि ताकी आंच पायकै पारद जो पारा उड़िजात तैसे दुष्टन के संगते सुजन भागते हैं॥ ४३॥

दोहा

तुलसी खलबाणी विमल, सुनि समुझब हियहेरि।
राम राज बाधक भई, मन्द मन्थरा चेरि ४४
दान दयादिक युद्ध के, बीर धीर नहिं आन।
तुलसी कहहिं बिनीत इति, ते नरबर परिमान ४५

गोसाईजी कहत कि खलकी वाणी जो विमल भी होइ अर्थात् उत्तम वचन कहै जाके सुनत में कुछ विकार न प्रसिद्ध होइ ताहू को सुनिकै हियमें हेरि कहे विचार करि वाको हेतु समुझि लेव। काहेते खल भीतर बाहेर ते शुद्ध वाणी कवहूं न कहैगे याते यह निश्चय जानै कि या वाणी के भीतर कुछ विकार होई जरूर कौन भांति कि देखो मन्थरा चेरी है अर्थात् कुछ उत्तम नहीं फिर मतिमन्द अर्थात् कुछ बुद्धिमान् नहीं सोऊ श्रीरघुनाथजी की राज्यको बाधक भई भाव ऐसी मीठी-वाणी हित देखाइकै कहिसि जामें कैकेयी को विश्वास आइगयो ॥ ४४ ॥

युद्ध के समय धैर्यवान् वीर आन भांति कोऊ नहीं है केवल दान दयादिक धारणहारही युद्ध में धीर वीर होते हैं अर्थात् दयादिक कहे सत्य, शौच, दया, दानादि जो धर्माङ्ग करि परिपूर्ण धर्मात्मा हैं तेई युद्ध में धैर्यवान् है वीरताकरि यश पावते हैं तेई परिमाण कहे सांचे नर नाम श्रेष्ठ नर हैं इत्यादि वचन गोसाईजी विशेष नीति कहते हैं। भाव यह कि सदा धर्मात्मा ही को जय होत है विशेष नीति यही है सोई ग्रहण करना उचित है ॥ ४५ ॥

दोहा

तुलसी साथी विपति के, विद्या विनय विवेक।
साहस सुकृत सत्य व्रत, राम भरोसो एक ४६
तुलसी असमय के सखा, साहस धर्म विचार।
सुकृत शील स्वभाव ऋजु, रामशरण आधार ४७

विपत्ति परे के समय कौन सहायक साथी है सो गोसाईंजी कहत कि एक तो विद्या साथी है अर्थात् विद्या करि जीविका

अरु सन्मान दोऊ मिलते हैं ।—दूसरा साथी विनय कहे नम्रता वा विशेष नीति है अर्थात् नम्रता व नीतियुत रहे मर्यादा बनी रही । फिर विपत्ति भी कुछ काल में नाश ह्वैजायगी । विवेक साथी है विवेकते अनीति न होइ और दुःख न व्यापी । साहस कहे पराक्रम साथी क्योंकि जीविका करिलेइगो । सुकृत सत्यव्रत साथी क्योंकि याके प्रभावते शीघ्र विपत्ति नाश होइगी । श्रीरघुनाथजी को भरोसा एक निश्चय साथी है—जाके निकट विपत्ति आवतही नहीं ॥ ४६ ॥

विपत्ति के साथी सखा गोसाईंजी कहत कि असमय को सखा साहस नाम पराक्रम है जो जीविकादि करिसकत । धर्म सखा है जाते असमय को दुःख शीघ्रही नाश होत । विचार सखा है याते कुमार्ग न चलो । फिर सुकृति रहिहै असमय को दुःख नाश ह्वैजाइगो । और शील अरु ऋजु कहे कोमल स्वभाव सखा है याते असमयमें भी कोऊ अनादर न करी । याते श्रीरघुनाथजीकी शरणकी आधारविशेष सहायक है जिनकी शरण होतही असमय रहत ही नहीं ।

यथा—ब्रह्मवैवर्ते—

आधयो व्याधयो यस्य स्मरणान्नामकीर्तनात् ।
शीघ्रं वै नाशमायान्ति तं वन्दे जानकीपतिम् ॥ ४७ ॥

दोहा

बिद्या बिनय बिबेक रति, रीति जासु उर होय ।
रामपरायण सो सदा, आपद ताहि न कोय ४८
बिनमपञ्चलखुभीखमांलि, नहिं फल किये कलेश ।
बावनबलिसों लीन छलि, दीन्ह सबहि उपदेश ४९

विद्या जो भगवत् तत्त्व जाननेवाली ऐसी विद्या होइ विनय कहे नम्रता वा विशेष नीतिपथ के चलनेवाले अथवा संसार सुख देहादि असार भगवत्पद सार ऐसा जो है विवेक तामें है रति कहे प्रीति ऐसी रीति जाके उरमें होइ सो सदा रामपरायण कहे श्रीरामस्नेह में सदा तत्पर है ऐसे जनन को काहू भांति की आपद् जो दुःख सो कबहूं होतही नहीं कदाचित् कोऊ दुष्ट दुःखद उपाय करै ताको प्रभु मेटिदेते हैं यथा अम्बरीष पै दुरवासा ॥ ४८ ॥

प्रपञ्च नाम छल विना कीन्हे शुद्धस्वभाव मांगेपर श्रद्धा सहित जो कोऊ देइ तौ भिक्षा अर्थात् अन्नादिकी चुटकी सो अत्यन्त भली है ऐसा मनते विचारि करि देखु अर्थात् यह निर्विघ्न जीविका है ऐसेही समुझि सब कार्य करना भला है अरु क्लेश करिकै जो अर्थादि फल मिलै तौ नहीं भलो है कौन भांति जैसे वावन महाराज वलिसों छल करि तीनिहूं लोक लीन्हे एक तौ छली कहाये दूसरे जन्म कनौड़े भये अर्थात् उनके हाथ बिकाय गये सो लोकको उपदेश दीन्हे कि छल को यही फल है ऐसा विचारि निश्छल रहिवो सदा सुखद पथ है ॥ ४९ ॥

दोहा

विबुधकाज वावन बलिहि, छलो भलो जियजानि।
प्रभुता तजि बश भे तदपि, मनते गइ न गलानि ५०

और कर्मन को फल भोगेते काल पाय छूटि जात छल फल को दुःख अचल है चाहै काहू भांति करै सो कहत कि विबुध जो देवता तिनको काज कुछ आपनो काज नहीं अर्थात् परस्वार्थ लोक वेद दोऊ मत ते भलो है ऐसा जियसों जानि वावनजी

महाराज बलिहि छलो अर्थात् छल करि सब लोक लैके जीविका जानि देवन को देदिये भाव दीन देवतन की जीविका सबल बलि ने छीन लई रहै सोई मांगि उनको दीनी जामें अनुचित काहू भांति नहीं ताहू छलको फल यह कि प्रभुता ऐश्वर्य तजिकै परवश भये अर्थात् स्वतन्त्रता त्यागि परतन्त्रता धारण करे भाव ब्रह्मादिक पै आज्ञा देनहार ते बलि की आज्ञा करनहार भये तदपि कहे ताहूपर छल करिबे की जो ग्लानि सो मनते कबहूं न मिटिगई भाव वेद पुराणादि हमको सर्व विकाररहित समदर्शी कहत रहो सोई अब हमको छली नाम कहैंगे वा अपनी भूल मानते हैं ॥ ५० ॥

दोहा

बड़े बड़ेनते छल करै, जनम कनौड़े होहि।
तुलसी श्रीपति शिर लसै, बलि बावनगति सोहि ५१

बड़े बड़ेन ते छल करहि अर्थात् जे प्रतिष्ठित उत्तम पुरुष हैं ते जो उत्तम पुरुषनते छल करते हैं तो जन्म भरिके कनौड़े होते हैं अर्थात् जन्मभरि वाके हाथ बिकाय जाते हैं कौन भांति यथा श्रीपति के शीश पर तुलसी लसै कहे सदा विराजमान है अर्थात् तुलसी वृन्दानाम जलन्धर दैत्य की स्त्री है इनके पतिव्रत तेजते जलन्धर युद्ध में शिवजी का मारा न मरा तब भगवान् छलकरि जलन्धर को रूप धरि वाको पतिव्रत भङ्ग करे तब जलन्धर मरा सोई कानि मानि भगवान् तुलसीरूप वृन्दा को सदैव शीश पर रखते हैं। फिर सोहि कहे ताही भांति बलि बावन की गति है कि जबते बलि को छले तबते बावनजी सदा बलि के निकट ही रहत यह भागवत में प्रसिद्ध है वृन्दा को चरित्र शिवपुराण में

युद्धसंहिता के तेइस अध्याय में प्रसिद्ध है अरु जो बड़े बड़ेन ते छल करिवेको कहे ताको यह हेतु कि सफेद वसन में दाग लागत मैले में का दाग लागै वह तौ स्वाभाविक ही मैला है तथा दुष्टन को कौन यश अयश उनको तौ छल बलादि यावत् अवगुण हैं सो करने को दुष्टनकी स्वाभाविक रीति ही है ते छल करि कनौड़े नहीं होते हैं तिनकी गनती नहीं है ॥ ५१ ॥

दोहा

खल उपकार विकार फल, तुलसी जानं जहान।
मेढ़क मर्कट वणिक वक, कथा सत्य उपखान ५२

खल जो दुष्ट तिनको उपकार अर्थात् दुष्टन के साथ जो कोऊ भलाई करत सो विकार फल पावत अर्थात् वही दुःखदायक है जात ताके अनेक इतिहास प्रसिद्ध हैं तातें गोसाईं जी कहत कि याको हाल सब जहान जानत हैं काहेते मेढ़कको चरित्र, मर्कट को चरित्र, वणिक् को चरित्र और वक को चरित्र इनके सत्य कथा उपाख्यान मसला कहनूति सो हितोपदेश राजनीति में प्रसिद्ध है।

यथा—एक मेढ़क कुटुम्बमें वैर मानि तिनके नाश हेतु एक सर्प को उपकार करि बोलायो सो प्रथम तौ वाके शत्रुनको खाये पीछे वाके पुत्रादि खाये तब मेढ़क पछिताय भागो।

पुनः मर्कट बांदर एक मगर को उपकार करि अनेक फल गिराय खवाये पाछे वही याके जीव को गाहक भयो सोऊ पछिताय वहाना ते जीव बचायो।

पुनः एक वणिक् ने राजकुमारको उपकार कीन्हों अर्थात् वाके पूजा सिद्धि हेतु आपनी स्त्रीको पठायो तासों राजपुत्र भोग करो यह जानि वणिक् पछितायो।

पुनः बगुला ने एक नेउर को पुकार कियो अर्थात् एक सर्प के निमित्त बोलायो नेउर ने सर्प को खाये पीछे बगुला के अंडा भी खाये इत्यादि हितोपदेश राजनीति में प्रसिद्ध है ॥ ५२ ॥

दोहा

जो मूरख उपदेश के होते योग जहान।
दुर्योधन कहँ बोध किन आये श्याम सुजान ५३
हितपर बढ़त बिरोध जब अनहित पर अनुराग।
रामबिमुख बिधिबामगति, सगुनअघाय अभाग ५४

मूर्खजन काहूकों हितोपदेश नहीं सुनते हैं काहेते जो मूर्ख के उपदेश करने योग्य जहान कहे संसार में और कोऊ होतो तौ देखो जासमय कौरव पाण्डवन ते विरोध भयो सब राज्य दुर्योधन ने लैलीन्हीं तब सब समुझायो कि पाण्डवन को कुछ जीविका देउ सो न माना तब श्याम सुजान श्रीकृष्णजी आये ये भी बहुत समुझाये तबहूँ न मान्यो सो कहत कि जो मूर्ख काहू के समुझाये ते समुझै तौ औरकी को कहै श्रीकृष्ण के समुझायबे ते दुर्योधन के बोध किन भयो काहे न समुझि गये अर्थात् हम न देंगे तौ ये बरबस देवायबे योग्य जो विरोध करैंगे तौ प्राण लेबे योग्य यह एकहू न समुझे आखिर प्राण धन सब गँवाये तातें मूर्ख को हित अनहित नहीं देखात ॥ ५३ ॥

मूर्खता विनाश की मूल है सो कहत कि जा समय हितकार पर विरोध बढ़त अरु अनहित करनेवालों पर अनुराग बढ़त तब यह जानिये कि यह श्रीरघुनाथजी सों विमुख ताके ये आचरण हैं। ताको फल यह कि विधि की वाम कहे उलटी गति होत अर्थात् जो भलाई मानि करत सोई लौटिकै बुराई है जात। फिरि जो सगुन भये तौ आपने

भाग्य का उदय जाने अर्थात् सगुन भये अब हमारो कार्य सिद्ध होइगो तामें अघायकै अभाग्य को फल पावत अर्थात् ऐसा कार्य नशात कि दुःखते आसूदा है जात इत्यादि में सब दुःखी हैं ॥ ५४ ॥

दोहा

साहसही सिख कोपवश, किये कठिन परिपाक।
शठ संकटभाजन भये, हठि कुयती कपि काक ५५

जे जन काहू हितको सिख कहे सिखाव न माने आपने कोपवश विचारहीन है साहस ही कहे सहसाकरि अर्थात् आपने बल के मानवश शीघ्रही परिपाक कहे अन्तफल दुःखदायक ऐसे कठिन कर्म किये ते जन शठ हठ करिकै महासंकट के भाजन नाम दुःखके परिपूर्ण पात्र भये भाव जे हठवश काहूको सिखावन नहीं माने सहसा कर्म करि हारे ते अन्तमें महादुःख पाये कौन भांति।

यथा—कुयती अरु कपि अरु काक। तहां एक तौ कुयती रावण मारीच को सिख नहीं मान्यो कुयती बनि जानकीजी को हरि लैगयो ताको वंशसहित नाश भयो। दूसर एक राजपुत्र ते गन्धर्वीते स्नेह भयो वाने कह्यो कि यह चित्रलिखी विद्याधरी है याको कबहूं मति छुयो ताको सिखावन न मान्यो याको छुइ लियो वाने एक लात मारी कि जाय मगधदेश में गिरो तब ते वा गन्धर्वी के विरह तें संन्यासी है भर्मने लगो यह हितोपदेश राजनीति में प्रसिद्ध है।

पुनः कपि बालि तारा को सिखावन न मान्यो सो प्राण गँवाये। दूसर बन्दर विचार सिखावनहीन अधचीरी लकरीकी कील उचारि अण्डकोप दबि मरो।

पुनः काक जयन्त वेद पुराणादि को सिखावन न मानो पर-ब्रह्म प्रभुसों वैर करि महादुःख पाये ॥ ५५ ॥

दोहा

मारि सौंहकरि खोजलै, करि मत सब बिन त्रास ।
मुये नीच बिन मीचते, ये इनके बिश्वास ५६
रीझ आपनी बूझ पर, खीज बिचार बिहीन ।
ते उपदेश न मानहीं, मोह महोदधि मीन ५७

मारि कहे प्रथम जापै काहू भांति की चोट करे जब वह बचि कै भागिगयो ताको फिर खोज लै ढुँढाय तासों सौंह कहे सौगन्द करि मिलाप कीन्हें अरु आपने सब हितके मत कहे सलाह वार्ता कर फिर बिन त्रास कहे वाको विश्वास करि निर्भय रहे ते जन नीच कुबुद्धि जे पूर्वशत्रु के विश्वास में रहे ते नीच बिना मीचु बिना मृत्युही आये मरे भाव आपने हाथे ज़हर खाये तौ क्यों न मरै ताते जापै कुछ चोट करिये तासों कबहूं गाफिल न परिये अरु जो प्रथम चोटकरि पाछे गफलत करी सो बेशक मृत्युवश होइ यामें सन्देह नहीं ॥ ५६ ॥

जिन जनन को आपनी बूझपर रीझ है अर्थात् काहू के कहे सुने ते नहीं जो बात आपने मन में आई सोई करते हैं । फिरि खीझ कहे जापर क्रोध करते हैं सो सब बिचारविहीन करते हैं अर्थात् साधु असाधु गुण दोष को बिचार नहीं करते हैं जैसा मनते वैठि गयो तैसेही क्रोध करि होते हैं भाव औरंको अपराध और को दण्ड देते हैं ऐसे जे जन हैं ते मोहरूप महोदधि कहे समुद्र के मीन कहे मछली ह्वै रहे हैं अर्थात् मोह में ऐसे मग्न हैं कि जिनको हित अहित नहीं सूझत ते काहू को उपदेश नहीं मानते

हैं अर्थात् मोहते बुद्धि भ्रमित है ताते सन्त गुरु शास्त्रादि उपदेश पर विश्वास नहीं आवत तौ कैसे उपदेश मानैं ॥ ५७ ॥

दोहा

समुझिसुनीतिकुनीतिरत, जागतही रह सोय।
उपदेशिवो जगाइवो, तुलसी उचित न होय ५८
परमारथपथ मत समुझि, लसत विषय लपटानि।
उतरि चिताते अधजरी, मानहुँ सती परानि ५९

जे जन सुनीति की यावत् रीति हैं तिनको पढ़ि लिखि सुनि बनाय समुझे हैं।

यथा—रावण सरीखे विद्वान् जो वेदन की भाष्यकर्त्ता इत्यादि सुनीति को समुझिकै। पुनः कुनीतिही में रत अर्थात् जीवहिंसा परस्त्रीहरण विना अपराध दण्ड सन्तन की निन्दादि व वेदविरुद्ध धर्ममें आरूढ़ रहति ते जन जागतही में सोइ रहे हैं।

यथा—लोक में काहू सों विमुख है वाको देखि न बोलिवे हेतु सोवन को बहाना करि पौढ़ो है तैसेही जे धर्महीन हरिविमुख हैं ते सब जानत अरु अनीति करते हैं तिनको उपदेशिवो कैसा है सोवन को बहानावाला जागत मनई ताको जगावना वृथा है सोई भांति हरिविमुख अधर्मिनको उपदेश करनो उचित नहीं है ॥ ५८ ॥

परमार्थ जो परलोक ताको पथ कर्म ज्ञानोपासनादि ताके मत। यथा—ज्ञान के वेदान्तादि पढ़ि विवेक, वैराग्य, शम, दमादि षट्सम्पत्ति मुमुक्षुतादि जाने हैं। पुनः श्रवण कीर्तनादि नवधा प्रेमापरादि भक्तिके सब आचरण जाने हैं, मीमांसादि कर्मकाण्ड विधि निषेध जानन इत्यादि मत समुझि फिरि विषय जो शब्दादि ताही में तनकरि लपटान रहत। पुनः लसत कहे मन

विषयरस ही में चभकत अर्थात् परस्त्रीरत में मन चभकत ताते उनकी वार्त्ता शब्द में कान लपटात मन लगाय सुनत। पुनः त्वचा स्पर्श में लपटात। पुनः परस्त्री आदिके रूप देखिबे में नेत्र लपटान रहत। पुनः मीठे स्वाद में मन चभकत ताते अनेक रसखाने में रसना लपटान रहत। पुनः सुगन्ध में नासिका लपटात इत्यादि के लोभ ते कामना बाढ़त जब कामना की हानि भई तब क्रोध भयो ताते मोह आयो अर्थात् हिताहित नहीं देखात तब बुद्धि में भ्रम आयो तब शास्त्र सन्त गुरु आदिकन के उपदेश को विश्वास गयो तब सब काम जड़वत् करने लगे ते कैसे भये ज्यों अधजरत ते सती चिता ते उतरि परानि नाम भागि सो काहू दिष्टि की न भई देखो प्रथम वाको देव धन्य कहत अरु सब जग माथ नवावत जब वा पद ते च्युत भई तब चाण्डालसम जानि कोऊ मुख नहीं देखत ॥ ५९ ॥

दोहा

तजत अमिय उपदेश गुरु, भजत विषय विषखान।
चन्द्रकिरण धोखे पयस, चाटतजिमिशठश्वान ६०

जीवको मुक्तिरूप अमरपद देनहार अमृतरूप जो श्रीगुरुको उपदेश कि विषयसुख आशा त्यागि प्रेम ते भगवत् शरण गहो ऐसा गुरुको उपदेश ताको मूर्ख तजत अर्थात् नाहीं ग्रहण करते अरु करते क्या हैं विषय को भजते हैं अर्थात् शब्द में श्रवण लगाये स्पर्श में त्वचा लगाये रूप में नेत्र लगाये रस में जिह्वा लगाये गन्ध में नासिका लगाये इत्यादि की कामना में मन लगाये सो विषय कैसे हैं कि विषकी खानि हैं अर्थात् विष तौ देहही में व्यापत विषयरूप विष जीव में व्यापत जो जन्मान्तरन में चढ़ारहत ताको ग्रहण करनेवाले कैसे हैं सो कहत कि यथा शठ

श्वान चन्द्रकिरण के धोखे पयस जो है जल ताको चाटत अर्थात् जलमें चन्द्रमा की परछाहीं देखत ताकी किरणें अमृत जानि पानीको चाटत जैसे यह झूंठही है तैसे भगवत् सांचा ताकी परछाहीं संसारसुख में जीवभूला परा है यद्यपि वृथा परन्तु सांचाही माने है सोई भ्रम भूल है ॥ ६० ॥

दोहा

सुरसदनन तीरथ पुरिन, निपटि कुचाल कुसाज।
मनहुँ मवासे मारि कलि, राजत सहित समाज ६१

सुरसदन जहां देवनके स्वरूप स्थापित मन्दिर तिनके पूजा दर्शनमात्र को माहात्म्य जैसे वैद्यनाथादि तीर्थ जहां स्नान दर्शनादि को माहात्म्य। प्रयाग, पुष्कर, नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्रादि पुरी अरु अयोध्या, मथुरा, हरद्वार, द्वारका, काशी, कांची, उज्जयिन्यादि इत्यादि सुरसदनन में औरं तीर्थन में पुरिन में निपट करिकै कुचाल है अर्थात् स्त्री परपुरुषरत पुरुष परस्त्रीरत प्रतिष्ठित जन-नीची स्त्रीन में रत चोरी ठगी पाखण्ड परधन हरणादि अनेक छल कपट है रहा है।

पुनः कुसाज कहे जो जन कहे हैं तिनकी संगति ते व यावत् जगत् की व्यभिचारिणी स्त्री लोक में फिरते फिरते तीर्थन को चली आवती हैं तिन को समागम सदा इत्यादि कुसाज में परि प्रतिष्ठित जन भी खराब होते हैं ताकी उत्प्रेक्षा गोसाईंजी कहत कि तीर्थादि पाप ते वचने हेतु जीवन के मवास स्थान है अर्थात् तीर्थन में पाप नाश हैजात इत्यादि जानिकै कलिकाल ने प्रथम मवास स्थान ही को मारा अर्थात् कुचालरूप सेना पठाय आपनो थाना-बैठार दीन्हा-सोई कुमार्गरूप सेना समाज जो कामादि भट

तिनसहित कलिकाल विराजमान है भाव तीर्थनमें कुमार्ग नहीं है कलिकाल को अमल है। जैसे राजा लोग प्रथम शत्रु को किला लैलेत ॥ ६१ ॥

दोहा

चोर चतुर बटपार भट, प्रभु प्रिय भंरुवा ,भगड ।
सब भक्षी परमारथी, कलि सुपन्थ पाखण्ड ६२

अब सब संसार की रीति कहत कि जग में जे चोरी करते हैं अथवा आपनो कार्य चोरायकै साधते हैं अरु प्रसिद्ध में वेपरवाही की वार्ता मीठी कहते हैं भाव भीतर लोभ लिये मुँहते प्रसिद्ध नहीं करत तिनको लोग चतुर कहत पुनः बटपार जे मार्ग में परारी वस्तु बरवस छीनि लेते हैं अर्थात् डाकू ते भट कहे वीर कहावते हैं पुनः भरुवा जे स्वस्त्री ते व्यभिचार करावते हैं अरु भांड़ जे मसकरी करते हैं ते प्रभु जो राजालोग तिनको प्रिय रहते भाव राजालोग भी अनीति में रत हैं पुनः मद मांसादि जे सर्वभक्षी हैं अर्थात् कौल कपाली आदि ते परमार्थी अर्थात् महात्मा कहावते हैं। पुनः जिनमें पाखण्ड है अर्थात् वेदविरुद्ध धर्म तेई कलियुग में सुपन्थ कहावते हैं ॥ ६२ ॥

दोहा

गौंड़ गँवार नृपाल कलि, यवन महामहिपाल ।
साम न दाम न भेद कलि, केवल दण्ड कराल ६३
काल तोपची तुपक महि, दारू अनय कराल ।
पाप पलीता कठिन गुरु, गोला पुहुमीपाल ६४

गौंड़ अन्त्यज व नीच जाति गँवार बुद्धि विद्याहीन ऐसे तौ कलियुग में राजा हैं अरु यवन म्लेच्छादि महामहिपाल, मण्डले-

श्वर हैं ताते राजनीति हीन है साम जो परस्पर मिलाप सो नहीं दाम कछु दै वा लैके मिलना भेद काहू से विग्रह कराय काहू सों संधि करावना इत्यादि राजालोग जानतही नहीं ताते इनकी जिक्र नहीं केवल एक दण्ड सोऊ कराल रहि गयो अर्थात् क्रोध-वश किसीको मारना लोभवश किसीको लूटिलेना यही राजनीति कलियुग में रही ॥ ६३ ॥

काल कलियुग सोई तोपची कहे गोलन्दाज है महि जो पृथ्वी सोई तुपक तोपादि है तहां तुपक तोपादि छोटी बड़ी को फेर है रीति एकही है छोटी राज्य तुपक है बड़ी राज्य तोप है तामें भरिबे को दारू कहे बारूद चाहिये सो अनय कहे अनीतिरूप बारूद भूमि में भरी है कैसी कराल कहे महा-तीक्ष्ण तामें गोला चाहिये सो पुहुमीपाल जो राजा लोग तेई गुरुनाम गरू गोला हैं तामें पलीता चाहिये जासों बरूद में आगि लगाई जात सो कठिन जो है पाप सोई पलीता है जाको पाइ अनीति मचएड परत ता बल राजा रूप गोला चोट करत ताते प्रजालोग पीड़ारूप घायल होत यामें रूपक है ॥ ६४ ॥

दोहा

राग रोष गुण दोष को, साक्षी हृदय सरोज।
तुलसी बिकसतमित्रलखि, सकुचत देखि मनोज ६५
वैर सनेह सयानपहि, तुलसी जो नहिं जान।
तेकि प्रेममग पग धरत, पशु बिन पूछ बिषान ६६

यामें अविवेक रूप सूर्य ताकी किरणैं राग अर्थात् प्रीति पुनः रोष कहे विरोध। पुनः गुण अरु दोषादि यावत् अविवेक के अङ्ग हैं इत्यादि को साक्षी कहे सुहृद सो सरोज नाम कमलरूप हृदय है

तहां सूर्यन को देखि कमल फूलत तथा गोसाईंजी कहत कि अविवेकरूप मित्र जो है सूर्य तिनको लखि कहे देखिकै हृदयरूप कमल विकसत है अर्थात् राग द्वेषादि में हृदय प्रसन्न होत। पुनः सोई हृदयकमल मनोज जो चन्द्रमा ताको देखि सकुचत कहे संपुटित होत यहां चन्द्रमा है विवेक ताकी किरखैं संतोष, क्षमा, दया, शान्ति, वैराग्यादि ताको देखि हृदय अप्रसन्न होत अर्थात् अनीति में मन खुशी नीति में न खुशी ॥ ६५ ॥

काहूसे वैरनाम शत्रुता किहे रहत काहूसों सनेह नाम मित्रता किहे रहत अर्थात् क्रोध, ममतादिवश ते मोहान्ध है ताते जो जन सयानपहि नहीं जानते हैं अर्थात् जिनके उरमें विवेक नहीं है तिनको गोसाईंजी कहत कि ते कैसे हैं बिषान कहे सींग अर्थात् विना सींग पूछके पशुभी कुरूप हैं तेकि प्रेममग पग धरत अर्थात् वे कैसे प्रेम की राहपर चलैंगे विवेकरूप नेत्र तौ हैं ही नहीं मार्ग कैसे देखै जामें चलै ॥ ६६ ॥

दोहा

रामदास पहँ जायकै जो नर कथहि सयान।
तुलसी अपनी खांड़महँ, खाक मिलावत श्वान ६७
त्रिबिधिएकबिधि प्रभुअगुण, प्रजाहि सवाँरहि राउ।
करते होत कृपाण को, कठिन घोर घन घाउ ६८

जे श्रीरघुनाथजीके सांचे दास हैं, तिनके पास जाइकै जो नर सयानता कथहि अर्थात् बहुत भांतिकी चातुरी कथते हैं ते श्वानसम हैं भाव मतवाद करि अकारण भूकना चातुरी वलमुख ते जोरावर सबको निरादररूप हिंसक ऐसे श्वान समान नर श्रीरामदासन के पास जो चतुरता कथते हैं, तामें कौन लाभ पावते हैं आपनी खरी

खांड़में खाक राखमाटी मिलावते हैं भाव चातुरी गुणमें मानरूप अवगुण मिलाय सदोषित बनावत जाको कोऊ आदर नहीं करत ॥ ६७ ॥ राउ जो राजालोग ते प्रजहि सँवारहिं अर्थात् यथा राजा तथा प्रजा भी है जाती है जो राजा धर्मवन्त होइ ताको देखि प्रजा महाधर्मवन्त हैजाय जो राजा अधर्मी होय तौ प्रजा महाअधर्मी होइ कौन भांति कि प्रभु जे मालिक हैं ते जो एक विधिको अवगुण करैं तौ प्रजा त्रिविधिको अवगुण करै तहां अधर्म के चारि चरण हैं असत्य, अशुद्धता, हिंसा, कुटिलता तामें कलियुग राजा ने एक असत्य करी ताते मोहान्धकार बढ़ो तब प्रजा जीव ताने तीन विधि अवगुण करने लगे। जैसे—अशुद्धता तेहिते काम बढ़ो। पुनः हिंसादि ताते क्रोध बढ़ो। पुनः कुटिलतादि ताते लोभ बढ़ो। पुनः जे भूमि पै राजा हैं ते एक विधिको अवगुण करत अर्थात् परधनहरण ताको देखि प्रजा तीनि विधि करत अर्थात् कामी है परस्त्री हरत क्रोधी है पर अपकार करत लोभी है परधन हरत इत्यादि में सब अवगुण आइ जात तहां राजा को अवगुण एक विधि प्रजन में तीन विधि कौन प्रकार होत यथा कर कहे हाथ ते मारे कृपाण जो है तरवारि ताको कठिन दुःखदायक घोर कहे भयंकर घन कहे बड़ा भारी घाउ होत भाव जस तरवारि ते होत तैसा घाउ हाथ ते नहीं है सकत ॥ ६८ ॥

दोहा

काल विलोकत ईशरुख, भानु काल अनुहारि।
रविहि राहु राजहि प्रजा, बुधव्यवहरहिंविचारि ६६

काल जो है समय सो ईश को रुख विलोकत नाम देखत तहां प्रथम तौ ईश है ईश्वर ताको जैसा रुख देखत तैसेही काल हैजात अथवा-सतयुगादि ईशन को रुख देखि अथवा ईश राजा

लोग धर्मी अधर्मी जैसे होत तैसेही काल होत यथा वेणु की राज्य में दुकाल भयो । पुनः पृथुकी राज्य पाय सुकाल भयो अरु भानु जो हैं सूर्य ते काल के अनुसार वर्तत यथा प्रलय-काल पाय बारहौ कला तपि सबलोक भस्म करिदेते हैं शीतकाल में मन्द आतपकाल में प्रचण्ड वर्षा में जल देवे प्रभातकाल उदय सायंकाल अस्त दुपहर में प्रचण्ड पुनः समय पाय और और नवीन ढंग करते हैं ।

यथा—

"भयो पर्व विन रवि उपरागा । "

पुनः रवि तप जेतनहिं काज इत्यादि तिनको फल देखावत कि देखो रवि को दुःखदायक राहु है ता करि सूर्य दुःख पावते हैं तथा प्रजा लोगें कुमार्गी ह्वै अनेक उपद्रव करते यथा चोरी ठगी डकाही आदि तेहि करिकै राजा दुःखित होत अर्थात् बुरे कर्मन को फल दुःख भले कर्मन को सुख यह सबको निश्चय करि मिलत ताते जे बुद्धिमान् हैं ते भले बुरे विचारि व्यवहार करते हैं अर्थात् बुरे त्यागि भले कर्म सदा करते हैं तिनको दुःख कबहूं नहीं होत वे सदा सुखी रहत यथा विभीषण रावण में प्रसिद्ध है ॥ ६९ ॥

दोहा

यथा अनल पावन पवन, पाय सुसंग कुसंग ।
कहिय सुबास कुबास तिमि, कालमहीस प्रसंग ७०

यथा पवन जो बयारि सदा अमल है जामें काहू भांति कोमल नहीं है । पुनः परमपावन कहे अत्यन्त पवित्र है जामें कुछ अशुद्धता नहीं है सोऊ सुसंग कुसंग पायकै सुवास कुवास कहिये अर्थात् सुन्दर फुलवारी आदि सुगन्धित वस्तु को संग

पायकै आवत ताको सुगंधित पवन कहत अरु विष्ठादि कुसंग पाय आवत ताको दुर्गन्धित पवन कहत तिमि कहै ताही भांति महीश जो राजा ताको प्रसंग पायकै काल बदलि जात अर्थात् सुधर्मी राजा को संग पायकै सुकाल होत।

यथा—

"जनु सुराजमङ्गल चहुँ ओरा।"

पुनः अधर्मी राजा पाय अकाल है जात सो वर्तमान प्रसिद्ध है।

यथा—

"कलि बारहि बार दुकाल परै।
बिन अन्न दुखी सब लोग मरै" ॥ ७० ॥

दोहा

मलउ चलत पथ शोचभय, नृपनि योग नय नेम।
कुतिय सुभूषण भूषियत, लोह नेवारित हेम ७१

तहां कोऊ कहै कि धर्मवंत राजा पाय जे प्रजा स्वाभाविक अधर्मी हैं ते कैसे सुमारग चलैंगे तापर कहत कि जो सुधर्मी राजा होत ताकी यह आज्ञा रहत कि नियमसहित, नीति मारगपर सब जन चलै अरु जो नियमते बाहरे अनीति चली ताको कराल दण्ड होइगो।

यथा—प्रह्लाद की राज्य में यह आज्ञा रहै कि जो झूंठ बोली ताको माणघात दण्ड होई इत्यादि नृप जो राजा ताको नियोग नाम आज्ञा ताके दण्डकी भय कहै, डर करिकै मन में सोचि कि जो अनीति करैंगे तौ राजा दण्ड देइगा ऐसा विचारि जे दुष्टौ हैं तेऊ भले पथपर चलते हैं ताते दुष्टता भीतर परी रहत सुराह चले ते सुमार्गी देखात कौन भांति यथा कुतिय कुरूप स्त्री सोऊ सुंदरे

भूषण बसन पहिराइये तौ सुन्दरि देखात तथा लोह की कुरूपता हेम जो सोना तेहि करिकै नेवारियत अर्थात् लोह की वस्तु जैसे बन्दूक अथवा तरवारि को कबुजा आदि ताके ऊपर सोने को काम वेलि बूटा अथवा लिपौआ काम करि दीन्हे ते लोह की कुरूपता जात रहत, सुन्दर शोभायमान लागत तथा सुराज में सुमारग चले ते खल भी सुमार्गी देखात ॥ ७१ ॥

दोहा

सुधा कुनाज सुनाज फल, आम असन सम जान।
सुप्रभु प्रजाहित लेहि कर, सामादिक अनुमान ७२
पाके पकये विटप दल, उत्तम मध्यम नीच।
फल नर लहहिं नरेशतिसि, करि बिचार मन बीच ७३

जे धर्म नीतिमान् राजालोग जब राज्य देखने हेतु बहिराते हैं जहां जहां विश्राम होत तहां तहां प्रजालोग भेंट भोजनादि अनेक उपहार देते हैं सो कहत कि कुनाज कुत्सित अन्न मोटी रीति के चाउर पिसानादि व पशुन के रातिब हेत चना मोठादि पुनः सुनाज जैसे इस्तेमाल चावल, कांड़ादि, दालि, मैदा, घृत, शक्-रादि पलामिष आमादि यावत् फल हैं इत्यादि जो कोऊ देत ताकी प्रसन्नता हेत सब सुधाअशन कहे अमृत भोजन सम जानत अर्थात् सबको भले समुझत यह स्वाभाविक सुप्रभुकी रीति है अर्थात् जे सुधर्मी राजा हैं ते सामादिक जो हैं राजनीति ताके विचार ते प्रजाकी प्रीति व शक्ति अनुमानि ताके अनुकूल कर जो है भेंटादि सो लेते हैं प्रजा के हित के हेत अर्थात् भेंटादि पाये राजा प्रसन्न रहत ताते प्रजाकी वृद्धि होत यथा एक दिन योजन

लैके जन्मभरेको भोजन देत व कर दीन्हे ते भजन को स्वाभाविक अपराध मिटत है ॥ ७२ ॥

विटप जो वृक्ष हैं तिनके दल फलादि तिनको तीनि प्रकार ते नर लहहिं नाम पावते हैं विमि कहे ताही भाँति नरेश जो राजा सो प्रजा सों भेंटादि पावने को हेतु मन में विचारि लेइ जैसे—जा वृक्ष की भलीभांति रक्षा करत तामें लागे रहे जब पाके आप हीसों गिरे ते फलादि उत्तम हैं।

तथा—प्रजा को पालन करै जो भेंटादि आपनी खुशी ते देइ सो राजा उत्तम भेंट विचारै अरु जो फलादि पाकि रहे हैं परन्तु गिरे नहीं किञ्चित् कसरि लिहे हैं तिनको तूरि दुइ दिन धरि पकै लीन्हे ते मध्यम हैं।

तथा—प्रजालोगन के श्रद्धा है परन्तु वहां तक पहुँचै न पाये बीचही सिपाही गोहरावत कि राजाको भेंट देने चलत जाउ इत्यादि को मध्यम विचारै।

पुनः फल पाकने योग्य जानि तूरिलेय पाल धरि पकै लीन्हे सो नीचफल है तथा प्रजा के श्रद्धामात्र है परन्तु पदार्थ को उपाय नहीं करने पाये कि हुक्म आइगयो कि भेंट देने चलौ तब भजन को वन्दिशे करने में संकेत परा इत्यादि को नीच देना विचारै अब देखिये प्रजाको देना वही राजा को लेना वही केवल बातही बातमें राजा की उत्तमता, मध्यमता, नीचता प्रकट हैगई सो नीति धर्म ते विचार करना चाहिये ॥ ७३ ॥

दोहा

धरणि धेनु चरि धर्मतृण, प्रजा सुबत्स पन्हाय।
हाथ कछू नहिं लागि है, किये गोष्ठ की गाय ७४

तहां नीति धर्मपर चलने में क्या फल है ? सो कहत कि धरणि जो है भूमि सोई धेनु नाम गऊ है ताको चारा चाहिये सो कहत कि जो धर्मवन्त राजा होइ ताको जो धर्म सोई तृण है ताको चरिकै धरणीरूप गऊ पुष्ट परे तव प्रजारूप वत्स कहे बछड़ा है ताको देखि पन्हाय अर्थात् खेतादि थननमें अन्नादि दुग्ध परिपूर्ण होवे ताको पाय राजा अरु प्रजा दोऊ जीविका पाय प्रसन्न रहत अर्थात् जब अन्न परिपूर्ण उपजत तब सुकाल रहत ताते सब खुशी रहत अरु जो गोष्ठ की गाय कीन्हे अर्थात् धर्मरूप चारा रहित अधर्मरूप गोष्ठ में भूमि गाँसी परी है तौ कुछ न हाथ लागि है अन्नादि होवै न करी तौ राजा प्रजा सबै दुःखित होंइगे ॥ ७४ ॥

दोहा

करटकरट ह्वै परत गिरि, शाखा सहस खजूरि।
गरहि कुनृप करिकरि कुनै, सो कुचालिभुवि भूरि ७५
भूमि रुचिर रावण सभा, अङ्गद पद महिपाल।
धर्म रामनय सीम बल, अचल होत तिहुँकाल ७६

देखिये खजूरि में सहस कहे हजारन शाखा होते तिनकी पातीपाती प्रति कांटा होत हैं ताते सब शाखा करट करट रूप अनीति कर गिरि जाते हैं ताही भांति कुनृप जे अधर्मी राजा हैं ते कुनै कहे अनीति करिकरि गरहि कहे नष्ट होहिं तहां वैतौ नाशै भये उनकी कुचाल सों भुवि नाम भूमिविषे भूरि कहे बहुत ह्वै गई ताते प्रजाभी अनीति करने लगे ताते अकालादि होने लगे ताते सब प्रजा दुःखित होत है ॥ ७५ ॥

जे धर्मवन्त राजा हैं ते सदा अचल रहते हैं कौन भांति सो

कहत कि रुचिर कहे सुन्दरि भूमि सो रावण कीसी सभा है अरु धर्मवान् जे महिपाल हैं ते अङ्गद को पद हैं उहां पदटारनहार अनेक राक्षस हैं जिनके उठाये ते न उठिसका पॉउ अचल रहा तैसे इहां अनीति व शत्रु आदि अनेक विघ्न लागत परन्तु धर्म अरु नीतिरूप श्रीरघुनाथै हैं तिनके सीप कहे मर्यादरूप चलते भूत, भविष्य, वर्तमानादि तीनहूं काल में धर्मवन्त राजा अचल होत अर्थात् एकहू विघ्न नहीं व्यापत ॥ ७६ ॥

दोहा

प्रीति रामपद नीतिरत, धर्मप्रतीति स्वभाय।
प्रभुहि न प्रभुता परिहरै, कबहुँ वचन मन काय ७७
करके कर मनके मनहि, वचन वचन जियजान।
भूपति भलहि न परिहरहि, बिजै बिभूति सयान ७८

प्रीति रामपद अर्थात् छल छांड़ि कै सत्यभाव से श्रीरघुनाथजी के चरणारविन्दन मे प्रीति एकरस बनी रहै। पुनः नीतिरत सदा नीतिमारग में चलत अनीति में भूलिकै नहीं पॉव धरत । पुनःधर्म विषे प्रतीति राखे रहत अर्थात् सत्य, शौच, तप, दानादिविषे विश्वास ऐसा स्वाभाविक स्वभाव बना रहत ऐसे जे प्रभु हैं राजा तिनहिं प्रभुता जो है ऐश्वर्य सो वचन मन काय जो देह ताको कबहूं नहीं परिहरत भाव सेवाय हर्ष दीन वचन कबहूँ नहीं कहने को परत। जैसे मन देहते प्रसन्न रहत कबहूँ संकट नहीं परत ॥७७॥

वचनादिते प्रभुता कौन भांति नहीं जाती है सो कहत कि भूपनि जो राजा भले कहे धर्मवान् तिनहिं विजय, विभूति, सयाननादि नहीं परिहरत नहि त्यागत कौन भांति सो कहत कि कर जो है हाथ ताको ऐश्वर्य हाथहीमें रहत यथा रहत विजय सदा

हाथही में रहत विजय हाथते कबहूँ नहीं जात कि कबहूँ काहूते युद्ध करिकै पराजय पावै। पुनः मनको ऐश्वर्य मन में सदा बनै रहत अर्थात् मनमें प्रसन्नता उदारता बनी रहत सेवाय उदारता की कबहू मनमें दीनता नहीं आवत। पुनः वचनको ऐश्वर्य वचन में बनारहत कौन सयानता अर्थात् सेवाय चातुर्यता के कबहू निर्बुद्धिता वचन नहीं आवत॥ ७८॥

दोहा

गोली बान सुमन्तसुर, समुझि उल्टि गति देखु।
उत्तम मध्यम नीच प्रभु, वचन विचारु विशेखु ७९
शत्रु सयाने सलिल इव, राख शीश अपन्याव।
बूड़त लखि डगमगत अति, चपरि चहुंदिशि धाव ८०

तुपककी गोली अरु वाण अरु मात्रा स्वर इत्यादिकी उलटी गति समुझिकै देखिले जैसी इनकी उलटी गति है तैसे प्रभु जो है राजा ताके वचनमें विशेष विचारु अर्थात् जे उत्तम राजा हैं तिनके वचन उलटवेमें गोलीकी ऐसी गति है जबते गोली चली तबते न मालूम कहां गई। तथा उत्तम राजा जो वचन मुखते निकारे ताको पलटते नहीं अरु मध्यमनके वचन बाणसम हैं अर्थात् चलाये पर देखात ताते उठाय लावत परन्तु विना चोट किहे बीचते नहीं लौटत। तथा जे वचन कहि पूरा कर दिये। पुन बदलि गये ते मध्यम राजा हैं अरु नीचन के वचन मात्रा स्वर की समान हैं अर्थात् देखने मात्र को मात्रा स्वर में मिलत हैं आय परन्तु उच्चारण करे पर पूर्वको चलाजात अर्थात् ताको अर्थ पूर्वही मे आवत। तथा जे वचन कहत में सब कुछ देत

प्रयोजन के वक्त कुछ नहीं देत याते सब झूठही कहत ते नीच राजा हैं ॥ ७६ ॥

जे राजा सयाने हैं ते शत्रु के हेत सलिल इव कहे जलके समान बने रहत अरु शत्रुको नावके सम आपने शीशपर राखि अपन्याय-लेत अर्थात् अन्तर में शत्रुता राखे रहत वेअस्त्यार जानि मुखते आदर करत । पुनः जब नाव डगमगायके बूड़े लागत तब अत्यन्त चपरिकै चारिहु दिशिते जल वाही के बोरिवे हेत धावत तथा जब घात वैठिजाय तब शत्रुको जरते उखारि डारैं स्वाभाविक आदर देइ ॥ ८० ॥

दोहा

रैयत राज समाज घर, तन धन धर्म सुबाहु।
सत्यसुसचिवहि सौंपि सुख, विलसहिनिजनरनाहु ८१
रसना मन्त्री दशन जन, तोप पोप सब काज।
प्रभु कैसे नृपदानदिक, वालक राज समाज ८२

रैयत जो प्रजालोग राजसमाज जो यावत् अवला हैं अरु घर राजाको वासस्थान तन जो देह धन जो खजाना इत्यादि को रक्षक काको करैं सो कहत कि सुन्दर धर्म जो है ताही बाहुबल ते सब वस्तु की रक्षा आनैं अरु सत्य जो है सोई सुन्दर सचिव है ताको सब राजकाज सौंपि आपु स्वतन्त्र है नरनाह जो है राजा सो निज कहे आपनी इच्छापूर्वक सुख विलसहि निर्विघ्न स्वतन्त्र आनन्द करै भाव सत्य धर्म को धारण करै ताके एकहू विघ्न न निकट आवैं सदा आनन्द रहै ॥ ८१ ॥

अब मुख को उत्तम राजा करि देखावते हैं कि रसना जो जिह्वा है सो मन्त्री कैसा है जो करु मीठ स्वाद मुख को बताय देत

आपको कुछ नहीं राखत हैं। पुनः दशन जो दाँत ते जन कारवारी कैसे हैं जो भोजनरूप कार्य सिद्ध करि मुख को दै देते हैं आप कुछ नहीं राखते हैं। तथा प्रभु जो मुख सो सर्वाङ्ग को तोष पोषादि सब काज कैसे करत कि सब देह के अङ्ग को संतोष अरु पुष्टता एकरस करत कुछ आपही नहीं पुष्ट होत ताही भाँति मन्त्री तौ ऐसा होइ कि हानि लाभ सब राजा को सुनाय देवै अरु राजसमाज के यावत् जन हैं ते सब कार्य सिद्ध करि राजा को दै देवैं आप कुछ न राखैं। पुनः नृप जो राजा सो क्या करै कि बालकादि सेवक पर्यन्त यावत् राजसमाज है ताको दानादि दैकै सबको एकरस पालन पोषण करै॥ ८२॥

दोहा

लकड़ी डौवा करछुली, सरस काज अनुहारि।
सुप्रभु ग्रहहि न परिहरहि, सेवक सखा बिचारि ८३
प्रभु समीप छोटे बड़े, अचल होहिं बलवान।
तुलसी बिदित बिलोकहीं, करअंगुली अनुमान ८४

लकड़ी ईंधन डौवा कहे चिमचा अरु करछुली आदि यावत् वस्तुएँ हैं ते सब काज के अनुहारि कहे काम लागे पर सब सरस हैं। जैसे रसोईं बनावत समय अग्नि प्रचण्ड हेतु लकड़ी प्रिय लागत दालि तरकारी आदि चलाइवे हेतु चिमचा प्रिय लागत चाउर पूरी आदि बनावते समय करछुलि प्रिय लागत बटुई उतारत में संसी रोटी सेंकत में चिमटा इत्यादि समय पाय सब प्रिय लागत ताते सबको राखना योग्य है ऐसा बिचारि जे सुप्रभु कहे सुमार्गी राजा हैं ते सखा अथवा सेवकादि यावत् जन हैं तिनको जबते गहत तबते परिहरत नहीं त्यागत नहीं प्रयोजन कि

समय पर कार्य करेंगे अरु जे आपने को त्यागत ते शत्रु को मिलि बाधक होत ॥ ८३ ॥

प्रभु जो राजा ताके समीप रहे ते सेवकादि जे छोटे जन स-चिव सखादि जे बड़े जन ते सब अचल होत अर्थात् कोऊ काहू को टारि नहीं सकत। पुनः प्रभु के बल ते सब बलवान बने रहत कोऊ काहू को डरत नहीं कौन भाँति ताको गोसाईंजी कहत कि लोक में विदित विलोकहीं कहे देखियत हैं कौन भाँति जैसे कर जो है हाथ तामें अंगुली की अनुमान अर्थात् कर प्रभु के समीप रहेते छोटी बड़ी अंगुली सब अचल एक-रस बलवान् बनी रहती हैं। तथा प्रभु समीप सब छोटे बड़े जन रहत ॥ ८४ ॥

दोहा

तुलसी भल बरषत बढ़त, निज मूलहि अनुकूल।
सकल भाँति सब कहँ सुखद, दलनसहित फलफूल ८५
सधन सगुण सधरम सगण, सजन सुसबल महीप।
तुलसी जे अभिमान बिन, ते त्रिभुवन के दीप ८६

गोसाईंजी कहत कि निज कहे आपनो मूल जो है जर ताको भला सब वर्णन करत अर्थात् आपनी जर को सब भला चाहत काहे ते मूलै की भलाई ते सर्वाङ्ग बढ़त देखो दल जे है पत्ता तिन सहित फल फूल इत्यादि सबकहँ निज मूलही की अनुकूल सकल भाँति ते सुखद हैं अर्थात् जर के भले ते वृक्ष हरित हैं फूलत फलत मूल के सूखे कुछ नहीं होत। तथा प्रजा राजसमाजादि सब दलादि हैं अरु राजा मूल है राजा की भलाई ते सबको भला

है राजा की बुराई ते सबको बुरा है याते सबको उचित है कि राजा की भलाई मनावै ताही में आपनी भी भलाई जानैं ॥ ८५ ॥

अरु राजा सबल कौन भाँति होत सो कहत कि सधन सुन्दर धन-सहित। पुनः सगुण शील उदारतादि सुन्दर गुणनसहित सधर्म सत्य, शौच, तप, दानादि अङ्गनयुत सुन्दर धर्म सहित सगण सुन्दर सुभटसहित सजन सेवक सखा सचिवादि सुन्दर जननसहित अर्थात् सुन्दर खजाना सुन्दर गुण सुन्दर धर्म सुन्दर सिपाह सचिव सखादि सुन्दर जन इत्यादि सहित होइ तौ महीप जो है राजा सो सबल कहे सदा सब प्रकार ते बली बना रहै अर्थात् काहू सों पराजय न पावै सदा जयमान बना रहत ताहू में गोसांईजी कहत कि जे सब भाँति सबल राजा हैं तिनमें जे अभिमान रहित हैं जिनमें काहू भाँति को अभिमान नहीं आवत ऐसे जे हैं ते त्रिभुवन के दीप कहे तीनिउँ लोक के प्रकाशकर्ता उत्तम करि विदित होत ॥ ८६ ॥

दोहा

साधन समय सुसिद्ध लहि, उभय मूल अनुकूल।
तुलसी तीनौं समय सम, ते महि मङ्गलमूल ८७

साधन कहे प्रयोजन सिद्धि करने हेतु उपाय करने ही समय जाको सिद्ध लही नाम प्राप्त भई। पुनः उभय कहे दोऊ अर्थात् लोक परलोक ताको सुख ताको मूल कहे जर सो जाको अनुकूल कहे स्वाभाविक प्राप्त है तहाँ लोक सुख की मूल सम्राट् राजश्री। जैसे राजा मन्त्री मित्र खजाना राज्य की भूमि क़िला फौज।

यथा—

"स्वाम्यमात्यसुहृत्कोपराष्ट्रदुर्गबलानि चेत्यमरः" ॥

अथवा भाग्य के अष्टाङ्ग । यथा भगवद्गुणदर्पणे—

"सुगन्धं वनिता वस्त्रं गीतं ताम्बूलभोजनम् ।
भूषणं वाहनं चेति भाग्याष्टकमुदीरितम्" ॥

इत्यादि लोकसुख की मूल हैं ते सदा जाको अनुकूल रहैं अर्थात् स्वाभाविक इच्छापूर्वक प्राप्त रहत । पुनः परलोक सुख की मूल सत्संग गुरुकृपा विषय ते विराग स्वधर्म सहित भगवत् में प्रीति इत्यादि जाको अनुकूल होइ अर्थात् स्वाभाविक जाको प्राप्त होइ सो गोसाईंजी कहत कि कार्यसिद्ध लोक परलोक सुख ये तीनों जाको समय सम कहे जैसा समय आवै ताकी समान जाको प्राप्त है ते राजा मही विषे मङ्गल के मूल हैं जिनके नाम लीन्हे मङ्गल प्राप्त होत है । यथा ध्रुव प्रह्लाद जिनके साधन समय में सिद्ध पाए अर्थात् बाल्य ही अवस्था में प्रसिद्ध ह्वै भगवत् दर्शन दै कृतार्थ कीन्हें । पुनः जन्म भरि सर्वाङ्ग सुख परिपूर्ण रहा । पुनः अन्त समय भगवत्पद को प्राप्त भयो ताते सब समय की समान भयो याते इनको नाम मङ्गलमूल पुराणन में प्रसिद्ध है ॥ ८७ ॥

दोहा

रामायण अनुहरत सिख, जग भौ भारत रीति ।
तुलसी शठ की को सुनै, कलि कुचालि पर प्रीति ८८

रामायण द्वारा गोसाईंजी सब जग को सिखावन दीन्हे हैं तहाँ वर्णाश्रमादि सबके धर्म कर्म विधि निषेध सहित कहे हैं ।

यथा—

चौ० "शोचिय विप्र जो वेदविहीना । तजि निज धर्म विषय लवलीना ॥

शोचिय नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्राण समाना॥
शोचिय वैश्य कृपण धनवाना। जो न अतिथि शिवभक्ति सुजाना॥
शोचिय शूद्र विप्र अपमानी। मुखर मानप्रिय ज्ञानगुमानी॥
शोचिय पुनि पतिवञ्चक नारी। कुटिल कलह प्रिय इच्छाचारी॥
शोचिय बटु निजव्रत परिहरई। जो नहिं गुरु आयसु अनुसरई॥

दोहा

शोचिय गृही जो मोहवश, करै धर्मपथ त्याग।
शोचिय यती प्रपञ्चरत, विगतविवेक विराग॥

चौ०वैखानस सोइ शोचनयोगू। तप विहाय जेहि भावत भोगू॥
शोचिय पिशुन अकारण क्रोधी। जननि जनक गुरु बन्धु विरोधी॥
सब विधि शोचिय पर अपकारी। निज तन पोषक निर्दय भारी॥
शोचनीय सब ही विधि सोई। जो न छाडि छल हरिजन होई"॥

पुनः—जिन श्रीरघुनाथजी को चरित वर्णन करे तिनकी रीति देखो।

चौ० सत्यसिन्धु पालकश्रुतिसेतू। रामजन्म जगमङ्गल हेतू॥
गुरु पितु मातु वचन अनुसारी। खल दल दलन देव हितकारी
नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोउ न रामसम जानयथारथ॥

ताते रामायण में जो युद्ध है सोऊ धर्म के हेतु है ताते रामायण अनुहरत कहे रामायण के अनुसार जो चलैं तौ विग्रह त्यागि स्वधर्म की रीति ते भगवत् में प्रीति करैं तौ सब सुखी रहैं भाव जो श्रीरघुनाथजी की राज्य की चाल चलैं तौ दुःखरहित सुखी होइ।

यथा—

"वर्णाश्रम निज निज धरम, निरत वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भयशोक न रोग" ॥

इत्यादि सिखावन सो गोसाईंजी कहत कि शठ तुलसी की कही वाणी को सुनै काहेते कलि जो कलियुग ताकी चलाई जो कुचाल है जैसे जीवहिंसा परस्त्री परधनहरण परहानि परनिन्दादिकन पर प्रीति भई ताते सब जग महाभारत की रीति पर आरूढ़ भयो। यथा—कौरव पाण्डव परस्पर विरोध करे तामें पाण्डवन को अनेक क्लेश प्रथम ही भयो पीछे युद्ध में कौरव सवंश नाश भये। तथा सब जग विग्रह करि अनेक दुःख सहत ॥ ८८ ॥

दोहा

सुहित सुखद गुणयुत सदा, कालयोग दुख होय।
घरधनजारतअनल जिमि, त्यागे सुख नहिं कोय॥८९

सुहित कहे जो सदा सुन्दर हित करनेवाला। यथा कमल को रवि। पुनः सुखद जो सदा सुख देनहार। जैसे कृषि को जल। पुनः जो वस्तु सदा गुणयुत कहे गुणसहित होइ। यथा घृत दुग्धादि भोजन इत्यादिक सब वस्तुईं सोऊ काल कहे समय योग पाय दुःखदायक होत। जैसे जल सूखि गये सूर्य ही कमल को भस्म करत। तथा अति वृष्टि भये कृषि नाश होत ज्वरादि में घृत दुग्धादि दुःखदायक होत इत्यादि हित सुखद गुणयुतनहूँ ते समययोग ते दुःख होत कौन भांति जैसे अनल जो अग्नि सो रसोई प्रकाशादि को हित है। पुनः हिमऋतु में सुखद है। पुनः देह पीडादि सेंकने में लौकिक गुण यज्ञादि में पारलौकिक गुण सोऊ समय पाय जब अग्नि लागत तब धन जो अन्न वसनादि और घर सो सब जराय देत परन्तु वाके त्याग कीन्हे काहू भांति को सुख नहीं होत याते हितकर्ता कबहूं बुराई भी करे तबहूं वाको त्याग न करै ॥ ८९ ॥

दोहा

तुलसी सरवरखम्भ जिमि, तिमि चेतन घटमाहि।
सूखन तपन हुतन सो, समुझ सुबुधजन ताहि९०
तुलसी झगरा बड़ेन के, बीच परहु जनि धाय।
लड़ै लोह पाहन दोऊ, बीच रुई जरि जाय ९१

तहां कसूरवन्द को न त्यागिये यामें शान्ति चाहिये सो कौन भांति ते आवै सो कहत कि जैसे सरवर जो तड़ाग मध्य जल में जिमि कहे जा भांति खम्भा गाड़े हैं सो जल की सरदी ते सदा रसीले बने रहते हैं ताते तपन जो सूर्य तिनकी हुत जो घाम ताहू करि खम्भ सूखते नहीं हैं तिमि कहे ताही भांति घट जो हृदय ताके मध्यमें चेतन कहे चैतन्यता है ताही बल ते जे बुद्धिमान् जन हैं ते हित अनहित बिचारि समुझि जाते हैं ताते अपराध अनुकूल कछु दण्ड देत अरु त्यागते नहीं का समुझि जैसे रावण ने विभीषण को त्याग कौन फल पाये ॥ ९० ॥

गोसाईंजी कहत कि जहां बड़े बलवानन को झगरा युद्धादि होइ ताके बीच में धायकै जनि परौ अर्थात् बलिनके युद्ध के बीच निर्बल ह्वैकै न परै नाहीं तौ आपही पीसि जाइगो कौन भांति जैसे लोहा अरु पाहन कहे पत्थर ते दोऊ लड़ते हैं ताके बीच में परि रुई जरि जाती है अर्थात् चकमक पथरी ते जब आगि प्रकट कीन चाहत तब सोरा की रँगी रुई पथरीपर लगाय चकमक ते ठोंकि देत तामे चिनगी उठत सो रुई में लागि जरि उठत याते जो बीच परै तो सबल है परै निर्बल है बीच न परै ॥ ९१ ॥

दोहा

अर्थ आदि इन परिहरहु, तुलसी सहित विचार।
अन्तगहन सबकहँ सुने, सन्तन मत सुखसार ६२
गहु उकार विविचार पद, माफल हानि विमूल।
अहो जान तुलसी यतन, विन जाने इव शूल ६३

अर्थ, धर्म, काम, मोक्षादि चारि फल हैं तिनके साधन राजा को करना उचित है ताको उपाय।

यथा—

"अर्थचातुरी ते मिलै, धर्म सुश्रद्धा जान।
काम मित्रता ते मिलै, मोक्ष भक्तिते मान" ॥

इत्यादि उपाय करि चारिउ फल प्राप्त होयँ सो कहत कि अर्थादि के साधन करते में इन जो हिंसा आदि कुकर्मन को परिहरहु कहे त्याग करौ कौन भांति सो गोसाईंजी कहत कि विचार सहित अर्थात् धर्मनीति विचारिकै दण्डरूआदि करै। पुनः अन्त-समय कहे चौथेपन में गहन जो वन तामें जानेको चाहिये सबको ऐसा हम सुने हैं।

यथा—

"चौथेपन जाइय नृप कानन"।

तहां तीनिपन ले तो धर्म करै अर्थ बढ़ावै स्वस्त्री विषे रति करै तामें कामसुख पुनः वंश होय चौथेपन में वन में जाय भगवत्भक्ति करै जामें मुक्ति होइ यह लोकहु परलोक के सुख को सारांश सन्तन को मत है ॥ ६२ ॥

गहु उकार तहां 'उ इति वितर्के' यह 'उ' अव्यय वितर्क अर्थ को प्रकट करत अर्थात् विशेष तर्क सों कहत कि उकार

जो विशेष तर्कणा तासो गहु कौन भांति विविचार विशेष विचार-पद सहित तर्कणा करु तौ गोसाईंजी कहत कि विचार तर्कणा-रूप यत्न करिकै अहो कहे जो आश्चर्य बात ताहूको जानु अर्थात् विचार करि अनजानत को जानि ले तब क्या करु सो कहत कि मा जो प्रतिषेध जैसे "अ मा नो ना प्रतिषेधे" ताते मा जो है प्रतिषेध अर्थात् निषेध कर्म तिनके फल की विमूल हानि करै विना जरकरि देउ भाव विचार करि जानि लेउ सो बुरे कर्म करबै न करौ तौ जो कुकर्मरूप जर होबै न करौ तौ दुःखफल काहेमें लागैगे अरु जो विना जाने करौं तौ अनेक अशुभ कर्म हैजायँगे सोई शूल इव कहे दुःख की समान होयँगे अर्थात् विना जाने जे भले करौ तेऊ बुरे सम हैजात जैसे राजा नृग विना जाने एक गऊ दै ब्राह्मणन को संकल्पि गये सो भलाभी कर्म बुरेकी समान हैगयो सो प्रसिद्ध है ॥ ९३ ॥

दोहा

नीच निरावहिं निरसतरु, तुलसी सींचहिं ऊख।
पोषत पयद समान जल, बिषय ऊखके रूख ९४

जो लोक को छुड़ावत सो निरस है जो लोकही सुख को बढ़ावत सो सरस है सो गोसाईंजी कहत कि जे विचारहीन नीचजन हैं ते क्या करते हैं कि जगत्‌रूप खेत में कर्मरूप किसानी है तामें लोक सुखरूप रस है जामें ऐसी वासनारूप ऊख को सींचते हैं अर्थात् वासना को बढ़ावते है अरु विवेक, वैराग्य, त्याग, संतोषरूप जो निरस तरु हैं तिनको निरावत अर्थात् खोदिकै जरते बहाय देत अरु विषय वासनारूप ऊख के रूखन को कैसे सींचिकै पोषत नाम पालन करत। यथा पयद जो है मेघ ते जौन

भांति ते जल वर्षिकै भूमि को परिपूर्ण करि देत जाते ऊसर अत्यन्त करि उपजत अर्थात् विषयिन के संगादि ऐसी वार्त्ता करत जामें विषयवासना बढ़त जात ॥ ९४ ॥

दोहा

लोक वेदहूं लौंदगी, नाम भूल को पोच।
धरमराज यमराज यम, कहत सकोच न शोच ९५
तुलसी देवल रामके, लागे लाख करोर।
काक अभागे हगिभरे, महिमा भयउ न थोर ९६

बात वही करने वनिषँ भलाई होइ न करते वनै बुराई हैजाय सो कहत कि पोच कहे नीच को ऐसा संसार में है जाको धर्म-राज के नाम में भूल है अर्थात् को नहीं जानत है काहे ते लोक कहनूति ते लगाय भाषा अरु पुराणन में संहिता स्मृति उपनिषद् वेद पर्यन्त लौंदगी कहे यही आवाज प्रसिद्ध सुनि परत कि धर्म-राज नाम है तहां जे उत्तम पुरुष है ते धर्मराज ऐसा नाम कहत जे मध्यम पुरुष हैं ते यमराज ऐसा नाम कहत जे नीच पुरुष हैं ते यम ऐसा नाम कहत इत्यादि दुर्जन सबको अनादरही नाम कहत तहाँ अनादर नाम कहिवे में नामी को मन मैल होवेको सकोच चाहिये। पुनः बड़े को अनादर नाम कहेते अपराध लागत ताको फल दुःख भोगिवे को शोच चाहिये सो दुर्जन के शोच सकोच एकहू नहीं होत ॥ ९५ ॥

खलन के अनादर कीन्हे कुछ बड़ेन को माहात्म्य नहीं घटत खल आपुही अपराध लादि लेत कौन भांति सो गोसाईंजी कहत कि देखो देवल जो श्रीरघुनाथजी के मन्दिर तामें लाखन करोरिन रुपया लगे सुन्दर विचित्र बना है तापर

अभागे काक, कौवा इगिहगि विष्ठा भरिदीन्हें तिहि करिकै कुछ मन्दिरकी महिमा थोरी नहीं भई जैसी महिमा रहै तैसीही बनीरही तैसेही खलन के अनादर कीन्हें बड़ेनको माहात्म्य नहीं घटत। यथा गङ्गाजी के तटपर दुष्ट मल मूत्र करिदेते हैं तिनहिनको सब अपराधी कहत कुछ गङ्गाजी की महिमा नहीं घटत ॥ ९६ ॥

दोहा

भलो कहहिं जाने बिना, की अथवा अपवाद।
तुलसी गाँवर जान जिय, करब न हरष बिषाद९७
तनधन महिमा धर्मजेहि, जाकहँ सहअभिमान।
तुलसी जियत बिडम्बना, परिणामहु गतिजान९८

जे जन अज्ञान हैं जिन्हैं यह समुझ नहीं कि कौन भला है कौन बुरा है ते जन बिना जाने जो अपना को भलो कहैं अर्थात् स्तुति करैं अथवा अपवाद करैं अर्थात् अनादर व निन्दा करै तिनको गाँवर कहे गँवार बुद्धि विद्याहीन पशुवत् जानि आपने जीव में हरष विषाद कुछ न करै अर्थात् जब भला कहैं तामें हरष न करै काहेते जो हरप करिहौ तौ जब अपवाद करिहैं तब विषाद होइगो ताते खलन की स्तुति निन्दा दोऊ व्यर्थ जानै ॥ ९७ ॥

जेहि जननको धर्म तन धन महिमैके निमित्त है अर्थात् जो कुछ धर्म कर्म करत सो देहसुखके हेत। पुनः धन पायवे हेत फिर महिमा बढ़िवेके हेत अरु जाकहँ अभिमान सहित है अर्थात् जो कुछ धर्म कर्म करत सो अभिमानसहित करत भाव देहाभिमानी जे पुरुष हैं तिनको गोसाईंजी कहत कि उनकी जीवत में तौ बिडम्बना कहे निन्दा होइगी अर्थात् उनके आचरण देखि लोकजन निन्दा

करैंगे अरु परिणाम कहे अन्तकाल में भी ऐसीही गति जानौ अर्थात् वासनावश भवसागरको जायँगे ताते देहाभिमानिन को लोक परलोक कहीं सुख नहीं है ॥ ९८ ॥

दोहा

वड़ो विबुध दरवार ते, भूमि भूप दरवार।
जापक पूजक देखियत, सहत निरादर भार ९९
खग मृग मीत पुनीत किय, वनहु राम नयपाल।
कुनय वालि रावणघरहि,सुखदवन्धुकियकाल १००

विबुध जो हैं देवता तिनके दरवारते जे भूमि परके भूप जो राजा है तिनको दरवार वड़ा है काहेते जगत्जन देवादिको स्वाभाविक कुवचन कहा करते तिनको निरादर दण्ड प्रसिद्ध कोऊ नहीं देखत अरु लोकराजन के दरवार में क्या देखियत है कि जापक जे जाप करनेवाले अरु पूजक जे पूजा करनेवाले तेऊ राज-दरवारन में निरादरको भार कहे अत्यन्त निरादर वचन व दण्ड सहत हैं। जैसे प्रह्लादादि हिरण्यकशिपु के अनेक २ अनादर भार सहे तथा वर्तमान काल में अनेकन देखि लीजै ॥ ९९ ॥

नीतिमार्गी वनहूमें सुखी रहत अनीतिमार्गी घरहीमें नाश होत सो कहत कि नीतिमार्गी खग जटायु-ताको नीति के पालनहार श्रीरघुनाथजी पुनीत कीन्हें अर्थात् मुक्ति दीन्हें। पुनः मृग बाँदर सुग्रीवादि तिनको मीत कहे सखा बनाय इत्यादि सुख वनमें वसि कै पाये अरु कुनय कहे कुनीतिके करनेवाले वालि अर्थात् भाईहू की स्त्री करि लीन्हें। पुनः रावण कुनीति कीन्हें अर्थात् श्री जानकीजीको हरिलायो ते दोऊ घरही में रहे तिनको सुखद कहे

सुख देनहार बन्धु बालिको सुग्रीव रावण को विभीषण तिनहीं काल किये अर्थात् मारि डारने की युक्ति बाँधि दीन्हें ॥ १०० ॥

दोहा

राम लषण विजयी भये, बनहु गरीब नेवाज।
मुखर बालि रावण गये, घरही सहित समाज १०१
द्वारे टाट न दै सकहिं, तुलसी जे नरनीच।
निदरहिंबलि हरिचन्दकहँ, कहु का करण दधीच १०२

नीतिमान् दीनस्वभाव के जन जो वनो में रहैं तौ जयवान् रहत अरु अनीति करैया तीक्ष्ण स्वभाववाले घरही में नाश होत कौन भांति सो कहत कि देखो दीन शवरी निषाद सुग्रीवादिकन के पालनहार ऐसे गरीवनेवाज लषणलाल सहित श्रीरघुनाथजी वनहू में रहे तहाँ रावणादि को जीतिकै लोकविजयी भये अरु जे अनीति करनेवाले मुखर कहे साभिमान वचन प्रलापी ऐसे वालि अरु रावण घरही में रहे ते घरही में रहे दुष्टता को फल पाये कि सहित समाज गये अर्थात् नाश भये तहां बालिके संग दूसरा युद्ध करवे नहीं कीन्हें सो तौ समाज सुग्रीवकी ह्वै गई रावणकी समाज में जे युद्ध करे ते नाश भये ताते अनीति त्यागिवे योग्य है ॥ १०१ ॥

जे दुष्टजन हैं ते शुभआचरण तौ जानतही नहीं हैं अरु अशुभ तौ स्वाभाविकही करते हैं सो कहत कि जे नीच जन हैं ते आप तौ दान देने के निमित्त द्वारे पर टट्टा नहीं दै सकत अर्थात् टट्टा बन्दकरी ऐसा सेवाइ टाटा देई ऐसा वचन नहीं बोलत सो गोसाईंजी कहत कि उनके आगे कर्ण दधीच कहौ का हैं अर्थात् कर्ण धनै दान कीन्हे दधीच देहै दान कीन्हे

तिन दानिनकी कौन गिनती जे धन अरु देह दोऊ दान कीन्हे ऐसे बलि अरु हरिश्चन्द्र महादानी तिनको निदरते हैं अर्थात् दुष्ट उनको अहमक बनावते हैं ॥ १०२ ॥

दोहा

तुलसी निजकीरति चहहिं, पर कीरति कहँ खोय।
तिनके मुँह मसिलागिहै, मिटिहिनमरिहैंधोय१०३
नीचचङ्ग सम जानिबो, सुनि लखि तुलसीदास।
ढीलिदेत महिगिरि परत, खैंचत चढ़तअकास१०४

गोसाईंजी कहत कि जे जन परारी कीरति धोय कहे मिटाय कै निज कहे आपनी कीरति होना चाहते हैं अर्थात् कीर्तिमानकी निन्दाकरत अरु आपनी बड़ाई चाहत कि हमारी सब प्रशंसा करैं तिनकी बड़ाई न होई तिनके मुखमें मसि कहे स्याही लागिहै अर्थात् ऐसे कलंक लागैंगे धोवतकहे अनेकन उपाय वाके मिटावनको करते करते जन्म बीति जाई एक दिन मरि जायँगे मरेउ पर न मिटी। यथा बदरीनारायण में काहू स्वर्णकार को कलङ्क लगो न मालूम कबतक बना रहैगो इत्यादि अनेकन हैं ॥ १०३ ॥

नीचजन कैसे हैं जैसे चङ्ग पतङ्ग की रीति है सो सुनिकै अरु देखिकै जानिलेउ कौन भांति की रीति है सो गोसाईंजी कहत कि जो पतङ्ग को ढीलिदेत अर्थात् डोरि छांड़त जाउ तौ उतरत उतरत भूमि में गिरिपरत अरु खैंचत चढ़त आकाश ज्यों ज्यों डोरि खैंचो त्यों त्यों आकाश को चढ़त चली जात तैसे नीचन को सनेहरूप डोरि ढीलिकरौ तौ गिरि परते अर्थात् दुष्टता करत में धीरा पारिजात दपहादि को हरत हैं अरु

जो सनेहरूप डोरि को खैंचै अर्थात् सनेह ज्यादा करौ तौ दिढाय कै आसमान को चढत अर्थात् सनेह ते अभय होत ताते अनेकन उपद्रव करत याते नीचपै सनेह दुःखद है ॥ १०४ ॥

दोहा

सहबासी काचो भषहि, पुर जन पाक प्रवीन।
कालक्षेपकेहिबिधिकरहिं, तुलसी खगमृगमीन १०५
बड़े पाप बाढ़े किये, छोटे करत लजात।
तुलसी तापर सुख चहत, बिधिपरबहुतरिसात १०६

सदैव सुलभ स्वभाववालेनको संसार में निर्वाह नहीं है काहे ते उनके सबै ग्राहक होत कौन भांति सो कहत कि देखौ खग कहे पक्षी मृगा अरु मीन कहे मछरी इत्यादि में जिनके सुलभ स्वभाव हैं तिनको सहवासी कहे संग के रहनेवाले ते कचै मारिकै खाइलेते पक्षिनमें बाजादि मृगनमें व्याघ्रादि मीननमें तौ सजातियही बड़ी छोटी को खाइजाती हैं इत्यादि हाल तौ संगवासिनको है। पुनः पुर के जन जे मनई हैं ते पक्षी मृगादि मारिकै प्रवीण जो चतुर ते पाक नाम रसोई में व्यञ्जनवत् वनाय कै खात सो गोसाईंजी कहत कि खग, मृग, मीनादि कालक्षेप कैसे करहिं आपनी जिन्दगानी के दिन कैसे निर्वाह करैं याते लोकमें सदा सुलभ स्वभाव नहीं भला है १०५ जे हरि विमुख विषयी जीव ऐसे जे जन हैं ते अत्यन्त बड़े पाप ताहू में बाढे कहे चढिकै किये जैसे परस्त्री रत बड़ा पाप तामें बरवश कीन्हें परधन छीनि लेना बड़ा पाप तामें मारिकै लेना जीवहिंसा बड़ा पाप तामें साधु ब्राह्मणादि मारना। पुनः छोटे पाप करत लजात अथवा जाते पाप छोटे होते। यथा सुकृत आदि ताको करत लजात

नहीं करि सकत तिनको गोसाईंजी कहत कि ताहू पर आप को सुख चाहत जब सुख नहीं पावत तब विधि जो ब्रह्मा ता पर रिसात गारी देत कि हमको काहे को दुःख देत आपने कर्म नहीं विचारते ॥ १०६ ॥

दोहा

सुमति नेवारहि परिहरहिं, दल सुमनहु संग्राम।
सकुल गये तन बिन भये, साखी यादव काम १०७
कलह न जानब छोटकरि, कठिन परम परिणाम।
लगतअनलअतिनीच घर,जरतधनिकधनधाम १०८

सुमति कहे सबकी सुन्दरि एक मति परस्पर जनन में संधि ताको नेवारत नाम मिटाय कुमति करि सबको परिहरत आपने सहायकन को त्यागि देत ऐसे जे जनहैं ते अवश्य संग्राम में पराजय पावैंगे ताको कहत कि अस्त्रधारी संग्राम की को कहै कुमतिवाले जो दल कहे पत्ता सुमन कहे फूल अर्थात् पत्तन सों अरु फूलनं सों संग्राम करै तौ पराजय पावै ताको प्रमाण देखावत कि देखो यादवकुल अरु काम या बात को साखी है अर्थात् जलकेलि में कुमति करि त्रिधारापत्रन सों मार कीन्हें ते सकुल कहे सहित कुल गये यदुवंशी कुलसहित नाश भये। पुनः काम कुमति करि अकारण शिवजी के फूलन को बाण मारे ताते अतन भयो देहरहित भयो याते सुमति राखा चाहिये ॥ १०७ ॥

कलह परस्पर विग्रह ताको छोट करि न जानब काहे ते कलह को परिणाम जो है अन्त सो परम कठिन है अर्थात् कलह के पीछे बड़ी हानि जानब कौन भाँति सो कहत कि अनल जो है अग्नि सो नीचन के घर में लागत ताके पीछे धनिक जो है धनवान

तिनके धन कहे अनेकन तरह को असवाव अरु सुन्दर धाम जो घर सो जरि जात। तथा नीचजन कलह करि देत तामें वड़े जूझि मरत याते कलह वरावना चाहिये ॥ १०८ ॥

दोहा

जूझे ते भल बूझिबो, भलो जीति ते हारि।
जहाँ जाय जहँडायबो, भलो जु करिय विचारि १०६

जूझे ते कहे विना विचारे युद्धकरि पाछे पछिताबे ते पहिले को वूझिवो भला है अर्थात् विना विचारे काहू सों युद्ध न करिये युद्ध के पीछे की हानि बूझि विचारि गम खाइ जानो भला है।

यथा—

"वड़ि हित हानि जानि विन जूझे"।

देखो सरवन को विना विचारे वाण मारे पीछे हानि मानि श्रीदशरथजी पछिताने तथा हनुमान्जी के वाण मारि पीछे भरतजी पछिताने अरु अस्त्र उद्यत करि परशुराम अनेक वार मचारे ताहू पर युद्ध पीछे की हानि विचारि किये हमारी समता के नहीं मानवश ज्ञात है ताते कुवचन कहते हैं जब हमको जानेंगे तब तौ अपराध क्षमा करायबे हेतु अनेक भांति स्तुति करेंगे ताते एक तौ ब्राह्मण दूसरे अज्ञात तिनसों युद्ध करना अपराध है ताते इस जीतने ते हारि भलो है ऐसा विचारि श्रीरघुनाथजी वीरशिरोमणि सोऊ नम्रता भाषे सोई कहत कि जीतिवे ते हारि भलो है। पुनः जो कुछ नीच ऊँच काम करिये तामें हित अनहित विचारि कै करिये तामें जो ऐसहू होय कि हितसम्बन्धी आदि के पास जहां जाइये तहां जहँडाइबो कहे हितकारण की फजिहत ख्वारी उठाइवो भलो है जैसे वलि महाराज आपनो सत्य धर्मरूप हित विचारि

बावन को भूमिदान कीन्हे तामें शुक्राचार्यादि को जहड़िबो भलो मानि सहिलीन्हे वचन न त्यागे ॥ १०९ ॥

दोहा

तुलसी तीनि प्रकार ते, हित अनहित पहिंचान।
परवश परे परोस वश, परे मामला जान ११० ॥

संसार में हित अनहित स्वाभाविक नहीं प्रसिद्ध होते हैं काहे ते जे हित हैं ते तो झूठा व्यवहार भापते नहीं याते उनकी वार्त्ता रूखी देखात अरु जे अनहित हैं ते झूठा व्यवहार प्रसिद्ध भापते हैं याते उनकी वार्त्ता सरस मीठी देखात ताते हित अनहित कैसे जानो जाय सो कहत कि हित अनहित तीनि प्रकारते पहिचाने जात है कौन कौन प्रकार एक तौ परवश परे लोक व्यवहार नौकरी आदि व काहू भांतिकी गर्जरारवि व बंधुआई आदि में जो पराधीन होने को परो तामें जो संकट परो तव हित होत सो सहाय करत अरु अनहित अधिक संकट होने का उपाय करत अथवा परनाम है शत्रुता की वश परे हित सहायक होत। पुनः परोस के वसेते जो अन्न धनादि बिना समय पर मर्यादा में बाधा लागत तब परोसको हित सहायक होत अथवा अग्नि, चोर, शत्रु आदि की बाधा में सहायक होत अरु जे अनहित हैं ते अधिक बिगारि देत। पुनः तीसरे जव काहू भांति लोकव्यवहार को मामला परो तब हित अनहित जाना चाहिये अर्थात् देना लेनादि में कोऊ अनीति करी अथवा राजदरबार में काहू भांति को न्याय परो व लोक मर्यादा आदि की लघुता पक्षन में आनिपरी तहां हितकार होत तौ ऐसी वार्त्ता करत जामें आपने हितकी बात लघुता को नहीं जाने पाती अरु जे अनहित हैं ते मर्याद बिगारने का

उपाय बांधते हैं या भांति हित अनहित को पहिंचाने रहैं ॥११०॥

दोहा

दुरजन बदन कमान सम, वचन बिमुञ्चत तीर।
सज्जन उर बेधत नहीं, क्षमा सनाह शरीर १११
कौरव पाण्डव जानिबो, क्रोध क्षमा को सीम।
पांचहि मारि न सौ सके, सबौ निपाते भीम ११२

दुर्जन जो शत्रु अथवा दुष्टजन तिनके वदन जो मुख सोई कमानसम हैं तेहि करिकै वचनरूप तीर विमुञ्चत नाम छांड़त हैं अर्थात् सदा कुवचन ही बोलत सो वचनरूप वाण सज्जनन के उर में बेधत नहीं अर्थात् दुष्टजन के वचन उर में लागत न जो क्रोध व दैन्यता व मान मर्यतादि पीर उर में होय काहे ते नहीं बेधत सो कहत कि क्षमारूप सनाह जो है बख़्तर सो सदा मनरूप शरीर में धारण किहे रहत, ताते वचन वाण की चोट वृथा जात अर्थात् मन में क्षमा राखत ताते दुष्टवचन व्यर्थ मानि सुनत ही नहीं भाव दुष्टन को स्वाभाविक स्वभाव है याते इनके वचन सुनना न चाहिये यही ते सज्जन सदा प्रसन्न रहते हैं ॥ १११॥

क्रोध अरु क्षमा के सींवनाम मर्यादा सो कौरव अरु पाण्डव को जानिबो चाहिये अर्थात् क्रोध के सींव कौरव हैं जो क्रोधवश अनेक भांति की दुष्टता दुर्योधन ने करी । जैसे लाक्षाभवन को फूंकि देना द्रौपदी को चीर खैंचना राज्य ले लेना घर ते निकारि देना इत्यादि । पुनः क्षमा के सींव पाण्डव हैं कि कौरव की करी अनेक दुष्टता तिनको युधिष्ठिर ने सब क्षमा करी ताको फल देखावत कि देखो सौ भाई कौरव रहे अरु पांच भाई पाण्डव रहे तिन पांच पाण्डवन को भी सौ कौरव मिलिकै मारि न सके अरु पाण्डव

अकेले भीम सवौ कौरवन को निपाते नाम मारि डारे याते क्षमावन्त सदा जयवान् रहत दुष्ट नाश होत ताते क्षमा करना उचित है ॥ ११२ ॥

दोहा

जो मधु दीन्हे ते मरै, माहुर देउ न ताउ ।
जगजिति हारे परशुधर, हारि जिते रघुराउ ११३
क्रोध न रसना खोलिये, वरु खोलव तरवारि ।
सुनत मधुर परिनाम हित, बोलव वचन विचारि ११४

मधु कहे शहद अर्थात् जो मिठाई दीन्हे ते मरै ताउ कहे ताहि माहुर न देव तहां मधु माखन मिले ते ये भी माहुर है सो मीठा स्वादिष्ट इसी के दीन्हे जो मरै तौ हलाहल, संखिया, सींगिया, वत्सनाभ, हरदिहा, मुञ्जी इत्यादि तीक्ष्ण करु काहे को देइ भाव क्षमारूप मधु है मधुर वचन माखन है दुष्टजन शत्रु है तिनके मारने को यही मीठा जहर दीजै अर्थात् उनकी दुष्टता को क्षमा करि आपु मधुर वचन कहिये तौ दुर्जन आपने ही कर्म ते जायँगे याते क्रोधरूप वचन करु जहर काहे को दीजै ताको प्रमाण देखावत कि देखो सब जगके जीतनहारे परशुराम तेऊ कठोर वचन कहिकै जनकपुर में हारि गये काहे ते जो कोमल वचन कहिकै वाग्विलास करि प्रभु को प्रभाव जानि लेते तब स्तुति करते तौ हानि न होती जब अस्त्र उठाय कुवचन कहि । पुनः अस्त्र दै विनय कीन्हे ते पराजय सूचित भई अरु रघुराउ जो श्रीरघुनाथजी ते परशुराम ते हारिकै जीते सक्रोध वचन त्यागि मधुर वचनन ते आपनी हारि भापत रहे तेई अन्त में जीते अर्थात् एक ही वाण ते भृगुपति की गति भङ्ग करे याते कुवचन न भाषिये ॥ ११३ ॥

रसना जो जिह्वा ता करिकै क्रोध न खोलिये अर्थात् क्रोध के वचन शत्रु को भी न कहिये काहे ते क्रोध तौ स्थायी है रौद्ररस की अरु रौद्र रसनीति को रूप है नीति के चारि अङ्ग हैं। यथा—साम, दाम, दण्ड, विभेद जब तक इनकी वासना उर में बनी है तब तक रौद्ररस है तब तक याकी स्थायी क्रोध है तौ जो क्रोध प्रकट करि कुवचन कहे पीछे संधि भई तब आपने कुवचनन को पछिताव करि मन में हारि मानना यह भी एक पराजय है याते जब तक रौद्ररस तब तक क्रोध स्थायी रहैगी सो अन्तर में गुप्त राखै वचन में प्रकट न करै सो कहत कि क्रोध रसना ते न खोलिये वरु खोलब तरवारि जब रौद्ररस जाति रहै वीररस आइ जाय ताकी स्थायी उत्साह जब आवै ता समय तरवारि खोलै सो वीर को उत्तम धर्म है ताते क्रोध न प्रकट करिये वचन मधुर भाषिये वरु कुसमय पाय शत्रु को वध कीजै सो यशदायक है अरु क्रोध वचन अयशदायक है ताते जो उर में विचारिकै मधुर वचन बोलव तौ सुनिवे में मधुर अरु परिणाम कहे अन्त में हित है अर्थात् कोऊ ईर्षा नाहीं करत शीलवान् कहि सब प्रशंसा करत ॥ ११४ ॥

दोहा

तुलसी मीठो समय ते, माँगी मिलै जो मीच।
सुधा सुधाकर समय विन, कालकूट ते नीच ११५

गोसाईंजी कहत कि स्वइच्छित जो मीचु नाम मौत माँगे ते मिलै तो समय ते काल होना भी मीठो हैं (यथा) पति परित्याग दुःख में सतीजी ने मृत्यु माँगी।

(यथा) "छूटै वेगि देह यह मोरी।"

अथवा जो अत्यन्त वृद्ध व अतिरोग पीड़ित व इष्ट हानि को शोक व प्रतिष्ठित को अपयश लाभ इत्यादि सब हर्ष ते मृत्यु मांगत जो पावै तौ समय ते मीठी हैं। पुनः सुधा जो है अमृत सुधाकर जो चन्द्रमा ये यद्यपि सदा सबको सुखद हैं परन्तु विना समय अमृत चन्द्रमा कालकूट ज़हर ते अधिक नीच है। जैसे ज्वर व अजीर्ण में सुधा स्वाद भोजन विरहवन्त को चन्द्रमा ज़हर ते अधिक लागत हैं॥ ११५॥

दोहा

पाही खेती लगन वढ़ि, ऋण कुव्याज मग खेतु।
वैर आपु ते वड़ेन ते, कियो पांच दुख हेतु ११६
रीझ खीझि गुरु देत शिष, सखहि सुसाहेव साध।
तोरि खाय फल होय भल, तरु काटे अपराध ११७

पाही खेती आदि पांच बातैं जाने कियो सोई आपने दुःख को हेतु नामकारण वनायो। जैसे पाही में खेती पांसि हर बीआदि लै जाने में दुःख वहां ते अन्नादि लावने में दुःख इत्यादि अनेक हैं। पुनः लगन वढ़ि वहुतन में मन लगावना सो लगन प्रीति को एक अङ्ग है।

(यथा) "प्रणय प्रेम आसक्ति पुनि, लगन लाग अनुराग।
नेहसहित सव प्रीति के, जानव अङ्ग विभाग॥
प्रतिछिन सुमिरण मित्र को, विन कीन्हे जब होय।
टरै न टारे सहज चित, लगन सु कहिये सोय॥"

अरु याकी उत्कण्ठा दृष्टि है सो जो वहुतन में मन लाग तौ वाको सुख कहां है। पुनः ऋण है तामें कुव्याज वेकरीने को कवहूं तौ काहे को उऋण होइगो जो लाभ सो व्याज ही में जाई

तव सुख कहां है। पुनः मग कहे राह में खेत पशु जुदा चरि लेत छीमी आदि भई तौ राहगीर तूरि खात। पुनः आपु ते जो बड़ा है अर्थात् सबल ते वैर कीन्हे वहु रगरि डारैगो इत्यादि पांचहूं दुःख को बीज बोये ॥ ११६ ॥

शिष्यन को गुरु सखा को सखा सुकहे धर्म नीतिमान साहेब अरु साधु सब जग को सिखावन देत तहां जो सुमार्गी हैं ताको रीझिकै सिखावन देत जो कुमार्गी हैं ताको खीझिकै सिखावत कि वृक्षन में जो फल लागे हैं तिनको तोरिकै खाइये तामें भला होत अर्थात् फल पाये आपनो भला वृक्ष वना रहो फिरि फल लागैंगे अरु जो वृक्ष काटि डारिये तौ अपराध है। पुनः फल न मिलैंगे इसी भांति राजादि प्रजन ते स्वाभाविक उपहारादि लेइ उनको बिगारै ना ऐसी रीति सबको चाहिये ॥ ११७ ॥

दोहा

चढ़ो बधूरहि चङ्ग जिमि, ज्ञान ते शोक समाज।
करम धरम सुख संपदा, तिमि जानिबो कुराज ११८
पेट न फूटत बिन कहे, कहे न लागत देर।
बोलब बचन बिचारयुत, समुझि सुफेर कुफेर ११९

बधूर जो बौड़र जो वायु की गांठि बांधि कै घूमत चलत है तामें परे ते जिमि जा भांति चङ्ग जो पतङ्ग परिकै चढ़ो सो फिरि हाथ नहीं आवत विशेष टूटि फाटि जाई अरु ज्ञान उदय भयेते शोक जो दुःख ताकी समाज राग द्वेषादि जा भांति मिटि जात तिमि कहे ताही भांति कुराज कहे अनीति करनेवाले राजन की राज्य में पूजा यज्ञादि सुकरम, सत्य, शौच, तप, दानादि धरम अरु सुख। जैसे आरोग्य देह पुत्र, पौत्र, स्त्री आदि अनुकूल होना।

पुनः संपदा, अन्न, धन, बसन, वाहनादि सो कुराज में कुछ नहीं होत यह निश्चय जानव ॥ ११८ ॥

किसी को पाप निन्दा कुवचनादि विना कहे कुछ पेट नहीं फूटत अरु कुवचनादि कहे ते कुछ द्रव्यादि को ढेर नहीं लागि जात अर्थात् विना कहे कुछ हानि नहीं कहे ते कुछ लाभ नहीं तौ सुफेर कुफेर उर में समुझिकै विचारयुत वचन बोलव अर्थात् जो बात उर में आवै ताको समुझि लेइ कि यह बात कहे ते पीछे भलाई होइगी सो बात कहै। जैसे आपनी भलाई हेतु भरतजी वशिष्ठादिकन को निरादर वचन कहे अरु जामें समुझै कि पीछे बुराई है सो वचन न भाषै। यथा कैकेयी जब लग जियत रही तब लग बात मातु सो मुँह भरि भरत न भूलि कही ॥ ११९ ॥

दोहा

प्रीति सगाई सकल विधि, बनिज उपाय अनेक।
कलबलछल कलिमलमलिन, डहकत एकहि एक१२०
दम्भ सहित कलि धर्म सब, छल समेत व्यवहार।
स्वारथ सहित सनेह सब,रुचि अनुहरत अचार१२१

स्वामी, सेवक, सखा, राजा, प्रजा, माता, पिता, पुत्र, श्वशुर, जामातृ, पुत्रवधू, स्त्री, पुरुषादि यावत् सकल प्रकार प्रीति की सगाई सम्बन्ध है अरु बनिज व्यापार के जो अनेक उपाय हैं ते एकहू धर्म शुद्ध नहीं हैं क्योंकि छल का जो बल सो कल नाम सुन्दर मीठा अर्थात् उर में शत्रुता मुख सों हितकार प्रयोजन हेतु अनेक मीठी २ वार्त्ता करि कार्य साधि लये पीछे बात नहीं करत काहे ते कलि जो कलियुग ताको मल जो है पाप तेहि करिकै सब के मन है मालिन ताते एक को एक डहकत अर्थात्

जो जा पर सबल सो ताको घुरकि रहा सुमति काहू में नहीं विग्रह सबमें ताते सब राजा लोग क्षीण भये देशांतरियों ने राज लै लीन्ही ॥ १२० ॥

सत्य, शौच, तप, दानादि व वर्णाश्रम के धर्म व स्त्री, पुत्र, सेवक, प्रजादि के यावत् धर्म हैं सब कलियुग में दम्भ पाखण्ड सहित हैं अर्थात् देखाव में धर्म भीतर अधर्म है। पुनः क्रय विक्रय व देना लेना व परस्पर मानदारी इत्यादि यावत् लोक व्यवहार हैं सब छल कपट सहित अर्थात् मुख से उज्ज्वलता मन में मलिनता। पुनः स्त्री, पुरुष, सेवक, सखादि यावत् सनेह हैं ते सब स्वारथ सहित हैं जब लग स्वारथ तब लग सनेह बिना स्वारथ कोऊ सनेह नहीं करत। पुनः जाकी जैसी इच्छा रुचि होत तैसे ही आचार कहे आचरण अनुहरत नाम करत अर्थात् जैसी इच्छा होत तैसे ही करतब करत तहां धर्म वेद की आज्ञा है व्यवहार लोक रीति है सनेह सुमति है ये तीनिहूं जब शुद्ध नहीं तौ जैसी इच्छा भई तैसे ही कर्म करने लगे ॥ १२१ ॥

दोहा

धातुबधी निरुपाधि बर, सद्गुरु लाभ सभीत।
दम्भ दरश कलिकाल महँ, पोथिन सुनिय सुनीत १२२

जीव मूल धातु-तीनि ही हैं अरु उपाधि कहे दैवी उपद्रव सो क्षुधा पिपासा रोगादि उपाधि जीवों में है अरु मूलों में है अरु धातु में उपाधि नहीं है जो मैल मुर्चादि लागत सो मांजे व औटे ते छूटि जात सो कहत कि कलियुग में सर्वथा उपाधि है एक धातुमात्र में निरुपाधि बँधी है। पुनः बरनाम श्रेष्ठ कोऊ नहीं है एक सद्गुरु के नाम में श्रेष्ठता है। पुनः मित्रता काहू में

नहीं एक लाभ जहां है ताही में मित्रता रही अरु दर्शन काहू के नहीं काहे ते देवादि तौ अन्तर्धान ही हैं जे महात्मा ते छिपे रहत अरु प्रतिमादि है तामें किसी को श्रद्धा विश्वास नहीं ताते जहां शुद्ध प्रतिष्ठित स्वरूप तहां कोऊ कुछ नहीं देत अरु जहां मृत्तिका आदि कुछ कृत्रिम मूर्ति वनायकै वन्द राखै तहां सब पैसा दैके दर्शन करत। पुनः शुद्ध महात्मन को कोऊ नहीं मानत जे पुजायवे हेत वेष वनाय अनेक वार्त्ता करत तिनके सब दर्शन करत ताते कलिकाल में दम्भमात्र दर्शन है अरु नीति और काहू में नहीं केवल पोथिन में सुनीति सुनि परत जहां एक जगह वर्जित करि दूसरी जगह वर्णन करै तहां परिसंख्यालंकार होत।

यथा चन्द्रावलोके

परिसंख्यानिषिध्यैकमेकस्मिन्यत्तु यन्त्रणम्।
स्नेहक्षयः प्रदीपेषु न स्वान्तेषु नतभ्रुवाम्॥ १२२॥

दोहा

फोरहि मूरुख शिलसदन, लागे अढुक पहार।
कायर कूर कपूत कलि, घर घर सरिस उहार १२३

कैसे उपद्रवी लोग हैं कि सदन जो मन्दिर तामें जो पत्थर लगे हैं सो अपने प्रयोजन हेत मूर्ख मन्दिरन के शिला फोरि लेते हैं अरु अढुकि कहे फूटे ढनगे पहारन ते शिलन के ढेर लगे हैं तहां ते नहीं लावत जहां काहू को नुक्सान नहीं है अर्थात् परारी हानि करिवे में खुशी है काहे ते कायर जो है कुटिल कूर कहे कठोर चित्त व कपटी कपूत कहे कुलधर्म के द्रोही इत्यादि जन घर घर प्रति उहार सरिस हैं अर्थात् घर में जो कुछ भलाई भी है ताको आपनी कुटिलता ते झांपे है॥ १२३॥

दोहा

जो जगदीश तो अति भलो, जो महीश तो भाग।
जन्म जन्म तुलसी चहत, रामचरण अनुराग १२४

एक समय व्रजवासियों ने तरक करी कि श्रीकृष्णचन्द्रजी षोड़श कला के अवतार हैं तिनकी उपासना करौ श्रीरघुनाथजी तौ बारह कला के अवतार हैं यद्यपि या बात को उत्तर गोसाईंजी वेद पुराणन ते सर्वोपरि श्रीरघुनाथजी को कहि सक्ते रहैं सो बात वे प्रयोजन समुझि यही उत्तर दीन्हे कि श्रीकोसलकिशोर चित्तचोर के अनूपरूप की माधुरी पर हमारो मन आसक्त ह्वै गयो है ताते जन्म जन्म श्रीरघुनाथजी के चरणकमलन में हम आपने मन को अनुराग होना चाहते हैं सो महीश कहे भूमिही के मण्डलेश्वर राजाधिराज जानि आपनी अहोभाग्य मानि राजकुमार को यश कीरति प्रताप गान करते हैं अब आप लोगन के कहे सों जाना कि जगदीश है तौ अत्यन्त भलो है अब आपनी भाग्य की हम कहां तक प्रशंसा करैं यह कही तामें आपनी अनन्यता सूचित करे अरु श्रीरामचरणन में अनुराग जन्म जन्म तुलसी चाहत यामें वाल्मीकि को अवतार आपुका सूचित करे सो गीतावली में भी कहे हैं। जैसे जन्म जन्म जानकीनाथ के गुणगण तुलसिदास गाये। सो वाल्मीकिहूजी राजकुमारै करि सुयश गान करे तथा गोसाईंजी भी रघुवंशनाथ कहि नामरूप लीला धामादि वर्णन करे।

(नाम यथा) " बन्दौं राम नाम रघुवर को "
(रूप यथा) " रघुकुलतिलक सुचारिउ भाई "

(लीला यथा) "स्वान्तस्सुखाय तुलसी रघुनाथगाथाभाषा-निबन्धमतिमञ्जुलमातनोति"

(धाम यथा) "सुर ब्रह्मादि सिहाहिं सब, रघुवरपुरी निहारि" ॥ १२४ ॥

दोहा

का भाषा का संस्कृत, विभव चाहिये सांच।
काम जो आवै कामरी, का लै करिय कमाच १२५

कोऊ कहै कि गोसाईंजी भाषाकाव्य का कीन्हे संस्कृत क्यों न कीन्हे ? सो कहत कि का भाषा आइ का संस्कृत आइ वामें विभव साँचा चाहिये वामें चरित्र उत्तम विचित्र चाहिये जो संस्कृतै काव्य है वामें वस्तु भली नहीं तौ कोऊ आदर नहीं करत अरु जो भाषै है अरु वामें वस्तु अच्छी वर्णन ताको सब आदर करत जैसे कञ्चन को पात्र है तामें नष्ट जल अथवा विना स्वाद का कुछ पदार्थ भरा है ताको कोऊ ग्राहक नहीं अरु जो मट्टी को पात्र है तामें गङ्गाजल अथवा घृत, दुग्ध, दधि, मिठाई आदि है ताको सब चाहत कौन भांति सो कहत कि जो कामरी काम आवै तौ कमाच जो है रेशमी जामा ताको लैकै का करिये अर्थात् हेमन्तऋतु में जलवृष्टि होत तामें कामरी ओढ़ि मारग में चले जाइये तौ सुखपूर्वक पहुँचि जाइये अरु जो रेशमी जामा पहिरि चलिये तौ जाड़ा पानी ते रक्षा न होइगी गलिही में मरिगये तौ जामा क्या काम आयो इहां कलियुग हिमऋतु है विषय प्रबल वर्षा में भाषा रामचरित कामरी अर्थात् सबको बाँचिवे को सुलभ प्रेमवर्द्धक स्वाभाविक हरिधाम को प्राप्त होत अरु संस्कृत सबको सुलभ नहीं तौ कैसे विषयी-मूर्खन को भला करिसकै ताते प्रयो-

जन भगवत् सनेह ते सो भाषाहीते होत तौ संस्कृत का करिये कमास शब्द अरबी है अपभ्रंश ह्वैके कमाच भयो ॥ १२५ ॥

दोहा

बरन विशद मुक्ता सरिस, अर्थसूत्र सम तूल।
सतसैया जग बर बिशद, गुणशोभासुखमूल १२६
बर माला बाला सुमति, उर धारै युत नेह।
सुखशोभा सरसाय नित, लहै रामपति गेह १२७

अब काव्यरूप माला वर्णन करत सो कहत कि वर्ण जो है अक्षर विशद कहे उज्ज्वल अर्थात् उत्तम शब्द सोई सुन्दर, मुक्ता सरिस कहे मोती सम है ताको गूहने को सूत्र चाहिये सो कहत कि यामें जो अर्थ है सोई तूल नाम रुई ताके सूत्र सम है कवि बुद्धि करि गुही जो यह सतसैया है सो जग विषे वर नाम श्रेष्ठ है काहे ते विशद नाम उज्ज्वल जो गुण है जैसे शील, संतोष, क्षमा दयादि। पुनः शोभा अरु सुखकी मूल है अथवा सुखरूप शोभादि विशद गुणन की मूल है १२६ यह जो सतसैयारूप वर नाम श्रेष्ठमाला है ताको सुमतिरूप वाला नाम श्री उर में धारण करै कौन प्रकार युतनेह प्रीतिपूर्वक अर्थात् जो सुमतिमान् आपनी बुद्धिरूप स्त्री के उर में सतसैयारूप माला को प्रीति सहित धारण करै तौ परम सुखरूप शोभा नित्यही सरसात अरु राम श्रीरघुनाथ जो हैं पति तिनके गृह को प्राप्त होइ अर्थात् जो प्रीतिपूर्वक बुद्धि विचार सहित सतसैया सदा पढ़ै तौ सदा आनन्द रहै श्रीरामभक्ति उत्पन्न होय तेहि करि श्रीरामधाम को वास पावै यामें शब्द, वर्ण मुक्ता अर्थ सूत्र सतसैयारूप माला बुद्धि स्त्री सुख शोभा पति श्रीरघुनाथजी की अनुकूलता ॥ १२७ ॥

दोहा

भूप कहहिं लघुगुणिन कहँ, गुणी कहहिं लघुभूप ।
महिगिरितेद्वउलखत जिमि, तुलसीखरवसरूप १२८

भूप जे राजा ते गुणिन को लघु कहते हैं अर्थात् आसरा राखि अनेकन गुणवान् राजा के द्वार पै आवते हैं अरु गुणीजन जे हैं ते भूपन को लघु कहते हैं अर्थात् कुछ कला की रचना हेत अथवा कुछ गुण सिखने हेत अथवा यश कीरति प्रताप बढ़ावने हेत अथवा कर्मसिद्धि हेत राजा लोग अनेक कर्तव्यता करि गुणिन को बोलावत सन्मान करत । यथा शृङ्गीऋषि को श्रीदशरथजी बुलाये तब श्रीरघुनाथजी पुत्र है प्राप्त भये परीक्षित् शुकदेवजी को बुलाये तब भवसागर ते बचे इत्यादि अनेकन होत आवत ताते गुणी अरु भूप दोऊ परस्पर लघुकरि देखत कौन भांति । जैसे महि जो भूमि गिरि जो पर्वत ते दोऊ परगत नाम प्राप्त तिनको गोसाईंजी कहत कि ते दोऊ परस्पर खरव नाम छोटासा रूप देखते हैं अर्थात् जे भूमि में हैं ते पर्वत पर के जनन को छोटे देखते अरु जे पर्वत पर हैं ते भूमि के जनन को छोटे देखत तहां राजा लोग भूमि के जन हैं काहेते राज्य की प्राप्ति भाग्यवश राजकुमार भये ते स्वाभाविक राज्य मिलती है अरु गुणीजन पर्वत पर के हैं काहे ते । जैसे चढ़िवे में पर्वत के परिश्रम । यथा गुण की प्राप्ति विना परिश्रम नहीं होत तहां पर्वत के जन जब भूमिपै देखत तब नीची दृष्टि होत तथा गुणी जब आशा राखि रामजन को यांचे तबै मानभङ्ग होत ताते गुणवान् जो लोभवश न होत तौ वाको सब बड़ा करि मानै याते लोभ गुण में दूषण है अरु भूमि के जन जब पर्वत के जनन को देखत तब उनकी दृष्टि

ऊंची होत तथा राजा लोग जब गुणिन पर दृष्टि करत तब दान मान सहित करत याते उनको मानभङ्ग नहीं होत इतनी ही विशेषता है ॥ १२८ ॥

दोहा

दोहा चारु बिचारु चलु, परिहरि बाद बिबाद।
सुकृत सीम स्वारथ अवधि, परमारथ मर्याद १२९

इति श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासविरचितायां सप्तशतिकायां राजनीतिमरूतावर्णनन्नाम सप्तमस्सर्गः समाप्तः ॥ ७ ॥

यह जो सतसैया ग्रन्थ है तामें चारु नाम सुन्दर जो सातसै चालिस दोहा हैं तिनको अर्थ विचारि ताही रीति पर चल अर्थात् मन, वचन, कर्म करि इसी रीति पर आरूढ़ हो कैसी है यह सतसैया जो सुकृत की सींव नाम मर्यादा है जो याकी आज्ञानुकूल चलौगे तौ परिपूर्ण सुकृति के भाजन होउगे । पुनः स्वारथ जो है लोकसुख ताकी अवधि है सम्पूर्ण सुख प्राप्त होइगो । पुनः परमारथ जो परलोक ताकी मर्याद है अर्थात् याकी रीति पर चले ते मुक्ति भक्ति के अधिकारी होउगे यह दोहा इस ग्रन्थ को माहात्म्य भी है अरु समान लोक शिक्षात्मक है ताते कहत कि वाद जो निज जयहेत मानसहित प्रश्नोत्तर करना अरु विवादकहे क्रोधवश विचारहीन वार्त्ता को करना सो परिहरि अर्थात् रागद्वेष मानापमान त्यागि या ग्रन्थ की आज्ञानुकूल चलै तहां लोकजीव अज्ञान होत प्रथम ही समुझदारी कैसे आवै तिनके हेत अन्त के सर्ग में नीति वर्णन करे सो प्रथम नीति मार्ग पर चलै तौ वाद विवादादि रागद्वेष स्वाभाविक छूटि जाय । पुनः छठयें सर्ग में ज्ञानवर्णन सो समुझै तौ जीव में ज्ञान उपजै तौ विषय आशा नाश भई तब

कर्मसिद्धान्त की रीति पर चलै वासनाहीन सुकृत कीन्हे ते पाप नाश भयो। पुनः आत्मतत्त्व की रीति ते आत्मज्ञान होइ अज्ञान नाश होइ। पुनः कूटवर्णन-जो सर्ग ताकी रीति ते कूटस्थ जो भगवत्स्वरूप ताको ढूँढ़ै जब हरिरूप जानि पावै तब प्रेमापरा भक्ति की रीति ते श्रीरघुनाथजी को प्राप्त होय इति सात सर्गन को हेतु है॥ १२६॥

पद॥ नीतिनिपुन सुजान शिरोमणि राम समान आन नहिं पाये॥ वेद पुराण विदित पावन यश ज्यहि अनीतिपथ भूलि न भाये १ स्वानदादि द्विजराज यती करि गज चंदाय मठनाथ बनाये॥ शुद्र अलूकं न्याय करि तुरतहिं शूद्र मारि द्विजसुवन जियाये २ बंधुत्रास वन भरत विपमज्वर अभयनित्रास शरण शक्ति आये॥ कपिकुलतिलक सुकण्ठराजकै स्वभुज छांड़ करि सुत्रस बसाये ३ अनय गर्व लखि हत्यो एक शर भरत शुद्ध मन शरण सिवाये॥ बालिराज इत प्राकृत यदिदय दिव्यविभव निज सदन पठाये ४ दिय निकारि दशशीश विभीषण ध्याय चरण ज्यहि शीश नवाये॥ बैजनाथ सोइ कृपानाथ की तुरत सराज अभय पट पाये॥ ५॥

छं०। पूर्व लखनऊ बारावंकी नवाबगंज जिला देश कोसलै ग्राम मानपुर बैजनाथ बसि उत्तरहेहवा ग्राम परोस॥ ऊनविंशशत अधिक बयालिस मार्गशीर्ष पूनव शशि बार। गुरु की कृपा रामे सतसैया भावप्रकाशिक भयो तयार॥

इति श्रीबैजनाथविरचितायां सप्तशतिकाभावप्रकाशिकायां राजनीतिप्रस्तावबर्णनन्नाम सप्तमप्रभा समाप्ता॥७॥

श्रीरघुनाथजी का नखशिखवर्णन।

कवित्त॥ चारि फल जग के सफल के करनहार, जनम सफल के अफल अघ वनके। हरमन अमल में अमलकमलदल, दलन समस्त तम तोम सतजनके॥ साखि रहे वेद गाय भाखि रहे वैजनाथ, आँखि रहे हेरि साय आखिर के पनके। जानिकै शमन डर थानको न मन आश, जानकी अमन पद जानकीरमन के॥ १॥

लहलहे ललित ललाम लपलप होत, पोत भवसागर के तारक सबल हैं। अंकुश कुलिश ध्वज कमल यवादि चिह्न, रङ्ग रङ्ग अस कैधौं ज्योति रविथल हैं॥ चीकने चमक चटकीले चोखे वैजनाथ, चटके गुलाबनके आबदारदल हैं। अमल कमल हैं कि मञ्जु मखमल हैं कि, माखन से कोमल कि रामपगतल हैं॥ २॥

चरणारविन्द दश दलनपै कुरविन्द, इन्दुकी अमन्दवास इन्दीवर धाम की। विद्रुम प्रभासी प्रेमफाँसी हरिदासन कीं, खासी पञ्च-बाणन की गांसी हैं द्वि काम की॥ वैजनाथ वक्ष स्वच्छ सूक्ष्म सुलच्छणी हैं, रचक समीत जीव थल विसराम की। पांगुरी करत बुद्धि बांगुरी सी मन मृग, लागुरी सुरति नख आंगुरी सराम की॥३॥

नख मुनिजासी तल वाणी यमुनासी आप, महिमा कि रासी थलतीरथ के नाथ की। भक्ति मुक्ति खानिदास दूरग्य सुक्षेत्र आस, सुखद विलास कै दिगीशन के माथ की॥ शोकसरितारि भूरि आँनद सुपूरि भूरि, धूरि जाकी जीवन की मूरि वैजनाथ की। दृष्टि की निवास ब्रह्मसृष्टि की अरम्भभूमि, वृष्टि मन कामपद पृष्टि रघुनाथ की॥ ४॥

लहलही ज्योति कर पावक अधूम ताय, कुन्दन कटोरी धरी तापै दीप्तिजाल की। कौहर को हरतरु दलन दलनहार, हारत फटित पात्र बीच रङ्गलाल की॥ सुरँग रँगीन समना रँगीन वैजनाथ, रतिनाथ

माथ परी लालिमा गुलाल की। अवओध ढाल किधौं संपुट मवाल किधौं, शोभित विशाल लाल ऐंड़ी रामलाल की ॥ ५ ॥

गोल गोल गुम्मज गिरिन्द नीलमणि चारु, सिद्धिगुटिका है गोप्य गमन स्वछन्द के। दारिद दुसह दोष दुरित-दलन यन्त्र, दरश द्विरूप दीप्त आनँद सुकन्द के ॥ वैजनाथ कामकर कन्दुक प्रकाशकार, लहलहे आवये गुलाव द्युति मन्द के। उलफति पोटरी कि कोठरी सुचिह्न लाल, कुलुफ सुलुफ की गुलफ रामचन्द्र के॥६॥

खम्भ है सुधर्म के कि रम्भ है अनन्दधाम, कामखम्भ भूलन लजाने मानि ईश के। ओढ़े ऐसे अम्बर अधार अवनी के दोय, असम अराम धाम दीपक दिगीश के ॥ वैजनाथ प्रबल बलिष्ट दल विक्रम के, सफल सुछाँह दानि द्विजन अनीश के। जनशोक भङ्ग रङ्ग लावत सुढङ्ग भाव, लाव मन सङ्ग युग जङ्घ जानकीश के॥ ७ ॥

ढारीसीं सुढर चारु चीकनी चमकदार, खण्डमरकतकला दोय की दिनेश की। केलकी कली की भाँति समिता न वैजनाथ, भाय रतिनाथ साजि जैत सब देश की ॥ कामखेल दोरी धूरी चक्र है नितम्ब पीठि, पूरी भाव दाय राति वेलन सुवेश की। सिद्धिदा गुरु है बल विक्रम द्विरूप गोल, गौरता गुरु है कै उरु है कोसलेश की ॥ ८ ॥

कटि वेद अक्षर के रक्षिवे प्रत्यक्ष चक्र, चक्री काम चक्र है कि रूप है दुचन्द के। कक्ष पक्षमा के छोर छाजत छबीली छटा, घटापट ओट भानु भासत अमन्द के ॥ जगत अधार खम्भ पुष्ट पुष्ट वैजनाथ, जगमग ज्योति जाल आनँद सुकन्द के। मोदकारि अम्ब मोहतम के हरनहार, करन सितम की नितम्ब रामचन्द्र के ॥ ९ ॥

सज्जन कुशीलता सुशीलता कुसज्जन में, कञ्जन कठोर वैजनाथ धूरि पाय की। सूमन को दान जैसे मुगुध सिंयान मान, विषयी

के ज्ञान वस्तु बाजगिर हाथ की ॥ कञ्जनाल पङ्कहा सशङ्क भृङ्गी औ निवास, समिता कलङ्क मानि भाग्यो मृगनाथ की । चारि कैसो अङ्क शङ्क है कि वीरता के चित्त, वित्त है सुरङ्क कीधौं लङ्क रघुनाथ की ॥ १० ॥

नीलम शिखर घेरि बैठी किधौं हंस पाँति, भाँति अवली सी कै नक्षत्रनकी भीर की । कञ्जकीसी पाँतिन ते उन्नत कि कामधाम, झालरि रचित चित हरत सुधीर की ॥ रागिनी ललित किधौं कञ्चन सो वैजनाथ, जगमग जागि रही ज्योतिजाल हीर की । पच्छूतर प्राचीयाम लोक तीनि यांची विधि, समिता न सांची मिलु कांची रघुबीर की ॥ ११ ॥

रुचिर तमालवेइ बैठोकरि कामभृङ्ग, दास मन मीनन विलास शेभासर की । आनँदअगार को झरोखा बैठि झाँकै मैन, भौंरसी परत सरिसुता दिनकर की ॥ वैजनाथदासन के नैन चैन देनहार, हारी देखि गति सुर मुनि नाग नर की । अतलतलाभी ढूंढ़ि स्वर्ग उपमाभी बुद्धि, रहत न थांभी देखि नाभी रघुबर की ॥ १२ ॥

कटिपतली है ताहि बन्धनवली है की, तरङ्गपटली है अमली है शोभसर की । कामकी गली है वीचि यमुनाजली है कीधौं, लहरिढली है श्यामली है जलधर की ॥ सुखद थली है गवि जनकलली है वैजनाथ रचली है तचली है काहनर की । सुबुधि छली है दृष्टिदेखि अचली है जाकी, सुषमा भली है त्रिवली है रघुबर की ॥ १३ ॥

सरितासिंगार की सेवाररूपधार किधौं, तानै रसराजतार काम महराज की । नाभरूप वामते कढी है श्याम नागिनीसी, रागिनी ललीकी अनुरागिवी समाज की ॥ बीनतारलाजी रस बेलिमैन साजी किधौं, यन्त्रसी विराजी जग मोहन के काज की ।

वैजनाथ ताजी गिरिवारि यमुनाजी देखि, रोम रोम राजी रोम राजी रघुरान की ॥ १४ ॥

चीकनी चमक चटकावनी अनङ्गरङ्ग, खेलि चौगान मान भानि सुर नर को । तापर भली है त्रिवली है कि त्रिपथगासि, लीकसी ललितपन्थ रथ पञ्चशर को ॥ नाभीनवकूप सींचि ब्लहीं बढ़ाई-बेलि, वैजनाथ बावली कि सोह शोभसर को । रङ्गजलधर चलदल सो सुधरकिधौं, सुन्दर सुधर की उदर रघुवर को ॥ १५ ॥

उन्नत विशाल वर पीनता सुठर तासु, ललित लोनाई धाम जीवन अराम के । नेह नव चोटलागि होत लोट पोट लोक, मोहन उचाटहेत पाट हैं दिकाम के ॥ तुप्रकरि दास श्राल दुष्न दलन कीधौं, पुष्ट है कपाट वल विक्रम के धाम के । वैजनाथ वस्र स्वस्र सुखदानि अक्षन को, रक्षक अपअन की बक्षथल रामके ॥ १६ ॥

पाट कल कलित जटित जरतारभार, सोह सुकुमार तन जगत ललाम के । तड़ित विशाल की गिरिन्द दण्डनीलमणि, घेरि श्यामघन भास की प्रभातयाम के ॥ झलक झलाझल झपाकचकचौंधि कौधि, औचट परत दृष्टि वैजनाथ श्याम के । अम्बक अपट होत चित में उचट कीधौं, दामिनी सघट पीतपट कटि राम के ॥ १७ ॥

सीपी सुन्दरी के मणिमाणिक दरीके मुक्त, मञ्जुल करीके सफरी के वराछोर के । श्यामलहरी के वैजनाथ शूकरी के स्वक्ष, सुढर मवाल लाल ज्योति ये अधोर के ॥ सघन नक्षत्रयुक्त जीव की प्रसन्न मोह, दलकै अक्षत्र अन्न जागे भवभोर के । दीपन की माल कल यमुन के जालदीप, कीधौं दिव्यमाल उर कोसलकिशोर के ॥ १८ ॥

कान्ति द्युति माधुरी स्वरुप लावनीरमणि, छवि सुकुमार मृदु सुन्दरी स्वरुपधर । शोभादिशि सुन्नदशगुणभै दशाङ्गनपै, हेम कैसे हुव पञ्चशरपश्चशर कर ॥ कमल सनालदशदलन मवाल चारु, वैजनाथ

लालकी विशाल ज्योति जालकर । हरय वरष चष लखतसुमुखजीव, अलख सलख किधौं नख रामचन्द्रकर ॥ १६ ॥

केसरि कली है कीधौं माणिक फली है द्युति, विद्रुम दली है अमली है ज्योति जागुरी। दल देवतरु पञ्चदेवन को घरु पञ्च, शक्तिरूप धरु पञ्चफरु किधौं जागुरी ॥ कर्षं मोह मारण उचट वश कारण की, बैजनाथ धारण की पञ्चतत्त्व भागुरी । कञ्जदल वगरी सुतापै लाल नगरीसु, दानन कि अगरी कि रामकर आँगुरी ॥ २० ॥

जन के सुजन के उवारन के वारन के, वारन कुवारन सुवारन दमन के । रन के सुरन के जोरावन के रावन के, पावन अपावन के जावन समन के ॥ भव के सुभव के विभव के पराभव के, बैजनाथनाथ एकनाथन सबन के । सुकृत समानि जानि खानि अणिमादिकानि, चारिफल दानि पानि जानकीरमन के ॥ २१ ॥

नाग मनुजाकी देव पालक भजा की पुष्ट, बास साधु जाकी ओट खोटन को खीश की । पूज्य अम्बुजा की लोक मण्डनकी जाकी ज्योति, खण्डन भुजा की बीस खीस दशौशीश की ॥ पालक सृजा की पाय आज्ञा जाकी बैजनाथ, जगत कलाकी शक्ति दायक है ईश की । भूषण सुजाकी कीधौं भूषण कुजाकी ग्रीव, धीरज ध्वजा की द्वैभुजा की जानकीश की ॥ २२ ॥

सोहत चमकदार नीलक ललित भूमि, तापर सरित पूर सुषमा के पाथकी । मोहन उचाट मन्त्र लिखन सचिक्कन या, मष्टिका तमाल रचि राखी रतिनाथ की ॥ समतादली है केदली के दल बैजनाथ, मैन की रमन औनि रची निज हाथ की । सुषमा की सृष्टि दृष्टि दुर्लभ जगत जीव, इष्टकर सींचारु पृष्टि रघुनाथ की ॥ २३ ॥

सुन्दर वृषभ कन्ध उन्नत अजानु भुज, दुष्टन भुजङ्गदानि दासन उदार है । कलप लतासी फलिफूलि कल भूषणनि, बैजनाथ हिल

अरविन्द है सदण्ड रैनि, रामचन्द्रजी को मुख आनँद को कन्द है ॥ ३३ ॥

कन्द है सुधा को वसुधा को रसदा है प्रेम, भक्ति मुक्तिदा है दासदासदा अनन्द है । नन्द है महीप दशरथ को समर्थ अर्थ, आर्थिन को दानि काटि आरत के फन्द है ॥ फन्द है सुबन्द अरविन्द अनुरागीभृङ्ग, बैजनाथ अम्बक चकोरन को चन्द है । चन्द है जड़न्य मन्दरङ्क है कलङ्क धाम, रामचन्द्रजी को मुख आनँद को कन्द है ॥ ३४ ॥

कन्द है कि आनँद को मन्द मुसक्यान युत, रुचिर बिलोकिये कि नील अरविन्द है । कुन्द है कि अलिक कि केशसपे शिशुसम, किधौं यह राजित विशेष मैनफन्द है ॥ फन्द है कि प्रेम के परे सुगरे बैजनाथ, कीधौं यह शरद निशा को पूरोचन्द है । चन्द है कलङ्क सहरङ्क उपमा न योग्य, रामचन्द्रजी को मुख आनँद को कन्द है ॥ ३५ ॥

कन्द है कि आनँद स्वछन्दवन्द है कि छवि, कुण्डल अनूप फाबि रवि छवि मन्द है । मन्द है कि हास फाँस है कि खास दासन के, कीधौं कञ्जवास भास तड़ित स्वछन्द है ॥ छन्द है सभीत कौनरीति कहै बैजनाथ, शीते निशि पूरण बिराजै चारु चन्द है । चन्द है सकाम अघधाम गुरु बाम रत, रामचन्द्रजी को मुख आनँद को कन्द है ॥ ३६ ॥

कीधौं मुखकञ्ज बीच गुञ्जत मलिन्द वृन्द, अमृत फुहारबीच छूटत नमीश की । फूल भरिहाल बैन मोतिन की माल दैन, सप्तस्वर चाल वीचि आनँद नदीश की ॥ जाकी सुनि वाणी कलकण्ठहु लजानी बैजनाथ, जानि पानी स्वाति चातक अनीश की । सानीसी सुधर्म प्रेम अमृत नहानी चारु, यन्त्रस्वर वाणी कीधौं वाणी जानकीश की ॥ ३७ ॥

केवड़ा कराव मैं न केतकी सुताव मैं न, सुमन गुलाव मैं न आवहू अमन्द मैं। पारिजात अङ्ग मैं न माधवी लवङ्ग मैं न, मृगमद सङ्ग मैं न वैजनाथ चन्द मैं॥ जूही मैं न एलन मैं चम्पन चँमेलन मैं, सेवती न वेलन मैं मलयाहु मन्द मैं। अतर सवन्द मैं न नील अरविन्द मैं न, जैसी है सुगन्ध रामचन्द मुखचन्द मैं॥ ३८॥

तुलन अगस्ति फूल तिलतुलि तिलहून, किंशुक शुकादि तुण्ड मण्डित न काम की। भरी ऋद्धि सिद्धि की दरी है श्वास सिद्धिन की परम हरीहै अङ्ग तीनि तीनि धाम की॥ रूपकलिकासि सरवदन प्रनालिकासि, वैजनाथ मुक्तवासि कासिका कि वाम की। कोष है सुवासिका कि सोहै छविरासिका कि, माधुरी विलासिका कि नासिका सुराम की॥ ३९॥

सोहत सुरङ्ग अरविन्द मकरन्दवुन्द, कैधौं ओसवुन्द मात कञ्जपै स्वछन्द मैं। आनंद को कन्द फूल सूंघत है चन्द कैधौं, खेलत अनन्दचन्द नन्द उरचन्द मैं॥ कैधौं चन्द मध्य अरविन्द मैं कविन्द वैठ, वैजनाथ रङ्ग की अनङ्ग को अमन्द मैं। अम्बक अवन्द उर अन्तर अनन्द देखि, सुन्दर वुलाक रामचन्द मुख चन्द मैं॥ ४०॥

अजव रसीले समशीले हैं सुशीले कञ्ज, खञ्जन हँसीले मीन मञ्जुल मरोरके। सुजन अशीले उर अन्तर वसीले प्रेम, मोदक नशीले हैं यशीले चित्तचोरके॥ कविन के वैन तन उपमा वनै न दैन, वैजनाथ नैन चैन दैन दयाकोरके। और हैं न नैन लोक हेरे निज नैन जैसे, हेरे हम नैन नैन कोसलकिशोरके॥ ४१॥

खरकत वात पत्र भभकि उचकि जात, सवरस फन्द कवि उपमा करोर के। चौकड़ी कटाक्ष मुखचन्द्रसाग्र कचरैन, नैनवन्त नैनन के तारे तारे भोर के॥ वैजनाथ सुखमा सवैनिन के नायमान, कानन

सिधारे पल चल पग दौर के । भृङ्ग पै न कोर के समय न जोर तोर के, सुसमता न ऐन नैन कोसलकिशोर के ॥ ४२ ॥

सिन्धु पै गोविन्द की मलिन्द अरविन्द माहिं, है अमन्द माणिक सुरिन्द इन्दु धाम के । स्वेत प्रतिबिम्बी प्रतिबिम्ब की अनङ्ग ये, कलिन्दजा तरङ्ग बीच गङ्ग बिसराम के ॥ मेरुन खतारे अघभारे भवतारे दास, बैजनाथ वास देनहारे निज धाम के । सुकवि न तारे नहिं लागत पतारे सम, सुखमा भतारे हैं सतारे दृग राम के ॥ ४३ ॥

अरुण असित सित डोरे रतनारे चारु, चमकत चटक विचित्ररङ्ग तीखे हैं । मोहन उचाटन करण वश कारन के, मारन प्रयोग सिद्ध दक्षमन्त्र सीखे हैं ॥ बैजनाथ नासिका सकोर भौंहजोर फौंक, बरुणी सपक्ष चारि प्रेमविष चीखे हैं । अर्च्छत सुलक्ष उर गड़त मत्यक्ष गच्छ, राघव भटाचन कटाक्षबाण तीखे हैं ॥ ४४ ॥

रङ्ग अवनीकी चारिसोह सुधनी की रुंधि, दगपै घनीकी छाँह सहस फनीकी है । शोभकमनीकी पलकोर कमनीकी स्वच्छ, अच्छद्युमनीकी ज्योति ऊपर शनीकी है ॥ बैजनाथ ही की भीति पटजोरनीकी नेह, तारसूचनीकी नैन दीपक अनीकी है । रूप मोहनीकी जनजीकी हरनीकी चारु, नीकी सपनीकी बरुनीकी सीयपीकी है ॥ ४५ ॥

चमकछटाकी बीच कुन्तलघटाकी तम, निकरकटाकी भोर-भानुज्योतिजाल है । बाद शुक्रजीव मेरु क्षीरवि सजीव की, प्रसिद्ध मुक्तजीव श्रुतिमारग रसाल है ॥ मकर मनोजध्वज ओजभरे बैजनाथ, खोजत सुकवि छवि समता न भाल है । सुखमा सुताल पीन डोलत रसाल किधौं, कौशला के लाल कान कुण्डल विशाल हैं ॥ ४६ ॥

सीयगुण आसन सरोजकेसिंहासन हैं, खास दासबासन सनेह वेवि-धान के । बैनजलकूप रथ चक्रमैन भूपसह, कुण्डल अनूपरूप विधि केविधान के ॥ सीय रजातिजल बैन सीपि कायुगल बैजनाथ बुन्द कल गोद मुक्ताविधान के । मन दरवान रागताल थिर थान दानि, दान सुख कान राम करुणानिधान के ॥ ४७ ॥

कुङ्कुतमसार मृदु पन्नगीकुमार धार, द्रवत शृंगार मन मीनन को जाल की । सगगुणहार मरकत-मणितार मोद, लतिका पसार कैसे धार रुपलाल की ॥ पोतरूप लङ्गर की कामको कमङ्गर की, बैजनाथ कंजरत अलिक रसाल की । उर में ललक दृग होत आपलकदेखि, अलक झलक मुख कौसिला के लाल की ॥ ४८ ॥

पटकी कुटीकी नाच पलक नटीकी नैन, दीपक जुटीकी कजरुट की अनन्द की । अदमतुटीकी जग सुखमा लुटीकी काम, जेहसोंछुटीकीधनुकुटी की अमन्द की ॥ कञ्ज अगुटी की नैन पङ्कज जुटीकी खोलि, भृङ्ग लैपुटी की बैजनाथ मकरन्द की । प्रेम-सम्पुटी की सिद्धि आनँद घुटीकी पट, चन्दपै कुटीकी भृकुटी की रामचन्द की ॥ ४६ ॥

सुखमा विलास क्रीट भानुको निवास चारु, रसराज बासकर अमिर विशाल है । यौवन अगाररूप माधुरी को द्वार भक्ति, मुक्ति को भँडार सब भीतनको ढाल है ॥ नाथनको नाथकै अनाथन को नाथ जीव, करन सनाथ बैजनाथ प्रतिपाल है । कीरत कोशाल यशतरु आलवाल कैधौं, सोहै रामलालको विशाल गोल भाल है ॥ ५० ॥

भृकुटी समान मैनधारे हेमवानयुग, केशसामियान चोप कुन्दन की भाल है । नीलगिरि ऊपर परी की चपलाकी लीक, काम की गली की है बिराजत रसाल है ॥ सुन्दर कसौटीपर मोटी रेख कञ्चन

की, रत्नकनिहारे वैजनाथ से निराल हैं । मीनरूप लाल मैनवीची कि रसाल किधौं, कौसला के लाल भाल तिलक विशाल हैं ५१॥

अवनि अकाश लोक लोकन प्रकाश दिव्य, मन हरिदास भास अन्तर अतुल्ली । विधि चतुराई शिर योगिन कमाई किधौं, हरि की भलाई ज्योतिवन्तन की कुल्ली ॥ चन्द्रशिरभानु गनिकामरनी मानु वैजनाथमन ज्ञानु मन्मथीजनकी पुतर्ली । चपला सजलभानु भ्राजन सघट आदि, ज्योतिकी प्रकट छटा राम के मुकुटली ॥ ५२ ॥

कोमल शरीर स्याम सजल घटाके बीच, चमकछटा सो, पटपीत जरकोर को । सघन नगनरत्न जटित मुकुटकीट, कुण्डल तिलक भाल भृकुटी मरोर को ॥ कौन कैसी ज्योति चकचौंधानी करत नैन, वैन कवी बखानै वैजनाथ चितचोर को । रूप मैं निहारे नहिं रूप मैं निहारे जैसो, रूप मैं निहारे रूप कोसलकिशोर को ॥५३॥

कुन्दन कसौटी रेख तिलक अलिक भौंह, कमल अमल नैन सुनावरकुण्डरी । मीन मृग खञ्जनके दृगमान भञ्जन ये, नासिका अनूपछवि वारौं कीरतुण्ड की ॥ बिम्बबन्धु बिद्रुम अधर पर वैजनाथ, कुन्दभास तड़िनकी रामचन्द्रतुण्डकी । नीलघन चन्द्र शीश मुकुट शिखण्डकच, मण्डि कपालकुण्डनप्रभाकी मारतण्ड की ॥५४॥

भलकविचित्र हेममाणिक त्रिवण्ड ग्रीव, गण्डनकरनिकार मण्डि रविभोर को । अलकअली की रेख आलिक मसस्थल पैं, हरत हटी की हीय हेरन्य नकोर को ॥ कोहँरी कलेशकोरि कलित-कपोलकाभ, कनकसचैल कटि काश्मीर ओर को । वैजनाथ गावे उपमा ये काक बिन नाक, नाग भूरिना ये रूप कौसलकिशोर को ५५

सजलाभकाय स्याम कटिप छटासों पट, जटित जवाहिर ते किरीटि भा पसरिगैं । तिलक प्रशस्त भाल भृकुटी कटाक्षवङ्क, अलक भलाकल कपोलन बिथरिगैं ॥ नखबिनतनपास्य अवलि

नखत्रनसी, रावत्रमभासवैजनाथ अक्षपरिगै। अच्छत प्रत्यक्ष गच्छ तक्षण द्रवायहीय, मांधुरी उमंगि अङ्गअङ्गनमें भरिगै ॥ ५६ ॥

कञ्जपरेकवि छवि मञ्जुल बुलाककुन्द, कलिकालजातवैजनाथ भारदनकी। कीन्हो जगदण्डमण्डिभूषण श्रवण किधौं, गाड़ो है निशान मारद्वारपै सदनकी ॥ ताकी प्रतिबिम्ब भानु भानुजाकल्लोलन की, अमल कपोल किधौं आरसीमदन की। चन्ददिन दुखमा कमल निशि सुखमा पियूषमान सुखमा जो रामके बदनकी ॥५७॥

श्यामरयाम भालपरतिलक विशालदेखि, कौटवनमालकञ्जगजमणि झलकै। चारु मुसक्यानमें प्रकाशअद्विदल द्विज, दगनकीसमता न आवै कञ्जदलकै ॥ तैसे गोलचञ्चल कपोलनपरशकरि, कुण्डल समीपछुटी छविमानअलकै। पीतपट आदिदै कहांलौ कहै बैजनाथ, देखि रघुनाथ छवि लागत न पलकै ॥ ५८ ॥

श्याम श्याम गात फहरात तापै पीत पट, घट को सुघेरि मानो दामिनि सी झलकै। कुण्डल विशाल लाल पुरटमुकुटमाल, तिलक अनूपहै कपोलनपै अलकै ॥ नासिका बुलाक मुसक्यान युत आननकी, लक्षनकेमणिमाल बक्षनपैहलकै। बैजनाथ थकित बखानि न सकत आलु, देखि रघुनाथछवि लागत न पलकै ॥ ५६ ॥

मैनचाप शर वारौं भृकुटी तिलक देखि, नैनदेखि दुरेमीन मृगवारि बनमें। कीरतुण्ड नासिका कपोलदर कन्धर पै, बिम्बबन्धु विद्रुम लै वारों अधरन में ॥ रामचन्द्रजी की क्यों बखानै छवि बैजनाथ, श्यामघनवपुपवै ताड़ित बसन में। तुण्डपर चन्द मार-तण्ड वारौं मुकुटपै, दन्तनपै कुन्दवारौं दाड़िम दशनमें ॥ ६० ॥

चञ्चरीक पुञ्जवारौं कुन्तल कुटिलदेखि, खञ्जरीट अम्बरुरुधाकर कपोलमें। बॉहुकरवारन वलाहक वपुपलखि, बालहंसवारौं श्रुति भूषण विलोलमें ॥ रामचन्द्रजीकी क्यों बखानै छवि बैजनाथ,

करिरिपुलङ्कपै सुचञ्चला निचोल में। रक्तबीज रदन पै मदन स्वरूप लखि, वदनपै वारिज पियूष मृदुबोल में॥ ६१॥

नखमणि कञ्जपद जङ्घ कदली नितम्ब, चक्र लङ्कसिंहनाभि त्रिवली सुकुण्डकी। वीचिकासेवार रोमराजी चल दलोदर, वक्षस-कपाटकरकञ्ज भुजशुण्ड की॥ कम्बुकण्ठ अधर प्रवाल ज्योति-जालरद, वदनारविन्द नैन नासा कीरतुण्ड की। वैजनाथ रामकान कुण्डल तिलक भाल, भौंह धनु कच व्याल क्रीटमारतुण्ड की॥६२॥

करुणा उदार शीलक्षमादया धारनीति, प्रीतिको अगार ज्ञान चातुरीसुधारेहैं सुलभ गँभीर थिर सुहृदसधीरकृत ज्ञान जनपीर जु शरणपाल करे हैं॥ लोकनप्रसिद्ध वात्सल्यता को निधि एकरस जगवृद्ध रघुवंशकुलखरे हैं। दीननउवार वैजनाथ निराधारइमि, कौसलकुमार में अपार गुण भरे हैं॥ ६३॥

रूप सुकुमार नवयौवनउदार मृदु, माधुरी अपार सो छबीले छैल छरे हैं। लावनी सुगन्ध भाग्यवान सत्यसंध तेज, वीर्य दीनबन्धु वीरता सुवेषकरे हैं॥ व्यापक रमनसौम्य सांचे सत्रुहन हैं, अनन्त वश-करन सुवाणी वेद परे हैं। प्रेरक अधार वैजनाथ जगसारइमि, कौसलकुमार में अपार गुणभरे हैं॥ ६४॥

ज्योति यशपावन सों भानुभामभावन सों, वैजनाथ पावन सों कञ्जदलगीर है। आरसी कपोलन पियूष मृदुबोलन सों, कुण्डल विलोकन सों मीनछविनीर है॥ रङ्ग खम्भरानन सों पूर्णचन्द्रआनन सों, सब उपमानन कै अङ्गनअधीर है। दीनजन दानन सों गुरुजन मानन सों, वीरजन बानन सों जीते रघुवीर है॥ ६५॥

इति नखशिख।

अथ राजतिलक समय की शोभा।

देवनकी भीति सह लोकन अनीति मेटि, आये रणजीति लियसाथ खास दासनै। वाजत निशानपुर धूम आसमान देव, साजिकै विमान आय अग्रपाकशासनै ॥ छत्र चमर व्यजन अनुज लिये बैजनाथ, बेदगान सोहत सुदीप वृक्षबासनै। राजन के राज महाराज राजारामचन्द्र, जानकी समेत आजु राजत सिंहासनै ॥ १ ॥

वेद धुनि मुनि मनि चौक चित्रदीप दधि, दूब रोचनाक्षत सवालगान वासनै। अंकुर सघटरोम पटक्षौम हेमजट, नटत सुनट भट कटक सदासनै ॥ वन्दीसूत मागध सबैजनाथ गान तान, बदत प्रताप यशकीर्ति अघनाशनै। राजनके राज महाराज राजारामचन्द्र, जानकी समेत आज राजत सिंहासनै ॥ २ ॥

वाहनीश जग जग मग मग राज राज, राजत सनाह नाह तास आस पासनै। घुर्मित निशान सानदार सरदारनकी, रनकी सुसज्ज सज्ज शायकशरासनै ॥ साज्जित द्विरद रद उतँग सुतॅगतङ्ग, खैंचि जीन वाजिनकी॰ जिनकी समासनै। बैजनाथलोकनाथनाथन के नाथ राम, जानकी समेत आजु राजत सिंहासनै ॥ ३

फैलि चन्द्रिकासी फोरि फटिक तमारि भास, दीप्ति दीपवरनकी ऋक्ष ज्योति जासनै। झालरि मयूखदर परदा वितानतान, फबित फरससम क्षीरफेन तासनै ॥ चामर व्यजन अनुजनकर आत पत्र, चौघड़े चॅगेर गन्ध पात्र पानवासनै। भाषि बैजनाथ लोक नाथन के नाथ राम, जानकी समेत आजु राजत सिंहासनै ॥ ४॥

पूगफल सफल कदलदल फूलमाल, मालदीप दीपत पतन तनफासनै। नृत्य वारनारि नारि ग्राम ग्राम धूमधाम, धाम धाम

मङ्गलाङ्ग अङ्गनासड़ासनै ॥ मूकुराब सान सात सातकुम्भ कुम्भ वेदि, सर्व सर्व भद्रकादिसान मोदकासनै । वैजनाथ लोक शोक जीवन आराम राम, जानकी समेत भ्रातु राजत सिंहासनै ॥ ५ ॥

सूरभू विलासकृत चकृत शत्रकतत्वों, अनिरुद्ध कृतकेतु सुकृत सुभाप भो । दुष्कृत दिवान्धमति घ्ासमर कुमुदद्दत, जीव मन्यु दुष्प्रभाव मोषक सताप भो ॥ मण्डल अखण्ड पृथु घोत खण्ड वैजनाथ, सुहृद मनाब्ज हृत्भ्रान्त परताप भो । अनृत तम्पूपपुर पूर्वआस रामभद्र, आसनो दयाद्रिभान उदित प्रताप भो ॥ ६ ॥

कुचलान्धकारी छवि सुचलप्रकाशभास, सुकिृदय चौर क्षपाचरहत दापभो । सुजनाम्बुजात से प्रकाशमान वैजनाथ, नाथ लोकलोक चकवाक से मिलापभो ॥ आरशीशभानु हिमि भानु जेहि धारशीश, हारसी द्दुहभानु आरशीश मापभो । अनृत ततम्भुपपुर पूर्व आस रामभद्र, आसनो दयाद्रि भानु उदित प्रतापभो ॥ ७ ॥

बैठे भद्रआसनै समाज राजशीशताज, भ्राज अङ्ग अङ्ग मणि भूषण झलकहै । मुनिन समाजसह मुनिराजकअङ्कर, कलित ललितकृत हियमें ललकहै ॥ वैजनाथ सीतानाथमाथपै विराजै स्वक्ष, अक्षत निशाक्षत सअक्ष अपलकहै । सुयश झलककी सुकीर्ति संकालक की, प्रतापकी फलककीधौं राजसी तिलकहै ॥ ८ ॥

विभ्रदद्भ्रांशु मूर्द्धि हाटकसरत्न क्रीट, मण्डन कराणिकार गण्डन सुदेशको । विलसि कचानन विभूषित सुकम्बुग्रीव, दन्तज समीर-हीर हारसुभ्रवेशको ॥ अंशुकजरीके झला वोरकोर छोररश्मि, वैज-नाथ अच्छवै सचक्र मन शेशको । ससिंहसंदननमहोक्षभद्रआसन स्वरस्थितअनूपभूप रूप कोसलेशको ॥ ९ ॥

मणितकोदण्डशर अक्षय सगाग्रखण्डि, दुष्कुमाग्रहतत्त्वोनि हरु-

शाद शेशको। भवति दविप्रखल ध्वस्तकान्दीशीक क्षिति, वैजनाथ-मोद मुनिशाश्वतसुरेशको॥ धीर धुरधार शुभ्र सत्तम अदभ्रयश, विस्तृत समाग्र लोकलोक मण्डलेशको। अगुण सगुणरूप व्यूहपर आदिसव, रूपन अनूप भूप रूपकोसलेश को॥ १०॥

चण्ड मारतण्ड क्रीट कुण्डल करनसुत, वृत्तगण्डमण्डल विशाल भानु भोरको। विस्तृत प्रकाश पुञ्ज सजल घटासों तन, बिज्जुल छटास पटपीत ज्वरकोरको॥ द्रुत अलकावली सुतानन शरदचन्द, बैजनाथ विदित सुयश चित्तचोरको। हेरे सवरूप ऐसो दूसरो न रूप जैसो, हेरे मैं अनूपरूप कोसलकिशोरको॥ ११॥

सघन नक्षत्र नभ तनश्यामहीर हार, छहरि छटासी ज्योति पटपीतवोरको। दीपत प्रताप व्योम विदिशि दिशान क्षिति, मण्डित मुकुट मौलि माणिक अथोरको॥ कुण्डल मकर गण्ड मण्डित-कचाननपै, पूरितसअग्रद्रुतद्विजनतमोरको। हेरे सवरूप ऐसो दूसरो न रूप जैसो, हेरे मैं अनूपरूप कोसलकिशोरको॥ १२॥

मण्डल धरारितमखण्डदोरदण्डचण्ड, दण्डित अदण्ड वरिवण्ड-हूसमलभो। कूरचक्रकातर निदाघहत दैविकादि, मौखके नज्ञाकि मुद्रिता सर कमलभो॥ स्रवत कृपामृतोल्क जीव जीव मुक्तमोद, बैजनाथ कुमुद विकासित विमलभो। मुनि मान सानदाब्धि बृह-तोर्मि पूर्णपश्य, रामचन्द्रचन्द्रयश उदित अमलभो॥ १३॥

भानुदीप्ति घामैं पृथुह्लादस कलामैं द्युति, चन्द्रचन्द्रिकामैं रत्न-सागर मुदितहै। शरदघटमेंनभ विद्युतछटामैं स्वच्छ, शंकरजटामैं गङ्गधारसी कुदितहै॥ बैजनाथ नारद मैं धातुरस पारद मैं, कहिवे को शारद मैं सुबुधिललितहै। दिवस निशामैं एकरस भोरसामैं व्योम, विदिशि दिशामैं यश रामैंको उदितहै॥ १४॥

कीरति अपार बैजनाथ कोसलेन्द्रजी की, धरापै हिमाद्रि शृङ्ग

गङ्ग उर्मिकासी है । गङ्गपै सुकर्म कर्म ऊपर दयासो दान, दान सनमानपर धर्म शीलतासी है ॥ धर्मशील पर शमदमपै विराग त्याग, त्याग पर शुद्धरूप ज्ञानदीपिकासी है । ज्ञानदीप परमुक्ति चतुरमशाल ऐसी, मुक्तिपरदीप्तिभक्ति प्रेमलसनासी है ॥ १५ ॥

विश्रुत सुकीर्ति वैजनाथ राघवेंद्रजीकी, सोखिशशि क्षीरधिपै कुमुद विलासी है । कौमुदी कुमुदपैसो तापर शरदघन, घनपै सुभूरि भाव दीप्तिचपलासी है ॥ चपलापै चन्द्रपूर्ण षोडश कलासी रूप-चन्द्रपै समृद्धितप विधि विमलासी है । विधितपपै सुहरि हर के प्रभासी हरिहर पै ज्वलित आदिज्योति की कलासी है ॥१६॥

भानुरामचन्द्र भद्रआसन उदोत होत, वैजनाथ विस्तृत प्रताप ठामठामही । चलचलदलनकुचाल सरितानरही, क्रूरखो बागन मलीन धूमसामही ॥ भीरुउपजीत हीनलाजफागुखेल हारि, मार-शर लक्षनि सतापमहि धामही । काम निज वामही सुलोभ यश-नामही, सक्रोध क्रूरकामही रह्यो है मोहरामही ॥ १७ ॥

साधुयशनीति धर्म लाजभाग्य कीर्तिज्ञान, आदि की अकार बरजोरछोरलीनी है । सोई मद काम क्रोध लोभ मान मोह द्रोह, वैरदोषदूषण के पूर्वयुक्त कीनी है ॥ हरिविधि लोक सुरलोकन के वैजनाथ, खोलिकै किवाँर लै निरय के द्वार दीनी है । वीरवान मान गुरुदान दीनजनन को, रामचन्द्र राज्य में अपूर्व रीति कीनी है ॥ १८ ॥

धर्मधुरधार आपु बैठे भद्र आसन पै, दासन सुखद धर्मवद्ध भो अथाहिये । पाप ताप तिमिर अधर्म कर्म नाश पाय, दूरू सागरांवरा अनन्त मुदिताहिये ॥ नाग मुनि नाह दिगनाह लोक-नाह नर, चाह सुरताज कृ मनाह वांछताहिये । राज शिरताज रघुराज महाराज ज्य, श्रीमीज सांजराज श्रीसदेसराज चाहिये ॥ १९॥

इति श्रीतुलसीसतसईसटीका समाप्ति मङ्गलमेति शम् ।